

ऋग्वेद संहिता

(सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

भाग-२

(मण्डल ३, ४, ५, ६)



सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

भगवती देवी शर्मा



ऋग्वेद संहिता

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

भाग-२

[मण्डल ३,४,५,६]

संपादक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
भगवती देवी शर्मा



*

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

२०१०

मूल्य : १७५ रुपये



• प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

• संपादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

भगवती देवी शर्मा



• मुद्रक

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)



वैज्ञानिक अध्यात्मवाद जिनकी हर श्वास में बसा था,
ऐसी ऋषिसत्ता—पूज्य गुरुदेव



आधी जनशक्ति—नारी शक्ति की प्रेरणास्त्रोत—शक्ति स्वरूपा माताजी





भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

***

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुख स्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे।

*

— ऋग्वेद ३.६२.१०



अनुक्रमणिका

विषय-वस्तु	पृष्ठ सं० से . . . . तक
क. संकेत विवरण	४
ख. तृतीय मण्डल (सूक्त १-६२)	१-८८
ग. चतुर्थ मण्डल (सूक्त १-५८)	१-८६
घ. पंचम मण्डल (सूक्त १-८७)	१-१०४
ङ. षष्ठ मण्डल (सूक्त १-७५)	१-१०४
च. परिशिष्ट	
१. ऋषियों का संक्षिप्त परिचय	१-१२
२. देवताओं का संक्षिप्त परिचय	१३-२०
३. छन्दों का संक्षिप्त परिचय	२१
४. ऋग्वेद संहितायाः वर्णानुक्रमसूची	४०९-४२८

संकेत-विवरण

अनु० भा० = अनुक्रमणी भाष्य
आ० गृ० सू० = आश्वलायन गृह्यसूत्र
आ० श्रौ० सू० = आश्वलायन श्रौतसूत्र
उत्त० = उत्तरार्द्ध
ऋ० = ऋग्वेद
ऐत० ब्रा० = ऐतरेय ब्राह्मण
तैत्ति० आ० = तैत्तिरीय आरण्यक
द्र० = द्रष्टव्य
नि० = निरुक्त
पञ्च ब्रा० = पञ्चविंश ब्राह्मण
पू० = पूर्वार्द्ध
बृह० = बृहद्देवता
यजु० = यजुर्वेद सर्वानुक्रमसूत्र
सा० भा० = सायण भाष्य





॥ अथ तृतीयं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[ऋषि - विश्वामित्र । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२४३६. **सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।**
देवाँ अच्छा दीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आपने यज्ञ में यज्ञादि कार्य के लिए हमें सोमरस का वाहक बनाया है, अतएव हमें (समुचित) बल भी प्रदान करें । हे अग्निदेव ! हम तेजस्वितापूर्वक, देवशक्तियों के लिए (सोमरस निकालने के कार्य में, कूटने वाले) पाषाण को नियोजित करके आपकी स्तुतियाँ करते हैं ।आप शरीर को पुष्ट करने के लिए इसे ग्रहण करें ॥१ ॥

२४३७. **प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।**
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! समिधाओं और हव्यादि द्वारा आपको पुष्ट करते हुए हमने भली प्रकार यज्ञ सम्पन्न किया है । हमारी वाणी (स्तुतियों के प्रभाव) का संवर्द्धन हो । देवों ने हम स्तोताओं को यज्ञादि कर्म सिखाया है । अतः हम स्तोता अग्निदेव की स्तुति करने की इच्छा करते हैं ॥२ ॥

२४३८. **मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।**
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१ न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥३ ॥

ये अग्निदेव मेधावी, विशुद्ध, बल-सम्पन्न और जन्म से ही उत्कृष्ट बन्धुत्व भाव से युक्त हैं । ये द्युलोक और पृथ्वी लोक में सर्वत्र सुख स्थापित करते हैं । प्रवहमान धाराओं के जल में गुप्त रूप से स्थित दर्शनीय अग्निदेव को देवों ने (यज्ञार्थ) खोज निकाला ॥३ ॥

२४३९. **अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा ।**
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥४ ॥

शुभ्र धन-सम्पदा से युक्त, उत्पन्न अग्नि (ऊर्जा) को प्रवाहशील महान् नदियों ने प्रवर्धित किया । जैसे घोड़ी नवजात शिशु को विकसित करती है, उसी प्रकार अग्नि के उत्पन्न होने के बाद देवों ने उसे विकसित-संवर्धित किया ॥४ ॥

२४४०. **शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।**
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५ ॥

शुभ्रवर्ण तेज के द्वारा अन्तरिक्ष को व्याप्त करके ये अग्निदेव यज्ञ-कर्म सम्पादक यजमान को पवित्र और स्तुत्य तेजों से परिशुद्ध करते हैं । प्रदीप्त ज्वाला रूप आच्छादन को ओढ़कर ये अग्निदेव स्तोताओं को विपुल अन्न और पर्याप्त ऐश्वर्य-सम्पदा से समृद्धि प्रदान करते हैं ॥५ ॥



२४४१. **वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।**
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ॥६ ॥

स्वयं नष्ट न होने वाले तथा (जल को) हानि न पहुँचाने वाले ये अग्निदेव सब ओर विचरण करते हैं । वस्त्रों से आच्छादित न होने पर भी नग्न न रहने वाली सनातन काल से तरुण, एक ही दिव्य स्रोत से उत्पन्न प्रवहमान जलधाराएँ एक ही गर्भ (अग्नि) को धारण करती हैं ॥६ ॥

२४४२. **स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।**
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥७ ॥

इस (अग्नि) की नाना रूपों वाली संगठित किरणें जब फैलती हैं, तब पोषक रस के उत्पत्ति स्थान से मधुर वर्षा होती है । सबको तृप्ति देने वाली किरणें यहाँ विद्यमान रहती हैं । इस अग्नि के माता-पिता पृथ्वी और अंतरिक्ष हैं ॥७ ॥

२४४३. **बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।**
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥८ ॥

हे बल के पुत्र अग्निदेव ! सबके द्वारा धारण किये जाने योग्य आप उज्ज्वल और वेगवान् किरणों द्वारा प्रकाशमान हों । जिस समय स्तोतागण स्तोत्रों से आपको प्रवर्धित करते हैं, उस समय वे मधुर घृत धारायें सिंचित करती हैं अथवा पुष्टिकारक जल धाराएँ बरसती हैं ॥८ ॥

२४४४. **पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।**
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥९ ॥

अग्निदेव ने जन्म से ही अपने पिता (अन्तरिक्ष) के निचले स्तर जल प्रदेश को जान लिया । अन्तरिक्ष की जलधारा ने बिजली को उत्पन्न किया । अग्निदेव अपने कल्याणकर मित्रों और द्युलोक की जलराशि के साथ गुह्य रूप में विचरते हैं । (गुह्य रूप में स्थित) उस अग्नि को कोई भी प्राप्त नहीं कर सका ॥९ ॥

२४४५. **पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत्पीप्यानाः ।**
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये३ नि पाहि ॥१० ॥

ये अग्निदेव पिता (आकाश) और माता (पृथ्वी) के गर्भ को पुष्ट करते हैं । एक मात्र अग्निदेव अभिवर्द्धित ओषधि का भक्षण करते हैं । अभीष्ट वर्षा करने वाले ये अग्निदेव पत्नी सहित याजक के पवित्रकर्त्ता बन्धु सदृश हैं । हे अग्निदेव ! द्यावा-पृथिवी में हम यजमानों को रक्षित करें ॥१० ॥

२४४६. **उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।**
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११ ॥

महान् अग्निदेव अबाध और विस्तीर्ण पृथ्वी में प्रवर्धित होते हैं । वहाँ बहुत अन्नवर्द्धक जल समूह अग्नि को संवर्धित करते हैं । जल के उत्पत्ति स्थान में स्थित अग्निदेव परस्पर बहिन रूप नदियों के जल में शान्तिपूर्वक शयन करते हैं ॥११ ॥

२४४७. **अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।**
उदुस्रिया जनिता यो जजानापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२ ॥

ये अग्निदेव सबके पिता रूप जल के गर्भ में गुह्य-स्थित, मनुष्यों के हितकारी, संग्राम में युद्ध कुशल, अपनी



सेना के पोषक, सर्व दर्शनीय तथा अपने तेज से दीप्तिमान् हैं । उन्होंने अपने पुत्र रूप यजमान के लिए पोषण की क्षमता उत्पन्न की ॥१२ ॥

२४४८. अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३ ॥

उत्तम ऐश्वर्ययुक्त अरणी ने दर्शनीय, विशिष्ट रूपवान् तथा जलों और ओषधियों के गर्भभूत अग्निदेव को उत्पन्न किया है । सम्पूर्ण देवगण भी उस स्तुत्य, बलशाली और नवजात अग्निदेव के पास स्तुतियाँ करते हुए पहुँचे । उन्होंने अग्नि की सम्यक् सेवा की ॥१३ ॥

२४४९. बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥१४ ॥

विद्युत् की भाँति अत्यन्त कान्तिमान् महान् सूर्यदेव की किरणें अगाध समुद्र के बीच अमृत रूप जल का दोहन करती हैं । वे किरणें गुहा के समान अपने सदन अन्तरिक्ष में बढ़ती हुई, प्रभायुक्त अग्नि का आश्रय प्राप्त करती हैं ॥१४ ॥

[समुद्र का जल सेवन योग्य नहीं होता, किन्तु किरणें उसका दोहन करके सेवन-योग्य अमृत तुल्य जल को प्राप्त कर लेती हैं ।]

२४५०. ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५ ॥

हे अग्ने ! हम यजमान हव्यादि द्वारा आपकी सम्यक् स्तुति करते हैं । हम उत्तम बुद्धि की कामना करते हुए आपसे मित्रता के लिए प्रार्थना करते हैं । देवों के साथ आप, हम स्तुति करने वालों की रक्षा करें और दुर्दम्यों से हमारी रक्षा करें ॥१५ ॥

२४५१. उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥१६ ॥

हे उत्तम नियामक देव अग्ने ! आपके आश्रय में रहने वाले हम सम्पूर्ण धनों को धारण करते हुए, आपके अनुग्रह से पुष्ट (समृद्ध) होते रहें । हम उत्तम पुष्टिदायक अन्नों से युक्त होकर देव विरोधी शत्रुओं को पराजित कर सकें ॥१६ ॥

२४५२. आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान्रथिरो यासि साधन् ॥१७ ॥

हे अग्निदेव ! आप देव कार्यों के प्रतीक रूप में अत्यन्त मनोहर दिखाई देते हैं । आप सम्पूर्ण स्तोत्रों के ज्ञाता हैं । आप मनुष्यों को उनके अपने घरों में आश्रय देने वाले हैं । उत्तम रथों से गमन करने वाले आप देवों के कार्य में उनका अनुगमन करते हैं ॥१७ ॥

२४५३. नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८ ॥

अविनाशी और दीप्तिमान् अग्निदेव यज्ञ के साधन रूप में प्रयुक्त होते हैं और मनुष्यों के घरों में अधिष्ठित होते हैं । ये सम्पूर्ण स्तोत्रों के ज्ञाता हैं । घृत द्वारा प्रदीप्त काया से अग्निदेव विशेष प्रकाशित होते हैं ॥१८ ॥



२४५४. **आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन्।**
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९ ॥

सर्वत्र विचरणशील हे महान् अग्ने ! आप अपनी मंगलमयी मैत्री और महती रक्षण-सामर्थ्यों के साथ हमारे पास आयें और हमें उपद्रवरहित, उत्तम स्तुति के योग्य, यशस्वी धन विपुल मात्रा में प्रदान करें ॥१९ ॥

२४५५. **एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम्।**
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥२० ॥

हे अग्ने ! पुरातन पुरुष रूप में, सनातन और नूतन स्तोत्रों से आपकी स्तुति की जाती है । सभी जन्म लेने वाले प्राणियों में सन्निहित हे शक्तिशाली अग्निदेव ! हमने आपके निमित्त महान् यज्ञों को सम्पन्न किया है ॥२० ॥

२४५६. **जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।**
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१ ॥

सम्पूर्ण प्राणियों में निहित, सर्वभूत-ज्ञाता अग्निदेव, विश्वामित्र वंशजों द्वारा सर्वदा प्रदीप्त होते रहे हैं । हम उस यजनीय अग्नि के कल्याणकारी अनुग्रहों के अनुगत बने रहें ॥२१ ॥

२४५७. **इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।**
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥२२ ॥

हे बलवान् और उत्तमकर्मा अग्निदेव ! आप हमारे हव्यादि से हर्षित होकर हमारे यज्ञ को सब देवों तक पहुँचायें । हे देवों के आह्वाता अग्निदेव ! आप हमें विपुल अन्नादि प्रदान करें । हमें प्रभूत धनों से युक्त करें ॥२२ ॥

२४५८. **इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।**
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञादि कार्य के लिए अनेक सत्कर्मों के लिए और गौओं के पोषण आदि के लिए उत्तम भूमि हमें प्रदान करें । हमारे पुत्र वंश की वृद्धि करने वाले हों । आपकी वह सुमति हमें भी प्राप्त हो ॥२३ ॥

[सूक्त - २]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - वैश्वानर अग्नि । **छन्द** - जगती]

२४५९. **वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।**
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१ ॥

ऋत की वृद्धि करने वाले वैश्वानर अग्निदेव के लिए हम घृतवत् पवित्र स्तुतियाँ करते हैं । मनुष्य और ऋत्विग्गण देवों के आवाहन कर्त्ता दोनों रूपों वाले (गार्हपत्य और आहवनीय) अग्नि को अपनी बुद्धि के अनुसार उसी प्रकार सँवारते हैं, जैसे कारीगर रथ को सँवारते हैं ॥१ ॥

२४६०. **स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः ।**
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२ ॥

वे अग्निदेव जन्म के साथ ही द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं । वे अग्निदेव पिता और माता रूप द्यावा-पृथिवी के स्तुति योग्य पुत्र हैं । वे अग्निदेव हव्यवाहक, अजर, अन्न-धन से पूर्ण, अटल, प्रभापुञ्ज और मनुष्यों में अतिथि के सदृश पूजनीय हैं ॥२ ॥

२४६१. **क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।**
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥३ ॥

बलसम्पन्न और कर्मकुशल देव पुरुष यज्ञ में कर्म और ज्ञान के प्रभाव से अग्निदेव को उत्पन्न करते हैं । जैसे भार वहन करने वाले अश्व की स्तुति होती है, वैसे ही हम अन्नों की कामना से तेजस्वी, महान् अग्निदेव की स्तुति करते हैं ॥३ ॥

२४६२. **आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।**
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥४ ॥

स्तुति-योग्य, वरणीय, उज्ज्वल और प्रशंसनीय अन्नों की अभिलाषा से, भृगु-वंशजों के ऐश्वर्य-दाता, अभीष्ट प्रदान करने वाले, प्रज्ञावान् दिव्य तेजों से प्रकाशमान अग्निदेव का हम वरण करते हैं ॥४ ॥

२४६३. **अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।**
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥५ ॥

यजमान अपने सुख के लिए कुश के आसन बिछाकर, स्रुचाओं को हाथ में लेकर बैठते हैं । वे अन्न और बल से युक्त, उत्तम, प्रकाशमान, सम्पूर्ण देवों के हितकारी, ताप-नाशक, यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के इष्ट-साधक अग्निदेव को सबसे आगे स्थापित करते हैं ॥५ ॥

२४६४. **पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।**
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६ ॥

हे पवित्र, दीप्ति-सम्पन्न, होता अग्निदेव ! आपकी परिचर्या की कामना करने वाले यजमान पुरुष श्रेष्ठ यज्ञ स्थान में कुश के आसन बिछाकर स्तुति आदि कर्म करते हैं । उन्हें आप धन प्रदान करें ॥६ ॥

२४६५. **आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।**
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७ ॥

नवजात अग्नि को यजमानों ने धारण किया, तब अग्नि ने अपने तेजोयुक्त प्रकाश को द्यावा-पृथिवी और विस्तृत अन्तरिक्ष में संव्याप्त किया । वे अन्न प्रदाता और मेधावी अग्निदेव अन्न प्राप्ति की कामना से यज्ञ के लिए सज्जित अश्व के सदृश चारों ओर से लाये जाते हैं ॥७ ॥

२४६६. **नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।**
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः ॥८ ॥

हे ऋत्विजो ! यह रथी (गतिमान्) और विराट् यज्ञ के द्रष्टा अग्निदेव सब देवों में अग्रणी रूप में स्थापित हुए हैं । ऐसे हव्यभक्षक, उत्तम यज्ञ-संपादक, (दोषों का) दमन करने वाले जातवेद को नमन करते हुए उनकी सेवा करो ॥८ ॥

२४६७. **तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।**
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥९ ॥

(हित की) कामना करने वाले अमर देवों ने सर्वत्र संव्याप्त होने वाले अग्निदेव के लिए तीन महान् समिधाओं को पवित्र किया । उन (अग्निदेव का) रक्षण करने वाली तीन (समिधाओं) में से एक को मृत्युलोक में, शेष दो को उनसे सम्बन्धित दो लोकों (अन्तरिक्ष और द्युलोक) में स्थापित किया ॥९ ॥



[समिधा का अर्थ होता है सम्यक् रूप से प्रज्वलित करने वाली। भूलोक में अग्नि को प्रज्वलित करने वाली वायु (आक्सीजन) है। अन्तरिक्ष में अग्नि का रूप विद्युत् है। उसके आधार विद्युत्-चुम्बकीय धाराएँ अथवा अयन हैं। द्युलोक में सूर्य की समिधा अणु विखण्डन प्रक्रिया है।]

२४६८. **विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे।**
स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥१० ॥

अन्न की अभिलाषी मानवी प्रजाओं ने अपने पालक मेधावी अग्निदेव को तेजस्वी शस्त्र की भाँति संस्कृत किया। वे अग्निदेव उच्च और निम्न प्रदेशों को व्याप्त करते हुए गमन करते हैं। उन्होंने सम्पूर्ण लोकों में गर्भधारण करवाया (लोकों में उत्पादक क्षमता का विकास किया) ॥१० ॥

२४६९. **स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः।**
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥११ ॥

वे वैश्वानर अग्निदेव, जो अत्यन्त बलशाली और अमरणशील हैं, जो यजमान को उत्तम धन और रत्नों को देने वाले हैं; जो अत्यन्त ज्ञान-सम्पन्न और अभीष्टवर्षी हैं; वे मनुष्यों के जठर में प्रवर्धित होते हैं, तो सिंह के सदृश विचित्र गर्जनाएँ करते हैं ॥११ ॥

२४७०. **वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः।**
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२ ॥

उत्तम स्तोत्रों से स्तुत्य ये वैश्वानर अग्निदेव अन्तरिक्ष में होते हुए द्युलोक के पृष्ठ पर आरूढ़ होते हैं। पूर्वकाल के सदृश वे प्राणियों के लिए धारण-योग्य पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। वे सर्वदा जाग्रत् रहकर सनातन (सुनियोजित) मार्ग से परिभ्रमण करते रहते हैं ॥१२ ॥

२४७१. **ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य १ मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम्।**
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३ ॥

उन यज्ञपालक, यजनीय, मेधावी और स्तुत्य द्युलोक-निवासक अग्निदेव को (धरती पर) वायु देव ने धारण किया। विविध मार्गगामी, दीप्तिमान् ज्वाला- युक्त, उत्तम रश्मि-युक्त उन अग्निदेव से हम नवीन और श्रेष्ठ साधनों की याचना करते हैं ॥१३ ॥

२४७२. **शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम्।**
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४ ॥

अत्यन्त शुद्ध, यज्ञ में गमनशील, सर्वद्रष्टा, आकाश में केतुरूप गतिवाले, सर्वदा देदीप्यमान, उषाकाल में चैतन्य रहने वाले, अन्नवान् और महान् उन अग्निदेव की हम नमनपूर्वक प्रार्थना करते हैं ॥१४ ॥

२४७३. **मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम्।**
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५ ॥

हर्ष प्रदायक, देव-आह्वाता (होता), सर्वदा शुद्ध, अकुटिल, शत्रु दमनकारी, स्तुत्य, विश्वद्रष्टा, रथ के सदृश विलक्षण शोभा वाले, दर्शनीय शरीर वाले, मनुष्यों का हित करने वाले उन अग्निदेव से हम ऐश्वर्य की याचना करते हैं ॥१५ ॥



[सूक्त - ३]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - वैश्वानर अग्नि । छन्द - जगती ।]

२४७४. वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१ ॥

ज्ञानी स्तोतागण सन्मार्ग पर अनुगमन के लिए यज्ञों में व्यापक बल संयुक्त वैश्वानर अग्निदेव की सेवा करते हैं । अमर अग्निदेव हव्यादि पहुँचाकर देवों की सेवा करते हैं । अतएव यह सनातन (यज्ञीय) धर्म कभी प्रदूषण पैदा नहीं करता ॥१ ॥

२४७५. अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥२ ॥

सुन्दर अग्निदेव, होता तथा दूत के रूप में द्युलोक एवं पृथ्वी लोक में संचरित होते हैं । देवों द्वारा प्रेरित ज्ञान-सम्पन्न ये अग्निदेव मनुष्यों के बीच पुरोहित रूप में अधिष्ठित होकर अपने तेजों से महान् यज्ञ गृह को सुशोभित करते हैं ॥२ ॥

२४७६. केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि संदधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥३ ॥

मेधावीजन यज्ञों के केतु (विज्ञापक) और साधन रूपी अग्नि का पूजन अपने ज्ञान एवं कर्म आदि से करते हैं ।जिस अग्नि में स्तोताजन अपने कर्मों को अर्पित करते हैं, उसी अग्नि से यजमान सुखादि की कामना करता है ॥३ ॥

२४७७. पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥४ ॥

वे अग्निदेव यज्ञों के पोषणकर्त्ता पिता रूप हैं । वे स्तोताओं के प्राण-दाता और ऋत्विजों के हव्यादि वाहक हैं । वे अग्निदेव विविध रूपों में द्यावा-पृथिवी में प्रविष्ट होते हैं । बहुतों के प्रिय और मेधावी वे अग्निदेव अपने तेज से प्रदीप्त होते हैं ॥४ ॥

२४७८. चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥५ ॥

चन्द्र की तरह (आनंदित करने वाले) अग्निदेव, तेजस्वी रथ वाले, शीघ्र कर्म करने वाले, जलों में निवास करने वाले और सर्वज्ञाता हैं । उन सर्वत्र व्याप्त होने वाले, शीघ्र गमनकारी, अनेक बलों से युक्त, भरण-पोषण कर्त्ता और उत्तम सुषमा युक्त वैश्वानर अग्निदेव को देवों ने इस लोक में स्थापित किया ॥५ ॥

२४७९. अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥६ ॥

यज्ञ के साधन रूप अग्निदेव कर्म कुशल ऋत्विजों द्वारा संचालित यजमानों के यज्ञ को सम्पादित करते हैं । सर्वत्र गतिमान् , शीघ्रगामी, दानशील, शत्रुनाशक अग्निदेव द्यावा-पृथिवी के मध्य गमन करते हैं ॥६ ॥

२४८०. अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥७ ॥



हम दीर्घ आयु और उत्तम पुत्रादि की प्राप्ति के लिए अग्निदेव की स्तुति करते हैं । हे अग्निदेव ! आप हमें बल से पूर्ण करें । हमें अन्न आदि प्रदान करें । हे चैतन्य अग्निदेव ! आप महान् यजमान को पूर्णायु से युक्त करें, क्योंकि आप उत्तम कर्म करने वाले तथा सत्पुरुषों एवं देवों के प्रिय हैं ॥७ ॥

२४८१. विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥८ ॥

मनुष्य अपनी समृद्धि के लिए पालक रूप, महान्, अतिथि के सदृश पूजनीय, बुद्धि के प्रेरक, ऋत्विजों के प्रिय, यज्ञों के प्राण-स्वरूप, जातवेदा अग्निदेव का नमनपूर्वक पूजन करते हैं ॥८ ॥

२४८२. विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥९ ॥

स्तुत्य, उत्तम रथी, दीप्तिमान्, दिव्यगुण सम्पन्न अग्निदेव अपने बल से सम्पूर्ण प्रजाओं को व्याप्त करते हैं । हम घरों में स्थित होकर अनेकों के पोषक अग्निदेव के सम्पूर्ण कर्मों को अपने उत्तम स्तोत्रों से विभूषित करते हैं ॥९ ॥

२४८३. वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१० ॥

हे दूरदर्शी वैश्वानर अग्निदेव ! आप जिन तेजों के द्वारा सर्वज्ञाता हुए, उनकी हम स्तुति करते हैं । हे अग्निदेव ! आपने उत्पन्न होकर ही द्यावा-पृथिवी और सम्पूर्ण लोकों को प्रकाश से पूर्ण किया है । आप अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जनों को घेर लेने में समर्थ हैं ॥१० ॥

२४८४. वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११ ॥

वैश्वानर अग्निदेव के उत्तम कर्म से यजमानों को महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । उत्तम यज्ञादि कर्म की इच्छा से वे एकमात्र मेधावी अग्निदेव यजमानों को धनादि दान कर देते हैं । वे अग्निदेव अपने प्रचुर बल से दोनों माता-पिता रूप द्यावा-पृथिवी को प्रतिष्ठा प्रदान करते हुए उत्पन्न हुए ॥११ ॥

[सूक्त - ४]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - आप्रीसूक्त (= १इध्म अग्नि अथवा समिद्ध अग्नि २ तनूनपात् । ३ इळ; ४ बर्हि; ५- देवीद्वार; ६ उषासानक्ता । ७ दिव्य होता प्रचेतस् । ८ तीन देवियाँ- सरस्वती; इळा; भारती ; ९ त्वष्टा, १० वनस्पति ; ११- स्वाहाकृति) । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२४८५. समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥१ ॥

समिधाओं से भली प्रकार प्रदीप्त हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ मन से हमें चैतन्य करें । अतिशय पवित्र तेज से युक्त होकर हमें उल्लसित मन से धनादि प्रदान करें । हे अग्निदेव ! आप देवों को यज्ञ के लिए बुलाकर लायें । आप देवों के सखा रूप हैं । आप प्रसन्न मन से मित्र देवों का यजन करें ॥१ ॥

२४८६. यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् ॥२ ॥



वरुण, मित्र, अग्नि आदि देव जिस तनूनपात् यज्ञदेव की नित्यप्रति दिन में तीन बार पूजा करते हैं, वे देव घृत के आधार पर पुष्ट होने वाले, देवों को तुष्ट करने वाले इस यज्ञ को मधुरता से परिपूर्ण करें ॥२ ॥

२४८७. प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥३ ॥

हमारी स्तुतियाँ सर्वप्रथम वरणीय होता अग्निदेव के पास गमन करें । वन्दना करने के लिए हम उन बलशाली अग्निदेव के पास स्तुतियों के साथ गमन करें । वे हमारे द्वारा प्रेरित होकर पूजनीय देवों का यजन करें ॥३ ॥

२४८८. ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादिहोता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥४ ॥

दिव्य नाभि (यज्ञ कुण्ड) के मध्य होता (अग्नि) स्थापित है । हम देव से युक्त (अग्नि अथवा मंत्र के साथ) कुशों को (प्रज्वलन के लिए) फैलाते हैं । तुम दोनों की ज्वालाएँ अन्तरिक्ष में बहुत ऊपर तक पहुँच गयी हैं । यज्ञ में हमने ऊर्ध्वगति देने वाले मार्ग का ही आश्रय लिया है ॥४ ॥

२४८९. सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभी ३ मं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ॥५ ॥

यज्ञ से समस्त जगत् को पुष्ट करने वाले देवगण, स्वयं मन से इच्छा करते हुए, सप्त होता युक्त यज्ञ की ओर गमन करते हैं । यज्ञों में मनुष्य सदृश रूप वाले बहुत से देवगण प्रकट होकर यज्ञ के चारों ओर विचरण करते हैं ॥५ ॥

२४९०. आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा३ विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥६ ॥

स्तुति किये जाने योग्य, भिन्न रूप वाली होकर भी समीप रहने वाली उषा और रात्रि प्रकाशित शरीरों से आगमन करें । मित्र, वरुण और मरुतों से युक्त इन्द्रदेव जिस रूप से हम पर अनुग्रह करते हैं, उसी रूप को वे दोनों भी तेज से युक्त होकर धारण करें ॥६ ॥

२४९१. दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥७ ॥

दिव्य और प्रधान अग्नि रूप दोनों होताओं को हम तृप्त करते हैं । अन्नवान् और यज्ञ की इच्छावाले सात ऋत्विज् भी इन दोनों को हविष्यान्न से हर्षित करते हैं । वे व्रतपालक और तेजस्वी ऋत्विग्गण "यज्ञादि व्रतों का अनुगमन ही सत्य है"- ऐसा कहते हैं ॥७ ॥

२४९२. आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं सदन्तु ॥८ ॥

भरण करने वाली (सूर्य की) शक्ति के साथ भारती देवी हमारे यज्ञ में आयें । मनुष्य जनों (यज्ञादि कर्मकर्त्ता) के साथ इला देवी भी इस दिव्य अग्नि के पास आयें । सारस्वत वाक् शक्ति के साथ सरस्वती देवी भी आयें । ये तीनों देवियाँ आकर इन कुश के आसनों पर अधिष्ठित हों ॥८ ॥

२४९३. तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९ ॥

हे त्वष्टादेव ! आप उल्लसित मन से हमें बल और पुष्टि युक्त वह वीर्य प्रदान करें, जिससे हमें वीर, कर्मठ,



कौशल युक्त, सोम को सिद्ध करने वाला और देवत्व प्राप्ति की कामना वाला पुत्र उत्पन्न हो ॥९ ॥

२४९४. **वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।**
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१० ॥

हे वनों के स्वामी ! आप देवों को हमारे पास लायें । पाप-नाशक अग्निदेव हमारी हवियों को देवों तक पहुँचायें । वह सत्यव्रती अग्निदेवों के आह्वाता हैं, क्योंकि वे ही देवों के सभी कर्मों को जानते हैं ॥१० ॥

२४९५. **आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।**
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप भली प्रकार समिधाओं से युक्त होकर इन्द्रदेव और शीघ्र गमनकारी देवों के साथ एक रथ पर बैठकर हमारी ओर आगमन करें । उत्तम पुत्रों वाली अदिति हमारे कुशों पर बैठें । उत्तम आहुतियों से अमर देवगण तृप्त हों ॥११ ॥

[सूक्त - ५]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२४९६. **प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।**
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥१ ॥

अग्निदेव उषा को जानते हैं ।ये मेधावी अग्निदेव क्रान्तदर्शी ज्ञानियों के मार्ग पर जाने के लिए चैतन्य होते हैं ।अत्यन्त तेजस्वी ये देव देवत्व की अभिलाषा वाले व्यक्तियों द्वारा प्रदीप्त होकर अन्धकार से मुक्ति दिलाते हैं ॥१ ॥

२४९७. **प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।**
पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥२ ॥

ये पूज्य अग्निदेव स्तोताओं की वाणी , मंत्रों और स्तोत्रों से प्रवृद्ध होते हैं । देवों के दूतरूप अग्निदेव अनेक यज्ञों में दीप्तिमान् होने की इच्छा से चैतन्य होकर उषाकाल में विशेष प्रकाशमान होते हैं ॥२ ॥

२४९८. **अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्व १ पां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।**
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥३ ॥

यजमानों के मित्ररूप अग्निदेव यज्ञ से उनके अभीष्ट को सिद्ध करने वाले हैं । जलों के गर्भ में रहने वाले अग्निदेव मनुष्यों के बीच स्थापित किये जाते हैं । इष्ट और पूज्य अग्निदेव उच्च स्थान पर स्थित होते हैं । वे मेधावी अग्निदेव स्तुतियों और हव्यादि द्वारा यजन के योग्य हैं ॥३ ॥

२४९९. **मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।**
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४ ॥

ये अग्निदेव समिधाओं से जाग्रत् होते हैं, उस समय वे मित्र होते हैं । वे ही मित्र, होता और सर्वभूत ज्ञाता वरुण हैं । वे ही मित्र,दानशील अध्वर्यु और प्रेरक वायु स्वरूप हैं । वे ही नदियों और पर्वतों के भी मित्र होते हैं ॥४ ॥

२५००. **पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।**
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५ ॥

ये सुशोभित अग्निदेव विस्तृत पृथ्वी के प्रीतिकर और श्रेष्ठ स्थान की रक्षा करते हैं । महान् सूर्यदेव के



परिभ्रमण स्थान की रक्षा करते हैं । अन्तरिक्ष के मध्य मरुद्गणों की रक्षा करते हैं और देवों को प्रमुदित करने वाले यज्ञादि कर्मों की रक्षा करते हैं ॥५ ॥

२५०१. ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥६ ॥

अग्निदेव के प्रसुप्त रहने पर भी उनका रूप तेजस्वी होता है । वे सम्पूर्ण महान् कार्यों के ज्ञाता, दीप्तिमान् अग्निदेव प्रशंसनीय और सुन्दर जल को उत्पन्न करते हैं तथा तत्परतापूर्वक उसकी रक्षा करते हैं ॥६ ॥

२५०२. आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनः पुनर्मातरा नव्यसी कः ॥७ ॥

तेजस्वी और स्तुत्य ये अग्निदेव स्वेच्छा से अपने प्रिय गर्भस्थान में अधिष्ठित होते हैं । ये दीप्तिमान्, शुद्ध, महान् और पवित्र अग्निदेव अपने माता-पिता अर्थात् पृथ्वी और द्युलोक को बार-बार नवीनता प्रदान करते हैं ॥७ ॥

२५०३. सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥८ ॥

जन्म के साथ ही ये अग्निदेव जब ओषधियों द्वारा धारण किये जाते हैं, तब मार्ग में प्रवाहित जल के समान शुभ्र ओषधियाँ जल से पोषित होकर फलदायक होती हैं । ये अग्निदेव अपने माता-पिता पृथ्वी और द्यु के मध्य बढ़ते हुए हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

२५०४. उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥९ ॥

हमारे द्वारा स्तुत होकर प्रवृद्ध हुए ये अग्निदेव पृथ्वी में प्रतिष्ठित होकर द्युलोक तक प्रकाशित हुए हैं । वे अग्निदेव सबके मित्र स्वरूप, सबके द्वारा स्तुत्य और अरणियों से उत्पन्न होने वाले हैं । वे अग्निदेव देवों के दूत रूप में प्रतिष्ठित होकर हमारे यज्ञ हेतु देवताओं को भली प्रकार बुलाएँ ॥९ ॥

२५०५. उदस्तम्भीत्समिधा नाकमृष्वो ३ ग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१० ॥

जब मातरिश्वा ने भृगुओं के लिए गुहा स्थित हव्य-वाहक अग्नि को प्रज्वलित किया था, तब तेजस्वियों में शिरोमणि और महान् उन अग्निदेव ने अपने दिव्य तेज से सूर्य को भी स्तंभित कर दिया ॥१० ॥

२५०६. इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप स्तोताओं के लिए श्रेष्ठ रहने वाली, अनेक कर्मों में प्रयुक्त होने वाली, गौओं को पुष्ट करने वाली भूमि प्रदान करें, पुत्र-पौत्रादि से वंश-वृद्धि होती रहे तथा आपकी उत्तम बुद्धि का लाभ हमें प्राप्त हो ॥११ ॥

[सूक्त - ६]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२५०७. प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥१ ॥



हे स्तोताओ ! आप मंत्र युक्त स्तोत्रों के साथ ही देवयजन में प्रयुक्त होने वाली स्रुवा को ले आयें । अन्न से पूर्ण स्रुवा को दक्षिण दिशा से लाकर पूर्व दिशा में हवि और घृत से परिपूर्ण कर अग्नि की ओर लाया जाता है ॥१॥

२५०८. आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! जन्म के साथ ही आप द्युलोक एवं पृथ्वी को पूर्ण करते हैं । हे यजन योग्य अग्निदेव ! अपनी महिमा से ही आप द्यावा - पृथिवी और अन्तरिक्ष से भी श्रेष्ठ हो गये हैं । आपकी अंश रूप सप्त ज्वालाओं से युक्त किरणें स्तुत्य हों ॥२ ॥

२५०९. द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥३ ॥

हे होता अग्निदेव ! जिस समय देवत्व की अभिलाषा द्वारा हविष्यान्न से युक्त होकर प्रजाजन तेजस्वी ज्वालाओं की स्तुति करते हैं, उस समय द्युलोक, पृथिवी और यजनीय देवगण यज्ञादि की सफलता के लिए आपकी स्थापना करते हैं ॥३ ॥

२५१०. महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥४ ॥

याजकों के प्रिय महान् अग्निदेव, तेजस्वितापूर्वक द्यावा-पृथिवी के बीच अपने महिमामय स्थान पर अविचल रूप में स्थित हैं । सपत्नी की भाँति परस्पर जुड़ी हुई अजर - अमृत उत्पादक द्यावा-पृथिवी श्रेष्ठ अग्निदेव की दुधारू गौओं के समान हैं ॥४ ॥

२५११. व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं । आपके कर्म महान् हैं । आपने यज्ञादि कर्मों से द्यावा-पृथिवी को विस्तारित किया है । आप देवों के दूत रूप में प्रतिष्ठित हैं । हे बलशाली अग्निदेव ! आप जन्म से ही याजकों के नेता हैं ॥५ ॥

२५१२. ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥६ ॥

हे दीप्तिमान् अग्निदेव ! प्रशस्त केश वाले, लगाम वाले, तेजोमय रोहित वर्ण वाले अपने अश्वों को यज्ञ की धुरी से जोड़ें । तदनन्तर सम्पूर्ण देवों को बुला लायें । हे सर्वभूत ज्ञाता अग्निदेव ! उन देवों को हमारे उत्तम यज्ञ से युक्त करें ॥६ ॥

२५१३. दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! जब आप वनों में जल का शोषण करते हैं, उस समय आपकी दीप्ति सूर्य से भी अधिक तेज होती है । आप कान्तिमती पुरातन उषा के पीछे प्रतिभाषित होते हैं । विद्वान् स्तोतागण प्रमुदित मन से होतारूप आपकी स्तुति करते हैं ॥७ ॥

२५१४. उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८ ॥

जो देवगण अन्तरिक्ष में हर्षपूर्वक रहते हैं, जो दीप्तिमान् द्युलोक में रहते हैं और जो 'ऊम' संज्ञक यजनीय पितर हैं, वे सभी यहाँ सम्मानपूर्वक आवाहित होते हैं । हे अग्निदेव ! आप अश्वों से युक्त रथ से उन्हें लाएँ ॥८ ॥

२५१५. ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ्नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप उन सभी देवों के साथ एक ही रथ पर अथवा विविध रथों से हमारे पास आयें । आपके अश्व, वहन करने में समर्थ हैं, तैंतीस देवों को उनकी पत्नियों सहित सोमपान के लिए लाएँ और सोमपान से उन्हें प्रमुदित करें ॥९ ॥

२५१६. स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥१० ॥

अत्यन्त विस्तृत द्यावा-पृथिवी प्रत्येक यज्ञ में जिसकी वृद्धि के लिए स्तुतियाँ करती हैं, वे ही देवों के आवाहनकर्त्ता अग्निदेव हैं । सुन्दर रूपवती, परिपूर्ण जलवती, सत्यवती द्यावा - पृथिवी यज्ञ के समान ऋत से उत्पन्न उस अग्नि के अनुकूल होकर स्थित है ॥१० ॥

२५१७. इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप हम स्तोताओं के लिए सर्वदा श्रेष्ठ रहने वाली, अनेक कर्मों में प्रयुक्त होने वाली, गौओं को पुष्ट करने वाली भूमि प्रदान करें । हमारे पुत्र-पौत्रादि से वंश वृद्धि होती रहे । हे अग्निदेव ! आपकी उत्तम बुद्धि का अनुग्रह हमें प्राप्त हो ॥११ ॥

[सूक्त - ७]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२५१८. प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः ।
परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥१ ॥

पृष्ठ भाग जिनका नीलवर्ण है-ऐसे सर्वधारक अग्निदेव की ज्वालाएँ उन्नत उठती हैं, वे मातृ-पितृ रूपा द्यावा-पृथिवी में एवं प्रवहमान सप्त धाराओं में भी प्रविष्ट होती हैं। सर्वत्र व्यापक इन अग्निदेव के साथ द्यावा-पृथिवी भी संचरित होती है । वे दोनों अग्निदेव को दीर्घायु भी प्रदान करते हैं ॥१ ॥

२५१९. दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥२ ॥

द्युलोक में संव्याप्त बलशाली अग्नि के अश्व (गतिशील किरणें) धेनु (पोषण करने वाली) भी हैं । वे अग्निदेव (प्रकृति के) मधुर प्रवाहों में भी स्थिर रहते हैं । हे अग्निदेव ! आप यज्ञ गृह में रहकर अपनी ज्वालाओं को विस्तारित करते हैं । एक गौ (पृथ्वी अथवा वाणी) आपकी परिचर्या करती हैं ॥२ ॥

[आकाश में संव्याप्त ऊर्जाकण गतिशील होने से अश्व तथा पोषण प्रदायक होने से धेनु कहे गये हैं । यह ऊर्जा प्रकृति के सभी पोषक-प्रवाहों में भी संव्याप्त है ।]

२५२०. आ सीमरोहत्सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान्रयिविद्रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुधप्रतीकः ॥३ ॥



धनों में उत्कृष्टतम धन-सम्पन्न, ज्ञान-सम्पन्न, अधीश्वर अग्निदेव सुनियोजित अश्वों (समिधाओं) पर आरूढ़ होते हैं । नीले पृष्ठ वाले, विविध प्रतीकों के रूप में अग्निदेव ने उन समिधाओं को सतत प्रयोग के लिए अपने पास रख लिया ॥३ ॥

२५२१. **महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।**
व्यङ्गे भिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥४ ॥

बलवती और प्रवाहित धारायें उन महान् त्वष्टा पुत्र अजर, सर्वभूत धारक अग्निदेव को धारण करती हैं । जैसे पुरुष पत्नी के पास जाता है, वैसे अग्निदेव प्रज्वलित होकर अत्यन्त दीप्तिमान् अंगों को पाकर द्यावा-पृथिवी में व्याप्त होते हैं ॥४ ॥

२५२२. **जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।**
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः ॥५ ॥

उन बलशाली और अहिंसक अग्निदेव के आश्रयरूप सुख को लोग जानते हैं और उनके संरक्षण में आनन्द-पूर्वक रहते हैं । जिन अग्निदेव के लिए स्तोताओं की स्तुति रूप वाणी प्रवाहित होती है, वे अग्निदेव आकाश को दीप्तिमान् कर स्वयं भी उत्तम दीप्ति से सुशोभित होते हैं ॥५ ॥

२५२३. **उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्तशूषम् ।**
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥६ ॥

स्तोताओं ने उत्कृष्टतम पितृ-मातृ रूपा द्यावा-पृथिवी में संव्याप्त अग्निदेव को जानकर, उच्च उद्घोषों युक्त स्तुतियों द्वारा सुख को प्राप्त किया । जल सिंचनशील अग्निदेव रात्रि में आच्छादित अपने तेज को स्तोताओं के निमित्त प्रेरित करते हैं ॥६ ॥

२५२४. **अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।**
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥७ ॥

पाँच अध्वर्युओं के साथ सात होतागण कान्तियुक्त अग्निदेव के प्रिय स्थान (यज्ञ) की रक्षा करते हैं । जो ऋत्विज् पूर्व की ओर मुख करके सोमपान आदि के निमित्त अथक श्रम करते हैं और देवों के व्रतों का अनुगमन करते हैं, उनसे देवगण अतिशय प्रसन्न होते हैं ॥७ ॥

२५२५. **दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।**
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥८ ॥

हम दिव्य और प्रधान अग्निरूप दोनों होताओं को तृप्त करते हैं । अन्नवान् यज्ञ की इच्छा वाले सात ऋत्विज् भी इन दोनों को हविष्यान्न से हर्षित करते हैं । वे व्रतपालक और तेजस्वी ऋत्विग्गण "यज्ञादि व्रतों का अनुगमन ही सत्य है" ऐसा कहते हैं ॥८ ॥

२५२६. **वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।**
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान्रोदसी एह वक्षि ॥९ ॥

हे दीप्तिमान् देवों का आवाहन करने वाले अग्निदेव ! आप सब पर प्रकाश से आच्छादित होने वाले, महान् विलक्षण वर्ण वाले और बलवान् हैं । आपकी विविध सुविस्तृत, सर्वत्र गमनशील रश्मियाँ आपको बलशाली बनाती हैं । आप आह्लादक एवं ज्ञानवान् महान् देवों को और द्यावा-पृथिवी को यहाँ ले आएँ ॥९ ॥



२५२७. **पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।**
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥१० ॥

ये सर्वत्र गमनशील, उत्तम धनवती , उत्तम वाणियों से स्तुत होने वाली, उत्तम किरणों वाली देवी उषा हमें धन से युक्त करती हुई प्रकाशित होती है । हे अग्निदेव ! आप अपनी व्यापक महिमा से यजमान के पापों को विनष्ट करें ॥१० ॥

२५२८. **इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गो शश्वत्तमं हवमानाय साध ।**
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप हम स्तोताओं के लिए सर्वदा श्रेष्ठ रहने वाली, अनेक कर्मों में प्रयुक्त होने वाली, गौओं को पुष्ट करने वाली भूमि प्रदान करें । हमारे पुत्र-पौत्रादि से वंश वृद्धि होती रहे । हे अग्निदेव ! आपकी उत्तम बुद्धि से हमें अनुग्रह की प्राप्ति हो ॥११ ॥

[सूक्त - ८]

[**ऋषि -** विश्वामित्र गाथिन । **देवता -** यूप; ६-१० अनेक यूप; ८ वें का विकल्प से विश्वेदेवा भी; ११ व्रश्चनी । **छन्द -** त्रिष्टुप् ; ३, ७ अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त के देवता वनस्पति देव हैं । परम्परागत मान्यता के अनुसार अनेक आचार्यों ने इस सूक्त के मंत्रों को यज्ञ में स्थापित यूप (खंभे) पर घटित किया है; किन्तु मन्त्रों के मूल भावों पर ध्यान देने से वे वनस्पतिदेव अर्थात् पौधों आदि पर ही अधिक उपयुक्त रूप से घटित होते हैं । यज्ञों में वनस्पतियों के संवर्धन के प्रयोग किये जाने स्वाभाविक भी हैं -

२५२९. **अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।**
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥१ ॥

हे वनस्पति देव ! देवत्व के अभिलाषी ऋत्विग्गण यज्ञ में आपको दिव्य मधु से (यज्ञीय प्रयोग द्वारा) सिञ्चित करते हैं । आप चाहे उन्नत अवस्था में या पृथ्वी की गोद में पड़े हों; हमें धन प्रदान करें ॥१ ॥

२५३०. **समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।**
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२ ॥

प्रज्वलित (अग्नि) होने के पूर्व से ही विद्यमान, ब्रह्मवर्चस् प्रदान करने वाले हे अजर श्रेष्ठ वीर (वनस्पति देव) !आप दूर तक हमारी कुबुद्धि को नष्ट करते हुए हमें सौभाग्य प्रदान करने के लिए उच्च पद पर स्थित हों ॥२ ॥

२५३१. **उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन्पृथिव्या अधि । सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥३ ॥**

हे वनस्पति देव ! आप पृथ्वी के ऊपर यज्ञ-गृह में उन्नत स्थान पर स्थित हों; अपने उत्कृष्ट परिमाण से युक्त हों, यज्ञ का निर्वाह करने वालों को वर्चस् धारण करायें ॥३ ॥

२५३२. **युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।**
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥४ ॥

उत्तम वस्त्रों से लपेटे हुए ये तरुण (वनस्पतिदेव-पुष्ट पौधे) आ गये हैं । ये जन्म से ही उत्तम होते हैं ।देवत्व की कामना वाले मेधावी, अध्ययनशील, दूरदर्शी, विवेकवान् पुरुष मनोयोगपूर्वक इनकी उन्नति करते हैं ॥४ ॥

[वनस्पति शास्त्री यज्ञों के माध्यम से पौधों की उन्नत किस्में बड़े मनोयोग से विकसित करते थे, ऐसा भाव यहाँ प्रकट होता है ।]



२५३३. **जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः ।**
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ।।५ ।।

उत्पन्न हुए ये (पादप) मनुष्यों से युक्त इस यज्ञ में वृद्धि पाते हुए दिनों को सुन्दर बनाते हैं । यज्ञ कर्म करने वाले धीर-मनीषी उन्हें पवित्र (दोष मुक्त) बनाते हैं ।देव आराधक विप्र सुन्दर स्तुतियों का पाठ करते हैं ।।५ ।।

२५३४. **यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।**
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ।।६ ।।

हे वनस्पते ! देव कर्म में प्रवृत्त मनुष्यों ने (हवन सामग्री का रूप देने के लिए) आपमें से जिनको (कूटने के लिए) अवट में डाला अथवा (विभाजित करने के लिए) धारदार शस्त्र से काटा है; वे आप सूर्यदेव की भाँति तेजस्वी, दिव्य गुण सम्पन्न (यज्ञ) के साथ स्थित होकर, इस याजक को श्रेष्ठ प्रजाओं से युक्त रत्नादि प्रदान करें ।।६ ।।

२५३५. **ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः ।**
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ।।७ ।।

कुठार से काटे गये (अथवा) ऋत्विजों द्वारा (अवट में) नीचे डाले गये, यज्ञ को सिद्ध करने वाले वे (वनस्पति के अंश) हमें वरणीय विभूतियाँ प्रदान करें ।।७ ।।

[इन मंत्रों का अर्थ अवट में डाल कर यूप खड़े करने के संदर्भ में भी सिद्ध होता है ।]

२५३६. **आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।**
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ।।८ ।।

उत्तम प्रेरक आदित्यगण, रुद्रगण, वसुदेव, विस्तीर्ण द्यावा-पृथिवी तथा अन्तरिक्ष और परस्पर प्रेम-भाव संयुक्त देवगण, हमारे यज्ञ की रक्षा करें और यज्ञ के केतु (धूम्र) को उन्नत करें ।।८ ।।

२५३७. **हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।**
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ।।९ ।।

(यज्ञ के संयोग से ऊर्जा रूप में विकसित) सूर्य की तरह शुभ्र तेज युक्त, ऊर्ध्वगति पाते हुए ये (वनस्पति अंश) हमें पंक्तिबद्ध हंसों की तरह दिखाई देते हैं ।ये विद्वानों से भी पहले देवमार्ग से द्युलोक की प्राप्ति करते हैं ।।९ ।।

२५३८. **शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।**
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ।।१० ।।

ये चमकदार वनस्पति खण्ड (यूप रूप में) चषाल के साथ पृथ्वी में स्थापित होकर, पशुओं के सींग की भाँति दिखाई देते हैं । यज्ञ में स्तोताओं की स्तुतियाँ सुनकर, वे सब युद्ध में हमारे रक्षक सिद्ध हों ।।१० ।।

२५३९. **वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।**
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ।।११ ।।

हे वनस्पते ! इस अत्यन्त तीक्ष्ण फरसे ने तुम्हें महान् सौभाग्य के लिए (यज्ञीय प्रयोजन के लिए) विनिर्मित किया है । (यज्ञ के प्रभाव से) आप सैकड़ों शाखाओं से युक्त होकर वर्द्धमान हों और हम भी सहस्रों शाखाओं से युक्त होकर वृद्धि करने वाले हों ।।११ ।।

[सूक्त - ९]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - अग्नि । छन्द - बृहती; ९ त्रिष्टुप् ।]

२५४०. **सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये।**
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥१ ॥

हे श्रेष्ठकर्मा, उत्तम ऐश्वर्य युक्त, निष्पाप, पापनाशक, पानी को नीचे न गिरने देने वाले अग्निदेव ! अपने संरक्षण के लिये हम मनुष्यगण मित्र भाव से आपका वरण करते हैं ॥१ ॥

[मेघों में जल को अग्नि की ही ऊर्जा सँभाले रहती है- वाष्प की ऊर्जा (लेटैन्ट हीट) शान्त हुए बिना वर्षा संभव नहीं होती ।]

२५४१. **कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः ।**
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥२ ॥

हे अग्ने ! आप वनों (समूहों) को आकार देने वाले हैं । आप मातृ रूप जलों के पास (शान्त होकर) जाते हैं । आपका निवृत्त होना हम सहन न करें । आप दूर होकर भी हमारे निकट प्रकट होते हैं ॥२ ॥

[अग्नि विद्युत् विभव (इलैक्ट्रिक चार्ज) के रूप में परमाणुओं को संयुक्त करके उन्हें आकार देने में सक्षम है । हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन को संयुक्त करने में भी ताप की आवश्यकता होती है । इसीलिए उसे समूह को आकार देने वाला तथा जल में शान्त होकर रहने वाला कहा गया है ।]

२५४२. **अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि।**
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप स्तोताओं की स्तुति सुनकर उन्हें अभीष्ट फल प्रदान करने में अत्यधिक समर्थ हैं । साथ ही आप सदैव प्रसन्न रहते हैं । आप जिन ऋत्विजों के साथ मित्र भाव में स्थित होते हैं, उनमें कुछ (अध्वर्यु आदि) यज्ञादि कर्म में प्रवृत्त होते हैं और शेष चारों ओर बैठकर स्तुति- आदि कर्म करते हैं ॥३ ॥

२५४३. **ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।**
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहोऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥४ ॥

शत्रु सेनाओं के पराभवकारी और जल में छिपे हुए सिंह के समान पराक्रमी , उन अग्निदेव को द्रोह न करने वाले (स्नेह करने वाले) अविनाशी देवों ने प्राप्त किया ॥४ ॥

२५४४. **ससृवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम् ।**
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥५ ॥

जैसे स्वेच्छाचारी पुत्र को पिता बलात् खींच ले आते हैं, वैसे ही स्वेच्छा से गुह्य (छिपे हुए) अग्नि को मातरिश्वा वायु भलीप्रकार मंथन कर दूरस्थ प्रदेशों से देवों के लिए ले आयें ॥५ ॥

२५४५. **तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।**
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥६ ॥

हे मनुष्यों के हितकारी और सर्वदा तरुण अग्निदेव ! आप अपने पराक्रम पूर्ण कर्तृत्वों से सम्पूर्ण यज्ञों के पालनकर्त्ता हैं । हे हव्यादि-वहनकर्त्ता अग्निदेव ! मनुष्यों ने आपको देवों के लिए ग्रहण किया है ॥६ ॥



२५४६. **तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति।**
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! जब रात्रि में आप प्रज्वलित होते हैं, तो पशु भी आकर आपके समीप बैठते हैं । आपका यह कल्याणकारी कर्म बालवत् अज्ञानी को भी पूजादि के लिए प्रेरित करता है ॥७ ॥

२५४७. **आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम्।**
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥८ ॥

हे ऋत्विजो ! पवित्र दीप्तिमान् काष्ठों में सोये हुए, उत्तम यज्ञ-सम्पादक अग्निदेव की हव्यादि द्वारा परिचर्या करें । उन सर्वत्र व्याप्त, दूत-रूप, शीघ्र गमनशील, चिरपुरातन, बहुस्तुत, दीप्तिमान् अग्निदेव का शीघ्र पूजन करें॥८ ॥

२५४८. **त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।**
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥९ ॥

तीन हजार तीन सौ उन्तालीस देवों ने अग्निदेव की पूजा की है, उन्हें घृत से सिञ्चित किया है और उनके लिए कुश का आसन बिछाया है । फिर उन सबने उन्हें होता रूप में वरण कर, उस पर विराजित किया है ॥९ ॥

[सूक्त - १०]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - उष्णिक् ।]

२५४९. **त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम्। देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥१ ॥**

हे अग्निदेव ! आप प्रजाओं के अधीश्वर और दीप्तिमान् हैं । आपको मेधावीजन यज्ञ में सम्यक् रूप से प्रदीप्त करते हैं ॥१ ॥

२५५०. **त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते। गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥२ ॥**

हे अग्निदेव ! आप होतारूप और ऋत्विज्रूप हैं । यज्ञों में आपकी स्तुति की जाती है । यज्ञ के रक्षकरूप में आप अपने यज्ञ-गृह में प्रदीप्त हों ॥२ ॥

२५५१. **स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे। सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥३ ॥**

हे अग्निदेव ! आप सर्वभूत ज्ञाता हैं । जो यजमान आपके निमित्त समिधायें देता है, वह सुनिश्चित ही उत्तम पराक्रमी पुत्र को प्राप्त करता है और पशु आदि ऐश्वर्य से समृद्ध होता है ॥३ ॥

२५५२. **स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत्। अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥४ ॥**

यज्ञों में केतुस्वरूप गतिवाले अग्निदेव, सात होताओं द्वारा घृताभिषिक्त होकर हवि-दाता यजमानों के पास देवों के साथ पधारें ॥४ ॥

२५५३. **प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत्। विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥५ ॥**

हे ऋत्विजो ! आप, मेधावानों में तेजों के धारण-कर्त्ता, जन-जन के विधाता, देवों के आह्वाता अग्निदेव के लिए महान् और पुरातन स्तोत्रों का उच्चारण करें ॥५ ॥

२५५४. **अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः। महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥६ ॥**

महान् अन्न और धन की प्राप्ति के लिए ये अग्निदेव प्रज्वलित होकर दर्शनीय होते हैं । जिन स्तुतिवचनों से वे प्रशंसित होते हैं, हमारे वे वचन उन अग्निदेव को प्रवर्धित करें ॥६ ॥



२५५५. अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज। होता मन्द्रो विराजस्यति स्त्रिधः ॥७ ॥

यज्ञ में पूजनीय, देवों को बुलाने वाले, शत्रुजयी हे अग्निदेव ! आप याजकों एवं देवों के (कल्याण) हेतु यज्ञ प्रक्रिया सम्पन्न करते हुए सुशोभित होते हैं ॥७ ॥

२५५६. स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥८ ॥

हे पावन बनाने वाले अग्निदेव ! आप हमें दीप्तिमान् एवं उत्तम तेजोयुक्त ऐश्वर्य प्रदान करें और स्तोताओं के कल्याण के लिए उनके पास जायें ॥८ ॥

[खनिजों का शोधन करके धातु बनाने, धातुओं को शुद्ध करने, वनौषधियों का शोधन करके उनके रस-रसायन बनाने में अग्नि का प्रयोग होता है। ज्ञानरूप में अग्निदेव अंतःकरण के विकारों का शोधन करते हैं। इसलिए उन्हें 'पावक' (पवित्र बनाने वाला) कहा गया है।]

२५५७. तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप हविवाहक, अमरणशील, मंथनरूप बल से संवर्धित होते हैं। प्रबुद्ध, मेधावी, स्तोताजन आपको सम्यक् रूप से प्रदीप्त करते हैं ॥९ ॥

[सूक्त -११]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

२५५८. अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥१ ॥

वे अग्निदेव सब यज्ञादि कर्मों के होता, पुरोहित तथा यज्ञ के विशेष द्रष्टा हैं। वे अनवरत चलने वाले यज्ञादि कर्मों के ज्ञाता हैं ॥१ ॥

२५५९. स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥२ ॥

हव्यवाहक, अविनाशी, हव्यादि की कामना वाले, देवों के दूत रूप, अन्नों से सबका हित करने वाले वे अग्निदेव विचार शक्ति (मेधा) से सम्पन्न हैं ॥२ ॥

२५६०. अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥३ ॥

यज्ञ के केतु रूप, निदेशक, पुरातन वे अग्निदेव अपनी बुद्धि से सबकुछ जानने वाले हैं। इनके द्वारा दिया गया धन ही तारने वाला होता है ॥३ ॥

[यज्ञीय मर्यादा के अनुसार प्राप्त धन मुक्ति का आधार बनता है-अन्य धन माया-बन्धन सिद्ध होता है।]

२५६१. अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम्। वह्निं देवा अकृण्वत ॥४ ॥

बल के पुत्र रूप, सनातन काल से प्रसिद्ध जातवेदा अग्नि को देवों ने हविवाहक बनाया है ॥४ ॥

२५६२. अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥५ ॥

मानवों के मार्गदर्शक होने से अग्रणी, तत्काल क्रियाशील, रथ के समान गतिशील, चिरयुवा ये अग्निदेव सर्वथा अदम्य हैं ॥५ ॥

२५६३. साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥६ ॥

आक्रामक, शत्रु सेनाओं को परास्त करने वाले, दिव्य गुणों के संवर्धक हे अग्निदेव ! आप प्रचुर अन्न (पोषण) प्रदान करने वाले हैं ॥६ ॥

२५६४. अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥७ ॥



हविदाता मनुष्य हविवाहक अग्निदेव से, सब प्रकार के अन्नों (पोषण) तथा पावन प्रकाश से युक्त उत्तम आवास की प्राप्ति करते हैं ॥७ ॥

[जीव चेतना का आवास शरीर है। अग्नि (प्राणाग्नि) के द्वारा ही अन्नादि का पाचन होकर सुन्दर अन्नमय कोष का निर्माण एवं पोषण होता है। यज्ञीय प्रक्रिया से नीरोग, पुष्ट एवं व्यसनमुक्त शरीर रूपी आवास की प्राप्ति होती है।]

२५६५. **परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ॥८ ॥**

सर्वभूतज्ञाता (सर्वज्ञ) और मेधावी अग्निदेव से हम उत्तम स्तोत्रों द्वारा सम्पूर्ण वाञ्छित ऐश्वर्य सब ओर से प्राप्त करें ॥८ ॥

२५६६. **अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे। त्वे देवास एरिरे ॥९ ॥**

हे अग्निदेव ! देवों ने आपसे प्रेरणा प्राप्त की, हम भी आपसे प्रेरित होकर वरणीय धन (दैवी सम्पदा) प्राप्त करें ॥९ ॥

[सूक्त -१२]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्राग्नी । **छन्द** - गायत्री ।]

इस सूक्त के देवता इन्द्राग्नी हैं। इन्द्र है-प्रकृति के घटकों को संगठित रखने वाला प्राण-प्रवाह तथा अग्नि है-ऊर्जा का दृश्य रूप। इन्द्राग्नी से इन्द्र एवं अग्नि अथवा इन्द्ररूप में अग्नि अथवा अग्निरूप में इन्द्र आदि भाव लिये जा सकते हैं --

२५६७. **इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥१ ॥**

हे इन्द्र एवं अग्निदेव ! हमारी स्तुतियों से प्रभावित (संस्कारित), आकाश से आया हुआ यह श्रेष्ठ सोमरस है। हमारे भक्तिभाव को स्वीकार कर आप इस सोमरस का पान करें ॥१ ॥

२५६८. **इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥२ ॥**

हे इन्द्राग्ने ! आप स्तुति करने वालों के सहायक बनें। स्तुतियों द्वारा बुलाये गये आप स्फूर्तिदाता एवं यज्ञ के साधनभूत सोमरस का पान करें ॥२ ॥

२५६९. **इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३ ॥**

यज्ञीय प्रेरणा से स्तुति करने वालों के लिये योग्य फलदाता इन्द्र और अग्निदेव की हम पूजा करते हैं। वे दोनों इस यज्ञ में सोमरस पान से संतुष्ट हों ॥३ ॥

२५७०. **तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४ ॥**

दुष्ट - दुराचारियों, शत्रुओं का हनन कर हमेशा युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले, अपराजेय, साधकों को अपार वैभव प्रदान करने वाले, इन्द्र और अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं ॥४ ॥

२५७१. **प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥५ ॥**

हे इन्द्र और अग्निदेव ! वेदपाठी आपकी प्रार्थना करते हैं, सामवेद गायक आपका गुणगान करते हैं, अन्न (पोषण) प्राप्ति हेतु हम भी आपकी स्तुति करते हैं ॥५ ॥

२५७२. **इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥६ ॥**

हे इन्द्राग्ने ! आप दोनों ने संयुक्त होकर दस्युओं के नब्बे नगरों और उनकी विभूतियों को एक बार के आक्रमण से, एक ही समय में कम्पित कर दिया ॥६ ॥

[नब्बे का उपयोग सैकड़ों जैसे भाव से किया जाता रहा है।]



२५७३. **इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥७ ॥**

हे इन्द्र और अग्ने ! श्रेष्ठ कर्म करने वाले लोग सदैव सत्य मार्ग का अनुगमन करते हुए आगे बढ़ते हैं ॥७ ॥

२५७४. **इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥८ ॥**

हे इन्द्राग्ने ! आपके बल और अन्न संयुक्त रूप से रहते हैं । आपका बल शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाला है ॥८ ॥

२५७५. **इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥९ ॥**

हे इन्द्र और अग्निदेव ! दिव्यगुणों से आलोकित, आप संघर्षों में सफल होने पर शोभायमान होते हैं । यह आपके शौर्य की पहचान है ॥९ ॥

[सूक्त -१३]

[**ऋषि** - ऋषभ वैश्वामित्र । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

२५७६. **प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै । गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥१ ॥**

हे स्तोताओ ! आप इन अग्निदेव के निमित्त उत्तम स्तुति करें, जिससे वे देवों के साथ हमारे पास आयें और यजनीय वे अग्निदेव हमारे इस यज्ञ में कुशों पर विराजें ॥१ ॥

२५७७. **ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः । हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥२ ॥**

द्यावा-पृथिवी जिन अग्निदेव के वशीभूत हैं । रक्षक देवगण भी जिन अग्निदेव के बल से पोषित होते हैं, धनाभिलाषी, सत्यवान्, हविदाता यजमान अपने संरक्षण के लिए उन अग्निदेव की स्तुति करते हैं ॥२ ॥

२५७८. **स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।**
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥३ ॥

वे मेधावान् अग्निदेव यजमानों के नियन्ता हैं । वे यज्ञों के भी नियन्ता हैं । ऐश्वर्यदाता वे अग्निदेव धन देने वाले हैं । अतएव हे ऋत्विजो आप उन अग्निदेव की परिचर्या करें ॥३ ॥

२५७९. **स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।**
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥४ ॥

वे अग्निदेव हमारे रक्षण के लिए उपयोगी और शांतिदायी आवास प्रदान करें । जहाँ (रहकर) द्युलोक, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी में संव्याप्त पुष्टिप्रद वैभव हमें प्राप्त हो ॥४ ॥

२५८०. **दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।**
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥५ ॥

स्तोतागण उन देदीप्यमान, प्रतिक्षण नवीन, देवों का आवाहन करने वाले, प्रजापालक अग्निदेव को श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्रदीप्त करते हैं ॥५ ॥

२५८१. **उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः । शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥६ ॥**

हे अग्निदेव ! स्तुतियों के समय आप हमारी रक्षा करें । हे देवों के आह्वाता ! आप मन्त्रोच्चारण में हमारी रक्षा करें । सहस्रों धनों के दाता आप, मरुद्गणों द्वारा वर्द्धित होते हैं । आप हमारे सुखों में वृद्धि करें ॥६ ॥

२५८२. **नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु । द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥७ ॥**



हे अग्ने ! आप हमें पुत्र-पौत्रादि सहित पुष्टिकारक, दीप्तिमान् तेजस्वी, उत्कृष्टतम, अक्षय तथा सहस्र संख्यक धन प्रदान करें ॥७ ॥

[सूक्त -१४]

[ऋषि - ऋषभ वैश्वामित्र । देवता - अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२५८३. आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥१ ॥

देवों के आह्वानकर्त्ता, सुखकारक, सत्यपालक, मेधावियों में श्रेष्ठ, यज्ञकारी, विधाता वे अग्निदेव हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों । वे प्रकाशित रथ-युक्त, ज्योतित केशों वाले, बल के पुत्र अग्निदेव इस पृथ्वी पर अपनी प्रभा को प्रकट करते हैं ॥१ ॥

२५८४. **अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।**
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥२ ॥

हे यज्ञ- सम्पादक अग्निदेव ! हम नमस्कारपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं । हे बलवान् और ज्ञानवान् देव ! निवेदित स्तुतियों को आप स्वीकार करें । आप विद्वान् हैं, अतएव विद्वान् देवगणों को अपने साथ ले आयें । हमारे संरक्षण के लिए आप यज्ञ-गृह के मध्य में बिछे कुश के आसन पर विराजमान हों ॥२ ॥

२५८५. **द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।**
यत्सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! अन्नवती उषा और रात्रि, आपके निमित्त गमन करती हैं । आप वायु मार्ग से आगमन करें । पुरातन ऋत्विग्गण आपको हव्यादि द्वारा सिञ्चित करते हैं । एक ही जुए में जुड़ी हुई (परस्पर संयुक्त) उषा और रात्रि हमारे घर में स्थित हों ॥३ ॥

२५८६. **मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।**
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन् ॥४ ॥

हे बल सम्पन्न अग्निदेव ! मित्र, वरुण और सम्पूर्ण मरुद्गण आपके निमित्त स्तुतियाँ करते हैं । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आप सूर्य की तरह मनुष्यों को श्रेष्ठ पथ दिखाने वाली रश्मियों को विस्तारित कर, अपनी तेजस्विता से स्थित हों ॥४ ॥

२५८७. **वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।**
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हम कामना युक्त याजक ऊँचे हाथ करके आपको हव्यादि अर्पित करते हैं । हे मेधावान् अग्निदेव ! हमारे हव्यादि से सन्तुष्ट होकर आप अपने श्रेष्ठ मन से स्तोत्रों द्वारा देवों का यजन करें ॥५ ॥

२५८८. **त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।**
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥६ ॥

हे बल के पुत्र अग्ने ! आपकी सनातन रक्षक किरणें देवों की ओर गमन करती हैं और उन्हें अन्नादि भी प्रदान करती हैं । हे अग्निदेव ! आप हमें द्रोहरहित, तेजोमय सहस्रों प्रकार के अक्षय धन प्रदान करें ॥६ ॥

२५८९. **तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।**
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७ ॥

हे बलवान् , मेधावान् , दीप्तिमान् अग्निदेव ! हम मनुष्य यज्ञ में आपके निमित्त हव्यादि कर्मों को निवेदित करते हैं । हे अविनाशी अग्निदेव ! यज्ञ में निवेदित इन हवियों का आप आस्वादन करें । उत्तम रथ वाले आप यजमानों की रक्षा के निमित्त चैतन्य हों ॥७ ॥

[सूक्त -१५]

[**ऋषि** - उत्कील कात्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

२५९०. **वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।**
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१ ॥

हे अग्ने ! आप अपने वर्द्धमान बल तथा तेजस्विता से, द्वेष करने वाले शत्रुवृत्ति तथा राक्षसी वृत्तिवालों को बाधित करें । हे श्रेष्ठ, सुखदायी, महान् , सुविख्यात अग्निदेव ! हम आपके आश्रय में रहना चाहते हैं ॥१ ॥

२५९१. **त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।**
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥२ ॥

हे अग्निदेव !आप उषा के प्रकट होने तथा सूर्य के उदित होने पर हमारे संरक्षण के लिए चैतन्य हों ।स्वयमेव उत्पन्न होने वाले आप हमारे स्तोत्रों को उसी प्रकार ग्रहण करें, जैसे पिता अपने नवजात पुत्र को ग्रहण करता है ॥२॥

२५९२. **त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।**
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥३ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! आप मनुष्यों के समस्त कर्मों के ज्ञाता हैं । आप अँधेरी रातों में भी बहुत अधिक दीप्तिमान् होते हैं । आपकी ज्वालाएँ विस्तृत होती हैं । हे आश्रयदाता अग्निदेव ! आप हमें दुःख और पापों से पार करें । हे अति युवा अग्निदेव ! हमें ऐश्वर्य - सम्पन्न बनायें ॥३ ॥

२५९३. **अषाळहो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा सञ्जिगीवान् ।**
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपराजेय और बलशाली हैं । आप शत्रुओं के नगरों और धनों को जीतकर अपनी दीप्तियों से सर्वत्र व्याप्त हों । हे उत्तम प्रेरक और सर्व भूतज्ञाता अग्निदेव ! आप महान् आश्रयदाता और यज्ञ के प्रथम सम्पादन-कर्त्ता हैं ॥४ ॥

२५९४. **अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः ।**
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥५ ॥

हे स्तुत्य अग्निदेव ! आप उत्तम, मेधावान् और अपने तेज से दीप्तिमान् हैं । देवों के निमित्त आप सम्पूर्ण सुखकर कर्मों को भली प्रकार सम्पादित करें । आप रथ के सदृश वेगपूर्वक गमन कर, देवों के निमित्त हव्यादि वहन करें और सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करें ॥५ ॥

२५९५. **प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।**
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥६ ॥



हे अभीष्ट वर्षा में समर्थ अग्निदेव ! आप हमें पूर्णता प्रदान करें और विविध अन्नों से पुष्ट करें । उत्तम दीप्तियों से दीप्तिमान् होकर, आप देवों के साथ द्यावा-पृथिवी को उत्तम दोहन योग्य बनायें । अन्यान्य मनुष्यों की दुर्बुद्धि हमारे निकट भी न आये (दुर्बुद्धिग्रस्त होकर हम प्रकृति का स्वार्थ पूर्ण दोहन न करने लगें) ॥६ ॥

[अज्ञानी लोग प्रकृति का केवल दोहन करते रहते हैं, प्रकृति को दोहन योग्य पुष्ट बनाना, यज्ञीय प्रक्रिया से प्रकृति का-पर्यावरण का संतुलन बनाये रखना ज्ञानियों का कार्य है ।]

२५९६. **इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।**
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! हम स्तोताओं के निमित्त श्रेष्ठ रहने वाली, अनेक कर्मों में उपयोगी तथा गौओं को पुष्ट करने वाली भूमि प्रदान करें, हमारे पुत्र-पौत्रादि वंश-वृद्धि में सक्षम हों तथा आपकी उत्तम बुद्धि हमें भी प्राप्त हो ॥७ ॥

[सूक्त -१६]

[**ऋषि** - उत्कील कात्य । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- बार्हत प्रगाथ - (१, ३, ५ बृहती, २, ४, ६ सतोबृहती ।]

२५९७. **अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।**
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥१ ॥

ये अग्निदेव पुरुषार्थ एवं महान् सौभाग्य के स्वामी हैं । ये धनैश्वर्य तथा सुसंतति के स्वामी (देने वाले) हैं । गौ (पोषक किरणों, इन्द्रियों अथवा गौ आदि) तथा वृत्र (वृत्रासुर अथवा पुरुषार्थ को आच्छादित कर लेने वाली दुष्प्रवृत्तियों) को नष्ट करने वालों के भी स्वामी हैं ॥१ ॥

[अग्नि की सम्यक् आराधना द्वारा उक्त सभी विभूतियाँ प्राप्त की जा सकती हैं । इस मंत्र में ' सु अपत्य' का अर्थ सुसंतति लिया गया है । अपत्य का अर्थ होता है, जिससे पतन न हो । एक पीढ़ी जो प्रगति करती है, उसे बनाये रखने-गिरने न देने के लिए अगली पीढ़ी की आवश्यकता होती है । इसलिए संतान को अपत्य कहा गया है । इस प्रयोजन की पूर्ति न हो, तो संतान का होना निरर्थक है । सु अपत्य का अर्थ पतन न होने देने वाली श्रेष्ठ विभूतियाँ लेने से भी मंत्रार्थ सिद्ध होता है ।]

२५९८. **इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन्नायः शेवृधासः ।**
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥२ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आप संग्रामों में पराजित न होकर सदा से शत्रुओं के संहारकर्त्ता हैं । आप मनुष्यों को बढ़ाने वाले इन अग्निदेव की परिचर्या करें, जिनके चारों ओर सुखवर्द्धक धन-ऐश्वर्य विद्यमान हैं ॥२ ॥

२५९९. **स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ।**
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥३ ॥

हे प्रचुर धन-सम्पन्न, सुखवर्धक अग्निदेव ! आप हमें धन से समृद्ध करें । श्रेष्ठ सन्तानों सहित आरोग्यप्रद, बलिष्ठ और तेजस्वी अन्नों से पुष्ट करें ॥३ ॥

२६००. **चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।**
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम् ॥४ ॥

ये अग्निदेव जगत् के कर्म-संपादक हैं और सम्पूर्ण लोकों में संव्याप्त हैं । वे कर्म-कुशल अग्निदेव हव्यादि वहन कर, देवों के पास गमन करते हैं और देवों को यज्ञ में ले आते हैं । वे मनुष्यों से प्रशंसित होकर उन्हें उत्तम पराक्रम से युक्त करते हैं ॥४ ॥

२६०१. **मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः ।**
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि ॥५ ॥

हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आप हमें दुर्बुद्धि के अधिकार में मत सौंपें । हमें वीर पुत्रों से रहित न करें, गौ आदि पशुओं से विहीन न करें तथा निन्दनीय न होने दें साथ ही आप हमारे प्रति द्वेष-भाव से मुक्त रहें ॥५ ॥

२६०२. **शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे ।**
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥६ ॥

हे उत्तम धन-सम्पन्न अग्निदेव ! हम यज्ञ में विपुल सन्तानों से युक्त अन्नादि धन के अधिपति हों । हे महान् धन से युक्त अग्निदेव ! आप हमें सुखकर - यशवर्द्धक प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त -१७]

[**ऋषि-** कत वैश्वामित्र । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

२६०३. **समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।**
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक्पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१ ॥

वे अग्निदेव धर्म - धारक, ज्वाला रूप केश वाले, सबके द्वारा वरणीय, समिधाओं से प्रज्वलित, घृत से प्रदीप्त, पवित्रकर्त्ता और उत्तम यज्ञों के सम्पादक हैं । वे यज्ञ के प्रारम्भ में प्रज्वलित होकर देव-यजन के निमित्त घृतादि से भली प्रकार सिञ्चित होते हैं ॥१ ॥

२६०४. **यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।**
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आपने जैसे पृथ्वी को हव्य प्रदान किया, जैसे आकाश को हव्य प्रदान किया; उसी प्रकार हे सब भूतों के ज्ञाता-ज्ञानवान् अग्निदेव ! हमारे इस हवि-द्रव्य द्वारा सम्पूर्ण देवों का यजन करें । मनु के यज्ञ के समान हमारे यज्ञ को भी पूर्ण करें ॥२ ॥

२६०५. **त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।**
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥३ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आपके तीन प्रकार के अन्न (आज्य, ओषधि और सोम) हैं । (एकाह, अहीन और सत्र नामक) तीन उषाएँ आपकी माताएँ हैं । आप उनके द्वारा देवों का यजन करें । सबको जानने वाले आप, यजमान के लिए सुख और कल्याण देने वाले हों ॥३ ॥

२६०६. **अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।**
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥४ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप उत्तम दीप्तिमान्, उत्तम दर्शनीय और स्तवनीय हैं । हम नमस्कारपूर्वक आपका स्तवन करते हैं । हे गमनशील ज्वाला युक्त और हव्यवाहक अग्निदेव ! देवों ने आपको दूत रूप में प्रतिष्ठित किया है और अमृत का केन्द्र मानकर आपका आस्वादन किया है ॥४ ॥

२६०७. **यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः ।**
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥५ ॥



हे अग्निदेव ! पहले जो होता उत्तम और मध्यम दो स्थानों पर स्वधा के साथ बैठकर सुखी हुए, उनके धर्म का अनुगमन करते हुए आप यजन करें । तदनन्तर हमारे इस यज्ञ को देवों की प्रसन्नता के निमित्त धारण करें ॥५ ॥

[पृथ्वी पर अग्नि की उत्पत्ति के पूर्व द्युलोक एवं अंतरिक्ष में, सूर्य एवं विद्युत् रूप में दो होताओं द्वारा (उत्पादन एवं पोषण रूप) यजन कार्य किया जा रहा था । अग्नि से उन्हीं के अनुरूप यज्ञ चक्र को पृथ्वी पर संचालित करने की प्रार्थना की गयी है ।

[सूक्त -१८]

[**ऋषि-** कत वैश्वामित्र । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

२६०८. **भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।**
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार मित्र के प्रति मित्र और अपने पुत्र के प्रति माता-पिता हितैषी होते हैं, उसी प्रकार आप प्रसन्नता के साथ हमारे लिए अनुकूल और हितैषी बनें । इस लोक में मनुष्यों के प्रति मनुष्य अत्यन्त द्रोही हैं, अतएव हमारे विरुद्ध आचरण करने वाले शत्रुओं के प्रतिकूल होकर उन्हें भस्म कर दें ॥१ ॥

२६०९. **तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य ।**
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे समीपस्थ शत्रुओं को भली प्रकार संतप्त करें । हव्यादि न देने वाले और दूसरों की निन्दा करने वालों को संतप्त करें । हे आश्रयदाता और विद्वान् अग्निदेव ! आप चंचल चित्त वालों को संतप्त करें । आपकी अजर किरणें अबाध गति से विकीर्ण हों ॥२ ॥

२६१०. **इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।**
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! हम श्रेष्ठ कामनाओं सहित आपके वेग और बल के लिए समिधा एवं घृत के साथ हविष्यान्न प्रदान करते हैं । स्तोत्रों से आप की स्तुति करते हुए हम धन पर प्रभुत्व पायें । आप हमारे लिए अक्षय धन प्रदान करने के निमित्त हमारी स्तुति को दिव्य बनायें ॥३ ॥

२६११. **उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि ।**
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं१ भूरि कृत्वः ॥४ ॥

बल के पुत्र हे अग्निदेव ! आप अपने तेज से दीप्तिमान् हों । आप प्रशंसक विश्वामित्र के वंशजों (विश्व में समस्त मानवों के प्रति मित्रभाव रखने वाले) द्वारा स्तुति किये जाने पर अपार धन-धान्य प्रदान करें । उन्हें आरोग्य और निर्भयता प्रदान करें । यज्ञादि कर्म कर्त्ता हे अग्निदेव ! हम आपके शरीर का पुनः-पुनः शोधन करते हैं ॥४ ॥

२६१२. **कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत्समिद्धः ।**
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥ ५ ॥

उत्तम दानशील हे अग्निदेव ! आप हमें श्रेष्ठतम धन प्रदान करें । आप भली प्रकार प्रदीप्त होकर याजकों को धन प्रदान करते हैं । समृद्धिशाली स्तोताओं को अपार धन-वैभव प्रदान करने के लिए आप अपने रूपवान् तेजस्वी हाथों (किरणों) को विस्तृत करें ॥५ ॥



[सूक्त -१९]

[**ऋषि**-गाथी कौशिक । **देवता**-अग्नि । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

२६१३. अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥१ ॥

स्तुतिपूर्वक देवताओं का आवाहन करने वाले मेधावान् , ज्ञानवान् अग्निदेव को हम यज्ञ में विशेष रूप से वरण करते हैं । वे पूज्य अग्निदेव हमारे निमित्त देवों का यजन करें । हमें विपुल धन-धान्य प्रदान करने के लिए हमारी हवियों को स्वीकार करें ॥१ ॥

२६१४. प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! हम घृत आदि हव्य पदार्थों से परिपूर्ण पात्र को नित्य आपकी ओर प्रेरित करते हैं । देवताओं का आवाहन करने वाले आप, हमारे वैभव को बढ़ाने की कामना से यज्ञ स्थल पर भलीप्रकार उपस्थित हों ॥२ ॥

२६१५. स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप जिसकी रक्षा करते हैं, उसका मन अत्यन्त तेजस्वी होता है । आप उसे उत्तम धन, सन्तान प्रदान करें । धन-प्रदाता, उत्तम प्रेरक हे अग्ने ! हम आपके विपुल ऐश्वर्य के संरक्षण में निवास करें और आपकी स्तुतियाँ करते हुए धन के स्वामी बनें ॥३ ॥

२६१६. भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥४ ॥

हे अग्निदेव !देवों की पूजा-यज्ञादि करने वाले मनुष्यों ने आपमें प्रचुर मात्रा में दीप्ति उत्पन्न की है ।सर्वदा तरुण रहने वाले आप यज्ञ में देवों के दिव्य तेज की पूजा करते हैं, अतएव हमारे इस यज्ञ में उन्हें साथ लेकर आयें ॥४ ॥

२६१७. यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥५ ॥

देवताओं का आवाहन करने वाले हे अग्निदेव ! यज्ञ के लिए बैठे हुए दीप्तिमान् ऋत्विग्गण आपको प्रतिष्ठित कर घृतादि द्वारा सिंचित करते हैं । आप हमारे यज्ञ में चैतन्य होकर हमें संरक्षण प्रदान करें । हमारे पुत्रों को आप प्रचुर मात्रा में धन-धान्य प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त -२०]

[**ऋषि** - गाथी कौशिक । **देवता** - अग्नि ; १, ५ विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२६१८. अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१ ॥

यज्ञ में समर्पित आहुतियों को धारण करने वाले अग्निदेव, उषा, अश्विनीकुमार और दधिक्रा आदि देवों को हम स्तुति वचनों द्वारा बुलाते हैं । उत्तम दीप्तिमान् तथा प्रेम और सहकार पूर्वक रहने वाले देवगण, इस यज्ञ की सफलता की कामना करते हुए हमारी स्तुतियों का श्रवण करें ॥१ ॥



२६१९. अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥२ ॥

हे अग्निदेव !आपके (घृत, ओषधि और सोम) तीन प्रकार के अन्न हैं और तीन प्रकार के (पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यु) निवास हैं। हे यज्ञ से उत्पन्न अग्निदेव ! आपकी पुरातन तीन जिह्वायें (गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि) हैं । आपके तीन शरीर (पवमान, पावक और शुचि) देवों द्वारा चाहने योग्य हैं । आप प्रमादरहित होकर अपने शरीरों द्वारा हमारे स्तोत्रों की रक्षा करें ॥२ ॥

२६२०. अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्टबन्धो ॥३ ॥

दीप्तिमान्, ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् और अविनाशी हे अग्निदेव ! देवताओं ने आपको अनेक विभूतियों से सम्पन्न बनाया है । आप जगत् को तृप्ति प्रदान करने वाले और वांछित फल दाता हैं । हे अग्निदेव ! आप मायावियों की सम्पूर्ण पुरातन मायाओं को भली-भाँति जानते हुए उन्हें धारण करते हैं ॥३ ॥

२६२१. अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥४ ॥

ऋतुओं का संचालन करने वाले ऐश्वर्यवान् सूर्यदेव के सदृश ये अग्निदेव मनुष्यों और देवताओं का नेतृत्व करते हैं । वे यज्ञादि सत्कर्म करने वाले, वृत्र का नाश करने वाले, सनातन, सर्वज्ञ और दीप्तिमान् हैं । वे अग्निदेव हम स्तोताओं को सम्पूर्ण पापों से मुक्त करें ॥४ ॥

२६२२. दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५ ॥

हम दधिक्रा, अग्नि, दीप्तिमान् उषा, बृहस्पति, सवितादेव, दोनों अश्विनीकुमार, मित्र, वरुण, भगदेव, वसुओं, रुद्रों और आदित्यों से इस यज्ञ में उपस्थित होने की प्रार्थना करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त -२१]

[**ऋषि** - गाथी कौशिक । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - १, ४ त्रिष्टुप्; २, ३ अनुष्टुप्; ५ विराड्रूपा सतोबृहती ।]

२६२३. इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१ ॥

हे सर्वभूत ज्ञाता अग्निदेव ! हमारे इस यज्ञ को अमर देवों के पास समर्पित करें । हमारे द्वारा समर्पित इन हवि पदार्थों का सेवन करें । देवताओं का आवाहन करने वाले हे अग्निदेव ! आप यज्ञ में बैठकर सर्वप्रथम हवि और घृत के अंशों का भक्षण करें ॥१ ॥

२६२४. घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥२ ॥

पवित्रता प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! इस यज्ञ में घृत से युक्त हविष्यान्न, आपके और देवों के सेवन के लिए अर्पित किया जा रहा है । अतएव हमें आप श्रेष्ठ और उपयोगी धन प्रदान करें ॥२ ॥

२६२५. **तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य।**
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥३ ॥

ऋत्विजों द्वारा सेवित, मेधावान् हे अग्निदेव ! आपके लिए टपकती हुई घृत की बूँदें अर्पित हैं। श्रेष्ठ क्रान्तदर्शी आप घृतादि द्वारा भली प्रकार प्रज्वलित होते हैं। आप हमारे इस यज्ञ को सम्पन्न करने वाले हों ॥३ ॥

२६२६. **तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य।**
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥४ ॥

हे सतत गमनशील और सामर्थ्यवान् अग्निदेव ! आपके निमित्त हविर्भाग और घृत की बूँदें अर्पित होती हैं। हे मेधावान् अग्निदेव ! आप मेधावियों द्वारा प्रशंसित होकर, अपने विस्तृत तेजों के साथ हमारे लिए अनुकूल हों और हमारे हव्यादि को ग्रहण करें ॥४ ॥

२६२७. **ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे।**
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हम सब घृतादि युक्त श्रेष्ठ हव्य, आपके लिए प्रदान करते हैं। हे आश्रयदाता अग्निदेव ! आपकी ज्वालाओं के मध्य घृत की अजस्र धारा समर्पित की जा रही है ॥५ ॥

[सूक्त - २२]

[**ऋषि** - गाथी कौशिक। **देवता** - अग्नि, ४ पुरीष्य अग्नियाँ। **छन्द** - त्रिष्टुप्; ४ अनुष्टुप्।]

२६२८. **अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः।**
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥१ ॥

सोम की अभिलाषा करने वाले इन्द्रदेव ने जिस जठर में अभिषुत सोम को धारण किया था, वे यही जातवेदा अग्निदेव ही हैं। हे जातवेदा अग्निदेव ! विविध रूपों में अश्व के सदृश वेगवान् हविष्यान्न का आप सेवन करते हैं और सबके द्वारा की गई स्तुतियों का श्रवण करते हैं ॥१ ॥

२६२९. **अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र।**
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥२ ॥

हे यज्ञाग्ने ! आपके जिस तेज ने स्वर्गलोक को, पृथ्वी पर तेजरूप से ओषधियों को और जल में विद्युत् रूप से अतिव्यापक अन्तरिक्ष लोक को संव्याप्त किया है; हे सर्वत्र गतिमान्, जगत् प्रकाशक ! आपका वह दिव्य तेज मनुष्यों के सभी अच्छे-बुरे कर्मों को देखने वाला है ॥२ ॥

२६३०. **अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये।**
या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप दिव्य लोक के अमृतरूपी जल को उत्तम रीति से धारण करते हैं। बुद्धि के प्रेरक जो प्राण स्वरूप देव हैं; उनके समक्ष भी आप गतिशील होते हैं। प्रकाशमान सूर्यमण्डल में स्थित, सूर्य से आगे (परे) जो जल है तथा जो जल इसके नीचे है, समस्त जल में आप विराजमान हों ॥३ ॥

२६३१. **पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः।**
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥४ ॥



प्रजापालक, समान विचारशीलों में प्रीतियुक्त, द्रोह भावना से रहित, ये अग्नियाँ इस यज्ञ में आरोग्यप्रद वनौषधियों से युक्त हविष्य को पर्याप्त मात्रा में ग्रहण करें ॥४ ॥

२६३२. **इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।**
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञादि कार्य के लिए, अनेक सत्कर्मों के लिए और गौओं के पोषण आदि के लिए हमें उत्तम भूमि प्रदान करें । हमारे पुत्र वंश की वृद्धि करने वाले हों । आपकी वह सुमति हमें भी प्राप्त हो ॥५ ॥

[सूक्त - २३]

[**ऋषि** - देवश्रवा और देववात भारत । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्; ३ सतोबृहती ।]

२६३३. **निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता।**
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥१ ॥

मंथन द्वारा प्रकट यजमान के घर स्थापित वे अग्निदेव सर्वदा युवा, यज्ञ के प्रणेता, मेधावान् और सर्वज्ञ हैं । वे महान् वन-क्षेत्र को जलाने पर भी स्वयं अजर हैं । वे अग्निदेव ही यज्ञ में अमृत को धारण करने वाले हैं ॥१ ॥

२६३४. **अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम्।**
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥२ ॥

भरत के पुत्र देवश्रवा और देववात, इन दोनों ने उत्तम सामर्थ्यशाली और विपुल धन - संयुक्त अग्नि को मन्थन द्वारा उत्पन्न किया है । हे अग्निदेव ! आप हमारी ओर कृपा दृष्टि कर, हमें प्रभूत धन एवं प्रतिदिन विपुल अन्नादि प्राप्त कराने वाले हों ॥२ ॥

२६३५. **दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम्।**
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥३ ॥

दस अँगुलियों ने (मन्थन द्वारा) चिर पुरातन उस अग्नि को उत्पन्न किया । हे देवश्रवा ! अरणि रूप माताओं द्वारा उत्तम प्रकार से प्रकट होने वाले, देववात द्वारा मथित, सबके प्रिय इन अग्निदेव की स्तुति करें । वे स्तोताजनों के वशीभूत होते हैं ॥३ ॥

२६३६. **नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्।**
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! हम इळा रूपिणी (अन्नवती) पृथ्वी के उत्कृष्ट स्थान में, उत्तम दिन के श्रेष्ठतम समय में, आपको विशेष रूप से स्थापित करते हैं । आप दृषद्वती (राजपूताना क्षेत्र में प्रवाहित घग्घर नदी), आपया (कुरुक्षेत्र में स्थित नदी) और सरस्वती के तटों पर रहने वाले मनुष्यों के गृह में धन से युक्त होकर दीप्तिमान् हों ॥४ ॥

२६३७. **इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।**
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हमें स्तोताओं के निमित्त शाश्वत, श्रेष्ठ, अनेक कार्यों के लिए उपयोगी और गौओं को पुष्टि प्रदान करने वाली भूमि प्रदान करें । हे अग्निदेव ! हमारे पुत्र-पौत्र वंश विस्तार में सक्षम हों । हमें आपकी उत्तम बुद्धि की अनुकूलता का अनुग्रह प्राप्त हो ॥५ ॥

[सूक्त - २४]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री, १ अनुष्टुप् ।]

२६३८. **अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य। दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥१ ॥**

हे अग्निदेव ! आप शत्रु सेनाओं को पराजित करें; विघ्नकर्त्ताओं को दूर हटायें । शत्रुओं द्वारा अपराजेय आप अपने शत्रुओं को जीतकर यज्ञकर्त्ता यजमान को प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥१ ॥

२६३९. **अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥२ ॥**

हे अग्निदेव ! आप यज्ञों से प्रीति रखने वाले और अविनाशी हैं । आप उत्तर वेदी में प्रज्वलित होते हैं । आप हमारे यज्ञ को भली-भाँति ग्रहण करें ॥२ ॥

२६४०. **अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥३ ॥**

हे अग्निदेव ! आप तेज से सर्वदा चैतन्यवान् हैं । आप बल के पुत्र हैं । आप आदरपूर्वक आमंत्रित किये जाते हैं । आप हमारे यज्ञ में उपस्थित होकर कुश के आसन पर अधिष्ठित हों ॥३ ॥

२६४१. **अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥४ ॥**

हे अग्निदेव ! यज्ञ में जो याजक आपके निमित्त स्तुतियाँ करते हैं, उनकी स्तुतियों को सम्पूर्ण तेजस्वी ज्वालाओं से अधिकाधिक महत्ता प्रदान करें ॥४ ॥

२६४२. **अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥५ ॥**

हे अग्निदेव ! आप हविदाता को वीर पुत्रों से युक्त पर्याप्त धन प्रदान करें । हम पुत्र-पौत्र वाले हों । आप हमें तेजवान् बनायें ॥५ ॥

[सूक्त - २५]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि, ४ - अग्नीन्द्र । **छन्द** - विराट् ।]

२६४३. **अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥१ ॥**

सर्वज्ञाता, प्रबुद्ध, आकाश-पुत्र हे अग्निदेव ! आप पृथ्वी के विस्तारक हैं । हे ज्ञान-समृद्ध अग्निदेव ! आप इस यज्ञ में पृथक्-पृथक् देवों के निमित्त यज्ञ कार्य सम्पन्न करें ॥१ ॥

२६४४. **अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवाँ एह वहा पुरुक्षो ॥२ ॥**

विद्वान् अग्निदेव उपासकों की क्षमताओं में वृद्धि करते हैं । वे अग्निदेव अपने को विभूषित (प्रज्वलित) करके, अमर देवों को हविष्यान्न प्रदान करते हैं । विविध प्रकार के वैभव से सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप हमारे निमित्त देवों को इस यज्ञ में ले आयें ॥२ ॥

२६४५. **अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥३ ॥**

ज्ञान - सम्पन्न, सबके आश्रय स्थल, अत्यन्त तेजस्वी, बल और अन्न से युक्त हे अग्निदेव ! आप विश्व का



सृजन करने में समर्थ, देदीप्यमान तथा अजर-अमर द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं ॥३ ॥

२६४६. **अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम्।**
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप और इन्द्रदेव दोनों यज्ञ के रक्षणकर्त्ता हैं । आप अभिषुत सोम-प्रदाता यजमान के घर में सोमपान के निमित्त आयें ॥४ ॥

२६४७. **अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः।**
सधस्थानि महयमान ऊती ॥५ ॥

बल के पुत्र, अविनाशी और सर्वज्ञ हे अग्निदेव ! आप अपनी संरक्षण शक्ति द्वारा आश्रय देकर, प्राणियों को अनुगृहीत करते हुए, जलों के (बरसने के) स्थान अन्तरिक्ष में, भली-भाँति प्रदीप्त होते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि -** विश्वामित्र गाथिन; ७ आत्मा । **देवता -** १ - ३ वैश्वानर अग्नि; ४ - ६ मरुद्गण; ७ - ८ आत्मा अथवा अग्नि; ९ विश्वामित्रोपाध्याय । **छन्द -** १ - ६ जगती; ७ - ९ त्रिष्टुप् ।]

२६४८. **वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम्।**
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१ ॥

हम कुशिक-वंशज धन की अभिलाषा से हव्यादि प्रदान करते हुए रमणीय वैश्वानर अग्निदेव की स्तुति करते हुए बुलाते हैं । वे अग्निदेव सत्यमार्ग अनुगामी, स्वर्ग के सुखों को प्रदान करने वाले, उत्तम फल-प्रदायक और सर्वत्र गमनशील हैं ॥१ ॥

२६४९. **तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम्।**
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२ ॥

यजमान के यज्ञ की रक्षा के लिए उन शुभ्र, अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप में गतिशील, ऋचाओं द्वारा स्तुत्य, वाणी के अधीश्वर, मेधावी, श्रोता एवं अतिथि रूप पूज्य तथा शीघ्र गमनशील, वैश्वानर अग्निदेव को हम बुलाते हैं ॥२॥

२६५०. **अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे।**
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३ ॥

हिनहिनाने वाला अश्व जैसे अपनी जननी द्वारा प्रवृत्त होता है, वैसे ही ये वैश्वानर अग्निदेव कुशिक वंशजों द्वारा प्रतिदिन संवर्धित होते हैं । अमर देवों में सदा जागरूक वे अग्निदेव हमें उत्तम अश्व, उत्तम पराक्रम, सामर्थ्य और रत्नादि धन प्रदान करें ॥३ ॥

२६५१. **प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे सम्मिश्लाः पृषतीरयुक्षत।**
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४ ॥

अग्नि (ऊर्जा) से उत्पन्न शक्तिशाली (ऊर्जा) धारायें श्रेष्ठ उद्देश्यों से युक्त होकर चलें । बलशाली मरुतों के साथ मिलकर पृषती (वायु को वाहन बनाने वाले मेघों) को एकत्रित करें । सर्वज्ञाता, अदम्य मरुद्गण जलयुक्त पर्वताकार (मेघों) को कम्पित करते हैं ॥४ ॥

[इस ऋचा में प्राणवान् वर्षा का क्रम एवं मर्म स्पष्ट किया गया है ।]

२६५२. **अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम्।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥५ ॥**

रुद्र-पुत्र वे मरुद्गण अग्निदेव के आश्रित, विश्व को आकृष्ट करने वाले, ध्वनि करने वाले, जल की वर्षा करने वाले, सिंह के समान गर्जना करने वाले और उत्तम दानशील हैं। हम उनके उग्र और तेजस्वी संरक्षण-सामर्थ्यों की याचना करते हैं ॥५ ॥

२६५३. **व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥६ ॥**

बिन्दुदार (चिह्नित) अश्वों वाले, अक्षय धन वाले, धीर मरुद्गण हव्य की कामना से यज्ञ में गमन करते हैं। सदैव समूह के साथ चलने वाले मरुद्गणों के बल और अग्नि के प्रकाशित ओज की कामना करते हुए, हम उत्तम स्तुतियों से उनका गुणगान करते हैं ॥६ ॥

२६५४. **अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७ ॥**

मैं अग्नि (आत्मा या ब्रह्म) जन्म से ही सर्वज्ञ हूँ। घृत (तेज) मेरे नेत्र हैं। मेरे मुख में अमृत (रस अथवा वाणी) है। मैं प्राणरूप में तीनों (जड़, वनस्पतियों एवं प्राणियों) का धारक एवं अन्तरिक्ष का मापक हूँ। सतत तेजोमय सूर्य, हवि एवं हविवाहक (अग्नि) मैं ही हूँ ॥७ ॥

२६५५. **त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्य१र्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन्।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥८ ॥**

(साधकगण) अपने अंतःकरण में मननीय परम ज्योति को भली-भाँति जानकर अग्नि, जल और सूर्य रूप पूजनीय आत्मा को परिमार्जित करते हैं। अग्नि के इन तीन रूपों द्वारा वे अपनी आत्मा को उत्कृष्टतम और रमणीय बनाते हैं। तदनन्तर वे द्यावा-पृथिवी को सब ओर से देखते हैं ॥८ ॥

२६५६. **शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम्।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥९ ॥**

हे द्यावा-पृथिवि ! सैकड़ों धाराओं वाले, जल-प्रवाहों के समान अक्षय, वचनों के पालक, संघटक, प्रवाहक, सत्यवादी और माता-पिता रूप आपकी गोद में प्रसन्न होने वाले अग्निदेव को आप सम्यक् रूप से पूर्ण करें ॥९॥

[सूक्त - २७]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन। **देवता** - अग्नि, १ अग्नि अथवा ऋतुएँ। **छन्द** - गायत्री।]

२६५७. **प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या। देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥१ ॥**

हे ऋतुओ ! अन्न, तेज और ऐश्वर्य की अभिलाषा से ऋत्विग्गण घृत से पूर्ण स्रुवा और हविष्यान्न से युक्त होकर देवों का यजन करते हैं। सुख की इच्छा करने वाले वे देवों को प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

२६५८. **ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम्। श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥२ ॥**

यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को सम्पन्न करने वाले, प्रज्ञावान्, वेगवान् और धनवान् अग्निदेव का स्तुति गान करते हुए हम उनका पूजन-सम्मान करते हैं ॥२ ॥



२६५९. **अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषांसि तरेम ॥३ ॥**

हे दीप्तिमान् अग्निदेव ! हम हविष्यान्न तैयार करके आपको अपने पास रख सकें अर्थात् यजन कर सकें और पापों से पार हो सकें ॥३ ॥

२६६०. **समिध्यमानो अध्वरे३ग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥४ ॥**

अग्निदेव यज्ञ में प्रज्वलित होकर केश रूप ज्वाला वाले, पवित्रकारक और स्तुत्य हैं, उनसे हम इष्ट फल की याचना करते हैं ॥४ ॥

२६६१. **पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक्स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ५ ॥**

महान् तेजस्वी, अजर-अमर, घृतवत् तेजोमय, भली-भाँति जिनका आवाहन और पूजन किया गया है, ऐसे अग्निदेव, यज्ञ में समर्पित हवियों को धारण करने वाले हैं ॥५ ॥

२६६२. **तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥६ ॥**

विघ्न-बाधाओं को दूर करके यज्ञ सम्पन्न करने वाले, यज्ञ के साधनों से युक्त ऋत्विजों ने अपनी रक्षा के लिए हव्यपूरित स्रुचा को आगे बढ़ाकर स्तुतियों के साथ अग्निदेव को समर्पित किया । इस प्रकार उन्हें अपने अनुकूल बनाया ॥६ ॥

२६६३. **होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥७ ॥**

देवों का आवाहन करने वाले, अविनाशी, प्रकाशमान अग्निदेव, याजकों को सत्कर्म की प्रेरणा देते हुए शीघ्र ही प्रकट होते हैं ॥७ ॥

२६६४. **वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८ ॥**

संग्राम में बलशाली अग्निदेव को, शत्रु नाश करने के निमित्त स्थापित करते हैं । यह ज्ञान-सम्पन्न अग्निदेव यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को सिद्ध करने वाले साधन रूप हैं ॥८ ॥

२६६५. **धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥९ ॥**

वे अग्निदेव सब यज्ञ कर्मों में प्रकट होने के कारण श्रेष्ठ हैं और सब प्राणियों में संव्याप्त हैं । विश्व पालक अग्निदेव को वेदी स्वरूपिणी दक्ष-पुत्री यज्ञादि के निमित्त धारण करती हैं ॥९ ॥

२६६६. **नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत । अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥१० ॥**

हे अग्निदेव ! आप घर्षण-बल (अरणि-मन्थन) से प्रकट होने वाले, श्रेष्ठ, तेजस्वी घृतादि हविष्यान्न की कामना करने वाले और वरण करने योग्य हैं । आपको वे दो रूपों वाली दक्ष पुत्री 'इला' धारण करती हैं ॥१० ॥

२६६७. **अग्निं यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ॥११ ॥**

मेधावी साधकगण जगन्नियन्ता, जल-प्रेरक अग्निदेव को हविष्यान्न द्वारा सम्यक् रूप से प्रदीप्त करते हैं ॥११॥

२६६८. **ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि । अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥१२ ॥**

बलों को धारण करने वाले, द्युलोक को प्रकाशित करने वाले अग्निदेव की हम इस यज्ञ में स्तुति करते हैं ॥१२ ॥

२६६९. **ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥१३ ॥**

स्तुत्य, प्रणम्य, अन्धकार नाशक, दर्शनीय और शक्तिशाली हे अग्निदेव ! आप आहुतियों द्वारा भली प्रकार प्रज्वलित संवर्धित किये जाते हैं ॥१३ ॥



२६७०. **वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥१४ ॥**

बलशाली अश्व जैसे राजा के वाहन को खींच कर ले जाते हैं, उसी प्रकार अग्निदेव देवताओं तक हवि पहुँचाते हैं । ऐसे अग्निदेव उत्तम प्रकार से प्रदीप्त हुए, यजमान की स्तुतियों को प्राप्त करते हैं ॥१४ ॥

२६७१. **वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥१५ ॥**

हे बलवान् अग्निदेव ! घृतादि की हवि प्रदान करने वाले हम, शक्तिशाली, तेजस्वी और महान् आपको (अग्नि को) प्रदीप्त करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - १- २, ६ गायत्री; ३ उष्णिक् ; ४ त्रिष्टुप्; ५ जगती ।]

२६७२. **अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः । प्रातः सावे धियावसो ॥१ ॥**

हे जातवेदा अग्निदेव ! हमारी स्तुतियाँ आपके पास निवास करती हैं । आप प्रातः सवन में हमारे पास आकर पुरोडाश और हव्यादि का सेवन करें ॥१ ॥

२६७३. **पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥२ ॥**

हे अतिशय युवा अग्निदेव ! आपके लिए पुरोडाश पकाया गया है और उसे घृतादि द्वारा सुसंस्कृत किया गया है, आप उसे ग्रहण करें ॥२ ॥

२६७४. **अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम् । सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥३ ॥**

हे अग्निदेव ! सन्ध्या वेला में समर्पित किये गये पुरोडाश का आप सेवन करें । आप बल के पुत्र हैं और यज्ञ में सर्वहितकारी हैं ॥३ ॥

२६७५. **माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।**
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥४ ॥

मेधावी और सर्वभूत ज्ञाता हे अग्निदेव ! इस यज्ञ में माध्यन्दिन सवन के समय समर्पित पुरोडाश का आप सेवन करें । यज्ञ में धीर अध्वर्युगण आपके भाग को नष्ट नहीं करते ॥४ ॥

२६७६. **अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।**
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥५ ॥

बल के पुत्र हे अग्निदेव ! तीसरे सवन में दिए गए पुरोडाश को आप स्वीकार करें । तदनन्तर अविनाशी, रत्नधारक, चैतन्यस्वरूप सोम को देवों के पास पहुँचाएँ ॥५ ॥

२६७७. **अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः । जुषस्व तिरोअह्न्यम् ॥६ ॥**

हे जातवेदा अग्निदेव ! विवर्धमान आप दिन के अन्त में समर्पित पुरोडाश रूपी आहुतियों का सेवन करें ॥६ ॥

[सूक्त - २९]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि; ५ अग्नि, अथवा ऋत्विज् । **छन्द** - त्रिष्टुप्; १, ४, १०, १२ अनुष्टुप्; ६, ११, १४, १५ जगती]

२६७८. **अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् । एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥१ ॥**



सम्पूर्ण जगत् का पालन करने वाली यह अरणी, मंथन करने का साधन है। इसके द्वारा ही अग्निदेव प्रकट होते हैं। इस अरणी को ले आयें। पूर्व की तरह हम मन्थन करके अग्निदेव को प्रकट करें ॥१ ॥

२६७९. अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥२ ॥

गर्भिणी के पेट में सुरक्षित गर्भ की तरह ये सर्वज्ञ अग्निदेव अरणियों में समाहित रहते हैं। यज्ञ के लिए जागरूक रहने वाले होताओं द्वारा नित्य ही वन्दनीय हैं ॥२ ॥

२६८०. उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥३ ॥

हे प्रतिभा - सम्पन्न (अध्वर्यु) ! आप उत्तान (ऊर्ध्व मुख सीधी वेदिका अथवा पृथ्वी) को भरें (पूरित करें)। पूरित होकर यह शीघ्र ही अभीष्ट वर्षा में समर्थ (यज्ञीय प्रवाह) को उत्पन्न करे। इसका तेज प्रकाशित होता है। इस प्रकार उज्ज्वल प्रकाश से युक्त इला (पृथ्वी) का पुत्र उत्पन्न होता है ॥३ ॥

[इस ऋचा का अर्थ अरणियों से अग्नि की उत्पत्ति पर भी घटित होता है।]

२६८१. इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥४ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! पृथ्वी के केन्द्रीय स्थल उत्तरवेदी के मध्य में हम आपको स्थापित करते हैं। हमारे द्वारा समर्पित हवियों को आप ग्रहण करें ॥४ ॥

२६८२. मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम्।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५ ॥

हे याजकगणो ! मेधावी, प्रपंचरहित, प्रकृष्ट ज्ञानवान्, अमर और सुन्दर शरीर वाले अग्निदेव को मंथन द्वारा उत्पन्न करें। समाज का नेतृत्व करने वाले हे याजको ! सर्वप्रथम यज्ञ के पताका रूप प्रथम पूज्य, उत्तम सुखकारी अग्निदेव को प्रकट करें ॥५ ॥

२६८३. यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६ ॥

जिस समय हाथों से अरणि-मंथन किया जाता है, उस समय शीघ्रगामी अश्व की भाँति गमनशील अग्निदेव काष्ठों पर अरुणिम वर्ण से विशेष प्रकाशमान होते हैं। अश्विनीकुमारों के शीघ्रगामी रथ की भाँति विशिष्ट शोभायमान होते हैं। वे अग्निदेव अबाध गति से तृणों को जलाते हुए, दहन-स्थान से आगे बढ़ते जाते हैं ॥६ ॥

२६८४. जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥७ ॥

उत्पन्न अग्निदेव ज्ञानवान्, वेगवान् और मेधावान् हैं, अतएव मेधावी जन उनकी प्रशंसा करते हैं। उत्तम कर्मफल प्रदायक वे अग्निदेव सर्वत्र शोभायमान होते हैं। देवों ने उन स्तुत्य और सर्वज्ञाता अग्निदेव को यज्ञ में हव्य-हवनकर्ता के रूप में स्थापित किया ॥७ ॥

२६८५. सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥८ ॥



हे होता रूप अग्निदेव ! सब कर्मों के ज्ञाता आप अपने प्रतिष्ठित स्थान को सुशोभित करें और श्रेष्ठ कर्मरूपी यज्ञ को सम्पन्न करें । देवों को तृप्त करने वाले हे अग्निदेव ! आप याजकों द्वारा प्रदत्त आहुतियों से देवताओं को आनन्दित करते हुए, याजकों को धन-धान्य एवं दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥८ ॥

२६८६. **कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।**

अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥९ ॥

हे मित्रो ! पहले आप धूम्र युक्त बलशाली अग्नि को उत्पन्न करें, फिर शक्तिशाली होकर युद्ध में आगे आएँ । ये (उत्पन्न) अग्निदेव श्रेष्ठवीर एवं शत्रु विजेता हैं, इन्हीं की सहायता से देवगणों ने असुरों को पराजित किया ॥९ ॥

२६८७. **अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।**

तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥१० ॥

हे अग्निदेव !यह अरणि ही आपकी उत्पत्ति का हेतु है, जिसके द्वारा आप प्रकट होकर शोभायमान होते हैं ।उस अपने मूल को जानते हुए आप उस पर प्रतिष्ठित हों और हमारी स्तुतियों (वाणी की सामर्थ्य) को बढ़ायें ॥१० ॥

२६८८. **तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।**

मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि ॥११ ॥

गर्भ में विद्यमान अग्निदेव को 'तनूनपात्' कहते हैं । जब यह अत्यधिक बलशाली (प्रकट) होते हैं, तब 'नराशंस' कहे जाते हैं । जब अन्तरिक्ष में वे अपने तेज को विस्तारित करते हैं, तब 'मातरिश्वा' होते हैं । इनके शीघ्र गमन करने पर वायु की उत्पत्ति होती है ॥११ ॥

२६८९. **सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।**

अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥१२ ॥

मेधावान् हे अग्निदेव ! आप उत्तम मथनी द्वारा मंथन से उत्पन्न होते हैं । आपको सर्वोत्तम स्थान में स्थापित किया गया है । हमारे यज्ञ को आप भली-भाँति सम्पन्न करें और देवत्व की कामना करने वाले हम याजकों के लिए देवों का यजन करें ॥१२ ॥

२६९०. **अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।**

दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥१३ ॥

मर्त्य ऋत्विजों ने अमर, अक्षय, सुदृढ़ दाँतों वाले, पापों से मुक्ति प्रदान करने वाले अग्निदेव को उत्पन्न किया । पुत्र की उत्पत्ति से प्रसन्न होने की तरह अग्नि के उत्पन्न होने पर दसों अँगुलियाँ परस्पर मिलकर अतिशय प्रसन्न होकर, शब्दायमान होते हुए प्रसन्नता व्यक्त करती हैं ॥१३ ॥

२६९१. **प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।**

न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४ ॥

यह सनातन अग्निदेव सात होताओं द्वारा दीप्तिमान् होते हैं । जब ये माता पृथ्वी के अंक में जल-स्थान के समीप शोभायमान होते हैं, तो वे आकर्षक दिखाई देते हैं । वे प्रतिदिन निद्रा न लेकर भी सदैव चैतन्य होते हैं; क्योंकि वे अत्यन्त बलवान् गर्भ से उत्पन्न हुए हैं ॥१४ ॥

२६९२. **अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा [illegible]मिद्विदुः ।**

द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको [illegible] समीधिरे ॥१५ ॥



मरुतों की सेना के समान शत्रुओं के साथ युद्ध करने वाले और ब्रह्मा के पुत्रों में अग्रज कुशिक वंशज ऋषिगण विश्व को जानते हैं। वे तेजस्वी हविष्यान्न सहित स्तोत्रों से अग्निदेव की स्तुति करते हैं। अपने-अपने घरों में उन्हें नित्य यज्ञार्थ प्रदीप्त करते हैं ॥१५ ॥

२६९३. यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥१६ ॥

यज्ञादिक श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादक, सर्वज्ञ हे अग्निदेव ! आज के इस यज्ञ में हम आपका वरण करते हैं। आप यहीं यज्ञ में सुदृढ़तापूर्वक स्थापित हों और सर्वत्र शान्तिकारक हों। हे विद्वान् अग्निदेव ! सोम को अभिषुत हुआ जानकर, आप उसके समीप पहुँचकर उसे ग्रहण करें ॥१६ ॥

[सूक्त - ३०]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन। **देवता** - इन्द्र। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

२६९४. इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमयाग करने वाले सखा रूप ऋत्विग्गण आपके स्तवन के अभिलाषी हैं। वे आपके लिए सोमरस छान कर तैयार करते हैं और हविष्यान्न धारण करते हैं। वे शत्रुओं के हिंसक प्रहार को सहन करते हैं। हे इन्द्रदेव ! आप से अधिक प्रसिद्ध और कौन है ? ॥१ ॥

२६९५. न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम्।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥२ ॥

तीव्र गतिशील अश्वों से युक्त हे इन्द्रदेव ! अत्यन्त दूरस्थ लोक भी आपके लिए दूर नहीं है; क्योंकि आपके अश्व सर्वत्र गमन करते हैं। आप स्थिर बल-युक्त और अभीष्ट वर्षक हैं, आपके लिए ही ये यज्ञादि कार्य सम्पादित किये गये हैं। यहाँ अग्नि के प्रदीप्त होने पर सोम अभिषवण हेतु पाषाण खण्ड प्रयुक्त होते हैं ॥२ ॥

२६९६. इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान्।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व१ त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥३ ॥

हे अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव ! आप धनवान्, उत्तम शिरस्त्राण वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, महान् व्रतों को धारण करने वाले, विविध कर्मों को सम्पन्न करने वाले और विकराल हैं। युद्धों में (असुरों आदि को) बाधित करने वाले आप मनुष्यों के लिए जो पराक्रम करते हैं, वह सामर्थ्य कहाँ है ? ॥३ ॥

२६९७. त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अकेले ही अत्यन्त सुदृढ़ शत्रुओं को उनके स्थान से च्युत किया है और वृत्रों को मारते हुए सर्वत्र विचरण किया है। सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवी और दृढ़ पर्वत आपके संकल्प के लिए ही अविचल होकर अनुकूल होते हैं ॥४ ॥

२६९८. उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन्।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ॥५ ॥



पुरुहूत (अनेकों के द्वारा आवाहन किये जाने वाले), ऐश्वर्यवान् हे इन्द्रदेव ! बल से युक्त होकर आपने अकेले ही वृत्र का हनन करके, जो अभय वचन कहे, वे सत्य से परिपूर्ण हैं। आपने दूर होते हुए भी द्यावा और पृथिवी को संयोजित किया। आपकी यह महिमा विख्यात है ॥५॥

२६९९. **प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।**
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! हरितवर्ण वाले अश्वों से युक्त आपका रथ उत्तम मार्ग से आगे बढ़े। आपका वज्र शत्रुओं को मारते हुए आगे बढ़े। आप आगे से आने वाले, पीछे से आने वाले और दूर से आने वाले शत्रुओं का हनन करें। लोगों में वह सामर्थ्य भरें, जिससे विश्व सत्य कर्म में प्रवृत्त हो सके ॥६॥

२७००. **यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं१ सः।**
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥७॥

हे पुरुहूत इन्द्रदेव ! ऐश्वर्यधारक आप, जिस मनुष्य को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, वह पहले अप्राप्त पशु, गृह आदि वैभव प्राप्त करता है। घृत, हव्यादि से प्रफुल्लित मन से, प्राप्त आपका अनुग्रह कल्याणकारी होता है। आपका दान विपुल ऐश्वर्य से परिपूर्ण हो ॥७॥

२७०१. **सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम्।**
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥८॥

हे पुरुहूत इन्द्रदेव ! आप दानशीलों को आश्रय देने वाले हैं। आपने घोर गर्जनशील वृत्र को हस्तहीन कर, छिन्न-विच्छिन्न कर दिया। हे इन्द्रदेव ! आपने विवर्द्धमान और हिंसक वृत्र को पादहीन करके बलपूर्वक मारा था ॥८॥

२७०२. **नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ।**
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अत्यन्त व्यापक विस्तार वाली पृथ्वी को अन्नादि प्रदात्री और समभाव सम्पन्न करके उपयुक्त स्थान पर स्थापित किया है। हे अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव ! आपने अन्तरिक्ष और द्युलोक को भी धारण किया है। आपके द्वारा निस्सृत जल-प्रवाह यहाँ भूमि पर बहें ॥९॥

२७०३. **अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार।**
सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! सूर्य रश्मि समूह पर आधिपत्य रखने वाला, संग्रहशील, वल नामक असुर आपके वज्र से भयभीत होकर क्षत-विक्षत हुआ। तदनन्तर आपने जल-प्रवाहों के बहने के लिए मार्ग को सुगम कर दिया। स्तुत्य और बहुतों द्वारा आवाहन किये गये इन्द्रदेव से प्रेरित होकर शब्द करते हुए जल-प्रवाह बहने लगे ॥१०॥

२७०४. **एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम्।**
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११॥

इन्द्रदेव ने अकेले ही पृथिवी और द्यावा को परस्पर संगत और धन संयुक्त करके पूर्ण किया है। हे शूरवीर इन्द्रदेव ! उत्तम रथी आप वेगपूर्वक गमनशील अश्वों को रथ से जोड़कर, हमारे बीच उपस्थित होने की कृपा करें ॥११॥

२७०५. **दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः।**
सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥१२॥



सूर्य, इन्द्रदेव द्वारा प्रेरित और गमन के लिए निश्चित दिशाओं का ही अनुसरण करते हैं । वे जब अश्वों द्वारा गमन पथ पूरा कर लेते हैं, तभी अश्वों को मुक्त करते हैं । यह भी इन्द्रदेव के लिए ही करते हैं ॥१२ ॥

२७०६. **दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।**
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३ ॥

रात्रि को समाप्त करती हुई उषा के उदित होने पर, सभी मनुष्य उन महान् और विचित्र सूर्यदेव के तेज के दर्शन की इच्छा करते हैं । जब उषा आगमन करती है, तब लोग इन्द्रदेव के कल्याणकारी यज्ञादि महान् कर्मों को करना अपना कर्तव्य समझते हैं ॥१३ ॥

२७०७. **महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।**
विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥१४ ॥

इन्द्रदेव ने जल-प्रवाहों में महान् तेज को स्थापित किया है । उन्होंने जल से अधिक स्वादिष्ट दूध, घृतादि भोजन के लिए गौओं में स्थापित किया है । नव प्रसूता गाय दूध धारण करती हुई विचरण करती है ॥१४ ॥

२७०८. **इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।**
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव !आप दृढ़ हों, क्योंकि शत्रुओं ने अवरोध उत्पन्न किया है । आप यज्ञ और स्तुति करने वाले मित्रों को वाञ्छित मार्ग में प्रेरित करें ।शस्त्रादि प्रहारक, कुमार्गगामी, बाणादि धारक शत्रु आपके द्वारा मारने योग्य हैं ॥१५ ।

२७०९. **सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।**
वृश्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन् रन्धयस्व ॥१६ ॥

हे इन्द्रदेव ! समीपस्थ शत्रुओं द्वारा छोड़े गये आयुधों का शब्द सुनाई देता है । संताप देने वाले आयुधों द्वारा आप उन शत्रुओं को विनष्ट करें; उन्हें समूल नष्ट करें । राक्षसों को प्रताड़ित करें, पराभूत करें और उनका वध करके यज्ञ में प्रवृत्त हों ॥१६ ॥

२७१०. **उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।**
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप राक्षसों का समूल उच्छेदन करें । उनके मध्य भाग का छेदन करें । उनके अग्रभाग को नष्ट करें । लोभी राक्षसों को दूर करें । श्रेष्ठ ज्ञान-कर्म से द्वेष करने वालों पर भीषण अस्त्रों का प्रहार करें ॥१७ ॥

२७११. **स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।**
रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥१८ ॥

हे जगत्-नियामक इन्द्रदेव ! हमें कल्याण के लिए अश्वों से युक्त करें । जब आप हमारे निकट हों, तब हम विपुल अन्न और प्रभूत धनों के स्वामी हों । हमें पुत्र-पौत्रादि से युक्त ऐश्वर्य की प्राप्ति हो ॥१८ ॥

२७१२. **आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।**
ऊर्वइव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें तेजस्विता-सम्पन्न ऐश्वर्य से अभिपूरित करें । आप दानशील हैं । हम आपके दान को धारण करने वाले हों । हमारी कामनाएँ बड़वानल के सदृश प्रवृद्ध हुई हैं । हे धनों में श्रेष्ठ धन के स्वामी इन्द्रदेव ! आप हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥१९ ॥



२७१३. इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारी अभिलाषा को पूर्ण करें । हमें गौ, अश्व और हर्षप्रद ऐश्वर्य से सम्पन्न करें । स्वर्गादि सुख के अभिलाषी और बुद्धिमान् कुशिक वंशजों ने बुद्धिपूर्वक स्तोत्रों का सम्पादन किया है ॥२० ॥

२७१४. आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥२१ ॥

हे स्वर्ग के स्वामी इन्द्रदेव !आप मेघों को विदीर्ण कर हमें जल प्रदान करें ।हमें उपभोग योग्य अन्न प्रदान करें ।आप द्युलोक में व्याप्त होकर स्थित हैं । हे सत्यबल-सम्पन्न और ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! ज्ञान-प्रदाता आप हमें सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्रदान करें ॥२१ ॥

२७१५. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२ ॥

धन-धान्य से सम्पन्न, वैभवशाली, युद्धों में उत्साहपूर्वक विजय प्राप्त करने वाले, भयंकर शत्रुसेना का विनाश करने वाले, याजकों द्वारा किये गये स्तुति गान का श्रवण करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम आश्रय की कामना करते हुए आपका आवाहन करते हैं ॥२२ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि** - कुशिक ऐषीरथि अथवा विश्वामित्र गाथिन । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

२७१६. शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥१ ॥

विद्वान् पुत्रहीन पिता (वह्नि) , सामर्थ्यवान् जामाता का सत्कार करते हुए अपनी पुत्री के पुत्र को, पुत्र रूप में अपना लेता है ।जब पिता अपनी पुत्री को विवाह योग्य बना देता है, तब मन अत्यन्त सुख का अनुभव करता है ॥१ ॥

२७१७. न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥२ ॥

भाई अपनी बहिन को पैतृक धन का भाग नहीं देता; अपितु उसको पति के लिए नव निर्माण करने में सक्षम बनाता है । माता-पिता पुत्र और पुत्री को उत्पन्न करते हैं, तो उनमें से एक (पुत्र) सर्वोत्कृष्ट पैतृक कर्म सम्पन्न करता है और अन्य (पुत्री) सम्मान युक्त शोभा को धारण करती है ॥२ ॥

२७१८. अग्निर्जज्ञे जुह्वा३ रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान्गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥३ ॥

महान् तेजस्वी हे इन्द्रदेव ! आपके यज्ञ के लिए ज्वालाओं से कम्पायमान अग्निदेव ने अनेकों पुत्रों (रश्मियों) को उत्पन्न किया है । इन रश्मियों का महान् गर्भ जलरूप है । ओषधि रूपी उत्पत्ति भी महान् हैं । हे इन्द्रदेव (हरि-अश्व वाहक) ! आपके यज्ञ के कारण ये रश्मियाँ महानता की ओर प्रवृत्त हुई हैं ॥३ ॥

[उक्त तीन ऋचाओं में यज्ञ से प्रकृति पोषण चक्र का आलंकारिक वर्णन है । पिता वह्नि (अग्नि) अपनी पुत्रियाँ वनौषधियों के पुत्र (हव्य) को अपने पुत्र (ऊर्जा प्रवाह) के रूप में धारण कर लेते हैं । पुत्र (यज्ञीय ऊर्जा प्रवाह) पिता के पोषण देने वाले कर्म को करते हैं तथा पुष्ट हुई वनौषधियाँ सम्मान प्राप्त करती हैं । यह महान् चक्र यज्ञीय प्रक्रिया के अंतर्गत चलता रहता है ।]



२७१९. अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥४॥

शत्रुओं पर हमेशा विजय प्राप्त करने वाले मरुद्‌गण युद्धरत इन्द्रदेव के साथ जुड़ गये ।उन्होंने महान् ज्योति (सूर्य) को गहन तमिस्रा से मुक्त किया, उसे जानकर उषायें भी उदित हुईं । इन सभी क्रियाओं के एक मात्र अधिपति इन्द्रदेव ही हैं ॥४॥

२७२०. वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः।
विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥५॥

बुद्धिमान् और मेधावी सात ऋषियों ने सुदृढ़ पर्वत (विशाल आकार) द्वारा रोकी गई गौओं (रश्मि पुञ्ज) को देखा । ऊर्ध्वगामी श्रेष्ठ चिन्तनरत निर्मल मन से उन्होंने यज्ञ के मार्ग का अनुगमन करते हुए, उस रश्मि पुञ्ज को प्राप्त किया । ऋषियों के इन समस्त कर्मों के द्रष्टा इन्द्रदेव स्तोत्रों के साथ यज्ञ में प्रविष्ट हुए ॥५॥

२७२१. विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात्॥६॥

सरमा ने पर्वतकाय वृत्र (अन्धकार) के भग्न स्थल को जान लिया, तब इन्द्रदेव ने एक सीधा और विस्तृत पथ विनिर्मित किया । उत्तम पैरों वाली सरमा इन्द्रदेव को उस पथ पर आगे ले गई । पर्वत में असुर द्वारा छिपाई गई गौओं (प्रकाश किरणों) के शब्द को सर्वप्रथम सुनकर सरमा ने इन्द्रदेव के साथ उनको प्राप्त किया ॥६॥

२७२२. अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन्॥७॥

श्रेष्ठतम ज्ञानी और उत्तम कर्मा इन्द्रदेव अंगिराओं की मित्रता की इच्छा से पर्वत के समीप पहुँचे । पर्वताकार असुर ने अपने गर्भ में छिपी गौओं (किरणों) को प्रकट किया । इन्द्रदेव ने मरुतों की सहायता से युद्ध करके शत्रुओं को मारते हुए गौओं (किरणों) को प्राप्त किया । तदनन्तर अंगिराओं ने इन्द्रदेव की शीघ्र ही अर्चना प्रारम्भ की ॥७॥

२७२३. सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम्।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात्॥८॥

शुष्णासुर का वध करने वाले, युद्धों में अग्रणी रहकर सेना का नेतृत्व करने वाले इन्द्रदेव, उत्पन्न होने वाले समस्त पदार्थों को जानते हुए उनका प्रतिनिधित्व करते हैं । ऐसे सन्मार्गगामी और गो द्रव्य अभिलाषी इन्द्रदेव मित्ररूप पूजनीय होकर द्युलोक से हम मित्रों को पाप से छुड़ायें ॥८॥

२७२४. नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥९॥

अंगिरावंशी ऋषिगण ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा करते हुए यज्ञ में प्रवृत्त हुए । उन्होंने यज्ञ में बैठकर स्तोत्रों से अमरता प्राप्त करने के लिए उपाय किया । यह यज्ञ उनका वह विस्तृत स्थान है, जिसके माध्यम से उन्होंने महीनों का विभाजन किया ॥९॥

[ऋषियों ने ज्योतिर्विज्ञान- अध्ययन सम्बन्धी शोध करके, यज्ञ के माध्यम से १२ राशियों को खोजकर उनके आधार पर मासों का वर्गीकरण किया ।]

२७२५. **सम्पश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।**
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१० ॥

अंगिरा ऋषि अपनी गौओं को सम्मुख देखकर पूर्व की तरह उनसे वीर्यवर्द्धक दूध दुहते हुए हर्षित हुए थे । उनका हर्षयुक्त उद्घोष आकाश और पृथ्वी में व्याप्त हुआ । उन्होंने गौओं की उत्पत्ति को भी निष्ठापूर्वक धारण किया और गौओं की रक्षा के लिए वीर पुरुषों को नियुक्त किया ॥१० ॥

[ऋषियों ने गौओं- किरणों का अध्ययन किया । उनसे दिव्य प्रवाहों का लाभ पाने के सूत्र खोजे तथा उनकी रक्षा के लिए उपयुक्त पुरुषों को नियुक्त किया ।]

२७२६. **स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।**
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥११ ॥

इन्द्रदेव ने मरुतों की सहायता द्वारा वृत्र का वध किया । वे पूजनीय और हव्य योग्य हैं । उन्होंने जल-प्रवाह उत्पन्न किया । घृत-दुग्ध धारण-कर्त्री, अतिशय पूज्य और प्रशंसनीय गाय ने उन इन्द्रदेव के लिए मधुर और स्वादिष्ट दूध उपलब्ध कराया ॥११ ॥

२७२७. **पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् ।**
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥१२ ॥

अंगिराओं ने सर्वपालक इन्द्रदेव के लिए महान् दीप्तिमान् स्थान को संस्कारित किया, वहाँ वे स्तुति करने लगे । उत्तम कर्मशील अंगिराओं ने यज्ञ में आसीन होकर सबको उत्पन्न करने वाली द्यावा-पृथिवी के मध्य स्तम्भ रूप अन्तरिक्ष को थामकर वेगवान् इन्द्रदेव को द्युलोक में संस्थापित किया ॥१२ ॥

२७२८. **मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं१ रोदस्योः ।**
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥१३ ॥

सबके हितों को धारण करने वाले, सतत वृद्धि करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त श्रेष्ठ स्तोत्रों का गान किया गया । इससे द्यावा-पृथिवी की समस्त शक्तियों पर उनका एकाधिकार हो गया ॥१३ ॥

२७२९. **मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।**
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४ ॥

वृत्र नामक असुर का विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम आपकी मित्रता और महती शक्ति पाने के लिए आपसे प्रार्थना करते हैं । अनेक अश्व आपको वहन करने के लिए आते हैं । हम स्तोतागण आपके निमित्त स्तोत्र पहुँचाते हैं । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप ज्ञान-रक्षक हैं । हमें दिव्य ज्ञान से प्रेरित करें ॥१४ ॥

२७३०. **महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।**
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५ ॥

सर्वविद् इन्द्रदेव ने अपने मित्रों के लिए महान् क्षेत्र और विपुल तेजस्वी धनों का दान किया । तदनन्तर उत्तम गौओं का भी दान किया । उन दीप्तिमान् इन्द्र देव ने मरुतों के साथ सूर्य, उषा एवं अग्नि को और उनके मार्ग को बनाया ॥१५ ॥

२७३१. **अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ।**
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६ ॥



शत्रुदमनशील इन्द्रदेव ने परस्पर संगठित होकर बहने वाले एवं सबको आनन्दित करने वाले जल को उत्पन्न किया । वे अन्न उत्पादक जल प्रवाह, अग्नि, सूर्य एवं वायु के द्वारा शोधित-पवित्र होकर मधुर सोमरसों को दिन-रात प्रेरित करते रहते हैं ॥१६ ॥

२७३२. अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सूर्यशक्ति के द्वारा अपार वैभव से सम्पन्न महिमामण्डित दिन और रात्रि एक दूसरे का अनुगमन करते हुए निरन्तर गतिशील हैं, उसी प्रकार सुगम मार्गों से निरन्तर प्रवाहित होने वाले मित्र और मरुद्देव शत्रुओं का विनाश करने का सम्पूर्ण बल आपसे ही प्राप्त करते हैं ॥१७ ॥

२७३३. पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥१८ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप अविनाशी, अभीष्टवर्षक और अन्न-प्रदाता हैं । हमारे द्वारा प्रेमपूर्वक की गई स्तुतियों को स्वीकार करें । आप यज्ञ में जाने के अभिलाषी और महान् हैं । अपनी महती और कल्याणकारी रक्षण-सामर्थ्यों से युक्त होकर मैत्री भाव सहित हम सब पर अनुग्रह करें ॥१८ ॥

२७३४. तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः ॥१९ ॥

पुरातन दिव्यपुरुष हे इन्द्रदेव ! हम नमन-अभिवादन सहित आपकी पूजा करते हैं । आपके निमित्त हम नवीन स्तोत्रों को सम्पादित करते हैं । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! दैवीय गुणरहित द्रोहियों को हमसे दूर करें और हमारे उपयोग के लिए धनादि प्रदान करें ॥१९ ॥

२७३५. मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! पवित्र वर्षणशील (सिंचनकारी) जल चारों ओर फैला है । हमारे कल्याण के लिए जलाशयों के किनारों को जल से पूर्ण करें । तीव्रगामी रथ से युक्त हे देव ! हमें शत्रुओं से संघर्ष करने की सामर्थ्य तथा गौओं के रूप में अपार वैभव प्रदान करें ॥२० ॥

२७३६. अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥२१ ॥

वृत्रहन्ता और दिव्य शक्तियों के संगठक स्वामी इन्द्रदेव, हमें सर्वोत्तम ज्ञान से अभिपूरित करें । वे हमारे आन्तरिक शत्रुओं को अपने तेजस्वी पराक्रम द्वारा विनष्ट कर दें । यज्ञ में हमारी प्रीतिकर स्तुतियों को स्वीकार करते हुए वे हमारे सम्पूर्ण दुर्गुणों को दूर करें ॥२१ ॥

२७३७. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२ ॥

धन-धान्य से सम्पन्न ऐश्वर्यवान् हे इन्द्रदेव ! आप हमारी प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर युद्धों में अपना पराक्रम दिखाते हैं और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं । हम अपनी रक्षा के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥२२ ॥

[सूक्त - ३२]

[ऋषि- विश्वामित्र गाथिन । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२७३८. इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते ।

प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥१ ॥

सोम के स्वामी हे इन्द्रदेव ! आप इस मध्य- दिवस के सवन पर समर्पित सोमरस का पान करें । ऐश्वर्यवान् और सोमाभिलाषी हे इन्द्रदेव ! आप अपने दोनों अश्वों को यहाँ खोलकर उनके मुख को (आहार से) परिपूर्ण करके उन्हें तृप्त करें ॥१ ॥

२७३९. गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।

ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप भली प्रकार मथकर दुग्धादि मिश्रित तेजस्वी सोमरस का पान करें । हम आपके हर्ष के लिए सोम प्रदान करते हैं । स्तोता मरुद्गणों और रुद्रों के साथ संयुक्त होकर आप सोम से तृप्त हों तथा हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥२ ॥

२७४०. ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।

माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके शत्रुनाशक बल को, सैन्यबल को, पराक्रम तथा सामर्थ्य को ये मरुद्गण उत्तम स्तुतियों द्वारा बढ़ाते हैं । वज्रवत् हाथों वाले, शिरस्त्राण युक्त हे इन्द्रदेव ! उन रुद्रपुत्र मरुतों के साथ आप माध्यन्दिन सवन में सोम पान करें ॥३ ॥

२७४१. त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।

येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥४ ॥

इन्द्रदेव के सैन्यबल को बढ़ाने वाले मरुद्गणों ने उनको मधुर वचनों से प्रेरित किया । मरुद्गणों से प्रेरित होकर इन्द्रदेव ने मर्म न जान सकने वाले एवं अपने को महान् समझने वाले वृत्र के मर्म को जान लिया और उसका वध किया ॥४ ॥

[महत्वाकांक्षी व्यक्ति वास्तविकता से अनभिज्ञ स्वयं को सर्वोपरि मानने लगता है, यही उसके विनाश का कारण बनता है

२७४२. मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।

स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप मनु के यज्ञ के समान हमारे यज्ञ का सेवन करते हुए शाश्वत बल प्राप्ति के लिए सोमपान करें । हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी हे इन्द्रदेव ! यजनीय और गतिवान् मरुतों के साथ आप हमारे यज्ञ में आएँ तथा हमारे कल्याण के लिए जल वर्षा करें ॥५ ॥

२७४३. त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्तवाजौ ।

शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अन्तरिक्ष में विद्यमान जल को रोककर बैठे हुए तेजहीन, शयन करते हुए वृत्र को वेगवान् वज्र के प्रहार से मार दिया । उसके द्वारा रोकी गई जल- राशि को अश्वों की भाँति मुक्त करा दिया ॥६ ॥



२७४४. यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥७ ॥

यज्ञों में समर्पित हव्यरूपी आहार पाकर प्रवृद्ध होने वाले महान् , अतिश्रेष्ठ, अजर, सर्वदा तरुण रहने वाले इन्द्रदेव की हम विधिवत् पूजा करते हैं । उन यजन योग्य इन्द्रदेव की महिमा को द्यावा-पृथिवी भी माप नहीं सकते ॥७ ॥

२७४५. इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥८ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को धारण करने वाले, उषा एवं सूर्यदेव को उत्पन्न करने वाले महान् पराक्रमी इन्द्रदेव के श्रेष्ठ कार्यों और व्रतों को समस्त देवशक्तियाँ मिलकर भी रोक नहीं सकतीं ॥८ ॥

२७४६. अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥९ ॥

हे द्रोहरहित इन्द्रदेव !आपकी महिमा ही वास्तविक है, क्योंकि आप प्रकट होकर ही सोमपान करते हैं । आप अत्यन्त बलशाली हैं ।स्वर्ग आदि लोक तथा दिवस, मास और वर्ष भी आपके तेजका सामना नहीं कर सकते ॥९ ॥

२७४७. त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने उत्पन्न होकर शीघ्र ही परम आकाश में रहकर हर्ष प्राप्ति के लिए सोमपान किया । जब आपने पृथ्वी और द्युलोक में व्यापक रूप से विस्तार कर लिया,तब सभी याजकों की मनोकामनाओं को पूर्ण किया ॥१० ॥

२७४८. अहन्नहिं परिशयानमर्णं ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या३ क्षामवस्थाः ॥११ ॥

महान् पराक्रमी हे इन्द्रदेव ! आप विभिन्न लोकों के समस्त पदार्थों को उत्पन्न करने वाले हैं । आपने जल को घेरकर शयन करने वाले अहि नामक असुर को मारा । जब आपने जल से पृथ्वी को अभिषिक्त करके सँभाला, उस समय आपकी महिमा की समानता द्युलोक सहित अन्य कोई भी नहीं कर सका ॥११ ॥

२७४९. यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारा यज्ञ आपको प्रवर्धित करता है । यज्ञादि कार्य में अभिषुत किया हुआ सोम आपको अतिशय प्रिय है । यजन-योग्य आप हमारे यज्ञ में आकर उसको संरक्षित करें ॥१२ ॥

२७५०. यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥१३ ॥

जो इन्द्रदेव अति पुरातन, मध्यकालीन और नूतन स्तोत्रों से प्रवृद्ध हुए हैं, उनको स्तोतागण संरक्षण प्राप्ति के लिए यज्ञ के समीप ले आएँ । हम भी नवीनतम साधन एवं सुख प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव का आवाहन करें ॥१३ ॥

२७५१. विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥१४ ॥

जब हमारे मन में इन्द्रदेव की स्तुति करने की इच्छा उत्पन्न होती है, उसी समय हम स्तुति करते हैं । हम

दूरवर्ती (भावी) अमंगलकारी दिन के पहले ही स्तुति करते हैं, जिससे वे इन्द्रदेव हमें दु:खों से मुक्ति दिलाएँ । जैसे नाव वाले को दोनों तटों के लोग बुलाते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव को हमारे मातृ-पितृ दोनों पक्षों के लोग बुलाते हैं ॥१४॥

२७५२. **आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।**
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५ ॥

यह सोमरस से परिपूर्ण कलश इन्द्रदेव के पीने के लिए है । जैसे सिंचनकर्त्ता क्षेत्र को सिंचित करते हैं, वैसे ही हम इन्द्रदेव को स्वाहाकार सहित सोमरस से सींचते हैं । प्रिय सोम इन्द्रदेव के मन को प्रमुदित करने के लिए प्रदक्षिणा करता हुआ उनके समीप पहुँचे ॥१५ ॥

२७५३. **न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त ।**
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६ ॥

बहुतों द्वारा आवाहन किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! मित्रों द्वारा प्रेरित होकर आपने/रश्मि समूह को छिपाने वाले सुदृढ़ मेघों को फोड़ा । गम्भीर समुद्र और चारों ओर विस्तृत पर्वत भी आपको नहीं रोक सके ॥१६ ॥

२७५४. **शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।**
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१७ ॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव को बुलाते हैं । वे पवित्र करने वाले सभी मनुष्यों के नियन्ता, हमारी स्तुतियों को सुनने वाले, उग्र, युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले, धनों के विजेता और ऐश्वर्यवान् हैं ॥१७ ॥

[सूक्त - ३३]

[**ऋषि-** विश्वामित्र गाथिन; ४,६,८,१० नदियाँ (ऋषिका) । **देवता-** नदियाँ; ४,८,१० विश्वामित्र; ६,७ इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप्; १३ अनुष्टुप् ।]

२७५५. **प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव विषिते हासमाने ।**
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१ ॥

बन्धन से विमुक्त होकर हर्षयुक्त नाद करते हुए दो घोड़ियों की भाँति अथवा अपने बछड़ों से सस्नेह- मिलन के लिए उतावली, दो गायों की भाँति विपाट् (व्यास) और शुतुद्रि (सतलज) नाम की नदियाँ पर्वत की गोद से निकलकर समुद्र से मिलने की अभिलाषा के साथ प्रबल वेग से प्रवाहित हो रही हैं ॥१ ॥

२७५६. **इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।**
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२ ॥

हे नदियो ! आप दोनों इन्द्र द्वारा प्रेरित होकर सम्यक् रूप से अनुकूलतापूर्वक प्रवहमान हों । हे उज्ज्वला ! अपनी तरंगों से सबको तृप्त करती हुई आप दोनों धान्य उत्पत्ति में समर्थ हों । दो रथियों के समान समुद्र की ओर गमन करें ॥२ ॥

२७५७. **अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।**
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥३ ॥

ऋषि विश्वामित्र कहते हैं कि हम स्नेह-सिक्त मातृ-तुल्य शुतुद्रि (सतलज) नदी के पास गये और विपुल



ऐश्वर्य-राशि से सम्पन्न विपाशा नदी के पास गये । बछड़े के प्रति स्नेहाभिलाषिणी गौओं के समान ये नदियाँ एक ही लक्ष्य-स्थान समुद्र की ओर सतत बहती हुई जा रही हैं ॥३ ॥

२७५८. एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४ ॥

हम नदियाँ अपने जल-प्रवाह से सबको तृप्त करती हुईं देवों द्वारा स्थापित स्थान की ओर बहती हुई जा रही हैं । अनवरत प्रवहमान हम अपने प्रयास से कभी भी विश्राम नहीं लेती हैं (यह तो हमारा सहज सामान्य क्रम है), फिर ब्राह्मण विश्वामित्र द्वारा हमारी स्तुति क्यों की जा रही है ? ॥४ ॥

२७५९. रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५ ॥

हे जलवती नदियो ! आप हमारे नम्र और मधुर वचनों को सुनकर अपनी गति को एक क्षण के लिए विराम दे दें । हम कुशिक पुत्र अपनी रक्षा के लिए महती स्तुतियों द्वारा आप नदियों का भली प्रकार सम्मान करते हैं ॥५ ॥

२७६०. इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६ ॥

(नदियों की वाणी) हे विश्वामित्र ! वज्रधारी इन्द्रदेव ने हमें खोदकर उत्पन्न किया । नदियों के प्रवाह को रोकने वाले वृत्र को उन्होंने मारा । सबके प्रेरक, उत्तम हाथों वाले और दीप्तिमान् इन्द्रदेव ने हमें बढ़ने के लिए प्रेरित किया । उनकी आज्ञा के अनुसार ही हम जल से परिपूर्ण होकर गमन करती हैं ॥६ ॥

२७६१. प्रवाच्यं शश्वधा वीर्य१न्तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥७ ॥

इन्द्रदेव ने अहि नामक असुर को मारा; उनके वे पराक्रम और कर्म सर्वदा वर्णनीय हैं । जब इन्द्रदेव ने अपने चारों ओर स्थित असुरों को मारा, तब जल-प्रवाह समुद्र से मिलने की इच्छा करते हुए प्रवाहित हुआ ॥७ ॥

२७६२. एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८ ॥

हे स्तोता (विश्वामित्र) ! अपने ये स्तुति-वचन कभी भूलना नहीं । भावी समय में यज्ञों में इन वचनों की उद्घोषणा द्वारा आप हमारी सेवा करें । हम (दोनों नदियाँ) आपको नमस्कार करती हैं । पुरुषों द्वारा सम्पादित कर्मों में कभी भी हमारी उपेक्षा न करें ॥८ ॥

२७६३. ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९ ॥

हे भगिनी रूप (दोनों) नदियो ! हमारी स्तुति भलीप्रकार सुनें । हम आपके पास अति दूरस्थ देश से रथ और शकट को लेकर आये हैं । आप अपने प्रवाहों के साथ इतनी झुक जायें कि रथ की धुरी से नीचे हो जायें, जिससे हम सरलता से पार हो जायें ॥९ ॥

२७६४. आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१० ॥

हे स्तोता ! हम (दोनों नदियाँ) आपकी स्तुतियाँ सुनती हैं (आप दूरस्थ देश से रथ और शकट के साथ आए

हैं); इसलिए जैसे माता पुत्र को स्तन-पान कराने के लिए अवनत होती है अथवा धर्म पत्नी अपने पति के प्रति नम्र होती है, वैसे ही हम आपके लिए अवनत होती हैं (अपने प्रवाह को कम करके आपको जाने का मार्ग प्रदान करती हैं) ॥१०॥

२७६५. **यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।**
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥

हे (दोनों) नदियो ! जब पोषणकर्त्ता पुरुष आपको पार करना चाहे; तब आपको पार करने के अभिलाषी वे जन-समूह इन्द्रदेव द्वारा प्रेरित होकर आपकी अनुकम्पा से पार हो जायें । आप यजन योग्य हैं । हम प्रतिदिन आपके वेगवान् जल-प्रवाहों की उत्तम स्तुतियाँ करते हैं ॥११॥

२७६६. **अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।**
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२॥

हे नदियो ! भरण-पोषण को लक्ष्य करके आपके पार जाने के अभिलाषीजन पार हो गए । ज्ञानीजनों ने आपके निमित्त उत्तम स्तुतियों को अभिव्यक्त किया । आप अन्नों की प्रदात्री और उत्तम ऐश्वर्यवती होकर नहरों को जल से परिपूर्ण करें और शीघ्र गमन करें ॥१२॥

[विश्वामित्र आदि ऋषिगण व्यास आदि नदियों को पार करके देवसंस्कृति का संदेश लेकर अफगानिस्तान-ईरान आदि देशों की ओर गये थे; इन ऋचाओं से यह प्रमाणित होता है ।]

२७६७. **उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।**
मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥१३॥

हे नदियो ! आपकी तरंगें रथ की धुरी से टकराती रहें । हे दुष्कर्महीना, पापरहिता, अनिन्दनीया नदियो ! आपको कोई बाधा न हो ॥१३॥

[सूक्त - ३४]

[ऋषि- विश्वामित्र गाथिन । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२७६८. **इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।**
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥१॥

शत्रुओं के गढ़ को ध्वस्त करने वाले महिमावान्, धनवान् इन्द्रदेव ने शत्रुओं को मारते हुए अपनी तेजस्विता से उन्हें भस्म कर दिया । स्तुतियों से प्रेरित और शरीर से वर्द्धित होते हुए विविध अस्त्र-धारक इन्द्रदेव ने द्यावा और पृथिवी दोनों को पूर्ण किया ॥१॥

२७६९. **मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।**
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप पूजनीय और बलशाली हैं । आपको विभूषित करते हुए हम अमरत्व-प्राप्ति के लिए प्रेरक स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । आप हम मनुष्यों और देवों के अग्रगामी हों ॥२॥

२७७०. **इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।**
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥३॥



प्रसिद्ध नीतिज्ञ इन्द्रदेव ने वृत्रासुर को रोका । कार्यकुशल इन्द्रदेव ने शत्रुवध की इच्छा करके मायावी असुरों को मारा । उन्होंने वन में छिपे स्कन्धविहीन असुर को नष्ट करके अन्धकार में छिपायी गयी गौओं (किरणों) को प्रकट किया ॥३ ॥

२७७१. इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४ ॥

स्वर्ग-सुख-प्रेरक इन्द्रदेव ने दिनों को उत्पन्न करके युद्धाभिलाषी मरुतों के साथ शत्रु सेना का पराभव कर उन्हें जीता । तदनन्तर मनुष्यों के लिए दिनों के प्रज्ञापक (बोधक) सूर्यदेव को प्रकाशित किया । उन्होंने महान् युद्धों में विजय प्राप्ति के निमित्त दिव्य ज्योति (तेजस्विता) को प्राप्त किया ॥४ ॥

२७७२. इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५ ॥

विपुल सामर्थ्यों को धारण करके नेतृत्व-कर्त्ता की भाँति इन्द्रदेव ने अवरोधक शत्रु-सेना के मध्य प्रविष्ट होकर उसे छिन्न-भिन्न किया । उन्होंने स्तुतिकर्त्ताओं के लिए उषा को चैतन्य किया और उनके शुभ्र वर्ण की दीप्ति को वर्द्धित किया ॥५ ॥

२७७३. महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६ ॥

स्तोतागण महान् पराक्रमी इन्द्रदेव के श्रेष्ठ कर्मों का गुणगान करते हैं । वे इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्यों से शत्रुओं के पराभव-कर्त्ता हैं । उन्होंने अपने बल से युक्त माया द्वारा बलवान् दस्युओं को पूरी तरह से नष्ट किया ॥६ ॥

२७७४. युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७ ॥

देव वृत्तियों के संगठक, अधिपति और मनुष्यों को शक्ति प्रदान करके उनकी इच्छापूर्ति करने वाले इन्द्रदेव ने अपनी महत्ता से युद्धों में शत्रुओं को परास्त किया । उनका धन प्राप्त करके स्तोताओं को प्रदान किया । बुद्धिमान् स्तोतागण यजमान के घर में इन्द्रदेव के उन श्रेष्ठ कर्मों की चर्चा एवं प्रशंसा करते हैं ॥७ ॥

२७७५. सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८ ॥

स्तोताजन शत्रु-विजेता, वरणीय, बल-प्रदाता, स्वर्ग-सुख और दीप्तिमान् जल के अधिपति इन्द्रदेव की उत्तम स्तुतियों से वन्दना करते हैं, उन्होंने इस द्युलोक और पृथ्वी लोक को अपने ऐश्वर्यों के बल पर धारण किया ॥८ ॥

२७७६. ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥९ ॥

इन्द्रदेव ने अत्यों (लाँघ जाने वाले- अश्वों) का दान किया । सूर्य एवं पर्याप्त भोजन प्रदान करनेवाली गौओं (किरणों) का दान किया । स्वर्णिम अलंकारों एवं भोग्य पदार्थों का दान किया । दस्युओं (दुष्टों) को मारकर आर्यों (सज्जनों) की रक्षा की ॥९ ॥

२७७७. इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥१० ॥

इन्द्रदेव ने प्राणियों के कल्याण के लिए ओषधियाँ प्रदान की हैं, दिन (प्रकाश) का अनुदान दिया है। वनस्पतियों और अन्तरिक्ष को प्रदान किया है। उन्होंने वलासुर का विभेदन किया, प्रतिवादियों को दूर किया और युद्ध के अभिमुख हुए शत्रुओं का दमन किया है ॥१०॥

२७७८. **शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।**
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। वे इन्द्रदेव पवित्र-कर्त्ता, मनुष्यों के नियन्ता, स्तुतियों को श्रवण करने वाले, उग्र, युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले, धन-विजेता और ऐश्वर्यवान् हैं ॥११॥

[सूक्त - ३५]

[**ऋषि**- विश्वामित्र गाथिन। **देवता**- इन्द्र। **छन्द**- त्रिष्टुप्।]

२७७९. **तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ।**
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! हरि नामक अश्व जिस रथ में नियोजित होते हैं; नियुत नामक अश्वों वाले वायु के समान आप उस रथ में बैठकर हमारी ओर आयें। हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न रूपी सोमरस का पान करें। हम आपके मन को प्रमुदित करने के लिए स्वाहा सहित सोमरस प्रदान करते हैं ॥१॥

२७८०. **उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि।**
द्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥२॥

अनेक-जनों द्वारा जिनका आवाहन किया जाता है, ऐसे इन्द्रदेव के शीघ्रतापूर्वक आगमन के लिए वेगवान् दो अश्वों को रथ के अग्रभाग से संयोजित करते हैं। वे अश्व इन्द्रदेव को सब ओर से इस सर्वसाधन-सम्पन्न देवयज्ञ में अविलम्ब ले आयें ॥२॥

२७८१. **उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः।**
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥३॥

हे इष्टवर्षक और अन्नवान् इन्द्रदेव ! आप बलवान् और शत्रुओं से रक्षा करने वाले अश्वों को समीप ले आयें तथा इस यजमान की रक्षा करें। अपने रक्त-वर्ण अश्वों को यहाँ विमुक्त करें; ताकि वे आहार ग्रहण कर सकें। आप प्रतिदिन उत्तम हविष्यान्न ग्रहण करें ॥३॥

२७८२. **ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।**
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! मन्त्रों से नियोजित होने वाले, युद्धों में कीर्ति सम्पन्न, मित्र-भाव सम्पन्न हरि नामक दोनों अश्वों को हम मन्त्रों से योजित करते हैं। हे इन्द्रदेव ! सुदृढ़ और सुखकारी रथ में अधिष्ठित होकर आप सोमयाग के समीप आयें। आप सब यज्ञों को जानने वाले विद्वान् हैं ॥४॥

२७८३. **मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये।**
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५॥



हे इन्द्रदेव ! आपके बलवान् और सुन्दर पृष्ठभाग वाले हरि नामक अश्वों को अन्य यजमान संतुष्ट करें । हम अभिषुत सोमरस द्वारा आपको भलीप्रकार तृप्त करते हैं । आप अनेक यजमानों को छोड़कर हमारे पास आयें ॥५ ॥

२७८४. **तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।**
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस आपके निमित्त है । आप हमारी ओर अभिमुख हों तथा प्रफुल्लित मन से इस सोम का पान करें । हमारे इस यज्ञ में कुशों पर बैठकर इस सोम को अपने उदर में धारण करें ॥६ ॥

२७८५. **स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।**
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके निमित्त कुश का आसन बिछाया गया और सोमरस निचोड़ कर तैयार किया गया है । आपके दोनों अश्वों के खाने के लिए धान्य तैयार है । यह यज्ञ आपका निवास स्थान है । आप बहुत सामर्थ्यवान्, इष्टवर्षक और मरुतों की सेना से युक्त हैं । आपके निमित्त ये हवियाँ दी गई हैं ॥ ७ ॥

२७८६. **इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।**
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या३ अनु स्वाः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके निमित्त ऋत्विग्गणों ने पाषाण से निष्पन्न, जलसंयुक्त सोमरस तैयार किया है । दुग्ध-मिश्रित करके उसे अतिशय मधुर बनाया है । हे सर्व-द्रष्टा और विद्वान् इन्द्रदेव ! आप हमारी स्तुतियों को जानते हुए उत्तम मन से इसका पान करें ॥८ ॥

२७८७. **याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन्गणस्ते ।**
तेभिरेतं सजोषा वावशानो३ग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव !जिन मरुतों को आप सोमयाग में सम्मानित करते हैं; जो आपको प्रवर्धित करते हैं; जो आपके सहायक होते हैं , उन सबके साथ सोम की अभिलाषा करते हुए आप अग्नि रूप जिह्वा से इस सोम का पान करें ॥९ ॥

२७८८. **इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।**
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१० ॥

हे यजनीय इन्द्रदेव ! अपने पराक्रम से अभिषुत सोम का पान करें अथवा अग्नि रूप जिह्वा से सोम का पान करें । अध्वर्यु के हाथ से प्रदत्त सोम का पान करें अथवा होता के हव्यादि युक्त यज्ञ का सेवन करें ॥१० ॥

२७८९. **शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।**
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११ ॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण के लिए ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ।वे पवित्र कर्त्ता, मनुष्यों के नियन्ता, स्तुतियों के श्रवणकर्त्ता, उग्र , शत्रुओं का हनन करने वाले तथा धन-सम्पदाओं को जीतने वाले हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ३६]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन , १० घोर आङ्गिरस । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२७९०. **इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।**
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥१ ॥



हे इन्द्रदेव ! सर्वदा संरक्षण-सामर्थ्यों से युक्त रहने वाले आप हमारे द्वारा की गई उत्तम स्तुतियों को सुनें तथा हविष्यान्न के रूप में समर्पित सोम को ग्रहण करें । आप महान् कर्मों से प्रसिद्ध हुए हैं । आप प्रत्येक सोम-सवन में पुष्टिकारक हव्यादि द्वारा प्रवर्धित होते हैं ॥१ ॥

२७९१. इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥२ ॥

हम द्युलोक से इन्द्रदेव के लिए सोम प्राप्त करते हैं; जिसे पीकर इन्द्रदेव बलवान् , सुदृढ़, महान् और दीप्तिमान् होते हैं । हे इन्द्रदेव ! शत्रुओं को भयभीत करने वाले आप बल प्रदायक और पाषाणों द्वारा भलीप्रकार अभिषुत इस सोम का पान करें ॥२ ॥

२७९२. पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोम-पान करके वर्द्धित हों । आपके निमित्त ये प्राचीन और नवीन सोम अभिषुत हुए हैं । हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! जैसे आपने पूर्वकाल में सोमपान किया, वैसे ही आज इस नवीन सोम का पान करें ॥३ ॥

२७९३. महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्युग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥४ ॥

ये महान् इन्द्रदेव, शत्रुओं को परास्त करने वाले और अतिशय बलवान् हैं ।इनका उग्र बल और ओज सर्वत्र विस्तृत होता है ।जब वे सोम पीकर तृप्त होते हैं, तब पृथ्वी और द्युलोक भी उन्हें सँभालने में समर्थ नहीं होते ॥४ ॥

२७९४. महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५ ॥

ये महान् बल और पराक्रमशाली इन्द्रदेव शौर्य युक्त श्रेष्ठ कार्यों के लिए प्रसिद्ध हुए हैं । अभीष्ट प्रदान करने वाले और ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव की उत्तम स्तुतियों से प्रार्थना करते हैं । इनकी दिव्य रश्मियाँ पोषण प्रदान करने वाली हैं, इनके दान आदि कर्म भी बहुत प्रसिद्ध हैं ॥५ ॥

२७९५. प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥६ ॥

जिस प्रकार समस्त नदियाँ कामनापूर्वक सुदूर समुद्र में जाकर मिलती हैं, उनका जल रथ के समान समुद्र की ओर गमन करता है । उसी प्रकार दुग्ध-मिश्रित अल्प सोमरस महान् इन्द्रदेव को परिपूर्ण करता है, जिससे तृप्त होकर इन्द्रदेव स्वर्ग से भी अधिक श्रेष्ठ और महान् हो जाते हैं ॥६ ॥

२७९६. समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७ ॥

समुद्र से मिलने की अभिलाषा वाली नदियाँ जैसे समुद्र को परिपूर्ण करती हैं, वैसे ही अध्वर्युगण पाषाणयुक्त हाथों से इन्द्रदेव के लिए अभिषुत करके सोम तैयार करते हैं । अपनी भुजाओं से वे सोमलता का दोहन करते हैं और छन्ने द्वारा एक धारा से सोम छानते हैं ॥७ ॥

२७९७. ह्रदाइव कुक्षयः सोमधानाः समीं विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥८ ॥



इन्द्रदेव का उदर सरोवर की भाँति विस्तार वाला है ।इन्हें अनेकों सोम-सवन पूर्ण करते हैं ।इन्द्रदेव ने सर्वप्रथम सोम रस रूप हविष्यान्न का भक्षण किया, तदनन्तर वृत्र को मारकरअन्य देवों के लिए सोम ग्रहण किया ॥८ ॥

२७९८. आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमें शीघ्र ही अपार धन-वैभव प्रदान करें । आपको धन-दान से कौन रोक सकता है ? आपको हम श्रेष्ठ धनाधिपति के रूप में जानते हैं । हे हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी इन्द्रदेव ! आपके पास जो भी हमारे लिए उपयोगी धन हो; वह हमें प्रदान करें ॥९ ॥

२७९९. अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥१० ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप उदारचेता हैं । आप सबके द्वारा वरणीय प्रभूत धन-ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । हे उत्तम शिरस्त्राण वाले इन्द्रदेव ! हमें जीने के लिए सौ वर्ष की आयु प्रदान करें तथा बहुत से वीर पुत्र प्रदान करें ॥१० ॥

२८००. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११ ॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । वे इन्द्रदेव, पवित्रता प्रदान करने वाले, मनुष्यों के नियन्ता, हमारी स्तुतियों को सुनने वाले, उग्र , युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले और धनों के विजेता हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ३७]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - गायत्री; ११ अनुष्टुप् ।]

२८०१. वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्र नामक असुर का हनन करने के लिए तथा शत्रु सेना को पराजित करने की शक्ति-प्राप्ति के लिए हम आपसे निवेदन करते हैं ॥१ ॥

२८०२. अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२ ॥

सैकड़ों अश्वमेधादिक यज्ञ सम्पन्न करने वाले हे इन्द्रदेव ! स्तोतागण स्तुति करते हुए आपकी प्रसन्नता, अनुग्रह और कृपा-दृष्टि को हमारी ओर प्रेरित करें ॥२ ॥

२८०३. नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३ ॥

अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने वाले हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! युद्ध में हम सम्पूर्ण स्तुति-सूक्तों द्वारा आपके यश एवं वैभव का बखान करते हैं ॥३ ॥

२८०४. पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४ ॥

बहुतों द्वारा स्तुत्य, महान् तेजस्वी, मनुष्यों को धारण करने वाले इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥४ ॥

२८०५. इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥५ ॥

बहुतों द्वारा जिनका आवाहन किया जाता है, उन वृत्र-हन्ता इन्द्रदेव को हम भरण-पोषण के लिए बुलाते हैं ॥५ ॥



२८०६. वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो। इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥६ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आप युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं। वृत्र का हनन करने के लिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं ॥६ ॥

२८०७. द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च। इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७ ॥

हमारे अभिमानी शत्रुओं का विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! युद्धों में तेजस्वी धन-प्राप्ति के लिए आप सभी बलवान् शत्रुओं को पराजित करें ॥७ ॥

२८०८. शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥८ ॥

हे शतकर्मा - इन्द्रदेव ! हम याजकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए आप अत्यन्त बल-प्रदायक, दीप्तिमान्, चेतनता लाने वाले सोमरस का पान करें ॥८ ॥

२८०९. इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे ॥९ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! पाँच जनों (समाज के पाँचों वर्गों) में जो इन्द्रियाँ (विशेष सामर्थ्य) हैं, उन्हें आपकी शक्तियों के रूप में हम वरण करते हैं ॥९ ॥

२८१०. अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! यह महान् हविष्यान्न आपके पास जाये। आप शत्रुओं के लिए दुर्लभ तेजस्वी सोमरस ग्रहण करें। हम आपके बल को प्रवृद्ध करते हैं ॥१० ॥

२८११. अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः। उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आगहि ॥११ ॥

हे वज्रधारक इन्द्रदेव ! आप समीपस्थ प्रदेश से हमारे पास आएँ। दूरस्थ देश से भी आएँ। आपका जो उत्कृष्ट लोक है, उस लोक से भी आप यहाँ आएँ (अर्थात् प्रत्येक स्थिति में आप हम पर अनुग्रह करें) ॥११ ॥

[सूक्त - ३८]

[**ऋषि-** प्रजापति वैश्वामित्र अथवा विश्वामित्र गाथिन। **देवता-** इन्द्र। **छन्द-** त्रिष्टुप्।]

२८१२. अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवींरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः ॥१ ॥

हे स्तोता ! त्वष्टा (काष्ठ के शिल्पी) की तरह आप इन्द्रदेव के लिए उत्तम स्तोत्रों का निर्माण करें। श्रेष्ठ धुरी में योजित वेगवान् अश्व की भाँति कर्म में प्रवृत्त होकर और इन्द्रदेव के निमित्त प्रियकारी स्तुतियाँ करते हुए हम उत्तम मेधावान् कवियों (द्रष्टाओं) के दर्शन की इच्छा करते हैं ॥१ ॥

२८१३. इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम्।
इमा उ ते प्रण्यो३ वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! इन कवियों के जन्म के सम्बन्ध में उन आचार्य गणों से पूछें; जिन्होंने मनोबल को धारण करके अपने पुण्य-कर्मों से स्वर्ग का निर्माण किया था। इस यज्ञ में आपके मन को आनन्द प्रदान करने वाली आपके ही निमित्त प्रणीत स्तुतियाँ आपके पास जाती हैं ॥२ ॥

२८१४. नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन्।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥३ ॥



कवियों ने गूढ़ कर्मों को सम्पादित करते हुए द्यावा-पृथिवी को बल-प्राप्ति के लिए परस्पर संगत किया और उन्हें मात्राओं से परिमित किया। परस्पर संगत, विस्तीर्ण और महती द्यावा-पृथिवी को नियंत्रित किया। उन दोनों के बीच में धारण करने के लिए उन्होंने अन्तरिक्ष को स्थापित किया ॥३ ॥

२८१५. आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४ ॥

समस्त कवियों ने रथ में अधिष्ठित इन्द्रदेव को महिमामंडित किया। वे इन्द्रदेव अपनी दीप्ति से दीप्तिमान् होकर शोभायमान होते हुए विचरण करते हैं। सबके जीवन में प्राण संचार करने वाले, उनके श्रेष्ठ संकल्पों को पूर्ण करने वाले इन्द्रदेव की कीर्ति महान् है। सम्पूर्ण रूपों से युक्त होकर वे अमृत तत्वों पर स्थित होते हैं ॥४ ॥

२८१६. असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥५ ॥

मनोवांछित फल प्रदान करने वाले, पुरातन और श्रेष्ठ देव इन्द्र ने जल-वृष्टि की। इस विपुल जल राशि ने पिपासा को दूर किया। द्युलोक के धारक दीप्तिमान् वरुण और इन्द्रदेव, तेजस्वी याजकों की स्तुतियों को सुनकर उनके लिए धनों को धारण करते हैं ॥५ ॥

२८१७. त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ॥६ ॥

हे इन्द्रावरुण ! आप इस यज्ञ में सम्पूर्ण और व्यापक तीनों सवनों को अलंकृत करें। हे इन्द्रदेव ! आप यज्ञ में गये थे; क्योंकि हमने इस यज्ञ में वायु से स्पन्दित केश युक्त अश्वों को देखा है ॥६ ॥

२८१८. तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं१ वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥७ ॥

इस वृषभ (बलशाली इन्द्र) की धेनु (वत्स को धारण करने वाली) तथा गौ (पोषण करने वाली सामर्थ्यों के सार तत्त्व) को जिन प्रतिभावानों ने दुहा; उन्होंने नई-नई शक्तियों के रूप में इस (इन्द्र) को पाया ॥७ ॥

[विभिन्न पदार्थों को उनके स्वरूप में बाँधे रखने वाली सत्ता-इन्द्र में धारण और पोषण करने की सामर्थ्य है। इनके मर्म को समझ कर उन्हें प्रकट करने के कौशल से नए-नए शक्ति स्रोतों (नान कन्वेशनल सोर्सेज आफ एनर्जी) को प्राप्त करने का संकेत इस ऋचा में परिलक्षित होता है।]

२८१९. तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८ ॥

इन सूर्यदेव की स्वर्णमयी दीप्ति को कोई नष्ट नहीं कर सकता। इस दीप्ति के आश्रय को जो स्वीकार करता है; वह उत्तम स्तुतियों द्वारा प्रशंसित होता है। जैसे माता अपनी सन्तानों का वरण करती है, वैसे ही वह देव सर्वदात्री द्यावा-पृथिवी द्वारा वरण किया जाता है ॥८ ॥

२८२०. युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेव ! आप पुरातन स्तोताओं का हर प्रकार से कल्याण करते हैं, उनके निमित्त स्वर्गोपम श्रेय सम्पादित करते हैं। आप हमें सब ओर से संरक्षित करें। समस्त मायावी शक्तियों में दक्ष आप, हमें अपने आश्रय में रखकर, संरक्षणकारी वचनों का आश्वासन दें- ऐसे आपके विविध कार्यों को हम देखते हैं ॥९ ॥



२८२१. **शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।**
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१० ॥

हम जीवन-संग्राम में संरक्षण की कामना से ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं; क्योंकि वे देव पवित्र करने वाले, श्रेष्ठतम नेतृत्व-कर्त्ता, स्तुतियों को सुनने वाले, उग्र, शत्रुओं का हनन करने वाले एवं धन-विजेता हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ३९]

[**ऋषि**- विश्वामित्र गाथिन । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

२८२२. **इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।**
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥१ ॥

हे सर्व-पालक इन्द्रदेव ! स्तोताओं द्वारा भावनापूर्वक उच्चारित स्तुतियाँ सीधे आपके पास पहुँचती हैं । आप को चैतन्य करने वाली जो स्तुतियाँ यज्ञ में उच्चारित की जाती हैं, जो आपके निमित्त उत्पन्न हैं, उन्हें आप जानें ॥१ ॥

२८२३. **दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।**
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! सूर्य से भी पहले उत्पन्न हुई ये स्तुतियाँ यज्ञ में उच्चरित होकर आपको चैतन्य करती हैं । जो कल्याणकारी और शुभ्र तेजस्विता को धारण करती हैं, वे हमारी स्तुतियाँ पूर्वजों से प्राप्त सनातन धरोहर हैं ॥२ ॥

२८२४. **यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।**
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥३ ॥

अश्विनीकुमारों को उत्पन्न करने वाली उषा ने उन्हें इस समय उत्पन्न किया है । उनकी प्रशंसा करने को उत्कंठित जिह्वा का अग्रभाग चंचल हो उठा है । दिन के प्रारंभ में तमोनाशक अश्विनीकुमारों का यह जोड़ा जन्म के साथ ही स्तोत्रों से संयुक्त होता है ॥३ ॥

२८२५. **नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।**
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४ ॥

असुरों से युद्ध करने में कुशल हमारे पितरों की निन्दा करने वाला हममें से कोई नहीं है । महिमावान् और उत्तम कर्मवान् इन्द्रदेव इन्हें और इनके गोत्रों को सुदृढ़ स्वर्ग लोक में स्थापित करते हैं ॥४ ॥

२८२६. **सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।**
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५ ॥

नौ अश्वों (शक्ति धाराओं) से युक्त बलवान् मित्ररूप अंगिराओं के साथ इन्द्रदेव जब गौओं की खोज में निकले, तब गहन अन्धकार में छिपे हुए प्रकाशपुंज सूर्य को प्राप्त किया ॥५ ॥

२८२७. **इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।**
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥६ ॥

इन्द्रदेव ने दुग्ध प्रदात्री गौओं से मधुर दुग्ध को प्राप्त किया । अनन्तर चरण वाले पक्षी और खुरों वाले पशुओं से युक्त अपार धन प्राप्त किया । दानी इन्द्रदेव ने गुहास्थित तथा अन्तरिक्ष के जलों में स्थित गुह्य धनों को दाहिने हाथ में धारण किया ॥६ ॥



२८२८. **ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके।**
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७॥

विशिष्ट ज्ञान से सम्पन्न इन्द्रदेव ने गहन तमिस्रा में ज्योति को प्रकट किया । हम सब पापों से दूर होकर भय रहित स्थान में रहें । हे सोम पीने वाले तथा सोम से वृद्धि पाने वाले इन्द्रदेव ! श्रेष्ठतम स्तुतिकर्त्ता की इन स्तुतियों को ग्रहण करें ॥७॥

२८२९. **ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः।**
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥८॥

(सृष्टि का संतुलन बनाये रखने वाले) यज्ञ के लिए सूर्यदेव द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करें । हम विविध पापों से दूर रहें । हे दुःखतारक वसुदेवो ! आप हम यजनकर्त्ता मनुष्यों को विपुल धन राशि से पूर्ण करें ॥८॥

२८३०. **शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।**
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥९॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं, क्योंकि वे पवित्रकर्त्ता, श्रेष्ठ नेतृत्वकर्त्ता, हमारी स्तुतियों को कृपापूर्वक सुनने वाले, उग्र, युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले और धनों के विजेता हैं ॥९॥

[सूक्त - ४०]

[**ऋषि-** विश्वामित्र गाथिन । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

२८३१. **इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥**

साधकों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले हे इन्द्रदेव ! अभिषुत सोम का पान करने के निमित्त हम आपका आवाहन करते हैं । आप अत्यन्त मधुर हविष्यान्न युक्त सोम का पान करें ॥१॥

२८३२. **इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥**

हे हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी और बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्रदेव ! आप अभीष्टवर्षक हैं । यह अभिषुत सोम आपको तृप्त करने के लिए इस यज्ञ में विधिवत् तैयार किया गया है । आप इसका पान करें ॥२॥

२८३३. **इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः। तिर स्तवान विश्पते ॥३॥**

हे स्तुत्य और प्रजापालक इन्द्रदेव ! आप सम्पूर्ण पूजनीय देवों के साथ हमारे इस हव्यादि द्रव्यों से पूर्ण यज्ञ को संवर्द्धित करें ॥३॥

२८३४. **इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते। क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥**

हे सत्यव्रतियों के अधिपति इन्द्रदेव ! ये दीप्तियुक्त, आह्लादक और अभिषुत सोमरस आपके स्थान की ओर उन्मुख है (अर्थात् आपको समर्पित है), इसे ग्रहण करें ॥४॥

२८३५. **दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्। तव द्युक्षास इन्दवः ॥५॥**

हे इन्द्रदेव ! यह अभिषुत सोम आपके द्वारा वरण करने योग्य है; क्योंकि यह दीप्तिमान् और आपके पास स्वर्ग में रहने योग्य है । आप इसे अपने उदर में धारण करें ॥५॥

२८३६. **गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे। इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥६॥**



हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा शोधित सोमरस का आप पान करें, क्योंकि इस आनन्ददायी सोमरस की धाराओं से आप सिंचित होते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से ही हमें यश मिलता है ॥६ ॥

२८३७. **अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७ ॥**

देवपूजक यजमान के द्वारा समर्पित दीप्तिमान् और अक्षय सोमादियुक्त हवियाँ इन्द्रदेव की ओर जाती हैं । इस सोम को पीकर इन्द्रदेव विकसित होते हैं ॥७ ॥

२८३८. **अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८ ॥**

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप समीपस्थ स्थान से हमारे पास आयें । दूरस्थ स्थान से भी हमारे पास आयें । हमारे द्वारा समर्पित इन स्तुतियों को ग्रहण करें ॥८ ॥

२८३९. **यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आप दूरस्थ देश से, समीपस्थ देश से तथा मध्य के प्रदेशों से बुलाये जाते हैं, उन स्थानों से आप हमारे यज्ञ में आयें ॥९ ॥

[सूक्त - ४१]

[**ऋषि-** विश्वामित्र गाथिन । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

२८४०. **आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१ ॥**

हे इन्द्रदेव !सोमपान के लिए हम आपका आवाहन करते हैं, हमारे निकट हरिसंज्ञक अश्वों के साथ आयें ॥१॥

२८४१. **सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन्प्रातरद्रयः ॥२ ॥**

हमारे यज्ञ में ऋतु के अनुसार यज्ञकर्त्ता होता बैठे हैं । उन्होंने कुश के आसन बिछाये हैं और सोम-अभिषव के लिए पाषाण खण्ड को संयुक्त किया है । हे इन्द्रदेव ! आप सोमपान के निमित्त आयें ॥२ ॥

२८४२. **इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥३ ॥**

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! स्तोतागण इन स्तुतियों को सम्पादित करते हैं । अतएव आप इस आसन पर बैठें और पुरोडाश का सेवन करें ॥३ ॥

२८४३. **रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४ ॥**

हे स्तुति-योग्य, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप यज्ञ में तीनों सवनों में किये गये स्तोत्रों और मंत्रों में रमण करें ॥४ ॥

२८४४. **मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५ ॥**

हमारी ये स्तुतियाँ महान् सोमपायी और बलों के अधिपति इन्द्रदेव को उसी प्रकार प्राप्त होती हैं, जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों को प्राप्त होती हैं ॥५ ॥

२८४५. **स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६ ॥**

हे इन्द्रदेव ! विपुल धनराशि दान देने के लिए आप सोम युक्त हविष्यान्न से अपने शरीर को प्रसन्न करें । हम स्तोताओं को निन्दित न होने दें ॥६ ॥

२८४६. **वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७ ॥**

हे सबके आश्रय प्रदाता इन्द्रदेव ! आपकी अभिलाषा करते हुए हम हवियों से युक्त होकर आपकी स्तुति करते हैं । आप हमारी रक्षा करें ॥७ ॥



२८४७. मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८ ॥

हे हरि संज्ञक अश्वों के प्रिय स्वामी इन्द्रदेव ! आप अपने घोड़ों को हमसे दूर जाकर न खोलें । हमारे पास आयें । इस यज्ञ में आकर हर्षित हों ॥८ ॥

२८४८. अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! दीप्तिमान् (स्निग्ध) केशवाले अश्व आपको सुखकर रथ द्वारा हमारे निकट ले आयें । आप यहाँ यज्ञस्थल पर कुश के पवित्र आसन पर सुशोभित हों ॥९ ॥

[सूक्त - ४२]

[**ऋषि-** विश्वामित्र गाथिन । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

२८४९. उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! याजकों की अभिलाषा करते हुए आप अश्वों से योजित अपने रथ द्वारा हमारे पास आयें । हमारे द्वारा अभिषुत गोदुग्धादि मिश्रित सोम का पान करें ॥१ ॥

२८५०. तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्वस्य तृप्णवः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पाषाणों से निष्पन्न कुश के आसन पर सुसज्जित तथा हर्ष प्रदायक सोम के निकट आयें । प्रचुर मात्रा में इसका पान करके तृप्त हों ॥२ ॥

२८५१. इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३ ॥

इन्द्रदेव को बुलाने के लिए भेजी गई स्तुतियाँ, उनको सोमपान के लिए इस यज्ञस्थल पर भली-भाँति लायें ॥३ ॥

२८५२. इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४ ॥

हम इन्द्रदेव को सोमपान के लिए यहाँ इस यज्ञ में स्तुति गान करते हुए बुलाते हैं । स्तोत्रों द्वारा वे अनेक बार विभिन्न यज्ञों में आ चुके हैं ॥४ ॥

२८५३. इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥५ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आपके निमित्त सोम प्रस्तुत है ।इसे उदर में धारण करें ।आप अन्न-धन के अधीश्वर हैं ॥५ ॥

२८५४. विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६ ॥

हे क्रान्तदर्शी इन्द्रदेव ! हम आपको शत्रुओं के पराभवकर्त्ता और धनों के विजेता के रूप में जानते हैं; अतएव हम आपसे धन की याचना करते हैं ॥६ ॥

२८५५. इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने बलवान् अश्वों द्वारा आकर हमारे द्वारा अभिषुत गो-दुग्ध तथा जौ मिश्रित सोमरस का पान करें ॥७ ॥

२८५६. तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम यज्ञ स्थल पर आपके निमित्त सोमरस प्रस्तुत करते हैं ।यह सोम आपके हृदय में रमण करे ॥८

२८५७. त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९ ॥

हे पुरातन इन्द्रदेव ! हम कुशिक वंशज आपकी संरक्षणकारी सामर्थ्यों की अभिलाषा करते हैं । सोमपान के लिए यज्ञस्थल पर हम आपका आवाहन करते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - ४३]

[ऋषि- विश्वामित्र गाथिन । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२८५८. आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! रथ में अधिष्ठित होकर आप हमारे पास आयें ।परिष्कृत, दीप्तिमान् सोमरस का पान करने के लिए आप अपने प्रिय घोड़ों को यज्ञ स्थल के निकट विमुक्त करें, क्योंकि ये ऋत्विग्गण आपका आवाहन करते हैं ॥१ ॥

२८५९. आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२ ॥

हे स्वामी इन्द्रदेव !आप अनेक प्रजाजनों को लाँघकर हमारे पास आयें । हमारी प्रार्थना है कि आप अश्वों से हमारे पास आयें । आपकी मित्रता की इच्छा करती हुई स्तोताओं की ये स्तुतियाँ आपका आवाहन कर रही हैं ॥२॥

२८६०. आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३ ॥

हे दीप्तिमान् इन्द्रदेव ! प्रसन्न हृदय से आप हमारे अन्नवर्द्धक यज्ञ के पास अश्वों द्वारा शीघ्र ही आयें । सोम-यज्ञों में घृतयुक्त सोम रूपी हव्य समर्पित करते हुए हम आपका आवाहन करते हैं ॥३ ॥

२८६१. आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! बलवान्, उत्तम, धुरा (या जुआ) से योजित, पुष्ट अंगों वाले मित्र रूप आपके ये अश्व आपको हमारे पास लायें ।हविष्यान्न रूप में सोमरस का सेवन करते हुए आप मैत्री भावपूर्ण स्तोताओं की स्तुतियों का श्रवण करें ॥४ ॥

२८६२. कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥५ ॥

सोमरस की कामना करने वाले ऐश्वर्यवान् हे इन्द्रदेव ! आप हमें लोगों का रक्षक बनायें । हमें प्रजाजनों का स्वामी बनायें । हमें दूरद्रष्टा ऋषि बनायें । हमें अभिषुत सोमपान कर्त्ता बनायें और हमें अक्षय धन प्रदान करें ॥५ ॥

२८६३. आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसम्मृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! रथ में योजित हरि संज्ञक विशालकाय अश्व आपको हमारी ओर ले आयें । हे इष्टवर्षक देव ! (प्रेरित किये गये) इन्द्रदेव के शत्रु नाशक ये अश्व दोनों ओर प्रभाव डालने वाले द्युलोक से आते हैं ॥६ ॥

२८६४. इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार ।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोम अभिलाषी हैं । श्येन पक्षी आपके निमित्त सोम लाया है । पाषाण द्वारा कूटे गये इष्ट प्रदायक सोम का आप पान करें । इसके द्वारा उत्पन्न हर्ष से आप शत्रुओं को दूर करते हैं ॥७ ॥



२८६५. **शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।**
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥८ ॥

हम अपने जीवन - संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं; क्योंकि वे इन्द्रदेव पवित्रकर्त्ता, श्रेष्ठ नेतृत्वकर्त्ता, स्तुति श्रवण-कर्त्ता, उग्र , युद्धों में शत्रुनाशक और धनों के विजेता हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ४४]

[**ऋषि-** विश्वामित्र गाथिन । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** बृहती ।]

२८६६. **अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।**
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! पाषाण द्वारा निष्पादित प्रीतिकर और सेवनीय यह सोम आपके लिए है । आप हरि संज्ञक अश्वों द्वारा ले जाये जाने वाले रथ पर अधिष्ठित होकर हमारे समीप आएँ ॥१ ॥

२८६७. **हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।**
विद्वांश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥२ ॥

हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी हे इन्द्रदेव ! आप सोम की कामना करते हुए उषा और सूर्य को प्रकाशित करते हैं । आप विद्वान् और हमारी अभिलाषाओं के ज्ञाता हैं । आप हमारी समृद्धि और वैभव को बढ़ाएँ ॥२ ॥

२८६८. **द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।**
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥३ ॥

जिसके बीच में सूर्यदेव की हरित किरणें संचरित हैं, उस द्युलोक और रश्मियों को धारण करने से जिस पर हरियाली फैली है, ऐसी भरपूर भोजन सामग्री युक्त पृथ्वी को इन्द्रदेव ने धारण किया ॥३ ॥

[पदार्थों को संगठित रखने वाली शक्ति 'इन्द्र' ने द्युलोक में सूर्य एवं पृथ्वी को धारण किया, इस तथ्य को ऋषियों ने देखा ।

२८६९. **जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।**
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥४ ॥

इष्टवर्षक, इन्द्रदेव उत्पन्न होकर सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते हैं । हरित वर्ण के अश्वों वाले इन्द्रदेव हाथों में दीप्तिमान् वज्र आदि आयुध धारण करते हैं ॥४ ॥

२८७०. **इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।**
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥५ ॥

इन्द्रदेव ने अभिषाला योग्य, शुभ्र , तेज से परिपूर्ण, दीप्तिमान् और पाषाण द्वारा निष्पादित सोम प्राप्त किया । (सोमरस पीकर तृप्त हुए) इन्द्रदेव ने वज्र को धारण कर अश्वों द्वारा गमन कर अपहृत गौओं को विमुक्त किया ॥५ ॥

[सूक्त - ४५]

[**ऋषि-** विश्वामित्र गाथिन । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** बृहती ।]

२८७१. **आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।**
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१ ॥



जैसे यात्री रेगिस्तान को शीघ्र ही (बिना रुके) पार कर जाते हैं, उसी प्रकार हे इन्द्रदेव ! आनन्ददायक मोर पंखों के समान रोम युक्त घोड़ों (सात रंग युक्त सुन्दर किरणों) के साथ मार्ग की रुकावटों को हटाते हुये आप आएँ । जाल फैलाने वाले आपको पथ में रुकावट पैदा न कर सकें ॥१ ॥

[रेगिस्तान में जालों से बचकर चलने का तात्पर्य मृग-मरीचिकाओं से बचने के संदर्भ में भी है ।]

२८७२. **वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।**
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळहा चिदारुजः ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव वृत्रासुर का हनन करने वाले, राक्षसों के बल को विदीर्ण करने वाले, उनके नगरों को ध्वंस करने वाले, जल वृष्टि करने वाले, घोड़ों से सज्जित रथ में विराजमान होकर शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं ॥२ ॥

२८७३. **गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गाइव ।**
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! गम्भीर समुद्र को जल धाराओं से पुष्ट करने के समान आप याज्ञिक को इष्ट फल देकर पुष्ट करते हैं । जिस प्रकार उत्तम गोपालक अपनी गौओं को श्रेष्ठ पौष्टिक आहार देकर पुष्ट करता है, जैसे गौएँ घास खाती हैं, नदियाँ समुद्र में मिलती हैं, उसी प्रकार सोम की धाराएँ आपको पुष्ट करती हैं ॥३ ॥

२८७४. **आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते ।**
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र सम्पारणं वसु ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव जिस प्रकार पिता अपने ज्ञान सम्पन्न पुत्र को धन का भाग देता है, उसी प्रकार आप मुझे शत्रुओं को पराभूत करने वाला ऐश्वर्य प्रदान करें । जिस प्रकार मनुष्य अंकुश (लग्गी) द्वारा पके फल वाले वृक्ष को हिलाकर फल पाता है, उसी प्रकार आप हमें अभीप्सित धन प्रदान करें ॥४ ॥

२८७५. **स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मदिष्टिः स्वयशस्तरः ।**
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप धनवान् हैं । आप स्वर्गोपम तेज से युक्त हैं, सर्व नियन्ता और प्रभूत यश वाले हैं। हे बहुतों द्वारा स्तुत इन्द्रदेव ! आप बल से विकसित होकर हमारे निमित्त विपुल अन्न वाले हों ॥५ ॥

[सूक्त - ४६]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२८७६. **युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।**
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्या३णीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप उत्तम योद्धा, इष्ट-प्रदाता, धनों के स्वामी, शूरवीर, तरुण, स्थायी, प्रतिष्ठावान्, शत्रुओं के पराभवकर्त्ता, वज्रधारी तथा तीनों लोकों में प्रख्यात हैं । आप के वीरोचित कार्य भी महान् हैं ॥१ ॥

२८७७. **महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।**
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥२ ॥

हे महान् उग्र इन्द्रदेव ! आप धनों से परिपूर्ण रहने वाले, अपने पराक्रम से शत्रुओं को पराभूत करने वाले और सम्पूर्ण लोकों के अधीश्वर हैं । आप शत्रुओं का विनाश करें और सत्यव्रती जनों को आश्रय प्रदान करें ॥२ ॥



२८७८. प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥३ ॥

दीप्तिमान् और सब प्रकार से अपराजेय, सोम पीने वाले इन्द्रदेव सम्पूर्ण परिमित पदार्थों से भी महान् हैं । सम्पूर्ण देवों के बल से बड़े हैं ।द्यावापृथिवी से अधिक श्रेष्ठ हैं तथा व्यापक अन्तरिक्ष से भी अधिक उत्कृष्ट हैं ॥३॥

२८७९. उरुं गभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् और गंभीर हैं, जन्म से अत्यन्त वीर हैं और विश्व में व्याप्त होने वाले हैं । आप स्तोताओं के रक्षक हैं । प्रकृष्ट, दीप्तिमान् अभिषुत सोम उसी प्रकार आप को प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार दूर तक गमन करती हुई नदियाँ समुद्र को ॥४ ॥

२८८०. यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार माता अपने गर्भ को धारण करती है, उसी प्रकार द्यावा-पृथिवी आपकी अभिलाषा से सोम को धारण करती हैं । हे इष्टवर्षक इन्द्रदेव ! अध्वर्युगण उस सोम को शुद्ध करके आपके पीने के लिए प्रेरित करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ४७]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२८८१. मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! मरुतों के सहयोग से आप जल की वर्षा करते हैं । हव्यादि युक्त सोम का पान कर हर्ष से प्रमुदित होते हुए आप युद्ध के लिए तत्पर हों । द्युलोक में विद्यमान दिव्य सोम के आप ही स्वामी हैं ॥१ ॥

२८८२. सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सो॰ पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥२ ॥

मरुतों की सहायता से वृत्र का संहार करने वाले, देवताओं के मित्र, वीर, पराक्रमी हे इन्द्रदेव ! याजकों द्वारा समर्पित इस सोमरस का पान करें ।हिंसक प्राणियों तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करके हमारे भय को दूर करें ॥२॥

२८८३. उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥३ ॥

हे ऋतुपालक इन्द्रदेव ! अपने मित्ररूप देवों के साथ और मरुतों के साथ आप हमारे द्वारा अभिषुत सोम का पान करें । जिन मरुतों ने आपकी सहायता की और आपका अनुगमन किया, उन्होंने ही युद्ध में आपकी शक्ति को बढ़ाया; तब आपने वृत्र का हनन किया ॥३ ॥

२८८४. ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥४ ॥

हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! जिन्होंने अहि नामक असुर को मारने, शम्बरासुर के वध

के लिए आपको आगे बढ़ाया; जिन मेधावी मरुद्गणों ने गौ-प्राप्ति के युद्ध में आपको प्रमुदित किया; उन सभी के साथ आप सोम पान करें ॥४ ॥

२८८५. **मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।**
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥५ ॥

मरुद्गणों की सहायता से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले, दिव्यगुण-सम्पन्न, श्रेष्ठ शासक, वीर, पराक्रमी तथा शत्रुओं का विनाश करने वाले इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं । वे हमें हर प्रकार से संरक्षण प्रदान करें ॥५॥

[सूक्त - ४८]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२८८६. **सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।**
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥१ ॥

ये इन्द्रदेव उत्पन्न होते ही जल बरसाने वाले और रमणीय बन गये ।इन्होंने हविष्यान्न युक्त सोम-प्रदाताओं का रक्षण किया ।हे देव !सोमपान की अभिलाषा करने पर पहले आप दुग्ध मिश्रित सोमरस का पान करते हैं ॥१॥

२८८७. **यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।**
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस दिन आप प्रकट हुए थे, उसी दिन तृषित होने पर आपने पर्वतस्थ सोमलता के रस का पान किया था । आपकी तरुणी माता अदिति ने आपके महान् पिता के गृह में स्तनपान कराने से पूर्व आपके मुख में इसी सोमरस का सिंचन किया था ॥२ ॥

२८८८. **उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।**
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥३ ॥

उन इन्द्रदेव ने माता की गोद में जाकर पोषक आहार की याचना की । तब उन्होंने माता के स्तनों में दुग्ध रूपी दीप्तिमान् सोम को देखा । वृद्धि को प्राप्त करके वे अन्यान्य शत्रुओं को उनके स्थान से हटाने लगे । तदनन्तर विविध रूपों को धारण करके इन्द्रदेव ने महान् पराक्रम प्रदर्शित किया ॥३ ॥

२८८९. **उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः ।**
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥४ ॥

ये इन्द्रदेव शत्रुओं के लिए उग्ररूप, उन्हें शीघ्रता से पराजित करने वाले और विविध बलों को धारण करने वाले हैं । उन्होंने इच्छा के अनुरूप शरीर को बनाया । उन्होंने अपनी सामर्थ्य से त्वष्टा नामक असुर का पराभव किया और पात्रों में रखा सोम चुपचाप पी लिया ॥४ ॥

२८९०. **शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।**
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५ ॥

हम इस जीवन-संग्राम में अपने संरक्षण के लिए ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं; क्योंकि वे देव पवित्रता प्रदान करने वाले, देवमानवों का नेतृत्व करने वाले, उग्र, स्तुतियों को ध्यानपूर्वक सुनने वाले, युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले और धनों को जीतने वाले हैं ॥५ ॥



[सूक्त - ४९]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२८९१. शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! सोमपान करने वाले जिन इन्द्रदेव के पास समस्त प्रजाजन कामना पूर्ति के लिए जाते हैं; समस्त देवगण और द्यावा-पृथिवी भी जिन उत्तम कर्मा, रूपवान् और वृत्रों (पापों) के हन्ता इन्द्रदेव को प्रसन्न करते हैं; आप सभी उन्हीं महान् देव की स्तुति करें ॥१ ॥

२८९२. यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥२ ॥

युद्धों में अपने तेज से दीप्तिमान् मनुष्यों के नियन्ता, हरि संज्ञक अश्वों से योजित रथ में अधिष्ठित इन्द्रदेव से कोई भी कुटिल पार नहीं पा सकता । वे इन्द्रदेव सेनाओं के उत्तम स्वामी हैं । वे अपनी सत्यरूप सामर्थ्य से शत्रुओं को क्षत-विक्षत कर देते हैं ॥२ ॥

२८९३. सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥३ ॥

संग्राम में इन्द्रदेव अश्वों की तरह देवताओं के शत्रुओं का अतिक्रमण करते हैं । वे अपनी सामर्थ्य से द्यावा-पृथिवी को व्याप्त करने वाले और भगदेव के समान अत्यन्त ऐश्वर्यवान् होने से आवाहन करने योग्य हैं । वे अन्नों के धारक होने से उत्तम आवाहन योग्य हैं । वे स्तुतिकर्त्ताओं के पिता के समान पालन करने वाले हैं ॥३ ॥

२८९४. धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४ ॥

वे इन्द्रदेव द्युलोक और अन्तरिक्ष के धारक हैं । वे रथ के सदृश ऊर्ध्व गमनशील हैं । वे धनों और अश्वों से युक्त हैं । वे रात्रि के आच्छादनकारी हैं और सूर्य के उत्पत्तिकर्त्ता हैं । वे याजकों की स्तुति एवं कर्मफल के अनुसार अन्नों का विभाग करने वाले हैं ॥४ ॥

२८९५. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५ ॥

हम अन्न-प्राप्ति के अपने इस जीवन-संग्राम में ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । वे इन्द्रदेव पवित्रता प्रदान करने वाले, मनुष्यों के नेतृत्वकर्त्ता और हमारी स्तुति को ध्यानपूर्वक सुनने वाले हैं । वे उग्र, वीर, युद्धों में शत्रुओं का हनन करने वाले और धनों के विजेता हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ५०]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२८९६. इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः१ काममृध्याः ॥१ ॥

जिनके लिए यह सोम है, वे इन्द्रदेव यज्ञ में भली प्रकार आहुति दिये गये सोम का पान करें । वे शत्रुओं को



नष्ट करने वाले तथा मरुतों के साथ जल की वर्षा करने वाले हैं । अत्यन्त व्यापक यश-सम्पन्न इन्द्रदेव हमारे यज्ञ में आकर हविरूप अन्नों से तृप्त हों और हमारी हवियाँ उनके शरीर को प्रवृद्ध करें ॥१ ॥

२८९७. **आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः ।**
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके इस यज्ञ में शीघ्र आने के लिए उत्तम परिचर्या करने वाले अश्वों को रथ से योजित करते हैं, जिनसे आप हमारे संरक्षण के लिए आएँ । वे अश्व आपको हमारे यज्ञ के लिए धारण करें । उत्तम शिरस्त्राण धारक हे इन्द्रदेव ! आप भलीप्रकार इस अभिषुत सोम का पान करें ॥२ ॥

२८९८. **गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।**
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥३ ॥

स्तोताओं की समस्त कामनाओं को पूर्ण कर उनके दुःखों का निवारण करने वाले इन्द्रदेव के लिए गो दुग्धादि मिश्रित सोमरस समर्पित करते हैं । वे हमें श्रेष्ठतम पोषण प्रदान करें । हे सोमपायी इन्द्रदेव ! हर्ष से उल्लसित होकर आप सोम का पान करें और हमारे लिए विविध भाँति की गौओं (पोषक-शक्तियों) को प्रेरित करें ॥३ ॥

२८९९. **इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।**
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव !गौ, अश्व और धन-ऐश्वर्य प्रदान करके आप हमारी कामनाओं को पूर्ण करें एवं प्रसिद्धि प्रदान करें ।स्वर्गादि सुख की अभिलाषा से मेधावी कुशिक वंशजों ने विचारपूर्वक आपके लिए स्तोत्रों की रचना की है ॥४ ॥

२९००. **शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।**
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५ ॥

हम अन्न प्राप्ति के लिए किये जाने वाले अपने इस संग्राम में ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव को संरक्षण प्राप्ति के लिए बुलाते हैं । वे इन्द्रदेव पवित्रता प्रदान करने वाले, मनुष्यों के नियामक और हमारी स्तुति को सुनने वाले हैं । वे उग्र, वीर, युद्धों में शत्रुओं का वध करने वाले और धनों के विजेता हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ५१]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ; १-३ जगती ; १०-१२ गायत्री ।]

२९०१. **चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।**
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥१ ॥

सभी मानवों के पोषक, ऐश्वर्यशाली, ख्यातियुक्त, वर्धमान, अमर तथा अनेकों स्तोत्रों से प्रतिदिन प्रशंसित होने वाले इन्द्रदेव की हम अनेक प्रकार से स्तुति करते हैं ॥१ ॥

२९०२. **शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।**
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव शत (सैकड़ों) यज्ञ सम्पादक, जल से युक्त, सामर्थ्यवान् मरुतों के नियामक, अन्न प्रदाता, शत्रु-पुरों के भेदक, शीघ्र गमन करने वाले, जल के प्रेरक, तेजस्विता सम्पन्न शत्रुओं के पराभवकर्ता और स्वर्गीय सुख-प्रदाता हैं । उन इन्द्रदेव को हमारी स्तुतियाँ सब ओर से प्राप्त होती हैं ॥२ ॥



२९०३. **आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति।**
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥३॥

धन-प्राप्ति के संग्राम में वे इन्द्रदेव स्तोताओं द्वारा प्रशंसित होते हैं । वे इन्द्रदेव निष्पाप स्तुतियों को स्वीकार करते हैं । वे यज्ञादि कर्म करने वालों के घर सोम युक्त हव्यादि सेवन कर अतिशय प्रसन्न होते हैं । हे स्तोताओ ! आप मरुतों के साथ शत्रुओं के पराभवकर्त्ता, अभिमानियों के संहारक इन्द्रदेव की स्तुति करें ॥३॥

२९०४. **नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः।**
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप मनुष्यों के नियामक और वीर हैं । असुरों द्वारा संतप्त ऋत्विग्गण स्तुतियों और मंत्रों द्वारा आपकी अर्चना करते हैं । विविध पराक्रमों से सम्पन्न आप बल के लिए युद्ध में गमन करते हैं । आप आकाशीय सोम के एकमात्र स्वामी हैं । आपको नमस्कार है ॥४॥

२९०५. **पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति।**
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥५॥

अनेक मनुष्यों को इन्द्रदेव का अनुग्रह प्राप्त होता है । सर्व नियामक इन्द्रदेव के लिए पृथ्वी विविध धनों को धारण करती है । इन्द्रदेव की अनुज्ञा से ही सूर्यदेव सम्पूर्ण ओषधियों, जल , मनुष्यों और वनों की रक्षा करते हैं ॥५॥

२९०६. **तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व।**
बोध्या३पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥६॥

हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी हे इन्द्रदेव ! आपके लिए मन्त्रों और स्तोत्रों को सम्पूर्ण ऋत्विग्गण धारण करते हैं । हे मित्ररूप और सर्व निवासक इन्द्रदेव ! संरक्षण की प्राप्ति के लिए ये नूतन हवियाँ आपको प्रदान की गई हैं । आप इन्हें जानें और स्तोताओं को अन्न प्रदान करें ॥६॥

२९०७. **इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य।**
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आपने मरुद्गणों के साथ मिलकर जिस प्रकार शार्यात (शर्यात् के पुत्र) के यज्ञ में पहुँच कर सोमरस का पान किया था, उसी प्रकार हमारे इस यज्ञ में उपस्थित होकर सोमरस का पान करें । हे वीर ! यज्ञस्थल पर याजकगण हविष्यान्न समर्पित करते हुए आपकी सेवा करते हैं ॥७॥

२९०८. **स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः।**
जातं यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! सोम की कामना करते हुए आप मित्ररूप मरुतों के साथ हमारे इस यज्ञ में अभिषुत सोम का पान करें । अनेकों द्वारा आवाहन किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण देवों ने आपको महा संग्राम के लिए नियुक्त-प्रयुक्त किया था ॥८॥

२९०९. **अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः।**
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥९॥

जल देने वाले मरुद्गण स्वामीरूप इन्द्रदेव को संग्राम में हर्षित करते हैं । वृत्र- संहारक इन्द्रदेव उन मरुद्गणों के साथ हविदाता यजमान के गृह में अभिषुत सोम का पान करें ॥९॥



२९१०. **इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्व१स्य गिर्वणः ॥१० ॥**

हे ऐश्वर्यों के स्वामी, स्तुति योग्य इन्द्रदेव ! बलपूर्वक निकाले गये इस सोमरस का रुचिपूर्वक पान करें ॥१०॥

२९११. **यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥११ ॥**

हे सोमपान के योग्य इन्द्रदेव ! आपके शरीर के लिए सोम अन्न तुल्य है । यज्ञ में उपस्थित होकर आप इसके पान से आनन्दित हों ॥११ ॥

२९१२. **प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसे ॥१२ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आपके दोनों पार्श्वों (कुक्षियों) में वह सोम भली-भाँति रम जाय । स्तुति के प्रभाव से वह आपके समस्त शरीर में संचरित हो । हे वीर इन्द्रदेव ! ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए आपकी भुजायें भी समर्थ हों ॥१२ ॥

[सूक्त - ५२]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्; १-४गायत्री, ६जगती ।]

२९१३. **धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥१ ॥**

हे इन्द्रदेव ! हम दही और सत्तू से मिश्रित पकाये हुए पुरोडाश की हवि को मन्त्रोच्चार के साथ समर्पित करते हैं, आप प्रातः इसे स्वीकार करें ॥१ ॥

२९१४. **पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥२ ॥**

हे इन्द्रदेव ! भली प्रकार पकाये गये इस पुरोडाश का सेवन करें । इसके सेवन के लिए पुरुषार्थ करें । यह हव्य रूप पुरोडाश आपके लिए समर्पित है ॥२ ॥

२९१५. **पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥३ ॥**

हे इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा प्रदत्त पुरोडाश का भक्षण करें । हमारी इन स्तुतियों का आप वैसे ही सेवन करें (स्वीकारें), जैसे पुरुष अपनी अर्धांगिनी पत्नी को स्वीकार करता है ॥३ ॥

२९१६. **पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥४ ॥**

हे प्रख्यात इन्द्रदेव ! प्रातः सवन में हमारे द्वारा प्रदत्त पुरोडाश का सेवन करें, जिससे आपके कर्म महान् हों ॥४ ॥

२९१७. **माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।**
प्र यत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! माध्यन्दिन सवन के समय हमारे द्वारा प्रदत्त भुने हुए जवादि धान्य और स्वाहुत हुए पुरोडाश का भक्षण करें । हे मेधावान् इन्द्रदेव ! आप ऋभुओं के साथ धन-धान्यों से सम्पन्न हैं । हम स्तुति करते हुए आपके लिए हविष्यान्न समर्पित करते हैं ॥५ ॥

२९१८. **तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।**
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति बहुतों द्वारा की गई है । आप तीसरे सवन में हमारे भुने हुए जवादि पुरोडाश का सेवन करें । आप ऋभुओं, धन और पुत्रों से युक्त हैं । हवियों से युक्त स्तोत्रों से हम आपकी पूजा करते हैं ॥६ ॥

२९१९. **पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।**
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७ ॥



हे इन्द्रदेव ! आप पोषणकारी, दु:खहारी और हरि संज्ञक अश्वारोही हैं । आपके निमित्त हमने दही मिश्रित सत्तू और भुने जवादि धान्य तैयार किये हैं । मरुद्गणों के साथ आप इस पुरोडाश आदि का भक्षण करें और **सोमरस** का पान करें ॥७ ॥

२९२०. **प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।**
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥८ ॥

हे ऋत्विजो ! इन्द्रदेव के लिए शीघ्र ही भुने जवादि धान्य (खील) और पुरोडाश विपुल परिमाण में दें, क्योंकि वे मनुष्यों के नेतृत्वकर्त्ताओं में सर्वोपम वीर हैं । हे शत्रुओं के पराभवकर्त्ता इन्द्रदेव ! हम सब एकत्रित होकर आपके निमित्त प्रतिदिन स्तुतियाँ करते हैं; वे स्तुतियाँ आपको सोमपान के लिए प्रेरित करें ॥८ ॥

[सूक्त - ५३]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र , १ इन्द्र और पर्वत ; १५, १६ वाक् (ससर्परी) ; १७-२० रथाङ्ग; २१-२४ इन्द्र व अभिशाप । **छन्द** - त्रिष्टुप् ; १०, १६ जगती; १३ गायत्री; १२, २०, २२ अनुष्टुप्; १८ बृहती ।]

२९२१. **इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।**
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥१ ॥

हे इन्द्र और पर्वतदेव ! स्तुत्य, श्रेष्ठ सन्तान युक्त यजमान द्वारा समर्पित हविष्यान्न से हर्ष का अनुभव करने वाले, यज्ञ में हवि का भक्षण करने वाले आप हमें अन्न प्रदान करें एवं हमारे स्तोत्रों से यशस्वी हों ॥१ ॥

२९२२. **तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।**
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप हमारे पास कुछ समय तक ठहरें । हमारे यज्ञ से दूर न जाएँ । हम आपके निमित्त शीघ्र ही अभिषुत सोम द्वारा यजन करते हैं । हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! जैसे पुत्र पिता का आश्रय ग्रहण करता है, वैसे हम मधुर स्तुतियों द्वारा आपका आश्रय ग्रहण करते हैं ॥२ ॥

२९२३. **शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।**
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥३ ॥

हे अध्वर्युगण ! हम इन्द्रदेव की स्तुति करेंगे । आप हमें प्रोत्साहित करें । हम उनके लिए प्रीतिकर स्तोत्रों का गान करें । आप यजमान के इस कुश के आसन पर बैठें, जिससे इन्द्रदेव के लिए उक्थ वचन प्रशस्त हों ॥३ ॥

२९२४. **जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।**
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥४ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! स्त्री ही गृह होती है, वही पुरुष का आश्रय स्थान होती है । रथ से योजित अश्व आपको उसी (विश्रान्तिदायक) गृह में ले जाएँ । हम जब कभी सोम अभिषव करते हैं, तब हमारे द्वारा निवेदित सोम को दूतस्वरूप अग्निदेव सीधे आपके पास पहुँचायें ॥४ ॥

२९२५. **परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।**
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५ ॥

सबको पोषण प्रदान करने वाले, ऐश्वर्यवान् हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ से दूर अपने गृह के समीप रहें अथवा



हमारे इस यज्ञ में आएँ । दोनों ही जगह आपका प्रयोजन है । वहाँ घर में आपकी स्त्री है और यहाँ सोम है । जहाँ आप अपने महान् रथ को रोकते हैं; वहीं हर्षध्वनि करने वाले अश्वों को विमुक्त करते हैं ॥५ ॥

२९२६. **अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।**
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! यहाँ सोमपान करें, अनन्तर घर जायें; क्योंकि आपके घर में कल्याणकर्त्री स्त्री है और वहाँ मनोरम सुख है । आप जहाँ अपने रथ को रोकते हैं, वहीं अश्वों को विचरने के लिए विमुक्त करते हैं ॥६ ॥

२९२७. **इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।**
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥७ ॥

यज्ञ में भोज्य पदार्थ समर्पित करने वाले अंगिरा वंशज विभिन्न रूपों में देखे जाते हैं । ये देवों में श्रेष्ठ, वीर मरुद्गण हम विश्वामित्रों के लिए हजारों प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करें । हमारे धन-धान्य एवं आयु में वृद्धि करें ॥७ ॥

२९२८. **रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं१ परि स्वाम् ।**
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥८ ॥

हम इन्द्रदेव के जिस स्वरूप का आवाहन करते हैं, वे उसी रूप के हो जाते हैं । अपनी माया से विविध रूप धारण करते हैं । वे ऋतु के अनुकूल सर्वदा सोम का पान करने वाले हैं । वे मंत्रों द्वारा बुलाये जाने पर तीनों सवनों में स्वर्गलोक से एक क्षण में ही आ जाते हैं ॥८ ॥

२९२९. **महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।**
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥९ ॥

अतिशय महान्, देवों से उत्पन्न एवं प्रेरित, सर्व द्रष्टा विश्वामित्र ऋषि ने जल से परिपूर्ण सिन्धु (नदी अथवा समुद्र) के वेग को अवरुद्ध किया । वहाँ से वे सुदास राजा के यज्ञ में गये । तब कुशिक वंशजों ने इन्द्रदेव को प्रिय स्थान (यज्ञस्थल) में सम्मानित किया ॥९ ॥

[जल के वेग को रोक कर उस शक्ति का नियोजन पूर्वकाल में भी किया जाता था, यह बात यहाँ स्पष्ट होती है ।]

२९३०. **हंसाइव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।**
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥१० ॥

अतीन्द्रिय क्षमतासम्पन्न, मेधावान् मनुष्यों के संरक्षक हे कुशिको !आप सब हंसों के सदृश पंक्ति में बैठकर स्तुति मंत्रों का उच्चारण करें, यज्ञ में पाषाण से सोमाभिषवण करें तथा सभी देवों के साथ सोमरस का पान करें ॥१० ॥

२९३१. **उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः ।**
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥११ ॥

हे कुशिक वंशजो ! आप सब अश्व के समीप जाएँ; अश्व को उत्साहित करें । राजा सुदास के अश्व को ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए विमुक्त कर दें । देवराज इन्द्र ने पूर्व, पश्चिम और उत्तर प्रदेशों में शत्रुओं का हनन किया है । अब सुदास राजा पृथ्वी के उत्तम स्थान में यज्ञ कार्य सम्पादित करें ॥११ ॥

२९३२. **य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् । विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२ ॥**

हे कुशिक वंशजो ! हम (विश्वामित्र) ने द्यावा-पृथिवी द्वारा इन्द्रदेव की स्तुति की । विश्वामित्र के वंशजों का यह स्तोत्र भरत-वंशजों की रक्षा करे ॥१२ ॥



२९३३. **विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । करदिन्नः सुराधसः ॥१३ ॥**

विश्वामित्र के वंशजों ने वज्रधारी इन्द्रदेव के लिए स्तोत्र विनिर्मित किये ।इन्द्रदेव हमें उत्तम धनों से युक्त करें ॥१३ ॥

२९३४. **किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ।**
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्नन्धया नः ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! अनार्य देश के कीकटवासियों की गौएँ आपके लिए क्या करती हैं ? आपके लिए न दुग्ध देती हैं और न यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करती हैं । उन गौओं को यहाँ ले आएँ । धन शोषकों के धन को हमारे लिए ले आएँ । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! नीच वंश वालों को आप नियमित करें ॥१४ ॥

२९३५. **ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।**
आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥१५ ॥

जमदग्नि के द्वारा प्रेरित, अज्ञान विनाशक, द्युलोक तक प्रवाहित वाणी द्युलोक में विपुल शब्दकारक होती है । सूर्य पुत्री (वह वाणी) सम्पूर्ण देवों को अमृतोपम पदार्थ और अक्षय अन्नादि प्रदान करती है ॥१५ ॥

२९३६. **ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योऽधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ।**
सा पक्ष्या३ नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥१६ ॥

पलस्ति, जमदग्नि आदि ऋषियों ने जो उत्तम वचन कहे, वे नवीन अन्नों को प्रदान कराने वाले थे । पंच जनों में जो अन्नादि विद्यमान हैं, उनसे अधिक अन्नादि हमारे निमित्त शीघ्र प्रदान करें ॥१६ ॥

२९३७. **स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।**
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७ ॥

सुदास के यज्ञ में विश्वामित्र रथांगों की स्तुति करते हैं-योजित बैल स्थिर हों, रथ का अक्ष सुदृढ़ हो । रथ के दण्ड न टूटें । शकट न टूटे । धुरी की गिरने वाली कील को इन्द्रदेव ठीक कर दें । हे अबाधित रथ ! आप सदैव हमारे अनुकूल रहते हुए आगे बढ़ें ॥१७ ॥

२९३८. **बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः ।**
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे शरीरों में बल स्थापित करें । हमारे बैल आदि पशुओं में बल स्थापित करें । हमारे पुत्र और पौत्रों में दीर्घ जीवन के लिए बल स्थापित करें; क्योंकि आप बलों को प्रदान करने वाले हैं ॥१८ ॥

२९३९. **अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।**
अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव ! खदिर काष्ठ से विनिर्मित रथ के दण्ड को दृढ़ करें । रथ के स्पन्दनों में शीशम के काष्ठ से विनिर्मित रथ की धुरी और शकटादि में बल भरें । हे सुदृढ़ अक्ष ! हमारे द्वारा दृढ़ किये हुए आप और अधिक सुदृढ़ हों । वेग से गमन करते हुए आप हमें गिरा न दें ॥१९ ॥

२९४०. **अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।**
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥२० ॥

वनस्पति से विनिर्मित यह रथ हमें न गिराये, संताप न दे । हमारे घर पहुँचने तक यह हमारा मंगल करे और

अश्वों के विमुक्त होने तक यह हमारी रक्षा करे ॥२० ॥

२९४१. इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१ ॥

हे शूरवीर और ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप विविध, श्रेष्ठ, संरक्षणकारी साधनों से हमारी रक्षा करें । हमारे शत्रुओं का विनाश कर हमें प्रसन्न करें । जो हमसे द्वेष करता है, उसका पतन करें । हम जिससे द्वेष करते हैं, उसके प्राणों का हरण करें ॥२१ ॥

२९४२. परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२ ॥

हे इन्द्रदेव ! फरसे से वृक्ष के संतप्त होने के समान हमारे शत्रु संतप्त हों । शाल्मलि पुष्प के शाखा से गिरने के समान हमारे शत्रु के अंग विच्छिन्न हों । पकाने के समय हांडी के फेन निकलने के समान हमारे हिंसक शत्रुओं के मुख से फेन निकालें ॥२२ ॥

२९४३. न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३ ॥

विश्वामित्र कहते हैं, वीर पुरुष बाणों के कष्ट को कुछ नहीं समझते । वे लोभी शत्रु को पशु मानकर ले जाते हैं । वे बलवानों से निर्बलों का उपहास नहीं कराते । गधों की तुलना अश्वों से नहीं करते ॥२३ ॥

२९४४. इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥२४ ॥

हे इन्द्रदेव ! ये भरत वंशज शत्रु को पृथक् करना जानते हैं, उनके साथ एक होकर रहना नहीं जानते । वे संग्राम में प्रेरित अश्व की भाँति धनुष की प्रत्यंचा की शक्ति प्रकट करते हैं ॥२४ ॥

[सूक्त - ५४]

[**ऋषि** - प्रजापति वैश्वामित्र अथवा प्रजापति वाच्य । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२९४५. इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥१ ॥

स्तोतागण महान् यज्ञ के साधन रूप तथा स्तुति योग्य अग्निदेव के लिए इन उत्तम स्तोत्रों को उच्चारित करते हैं । वे अग्निदेव अपने स्थान में तेजोमयी किरणों से उद्दीप्त होकर हमारी स्तुति का श्रवण करें ॥१ ॥

२९४६. महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! यज्ञादि कार्यों में, जिन द्यावा-पृथिवी में, स्तोत्रों को सुनते हुए पूजाभिलाषी देवगण एकत्रित एवं प्रसन्न होते हैं । उन महती द्यावा-पृथिवी की सामर्थ्य को जानते हुए उनकी अर्चना करें । सम्पूर्ण भोगों की इच्छा से मेरा मन विचरणशील है ॥२ ॥

२९४७. युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥३ ॥



सत्यव्रतों से अनुबन्धित हे द्यावा-पृथिवि ! अति पुरातन ऋषिगणों ने आपके सत्य रहस्यों को जानकर स्तुति की है । युद्ध के लिए जाने वाले वीर-पुरुषों ने भी आप दोनों की महत्ता को जानकर सर्वदा वन्दना की है ॥३ ॥

२९४८. उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥४ ॥

हे सत्य धर्म वाली द्यावा-पृथिवि ! सत्यव्रतधारी सनातन ऋषियों ने आपसे हितकारी वांछित फल प्राप्त किया था । हे पृथिवि ! युद्ध क्षेत्र में जाने वाले वीर योद्धा आपकी महिमा को जानते हुए आपको नमस्कार करते हैं ॥४ ॥

२९४९. को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या३का समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥५ ॥

कौन सा पथ देवों के अभिमुख पहुँचता है ?कौन इसे निश्चित रूप से जानता है ?कौन उसका वर्णन कर सकता है ?क्योंकि देवों के जो गुह्य और उच्च स्थान हैं, उनमें से जो निम्नतम स्थान हैं, वे ही दिखाई पड़ते हैं ॥५॥

२९५०. कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥६ ॥

दूरदर्शी मनुष्यों के द्रष्टा सूर्यदेव इस द्यावा-पृथिवी को सब ओर से देखते हैं । रसवती, हर्ष प्रदात्री, समान कर्म से परस्पर संयुक्त यह द्यावा-पृथिवी पक्षियों के घोंसले बनाने के सदृश जल के गर्भस्थान अन्तरिक्ष में अपने लिए विविध स्थान बनाती है ॥६ ॥

[पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण जहाँ तक प्रभावशाली है, वहाँ तक का आकाश पृथ्वी के साथ जुड़ा हुआ है । पृथ्वी का अस्तित्व उस संयुक्त आकाश से पृथक् नहीं है, इसलिए उसे द्यावा-पृथिवी का संयुक्त सम्बोधन दिया गया है । पृथ्वी से सम्बद्ध आयन मण्डल (आयनोस्फियर) सहित अपनी धुरी पर घूमती हुई सूर्य के चारों ओर घूमती है । इसलिए सूर्य उसे सब ओर से देखता है और वह (द्यावा-पृथिवी) जगह-जगह अपने आवास बनाती है-ऐसा कहा गया है ।]

२९५१. समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥७ ॥

(गुरुत्वाकर्षण से) परस्पर जुड़े होने पर भी अलग-अलग रहने वाली द्यावा-पृथिवी कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं होतीं । अक्षय, अनंत अन्तरिक्ष में दोनों दो बहिनों के समान एकरूप होकर रहती हैं । इस प्रकार ये सृष्टि क्रम को चला रही हैं ॥७ ॥

२९५२. विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान्बिभ्रती न व्यथेते ।
एजद्ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥८ ॥

ये द्यावा-पृथिवी समस्त प्राणियों और वस्तुओं को पृथक्-पृथक् स्थान प्रदान करती हैं । ये महान् सूर्य एवं इन्द्रादि देवों को धारण करके भी व्यथित (कम्पित) नहीं होती हैं । स्थावर और जंगम समस्त प्राणियों को मात्र एक पृथ्वी पर ही आश्रय प्राप्त होता है ।पक्षी समूहों के विचरण के लिए द्यावा-पृथिवी के मध्य का स्थान सुनिश्चित है ॥८ ॥

२९५३. सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥९ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप महान् पितारूप पोषण कर्त्री और मातारूप उत्पन्न-कर्त्री हैं । हम आपके सनातन और पुरातन इन सम्बन्धों को सर्वदा स्मरण करते हैं । आपके मध्य में स्तुति-अभिलाषी देवगण विस्तीर्ण और प्रकाशित पथों में अपने वाहनों से युक्त होकर अवस्थित होते हैं ॥९ ॥



२९५४. **इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः ।**
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥१० ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! हम आपके स्तोत्रों का भली प्रकार उच्चारण करते हैं । सोम को उदर में धारण करने वाले, अग्नि रूप जिह्वा से सोम पान करने वाले, अत्यन्त तेजस्वी तरुण, मेधावान् , प्रख्यात कर्म वाले, मित्र, वरुण और आदित्य देव हमारी स्तुतियाँ सुनें ॥१० ॥

२९५५. **हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।**
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥११ ॥

स्वर्णिम ऐश्वर्य को दान के लिए हाथ में रखने वाले, उत्तम प्रेरणाएँ प्रदान करने वाले सवितादेव, यज्ञ के तीनों सवनों में आकाश से आते हैं ।वे देवों के बीच बैठकर हमारे स्तोत्रों को सुनें और हमें सम्पूर्ण इष्ट-फल प्रदान करें ॥११ ॥

२९५६. **सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।**
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥१२ ॥

कल्याणकारी कर्मवाले, मंगलमय हाथों वाले, धन-सम्पन्न, सत्यव्रतों वाले त्वष्टादेव हमें अभीष्ट फल प्रदान करें । हे ऋभुओ ! सोमाभिषव हेतु पाषाण धारक ऋत्विजों ने यज्ञ किया है । अतएव आप पूषा के साथ उस सोम का पान करके हर्षित हों ॥१२ ॥

२९५७. **विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।**
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३ ॥

विद्युत् के समान देदीप्यमान रथ वाले, आयुध धारण करने वाले, तेजस्वी, शत्रु-विनाशक, यज्ञ से उत्पन्न होने वाले, वेगवान् तथा यजन योग्य मरुद्गण और देवी सरस्वती हमारी स्तुतियों का श्रवण करें । हे शीघ्र गमनशील मरुद्गणो ! हमें उत्तम वीर पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१३ ॥

२९५८. **विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।**
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४ ॥

सर्वदा तरुणी, सर्व-जनयित्री, विविध दिशाएँ जिन विष्णुदेव की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करतीं, वे विष्णुदेव बहुत पराक्रमी हैं । उन बहुकर्मा विष्णुदेव के पास यज्ञ में उच्चारित हमारे पूजनीय स्तोत्र उसी प्रकार पहुँचें, जैसे सभी कर्मनिष्ठ, धनवान् के पास पहुँचते हैं ॥१४ ॥

२९५९. **इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः३ पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।**
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः सङ्गृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥१५ ॥

सम्पूर्ण सामर्थ्यों से युक्त वे इन्द्रदेव अपनी महत्ता से द्यावा-पृथिवी दोनों को परिपूर्ण कर देते हैं । शत्रु पुरियों के विध्वंसक, वृत्र-हन्ता, आक्रामक सेना युक्त वे पशुओं का संग्रह करके हमारे लिए विपुल वैभव प्रदान करें ॥१५ ॥

२९६०. **नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।**
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६ ॥

असत्य से दूर रहने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों पिता के समान हम साधकों की अभिलाषा को पूछ कर उन्हें पूर्ण करने वाले हैं । आप दोनों का जन्म से प्रचलित नाम अति सुन्दर है ।आप दोनों अपार वैभव, धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं; हमें विपुल धन प्रदान करें । आप दोनों अविचलित रहकर हविदाता की रक्षा करें ॥१६ ॥



२९६१. महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सखा ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७ ॥

हे देवो ! आपका यह नाम-यश अत्यन्त महान् और मनोहर है; जिसके कारण आप सब इन्द्रलोक में दिव्य स्थान पाते हैं । बहुतों द्वारा आवाहन किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! अपने प्रिय ऋभुओं के साथ आप सखाभाव रखते हैं । हमें धनादि लाभ प्रदान करने के लिए हमारी इन स्तुतियों को उनके साथ स्वीकार करें ॥१७ ॥

२९६२. अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥१८ ॥

अर्यमा, देवमाता अदिति, यजनीय देवगण और अविचल नियम-पालक वरुणदेव हमारी रक्षा करें । हमारे (जीवन) मार्गों से निःसन्तान के योग को दूर करें और घर को सन्तानों और पशुओं से युक्त करें ॥१८ ॥

२९६३. देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व१न्तरिक्षम् ॥१९ ॥

विविध भाँति से प्रकट होने वाले, देवों के दूतरूप अग्निदेव हम निष्पाप लोगों को भली प्रकार उपदेश करें । पृथ्वी, द्युलोक और जल, सूर्य-नक्षत्रों से पूर्ण अन्तरिक्ष हमारी स्तुतियाँ सुनें ॥१९ ॥

२९६४. शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥२० ॥

जल-वृष्टि करके मनुष्यों का कल्याण करने वाले, वनस्पति आदि से हर्षित करने वाले पर्वतदेव हमारी स्तुतियाँ सुनें । देवमाता अदिति, आदित्यों के साथ हमारी स्तुतियाँ सुनें ।मरुद्गण हमें कल्याणकारी सुख प्रदान करें ॥२०॥

२९६५. सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥२१ ॥

हमारे मार्ग सर्वदा सुगम हों और अन्नों से युक्त हों । हे देवो ! हमारी ओषधियों को मधुर रस से युक्त करें । हे अग्निदेव ! आपकी मित्रता में हमारा ऐश्वर्य विनष्ट न हो । हम आपके अनुग्रह से धनादि और अन्नों से परिपूर्ण गृह को प्राप्त करें ॥२१ ॥

२९६६. स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि ।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥२२ ॥

हे अग्ने !आप हव्य पदार्थों का आस्वादन करें और हमें अन्नादि प्रदान करें । सभी अन्नों को हमारी ओर प्रेरित करें ।आप शत्रुओं को संग्राम में जीतें । उल्लसित मन से युक्त होकर आप सभी दिवसों को प्रकाशित करें ॥२२ ॥

[सूक्त - ५५]

[ऋषि- प्रजापति वैश्वामित्र अथवा प्रजापति वाच्य । देवता- विश्वेदेवा । छन्द- त्रिष्टुप्]

इस सूक्त में बार-बार कहा गया है कि सभी देवों का संयुक्त बल एक ही है । यह उक्ति सूर्य-अग्नि अथवा ऋत-यज्ञ पर घटित होती है -

२९६७. उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१ ॥

उदयकाल से पूर्व उषा जब प्रकाशित होती है, तब अविनाशी सूर्यदेव आकाश में प्रकट होते हैं ।तभी यजमान यज्ञादि देवकर्म करते हुए देवों के समीप उपस्थित होते हैं ।सभी देवों की महान् शक्ति संयुक्त (एक) ही है ॥१ ॥

२९६८. मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! यहाँ देवगण हमें हिंसित न करें । देवत्व पद को प्राप्त हमारे पूर्वज पितरगण भी हमारे लिए अनिष्ट रहित हों । यज्ञ के प्रकाशक पुरातन द्यावा-पृथिवी के बीच उदीयमान महान् ज्योतिरूप सूर्यदेव प्रकाशित होते हैं । सभी देवताओं का महान् संयुक्त बल एक ही है ॥२ ॥

२९६९. वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! हमारी नानाविध आकांक्षाएँ विभिन्न दिशाओं में गतिशील होती हैं । अग्निष्टोमादि यज्ञों में अग्नि के प्रज्वलित होने पर हम पुरातन स्तोत्रों को जाग्रत् करते हैं । अग्नि प्रज्वलित होने पर हम स्तोत्रों का उच्चारण करेंगे । देवताओं का महान् पुरुषार्थ एक ही है ॥३ ॥

२९७०. समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥४ ॥

सर्वसाधारण के शासक, दीप्तिमान् अग्निदेव अनेक स्थानों में यज्ञार्थ प्रतिष्ठित होते हैं । वे यज्ञवेदी के ऊपर शयन करते हैं तथा अरणि (काष्ठ) के माध्यम से प्रकट होते हैं । माता-पिता रूप द्यावा-पृथिवी इन्हें धारण करते हैं, वृष्टि आदि द्वारा द्युलोक परिपुष्ट करते हैं तथा वसुधा उन्हें आश्रय प्रदान करती है, सभी देवों का महान् शक्ति स्रोत एक ही है ॥४ ॥

२९७१. आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५ ॥

ये अग्निदेव अति प्राचीन और जीर्ण-शीर्ण वृक्षों में विद्यमान रहते हैं तथा जो पौधे नये-नये उगे हैं, उनमें भी रहते हैं । इन वनस्पतियों में कोई भी स्थूल प्रजनन क्रिया नहीं करता, फिर भी वे अग्नि द्वारा गर्भ धारण करके फल और फूलों को पैदा करती हैं, इन समस्त देव कार्यों का महान् बल एक ही है ॥५ ॥

२९७२. शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥६ ॥

पश्चिम में सोने (अस्त होने) वाला, दो माताओं (उषा और द्युलोक) का यह शिशु (सूर्य) बिना किसी विघ्न-बाधा के अन्तरिक्ष में अकेले ही विचरण करता है । ये सभी कार्य मित्र और वरुण देवों के हैं । सभी देवताओं की महान् शक्ति संयुक्त ही है ॥६ ॥

२९७३. द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७ ॥

दोनों लोकों के निर्माता, यज्ञ के होता तथा यज्ञों के स्वामी अग्निदेव आकाश में सूर्यरूप में सबसे आगे विचरण करते हैं । ये सभी कर्मों के मूलभूत कारण के रूप में भूमि पर निवास करते हैं । स्तोताओं की वाणियाँ ऐसे देव का गुणगान करती हैं । समस्त देवताओं का महान् पराक्रम एक ही है ॥७ ॥



२९७४. **शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत्।**
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥८ ॥

युद्ध में पराक्रम दिखाने वाले, शूरवीर के समान ही तेजस्वी अग्निदेव के समक्ष आने वाले सभी प्राणी पराङ्मुख (नतमस्तक) होते हुए दिखाई देते हैं। सबके द्वारा जानने योग्य अग्निदेव जल को धारण करने वाले आकाश में विचरण करते हैं। सभी देवताओं का महान् पराक्रम एक ही है ॥८ ॥

२९७५. **नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महांश्चरति रोचनेन।**
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥९ ॥

सभी प्राणियों के पालक और देवों के दूत अग्निदेव वनस्पतियों के मध्य संव्याप्त हैं। अपनी तेजस्विता से ये महिमा युक्त अग्निदेव इनके अन्दर विचरण करते हैं। जब वे नानाविध रूपों को धारण करते हैं, तभी वे हमें दिखाई देते हैं। समस्त देवों की महान् शक्ति एक (संयुक्त) ही है ॥९ ॥

२९७६. **विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः।**
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१० ॥

अविनाशी, प्रिय, लोकों के धारणकर्त्ता और सर्वरक्षक विष्णुदेव अपने मार्ग से परम धाम की रक्षा करते हैं। अग्निदेव उन सम्पूर्ण लोकों के ज्ञाता हैं। देवताओं की महान् विलक्षण शक्ति का स्रोत एक ही है ॥१० ॥

२९७७. **नाना चक्राते यम्या३ वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत्।**
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥११ ॥

दिन-रात्रि रूपी दो जुड़वाँ बहिनें नाना रूपों को धारण करती हैं। उनमें एक तेजस्विनी और दूसरी कृष्णवर्णा है। जो कृष्णवर्णा और प्रकाशयुक्त स्त्रियाँ हैं, वे दोनों परस्पर बहिनें हैं। समस्त देवकार्यों का बल संयुक्त ही है ॥११ ॥

२९७८. **माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची।**
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१२ ॥

(पृथ्वी-द्युलोक) ये दोनों सम्पूर्ण विश्व के उत्पादक, पोषक, तृप्तिदायक, अमृतमय पदार्थों के दाता तथा सम्पूर्ण विश्व को अपना रस प्रदान करने वाले हैं। सर्व उत्पादक होने से माता रूप तथा एक दूसरे से पोषक रस ग्रहण करने के कारण पुत्र-पुत्री रूप (द्यावा-पृथिवी) की हम स्तुति करते हैं। सभी देवताओं का महान् पराक्रम एक ही है ॥१२ ॥

२९७९. **अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः।**
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१३ ॥

दूसरे के वत्स (बछड़े या शिशु) को (प्रेम से) चाटने वाली, (प्रसन्नता से) शब्द करने वाली, धेनु (गाय-धारण करने वाली पृथ्वी) अपने थनों में कहाँ से दूध भरती है ? (सूर्य से उत्पन्न मेघों को प्यार करने वाली धरती में पोषण शक्ति कहाँ से आती है ?) यह इला (पृथिवी) ऋत (यज्ञ) के दूध से सिंचित होती है, सभी देवों की शक्ति एक ही है ॥१३ ॥

२९८०. **पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा।**
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४ ॥

विराट् पुरुष के पैरों से उत्पन्न होने वाली (पृथ्वी) विभिन्न रूपों को धारण करती है। तीनों लोकों (द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी) को प्रकाशित करने वाले सूर्य की किरणों को चाटते हुए ऊर्ध्व गति पाती है। सत्यरूप सूर्यदेव के स्थान को जानते हुए हम उनकी वन्दना करते हैं। समस्त देवों का महान् बल एक ही है ॥१४ ॥



२९८१. **पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद् गुह्यमाविरन्यत् ।**
सध्रीचीना पथ्या३ सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१५ ॥

सुन्दर रूप वाले दिन और रात्रि दोनों अन्तरिक्ष में गमन करते हैं । उनमें एक रात्रि कृष्णवर्णा होने से छिपी हुई रहती है और दूसरा, 'दिन' प्रकाशयुक्त होने से सभी को दृष्टिगोचर होता है । इन दोनों (दिन और रात्रि) का मार्ग (अन्तरिक्ष) एक होते हुए भी अलग-अलग विभाजित है । समस्त देवों का महान् बल संयुक्त ही है ॥१५ ॥

२९८२. **आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।**
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१६ ॥

शिशुओं से रहित, अमृत का दोहन करने वाली, तेजस्विता युक्त, दोहन न की गई तरुणी गौएँ (किरणें या दिशायें) प्रतिदिन नवीनता को धारण करके अमृत रस प्रदान करती हैं । समस्त देवों का महान् पुरुषार्थ एक ही है ॥१६

२९८३. **यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन्यूथे नि दधाति रेतः ।**
स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७ ॥

जो वीर (तेजस्वी मेघ) किसी दिशा में गर्जन करता है, वह अन्य समूह में जाकर (वर्षा जल रूपी) अपने वीर्य का सिंचन करता है । इस प्रकार जल बरसाकर पृथ्वी का पालन करने और ऐश्वर्य प्रदान करने से वह सबके स्वामी के रूप में प्रतिष्ठित होता है । देवों का महान् बल एक ही है ॥१७ ॥

२९८४. **वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।**
षोळहा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८ ॥

हे मनुष्यो ! (इस) वीर (इन्द्र या आत्मशक्ति) के उत्तम पराक्रम की हम प्रशंसा करें, इनके इस पराक्रम को देवगण भी जानते हैं । ये छः (षट् ऋतुओं-षट् सम्पत्ति) से युक्त हैं; (किन्तु) पाँच (पंच प्राण, पंचतत्त्व या पंच इन्द्रियों) द्वारा इसका वहन किया जाता है । देवों का महान् पराक्रम संयुक्त ही है ॥१८ ॥

२९८५. **देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।**
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९ ॥

सबके उत्पादक, अनेक रूपों से युक्त त्वष्टादेव अनेक प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करते हैं । वही इन्हें परिपुष्ट भी करते हैं । ये सम्पूर्ण भुवन इन्हीं त्वष्टादेव के द्वारा रचे गये हैं । समस्त देवों की महान् शक्ति एक ही है ॥१९

२९८६. **मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।**
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२० ॥

परस्पर मिल-जुल कर चलने वाले द्युलोक और पृथ्वी लोक इन्द्रदेव की महिमा से ही प्रेरित होकर गतिमान् होते हैं । वे दोनों ही लोक इन्द्रदेव के तेज से संव्याप्त हैं । ऐसे शूरवीर इन्द्रदेव (कृपण) शत्रुओं के धनों को बलपूर्वक प्राप्त करते हैं । समस्त देवों का महान् पराक्रम एक ही है ॥२० ॥

२९८७. **इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।**
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२१ ॥

अपनी प्रजाओं के मित्र के समान हितैषी एक राजा जिस प्रकार सदैव अपनी प्रजा के समीप रहता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव भी हम सबको धारण करने वाली पृथ्वी के समीप रहते हैं । इन इन्द्रदेव के सहयोगी वीर मरुद्गण सदैव आगे बढ़ने वाले तथा कल्याण करने वाले हैं । समस्त देवताओं का महान् बल एक ही है ॥२१ ॥



२९८८. **निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति।**
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जल और ओषधियाँ आपके ऐश्वर्य से ही समृद्धिशाली हैं । पृथ्वी भी आपके ही ऐश्वर्य को धारण करती है । अतएव आपके मित्रस्वरूप हम, श्रेष्ठ ऐश्वर्य-सम्पन्न हों । समस्त देवों का महान् पराक्रम एक ही है ॥२२ ॥

[सूक्त - ५६]

[**ऋषि** - प्रजापति वैश्वामित्र अथवा प्रजापति वाच्य । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२९८९. **न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि।**
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥१ ॥

देवों के नियम प्रथम (शाश्वत अथवा सर्वोपरि) एवं अविचल हैं । मायावी (कर्म कुशल) व्यक्ति एवं बुद्धिमान् उन (प्रकृति के अनुशासनों) को खण्डित नहीं करते । द्रोह रहित, ज्ञान - सम्पन्न द्यावा-पृथिवी भी उनका उल्लंघन नहीं करते । स्थिर बनाये गये पर्वत कभी झुकते नहीं ॥१ ॥

[कुशल शिल्पियों (टेक्नॉलॉजी के विशेषज्ञों) तथा बुद्धिमानों से अपेक्षा की गयी है कि वे प्रकृतिगत दैवी नियमों की मर्यादा में रहें । प्रकृति के दिव्य सन्तुलन (इकॉलॉजिकल बैलेंस) को बिगाड़ें नहीं ।]

२९९०. **षड्भाराँ एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः।**
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥२ ॥

एक स्थायी संवत्सर, वसन्त ग्रीष्मादि छः ऋतुओं को वहन करता है । ऋत (सत्य अनुशासन) पर चलने वाले तथा अति श्रेष्ठ आदित्यात्मक संवत्सर का प्रभाव सूर्य किरणों से प्राप्त होता है । सतत गतिशील एवं विस्तृत तीनों लोक क्रमशः उच्चतर स्थानों पर अवस्थित हैं । उनमें स्वर्ग और अन्तरिक्ष सूक्ष्म रूप में (अदृश्य) हैं तथा एक पृथ्वी लोक प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है ॥२ ॥

[ऋतुओं के परिवर्तन का स्रोत सूर्य है । वह प्रभाव किरणों के माध्यम से प्राप्त होता है । पृथ्वी पर ही परिवर्तन दिखाई देता है; परन्तु वह वास्तव में द्युलोक एवं अंतरिक्ष में हुए (अदृश्य) परिवर्तनों के प्रतिफल ही होते हैं ।]

२९९१. **त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्।**
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥३ ॥

तीन प्रकार के बलों (सृजन, पोषण, परिवर्तन की क्षमताओं) से युक्त, वीर, अनेक रूपों से युक्त, तीन (द्यु, अन्तरिक्ष, पृथ्वी) से युक्त, अनेक रंगों से युक्त, प्रज्ञावान्, तीनों लोकों में स्थित, शक्तिरूपी तीनों सेनाओं से सम्पन्न सूर्यदेव का उदय होता है । वे अपनी किरणों द्वारा समस्त ओषधियों में रेतस् का (प्राण ऊर्जा का) संचार करते हैं ॥१३ ॥

२९९२. **अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम।**
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग्व्रजन्तीः परि षीमवृञ्जन् ॥४ ॥

दिव्य जल (रस धाराओं) से सुसम्पन्न सूर्यदेव की आभा ही इन समस्त वनस्पतियों के वैभव रूप में बिखरी हुई है । उन आदित्यगणों के सुन्दर नाम का हम गुणगान करते हैं । सूर्यदेव से सम्बद्ध रस ही वर्षा (जल, प्राण-पर्जन्य) के रूप में पृथ्वी को तृप्त (परिपुष्ट) करते हैं ॥४ ॥

२९९३. **त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट्।**
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥५ ॥



हे नदियो ! आप तीनों लोकों में निवास करती हैं तथा तीन प्रकार के देवगण भी इन तीनों लोकों में विद्यमान हैं। इन तीनों लोकों के निर्माता सूर्यदेव समस्त यज्ञीय प्रवाहों के स्वामी हैं। (पोषक रसों से युक्त) इला, सरस्वती और भारती तीनों अन्तरिक्षीय देवियाँ (दिव्य रस धाराएँ) द्युलोक द्वारा तीनों सवनों से युक्त इस यज्ञ में पधारें ॥५ ॥

२९९४. त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥६ ॥

हे सर्वप्रेरक सूर्यदेव ! आप दिव्यलोक से आकर प्रतिदिन तीन बार हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करें। ऐश्वर्यवान् सबके रक्षक हे सूर्यदेव ! आप हमें दिवस के तीनों सवनों में तीनों प्रकार के धन प्रदान करें। हे बुद्धिमान् ! आप हमें धन प्राप्ति के योग्य बनायें ॥६ ॥

२९९५. त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥७ ॥

सर्वप्रेरक सूर्यदेव हमें द्युलोक से तीन प्रकार के धनों को प्रदान करें। तेजस्वी कल्याणकारी हाथों से युक्त मित्र, वरुण, अन्तरिक्ष और विशाल द्यावा-पृथिवी भी सूर्यदेव से धन-वैभव के वृद्धि की याचना करते हैं ॥७ ॥

२९९६. त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥८ ॥

क्षयरहित, सर्वजित् और द्युतिमान् तीन लोक (श्रेष्ठ स्थान) हैं। इन तीनों स्थानों में कलात्मक संवत्सर के अग्नि, वायु और सूर्य नामक तीन पुत्र शोभायमान होते हैं। सत्यनिष्ठ, उत्साहवर्धक कार्यों में तत्पर और कभी न झुकने वाले देवगणों का दिन में तीन बार (तीनों सवनों में) हमारे यज्ञ में आगमन हो ॥८ ॥

[सूक्त - ५७]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२९९७. प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।
सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥१ ॥

हे ज्ञानवान् इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ संरक्षण के अभाव में इधर-उधर भटकती हुई गौ की भाँति (अज्ञानता के अन्धकार में) भटकते हुए हम लोगों को आप संरक्षण प्रदान करें। अभीप्सित फल उपलब्ध कराने वाली हमारी (गौओं) स्तुतियों को इन्द्रदेव (अग्निदेव) स्वीकार करें ॥१ ॥

२९९८. इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥२ ॥

अभीप्सित फल प्रदान करके सबका मंगल करने वाले मित्रावरुण, इन्द्रदेव, पूषादेव तथा अन्य देवगण प्रसन्न होकर अन्तरिक्षीय मेघ का दोहन करते हैं। सर्वदेवगण हमारी स्तुतियों से आनन्द प्राप्त करते हैं। अतएव हे वसुदेवो ! आपकी कृपादृष्टि से आपके द्वारा प्रदत्त सुखों को हम प्राप्त करें ॥२ ॥

२९९९. या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥३ ॥

जो वनस्पतियाँ जल के रूप में प्राण-पर्जन्य की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव की शक्ति का अनुदान चाहती हैं,



वे विनम्रतापूर्वक उनकी सृजन-सामर्थ्य से परिचित हैं । फल की अभिलाषिणी ओषधियाँ (व्रीहि, यव, नीवारादि) विभिन्न फसलों के रूप में पुत्रों (प्राणियों) के पास पहुँचती हैं ॥३ ॥

३०००. **अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।**
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥४ ॥

यज्ञ में सोमाभिषवण करने वाले पाषाणों को धारण करते हुए हम अपनी मननशील बुद्धि से विशिष्ट रूप से शोभायमान द्यावा-पृथिवी की स्तुति करते हैं । हे अग्निदेव ! अनेकों के द्वारा वरण करने योग्य, कमनीय और पूजनीय आपकी ज्वालाएँ, मनुष्यों का कल्याण करने के लिए ऊर्ध्वगामी हों ॥४ ॥

३००१. **या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।**
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी मधुर, तेजस्वी, प्रज्ञा-सम्पन्न एवं सर्वत्र संव्याप्त ज्वालाएँ देवों का आवाहन करने के लिए प्रेरित होती हैं । उन ज्वालाओं के द्वारा समस्त पूजनीय देवों को इस यज्ञ में प्रतिष्ठित करें । देवों को मधुर सोमरस समर्पित करके दुष्टों से हमारी रक्षा करें ॥५ ॥

३००२. **या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपयद्देव चित्रा ।**
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥६ ॥

हे दिव्यता से सम्पन्न अग्निदेव !आपकी कुमार्ग से बचाने वाली बुद्धि मेघों की धारा की भाँति सबको तृप्त करती है ।हे सबके आश्रयभूत जातवेदा(अग्निदेव) !आप हमें सारे संसार का हित करने वाली बुद्धि प्रदान करें॥६ ॥

[सूक्त - ५८]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३००३. **धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।**
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१ ॥

उषा अग्निदेव के योग्य प्रकृति रस का दोहन करती है ।उषा पुत्र सूर्य उनके मध्य विचरते हैं । शुभ्र दीप्ति से देदीप्यमान सूर्यदेवप्रकाश फैलाते हुए जाते हैं ।इसी उषाकाल में अश्विनीकुमारों के लिए स्तोत्र-गान होता है॥१ ॥

३००४. **सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।**
जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! श्रेष्ठ रथ में भली प्रकार से योजित अश्व आपको इस यज्ञ में लाने के लिए तैयार है । माता-पिता के पास पहुँचने वाले बच्चे की भाँति यज्ञ आपके पास पहुँचे । कुटिल बुद्धि वालों को हमसे दूर करें । हम आप दोनों के लिए हविष्यान्न तैयार करते हैं । आप हमारे पास आयें ॥२ ॥

३००५. **सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।**
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३ ॥

हे शत्रु-नाशक अश्विनीकुमारो ! सुन्दर चक्रों से युक्त, उत्तम अश्वों द्वारा योजित रथ पर सवार होकर यज्ञशाला में पधारें । सोम अभिषवण कर्त्ताओं के द्वारा गाये जाने वाले स्तोत्रों का श्रवण करें । पुरातन काल से ही मेधावीगण आपकी पुष्टि के लिए सोम के साथ ऐसी स्तुतियाँ करते रहे हैं ॥३ ॥

३००६. आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्रमित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो !आप हमारी इन स्तुतियों को स्वीकार करें, अश्वों से युक्त होकर आएँ । स्तोतागण आपका आवाहन करते हैं ।सूर्योदय के पूर्व दुग्ध मधुर मिश्रित सोम को ये मित्ररूप यजमान आपको निवेदित करते हैं ॥४॥

३००७. तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यवान् अश्विनीकुमारो ! बहुत से लोकों को पार करके आप यहाँ पधारें । सम्पूर्ण स्तोताजनों के स्तोत्र आपके निमित्त उच्चारित होते हैं । हे शत्रुओं के संहारक अश्विनीकुमारों ! जिन मार्गों से देवगण गमन करते हैं, उन मार्गों से आप यहाँ आगमन करें, क्योंकि यहाँ आपके निमित्त मधुर सोम के पात्र तैयार किये गये हैं ॥५ ॥

३००८. पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥६ ॥

हे नेतृत्वकर्त्ता अश्विनीकुमारो ! आप दोनों की पुरातन मित्रता सबके लिए कल्याणकारी है । आपका धन सर्वदा हमारी ओर प्रवहमान रहे । आप दोनों की हितकारी मित्रता से हम बारम्बार लाभान्वित हों । मधुर सोम के द्वारा हम आपको तृप्त करते हुए प्रसन्न हो रहे हैं ॥६ ॥

३००९. अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप उत्तम, सामर्थ्यवान् , नित्य-तरुण, असत्यविहीन और उत्तम फलप्रदाता हैं । आप वायु के सदृश वेगवान् अश्वों से युक्त होकर अबाध गति से आगमन करें । यहाँ आकर दिवस के अन्त में अभिषुत सोम का प्रीतिपूर्वक पान करें ॥७ ॥

३०१०. अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपको सब ओर से प्रचुर मात्रा में हविष्यान्न प्राप्त होता है । कर्म-कुशल ऋत्विग्गण सब दोषों से रहित होकर अपनी स्तुतियों के साथ आपकी सेवा करते हैं । सोम वल्ली कूटने वाले पाषाण के शब्द सुनकर आपका रथ द्यावा-पृथिवी का परिभ्रमण करते हुए (सोमपान के लिए) यज्ञस्थल पर प्रकट होता है ॥८ ॥

३०११. अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! यह वांछित सोमरस अत्यन्त मधुर रसों से परिपूर्ण है, यहाँ आकर इसका पान करें । विपुल तेजस्विता विकीर्ण करता हुआ आपका रथ सोमाभिषवकारी यजमान के घर बार-बार आगमन करता है ॥९॥

[सूक्त - ५९]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - मित्र । छन्द - त्रिष्टुप्, ६ - ९ गायत्री ।]

३०१२. मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१ ॥



मित्रदेव सभी मनुष्यों को कर्म में प्रवृत्त रहने की प्रेरणा प्रदान करते हैं । रस आदि उपलब्ध कराने वाले अपने श्रेष्ठ कर्मों से पृथ्वी और द्युलोक को धारण करते हैं । वे सभी सत्कर्मरत मनुष्यों के ऊपर निरन्तर अपने अनुग्रह की वर्षा करते हैं । हे मनुष्यो ! ऐसे मित्रदेव के निमित्त घृत युक्त हविष्यान्न प्रदान करें ॥१ ॥

३०१३. प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२ ॥

हे आदित्य और मित्रदेव ! जो मनुष्य यज्ञादि कर्म से युक्त होकर आपके लिए हविष्यान्न समर्पित करता है; वह अन्नवान् होता है । आपके संरक्षण में रहकर वह न तो विनष्ट होता है और न ही जीवन में दु:ख पाता है । पाप उसके निकट नहीं पहुँचता है, न ही दूर से प्रभावित कर पाता है ॥२ ॥

३०१४. अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३ ॥

हे मित्रदेव ! हम रोगों से मुक्त होकर तथा पोषक अन्नों से परिपुष्ट होकर हर्षित हों । हम पृथ्वी के विस्तीर्ण क्षेत्र में नमन भाव से निवास करें । हम आदित्यदेव के व्रतों (नियमों) के अधीन रहकर जीवनयापन करें । हमें मित्रदेव का अनुग्रह सदैव मिलता रहे ॥३ ॥

३०१५. अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥४ ॥

नमन योग्य, उत्तम, सुखकारी, स्वामी, उत्तम बल से युक्त, सबके मित्रस्वरूप ये सूर्यदेव उदित हुए हैं । हम यजमान उन पूजनीय सूर्यदेव का कल्याणकारी अनुग्रह सदैव प्राप्त करते रहें ॥४ ॥

३०१६. महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥५ ॥

हे ऋत्विजो ! आदित्यदेव अत्यन्त महान् हैं । वे समस्त मनुष्यों को कर्मों में प्रवृत्त करने वाले हैं । सभी लोग नमन करते हुए इनकी उपासना करें । ये स्तुति करने वालों को उत्तम सुखों से समृद्ध करते हैं । उन स्तुतियोग्य मित्रदेव के निमित्त अत्यन्त प्रीतियुक्त हवियाँ समर्पित करें ॥५ ॥

३०१७. मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥६ ॥

जल (दिव्य रसों) की वर्षा के रूप में प्राप्त होने वाला सूर्यदेव का अनुग्रह सभी प्राणियों के जीवन की रक्षा करने वाला है । वे सभी के लिए उपयोगी धन-धान्य प्रदान करते हैं ॥६ ॥

३०१८. अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥७ ॥

जिन सूर्यदेव ने अपनी महिमा से द्युलोक को संव्याप्त किया है, उन्हीं कीर्तिमान् सूर्यदेव ने अपनी किरणों से जल बरसाकर अन्नादि से पृथ्वी को लाभान्वित किया ॥७ ॥

३०१९. मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥८ ॥

शत्रुओं को पराभूत करने में सक्षम, सामर्थ्यशाली मित्रदेव के लिये पाँचों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) आहुति प्रदान करते हैं । वे मित्रदेव अपनी सामर्थ्य से सभी देवताओं को धारण करते हैं ॥८ ॥

३०२०. मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥९ ॥

देवों और मनुष्यों के बीच सत्कार भावना रखने वाले साधकों के लिए मित्रदेव कल्याणकारी अन्नादि प्रदान

करते हैं। जो व्रतों एवं नियमादि का पालन करते हैं, उन्हें ही यह अनुदान प्राप्त होते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - ६०]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - ऋभुगण, ५-७ ऋभुगण एवं इन्द्र । **छन्द** - जगती]

३०२१. **इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।**
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१ ॥

शत्रुओं पर आक्रमण करके तेजस्विता प्रकट करने वाले, उत्तम धनुर्धारी, वीर हे ऋभुगण ! कुशलतापूर्ण कार्यों के द्वारा आप पूजनीय पद को उपलब्ध करते हैं। जो मनुष्य आपकी भाँति श्रेष्ठ कार्यों को विचारपूर्वक सम्पादित करते हैं, उन्हीं के साथ मन से आपका बन्धुभाव रहता है ॥१ ॥

३०२२. **याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।**
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥२ ॥

हे ऋभुगणो ! जिस सामर्थ्य से आपने चमसों (यज्ञ पात्र) का सुन्दर विभाजन किया, जिस बुद्धि से आपने गौ (पृथ्वी या इन्द्रियों) को चर्म (संरक्षक पर्त) से युक्त किया, जिस मानस से आपने इन्द्र (संगठक सत्ता) के अश्वों (पुरुषार्थ) को समर्थ बनाया; उन्हीं के कारण आपने देवत्व प्राप्त किया ॥२ ॥

३०२३. **इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।**
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥३ ॥

मनुष्यों की अवनति को रोकने वाले, उत्तम कर्मों को करने वाले ऋभुदेवों ने इन्द्रदेव की मित्रता को प्राप्त किया । सत्कर्मों के निर्वाहक तथा श्रेष्ठ धनुर्धारी ऋभुगणों ने अपनी सामर्थ्यों और सत्कर्मों के कारण सर्वत्र संव्याप्त होकर अमृतपद को उपलब्ध किया ॥३ ॥

३०२४. **इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।**
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥४ ॥

मेधावी और श्रेष्ठ धनुर्धर हे ऋभुदेवो ! आप सोमयाग में इन्द्रदेव के साथ एक ही रथ पर बैठकर पहुँचते हैं। जो साधक आपके प्रति मित्रभाव रखते हैं, उनके समीप आप धन एवं ऐश्वर्य साधन लेकर गमन करते हैं। आपके श्रेष्ठ, पराक्रमी कार्यों की कोई उपमा नहीं दी जा सकती ॥४ ॥

३०२५. **इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः ।**
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! बल-सम्पन्न ऋभुओं के साथ इस यज्ञ में आकर भली प्रकार अभिषुत सोम को ग्रहण करें। आप अपनी सद्भावपूर्ण बुद्धि से प्रेरित होकर सुधन्वा के पुत्रों के साथ, दानशीलों के घर जाकर आनन्दित हों ॥५ ॥

३०२६. **इन्द्र ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।**
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥६ ॥

अनेकों द्वारा प्रशंसनीय हे इन्द्रदेव ! आप सामर्थ्यशाली ऋभुओं और इन्द्राणी से युक्त होकर हमारे यज्ञ में आकर आनन्दित हों । समस्त मनुष्यों और देवों के श्रेष्ठ कर्म आपके ही कारण नियमानुकूल गतिमान् होते हैं ॥६ ॥



३०२७. इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं की स्तुतियों से प्रसन्न होकर आप उनके लिए प्रचुर अन्न उत्पन्न करें तथा बलशाली ऋभुओं के साथ इस यज्ञ में आगमन करें । मरुद्गण भी सौ गतिशील अश्वों के साथ यजमानों के द्वारा सत्कर्मों की वृद्धि के लिए सम्पन्न किये जा रहे इस श्रेष्ठ यज्ञ में पधारें ॥७ ॥

[सूक्त - ६१]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - उषा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३०२८. उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥१ ॥

अन्नवती और ऐश्वर्यशालिनी हे उषा ! आप प्रखर ज्ञानवती होकर स्तोताओं के स्तोत्रों का श्रवण करें । सबके द्वारा धारण करने योग्य हे उषा देवि ! आप पुरातन होकर भी तरुणी की तरह शोभायमान हों । आप विशेष बुद्धिमती होकर इस यज्ञ की ओर आगमन करें ॥१ ॥

३०२९. उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२ ॥

स्वर्णिम आभा वाले रथ पर विराजमान हे अमर उषा देवि ! आप प्रीति युक्त, सत्यरूप वचनों को उच्चारित करने वाली हैं । आप सूर्य किरणों द्वारा प्रकाशित हैं । विशेष बलशाली तथा सुवर्ण के समान तेजस्वी जो अश्व भली प्रकार रथ के साथ जोड़े जा सकते हैं, वे आपको लेकर यज्ञ स्थल पर पधारें ॥२ ॥

३०३०. उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥३ ॥

हे उषा देवि ! आप सम्पूर्ण भुवनों में भ्रमण करने वाली अमृत स्वरूपा हैं । सूर्यदेव के ध्वज के समान आकाश में उन्नत स्थान पर रहती हैं । हे नित्य नूतन उषा देवि ! आप एक ही मार्ग में गमन करती हुई, आकाश में विचरणशील सूर्यदेव के चक्राङ्गों के समान पुनः-पुनः उसी मार्ग पर चलती रहें ॥३ ॥

३०३१. अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्व१र्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४ ॥

जो ऐश्वर्यशालिनी उषा वस्त्र के समान ढकने वाली (शोभा बढ़ाने वाली) हैं । वे विस्तृत अन्धकार को दूर करती हुई सूर्य की पत्नी रूप में गमन करती हैं । वही सौभाग्यशालिनी और सत्कर्मशीला उषा द्युलोक और पृथ्वी के अन्तिम भाग तक प्रकाशित होती हैं ॥४ ॥

३०३२. अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसन्दृक् ॥५ ॥

हे स्तोताओ ! आप सबके सम्मुख प्रकाशित होने वाली उषादेवी की नमनपूर्वक स्तुति करें । मधुरता को धारण करने वाली उषा द्युलोक के ऊँचे भाग पर अपनी तेजस्विता को स्थिर रखती हैं । रमणीय शोभा को धारण करने वाली तेजस्विनी उषा अत्यन्त दीप्तिमान् हो रही हैं ॥५ ॥

३०३३. ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥६ ॥

सत्यवती उषा द्युलोक से परे आगमन करने वाली किरणों द्वारा प्रकट होती हैं। ऐश्वर्यशालिनी उषा विविध रूपों से युक्त होकर द्युलोक और पृथिवी को संव्याप्त करती हैं। हे अग्निदेव ! सम्मुख प्रकट होने वाली प्रकाशित उषा से हविष्य की कामना करने वाले आप, श्रेष्ठधनों को उपलब्ध करते हैं ॥६ ॥

३०३४. ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥७ ॥

वृष्टि के प्रेरक सूर्यदेव दिन के प्रारम्भ में उषा, को प्रेरित करते हुए द्यावा-पृथिवी के मध्य प्रकट होते हैं।तब उषा, मित्र और वरुणदेवों की प्रभारूपा होकर सुवर्ण के सदृश ही अपने प्रकाश को चारों ओर प्रसारित करती हैं

[सूक्त - ६२]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन; १६-१८ विश्वामित्र गाथिन अथवा जमदग्नि। **देवता** - १-३ इन्द्र - वरुण; ४-६बृहस्पति; ७-९ पूषा; १०-१२ सविता; १३-१५ सोम; १६-१८ मित्रावरुण। **छन्द** - गायत्री, १-३ त्रिष्टुप्।

३०३५. इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन्।
क्व १ त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥१ ॥

हे इन्द्रावरुणो ! शत्रुओं को वश में करने वाले आपके गतिशील शस्त्र, सज्जनों की रक्षा करने वाले हों, वे किसी के द्वारा नष्ट न हों। आप जिससे अपने मित्रबन्धुओं को अन्नादि प्रदान करते हैं; वह यश, कहाँ स्थित है ? ॥

३०३६. अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥२ ॥

हे इन्द्रावरुणो !धनैश्वर्य की कामना करने वाले ये महान् यजमान अपने रक्षणार्थ (अन्न के लिए) आप दोनों का बार-बार आवाहन करते हैं। हे मरुद्‌गण ! द्यावा-पृथिवी के साथ मिलकर आप हमारे निवेदन को सुनें ॥२ ॥

३०३७. अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! हमें वांछित धन की प्राप्ति हो। हे मरुद्‌गण ! आप हमें सर्व समर्थ वीर पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें। सबके द्वारा वरण किये जाने योग्य देवशक्तियाँ शरण देकर हम लोगों को संरक्षण प्रदान करें। होत्रा और भारती (अग्नि पत्नी और सूर्य पत्नी) सद्‌भावपूर्ण वाणी द्वारा हमारा पालन-पोषण करें ॥३ ॥

३०३८. बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥४ ॥

परिपूर्ण दिव्यगुण सम्पन्न हे बृहस्पतिदेव ! आप हमारे द्वारा प्रदत्त पुरोडाश (हव्य) का सेवन करें। आप हविष्यान्न देने वाले दान-दाता यजमानों को श्रेष्ठ-उपयोगी धन प्रदान करें ॥४ ॥

३०३९. शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत। अनाम्योज आ चके ॥५ ॥

हे ऋत्विजो ! आप यज्ञों में अर्चन-योग्य, स्तोत्र वाणी द्वारा पवित्र बृहस्पतिदेव को नमन करें। हम उनसे शत्रुओं द्वारा अपराजेय बल-पराक्रम की कामना करते हैं ॥५ ॥

३०४०. वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम्। बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥६ ॥



मनुष्यों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले, अनेक रूपों को धारण करने में समर्थ, किसी के भी दबाव में न आने वाले तथा वरण करने योग्य बृहस्पतिदेव की हम सब पूजा-अर्चना करते हैं ॥६ ॥

३०४१. **इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥७ ॥**

हे पूषादेव ! ये नूतन और श्रेष्ठ स्तोत्र आपके लिए हैं । इन स्तुतियों का पाठ हम आपके निमित्त ही करते हैं

३०४२. **तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥८ ॥**

हे पूषादेव ! आप हमारी इस श्रेष्ठ वाणी का श्रवण करें और सामर्थ्य प्राप्ति की अभिलाषा करने वाली इस बुद्धि की उसी प्रकार रक्षा करें, जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी वधू (स्त्री) की सुरक्षा करता है ॥८ ॥

३०४३. **यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पूषाविता भुवत् ॥९ ॥**

जो पूषादेव विश्व-ब्रह्माण्ड को विशिष्ट रीति से देखते हैं - निरीक्षण करते हैं, वे हम लोगों के संरक्षक हों ॥

३०४४. **तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१० ॥**

जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं, उन सविता देवता के वरण करने योग्य, विकारनाशक, दिव्यता प्रदान करने वाले तेज को हम धारण करते हैं ॥१० ॥

३०४५. **देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरंध्या । भगस्य रातिमीमहे ॥११ ॥**

जगत् के उत्पादक, प्रेरक, प्रकाशक सवितादेव के तेज को धारण करते हुए, उनसे वैभव की कामना करते हैं

३०४६. **देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः ॥१२ ॥**

सद्बुद्धि से प्रेरित होकर, सत्कर्मशील ज्ञानीजन श्रेष्ठ रीति से स्तोत्रों द्वारा सवितादेव की स्तुति करते हैं ॥१२ ।

३०४७. **सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३ ॥**

सन्मार्गों के ज्ञाता सोमदेव सर्वत्र गतिशील हैं और देवों के लिए उपयुक्त, श्रेष्ठ यज्ञस्थल पर पहुँचते हैं ॥१३ ॥

३०४८. **सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥१४ ॥**

सोमदेव हम स्तोताओं तथा द्विपदों और चतुष्पद-पशुओं के निमित्त आरोग्यप्रद श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें ॥१४ ॥

३०४९. **अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥१५ ॥**

सोमदेव हमारे रोगों को दूर करके आयु को बढ़ाएँ, शत्रुओं को पराभूत करते हुए यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित हों

३०५०. **आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६ ॥**

हे मित्रावरुणदेव ! आप हमारी गौओं (इन्द्रियों) को घृत (स्नेह) से युक्त करें और हमारे आवासों-लोकों को भी श्रेष्ठ रसों (भावों) से सिंचित करें ॥१६ ॥

३०५१. **उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥१७ ॥**

हे पवित्रकर्मा मित्रावरुणो ! आप हविष्यान्न एवं स्तुतियों द्वारा पुष्ट होकर गरिमामय यश को प्राप्त करते हैं

३०५२. **गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥१८ ॥**

जमदग्नि ऋषि द्वारा स्तुत हे मित्रावरुणो ! आप यज्ञ स्थल पर विराजें और प्रस्तुत सोमरस का पान करें ॥१८

॥ इति तृतीयं मण्डलम् ॥





॥ अथ चतुर्थं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[**ऋषि** - वामदेव । **देवता** - अग्नि, २-५ अग्नि अथवा अग्नीवरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् , १ अष्टि, २ अति जगती, ३ धृति ।]

३०५३. **त्वां ह्यग्ने सदमित्समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे ।**
अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥१ ॥

हे वरुणदेव ! आप अविनाशी तथा तेजस् सम्पन्न हैं । उत्साहयुक्त समस्त देव अपने पराक्रम द्वारा आपको प्राप्त करते हैं । अनश्वर, प्रकाशमान तथा अत्यन्त विद्वान् हे अग्निदेव ! देवताओं ने मानवों के लिए कल्याणकारी यज्ञ के निमित्त आपको पैदा किया । आप समस्त कर्मों को जानने वाले हैं । देवताओं ने समस्त यज्ञों में उपस्थित रहने के लिए आपको उत्पन्न किया ॥१ ॥

३०५४. **स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं**
यज्ञवनसम् । ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! वरुणदेव आपके बन्धु हैं । आहुतियों के योग्य, यज्ञ का सेवन करने वाले, जल को धारण करने वाले, यज्ञों में वन्दनीय, सद्बुद्धि वाले वरुणदेव अत्यन्त ओज से परिपूर्ण हैं । ऐसे वरुणदेव को आप याजकों की ओर प्रेरित करें ॥२ ॥

३०५५. **सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या ।**
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥३ ॥

हे श्रेष्ठ सखा अग्निदेव ! जैसे द्रुतगामी अश्व शीघ्र गमन करने वाले रथ को ले जाते हैं, उसी प्रकार आप अपने सखा वरुणदेव को हमारी ओर ले आएँ । हे अग्निदेव ! आप वरुणदेव तथा तेजस्-सम्पन्न मरुद्गण के साथ सोमरस ग्रहण करें । हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप हमारी सन्तानों को सुख प्रदान करें । हे दर्शनीय अग्निदेव ! आप हमें सुखी बनाएँ ॥३ ॥

३०५६. **त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेळोऽवयासिसीष्ठाः ।**
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप सर्वज्ञ, कान्तिमान् , पूजनीय और भली प्रकार आहुतियों को देवों तक पहुँचाने वाले हैं । आप हमारे लिए वरुण देवता को प्रसन्न करें और हमारे सब प्रकार के दुर्भाग्यों को नष्ट करें ॥४ ॥

३०५७. **स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।**
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! इस उषाकाल में अपनी रक्षक शक्ति सहित हमारे अत्यधिक निकट आकर, आप हमारी रक्षा करें तथा हमारी आहुतियों को वरुणदेव तक पहुँचाकर उन्हें तृप्त करें । सर्वदा आवाहन करने योग्य आप (अग्निदेव) स्वयं हमारी सुखदायी हवि को ग्रहण करें ॥५ ॥



३०५८. अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य सन्दृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥६ ॥

जिस प्रकार गोपाल (गाय पालने वाले) के पास गो-दुग्ध तथा घृत, पवित्र और तेजस् युक्त होते हैं तथा गो दान करने वाले का दान प्रशंसनीय होता है; उसी प्रकार श्रेष्ठ धनवान् अग्निदेव का प्रार्थनीय तेज मानवों के बीच अत्यन्त पूजनीय तथा स्पृहणीय होता है ॥६ ॥

३०५९. त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥७ ॥

महान् गुण-सम्पन्न अग्निदेव के तीन श्रेष्ठ रूप (अग्नि, वायु और सूर्य के नाम से) जाने जाते हैं । वे अग्निदेव अनन्त अन्तरिक्ष में संव्याप्त, सबको पवित्र करने वाले आलोक से युक्त तथा अत्यन्त तेजस्वी हैं । वे हमारे निकट यज्ञ स्थल पर पधारें ॥७ ॥

३०६०. स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८ ॥

वे अग्निदेव देवताओं का आवाहन करने वाले, सन्देशवाहक, स्वर्णिम रथ वाले तथा श्रेष्ठ ज्वालाओं वाले हैं । वे समस्त श्रेष्ठ गृहों में गमन करने की कामना करते हैं । रोहित वर्ण के घोड़ों वाले, सुन्दर, कान्तिमान् अग्निदेव धन-धान्य से सम्पन्न गृह की भाँति सुखकारी हैं ॥८ ॥

३०६१. स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥९ ॥

अध्वर्युगण रशना (अरणि मंथन की रस्सी) द्वारा अग्निदेव को प्रकट करते हैं । यज्ञ में सबके हितैषी बन्धु अग्निदेव सभी लोगों को ज्ञान-सम्पन्न बनाते हैं । वे याजक के घर में उसके अभीष्ट को सम्पादित करते हुए विद्यमान रहते हैं । वे प्रकाशमान अग्निदेव अपने उपासक (याजक) के साथ निवास करते हैं ॥९ ॥

३०६२. स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१० ॥

जिस उत्कृष्ट ऐश्वर्य को सभी श्रेष्ठजन भजते हैं; सर्वज्ञाता अग्निदेव के उस महान् ऐश्वर्य को हम प्राप्त करें । समस्त अविनाशी देवताओं ने यज्ञ के निमित्त अग्निदेव को पैदा किया । द्युलोक उनके पालन करने वाले हैं । याजकगण उस अनश्वर अग्नि को घृत आदि की आहुतियों से सिंचित करते हैं ॥१० ॥

३०६३. स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥११ ॥

वे अग्निदेव (यज्ञादि कर्म सम्पन्न करने वाले) मनुष्यों के गृह में प्रथम अग्रणी होकर रहते हैं, तत्पश्चात् विशाल अन्तरिक्ष में, पुनः धरती पर पैदा हुए । वे अग्निदेव बिना सिर और पैर वाले हैं । वे सभी के अन्दर विद्यमान रहते हैं । वे जल बरसाने वाले बादलों के साथ (विद्युत् रूप में) अपने को मिला देते हैं ॥११ ॥

३०६४. प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥१२ ॥

अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सात होताओं ने स्पृहणीय, नित्य युवा तथा सुन्दर शरीर वाले तेजोयुक्त



अग्निदेव को प्रकट किया । हे अग्निदेव ! आपने जल के उत्पत्ति स्थान तथा जल बरसाने वाले मेघों के स्थान आकाश में विद्यमान रहकर, प्रार्थनाओं द्वारा सर्वश्रेष्ठ शक्तियों को ग्रहण किया ॥१२ ॥

३०६५. अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः ।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥१३ ॥

हमारे पितरों ने इस लोक में यजन करते हुए अग्निदेव को ग्रहण किया था । उन्होंने उषा की प्रार्थना करते हुए पर्वतों के मध्य अन्धकारपूर्ण गुफाओं में छिपी हुई दुधारू गौओं (पोषक रसधाराओं या प्रकाश किरणों) को मुक्त किया ॥१३ ॥

३०६६. ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥१४ ॥

उन पितरों ने पहाड़ों को नष्ट करके अग्निदेव को पवित्र बनाया । उनके इस कृत्य का अन्य लोगों ने सम्पूर्ण जगत् में वर्णन किया । उनको पशुओं की सुरक्षा का उपाय मालूम था । वाञ्छित फल प्रदान करने वाले अग्निदेव की उन्होंने प्रार्थना की तथा ज्योति-लाभ प्राप्त किया । अपने विवेक के द्वारा उन्होंने स्वयं को शक्ति से सम्पन्न बनाया ॥१४ ॥

३०६७. ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥१५ ॥

उन अंगिरस् गोत्रीय पितरों ने गो (पोषक धारा या प्रकाश किरण) प्राप्त करने की आकांक्षा से, अवरुद्ध द्वार वाले, भली-भाँति बन्द, सुदृढ़ गौओं से भरे हुए गोष्ठ (गोशाला) रूप पर्वत को अपने अग्नि विषयक वैदिक स्तोत्र की सामर्थ्य से खोल दिया ॥१५ ॥

३०६८. ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ॥१६ ॥

वाणी के शब्द स्तुत्य हैं, यह सर्वप्रथम समझकर अङ्गिरा आदि ऋषियों ने (गायत्री आदि) इक्कीस छन्दों में होने वाले स्तोत्रों को जाना । तत्पश्चात् उस वाणी से उषा की स्तुति की, जिस तेज से अरुण किरणें (सूर्य किरणें) प्रकट हुईं ॥१६ ॥

३०६९. नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त ।
आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥१७ ॥

रात्रि द्वारा पैदा किया हुआ तम, उषा देवी की प्रेरणा से विनष्ट हो गया । उसके बाद आकाश आलोकित हो गया और उषादेवी की प्रभा प्रकट हो गयी । तत्पश्चात् मनुष्यों के अच्छे और बुरे कर्मों का निरीक्षण करते हुए सूर्य देव विशाल पर्वत के ऊपर आरूढ़ (प्रकट) हुए ॥१७ ॥

३०७०. आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८ ॥

सूर्योदय होने के बाद समस्त ऋषियों ने धरती पर अग्निदेव को प्रज्वलित किया तथा तेजोयुक्त आभूषणों को ग्रहण किया । उसके बाद समस्त पूजनीय देवगण सभी घरों में पधारे । बाधाओं का निवारण करने वाले तथा मित्ररूप हे अग्निदेव ! जो आपकी साधना करते हैं, उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हों ॥१८ ॥



३०७१. **अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम्।**
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥१९ ॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त प्रकाशवान्, देवताओं का आवाहन करने वाले तथा विश्व का पोषण करने वाले हैं। आप सर्वश्रेष्ठ तथा वन्दनीय हैं, अत: हम आपकी प्रार्थना करते हैं। याजक लोगों ने आपको आहुति प्रदान करने के लिए गौओं के स्तन से पवित्र दुग्ध नहीं दुहा है तथा सोम को अभिषुत नहीं किया है, फिर भी आप उनकी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥१९ ॥

३०७२. **विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम्।**
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥२० ॥

वे अग्निदेव अदिति के समान समस्त यज्ञीय देवताओं को पैदा करने वाले हैं तथा समस्त मानवों के वंदनीय अतिथि हैं। मनुष्यों की प्रार्थनाओं को ग्रहण करने वाले अग्निदेव स्तोताओं के लिए सुख, समृद्धि तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाले हों ॥२० ॥

[सूक्त - २]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

३०७३. **यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि।**
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥१ ॥

जो अविनाशी अग्निदेव मनुष्यों के बीच में यथार्थ रूप से विद्यमान रहते हैं, देवताओं के बीच में रिपुओं को पराजित करने वाले के रूप में रहते हैं, वे सर्वाधिक वंदनीय अग्निदेव देवताओं का आवाहन करने वाले हैं। वे अपनी महिमा से याजकों को आहुतियों द्वारा प्रदीप्त करने की प्रेरणा देते हैं ॥१ ॥

३०७४. **इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने।**
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च ॥२ ॥

हे शक्ति के पुत्र अग्निदेव ! आप देखने योग्य हैं। आज आप हमारे इस यज्ञ कृत्य में प्रकट हुए हैं। आप अपने शक्तिशाली, प्रकाशमान, कोमल तथा पुष्ट अश्वों को रथ में नियोजित करके, उपस्थित देवताओं तथा मनुष्यों के बीच में दूत बनकर पहुँचते हैं ॥२ ॥

३०७५. **अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा।**
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश्च देवान्विश आ च मर्तान् ॥३ ॥

हे सत्यरूप अग्निदेव ! आपके उन लाल रंग वाले तथा अन्न-जल की वर्षा करने वाले अश्वों की हम प्रार्थना करते हैं, जो मन से भी अधिक वेगवान् हैं। आप अपने प्रकाशवान् अश्वों को रथ में नियोजित करके मनुष्यों तथा देवताओं के बीच में विचरण करें ॥३ ॥

३०७६. **अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत।**
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ रथों, अश्वों तथा धनों से सम्पन्न हैं। आप इन मनुष्यों के बीच में श्रेष्ठ आहुतियों वाले याजक के लिए मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, मरुद्गण, विष्णु तथा अश्विनीकुमारों को इस यज्ञस्थल पर ले आएँ ॥४ ॥



३०७७. **गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।**
इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥५ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! हमारा यह यज्ञ गौओं, अश्वों, भेड़ों, अन्न तथा मनुष्यों से सम्पन्न हो । यह यज्ञ आहुतियों तथा सन्तानों से सम्पन्न हो और हमेशा विद्यमान रहने वाले धन तथा श्रेष्ठ प्रेरणाओं से परिपूर्ण हो ॥५ ॥

[यहाँ यज्ञ गौओं, अश्वों तथा भेड़ों से युक्त हो, यह आलंकारिक उक्ति है । यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा गो- पोषण क्षमता तथा अश्व संचरित होने की क्षमता की प्रतीक है । 'अवि' - भेड़ की ऊन से छन्ने बनाये जाते थे, इसलिए 'अवि' पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त बनाने की क्षमता के संदर्भ में वर्णित है ।]

३०७८. **यस्त इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।**
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात्सीमघायत उरुष्य ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आपके लिए (यज्ञ के निमित्त) समिधाओं को चुनकर लाने वाले जो व्यक्ति पसीने से युक्त होते हैं, जो आपकी अभिलाषा से अपने सिर को लकड़ी के भार से पीड़ित करते हैं, उन व्यक्तियों का आप पोषण करें तथा उन्हें ऐश्वर्यवान् बनायें । इसके अलावा समस्त शत्रुओं से उनकी रक्षा करें ॥६ ॥

३०७९. **यस्ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।**
आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन्रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! धन-धान्य की अभिलाषा से जो आपको हविष्यान्न, हर्ष प्रदायक सोमरस तथा अतिथि के सदृश सम्मान प्रदान करते हैं, जो देवत्व की कामना से अपने गृह में आपको प्रदीप्त करते हैं । उन व्यक्तियों की सन्तानें उदार हों तथा धर्म -कर्तव्य का दृढ़ता से पालन करने वाली हों ॥७ ॥

३०८०. **यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात्प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।**
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! जो व्यक्ति प्रातः तथा सायंकाल आपकी प्रार्थना करते हैं और हविष्यान्न समर्पित कर आपको हर्षित करते हैं, उन व्यक्तियों को गरीबी से उसी प्रकार पार करें, जिस प्रकार पथिक स्वर्णिम जीन वाले अश्वों से कठिन मार्गों को पार कर जाते हैं ॥८ ॥

३०८१. **यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।**
न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघायोः ॥९ ॥

हे अग्ने ! आप अविनाशी हैं । जो याजक आपके निमित्त आहुतियाँ प्रदान करते हैं तथा स्रुवा को हाथ में लेकर आपकी परिचर्या करते हैं, वे कभी भी धनाभाव से ग्रसित न हों तथा हिंसक प्राणी उन्हें पीड़ित न कर सकें ॥९ ॥

३०८२. **यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।**
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ॥१० ॥

हे तरुण अग्निदेव ! आप हर्ष तथा आलोक से सम्पन्न हैं । आप जिस व्यक्ति के श्रेष्ठ लोक कल्याणकारी भावनाओं से सम्पन्न यज्ञ भाग को ग्रहण करते हैं, वे याज्ञिक निश्चित रूप से हर्षित होते हैं । यज्ञादि सत्कर्मों को सम्पन्न करने वाले श्रेष्ठ याजकों का ही अनुसरण हम सभी करें ॥१० ॥

३०८३. **चित्तिमचित्तिं चिनवद्वि विद्वान्पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।**
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥११ ॥



हे अग्निदेव ! जिस प्रकार अश्वपालक अश्व के पृष्ठ (पीठ) पर कसे हुए साज को उससे अलग कर देता है, उसी प्रकार आप व्यक्तियों के पाप तथा पुण्य को अलग-अलग करें । हे अग्निदेव ! आप हमें श्रेष्ठ सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें तथा दानशीलता प्रदान करके उदार बनाएँ ॥११ ॥

३०८४. **कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।**
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान्पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप मेधावी हैं । आप श्रेष्ठ मनुष्यों के घरों में यज्ञाग्नि रूप में विद्यमान रहने वाले तथा परास्त न होने वाले हैं । देवों ने आपके मेधावी रूप की प्रार्थना की है । हे अग्निदेव ! आप अपने चलायमान तेज से समस्त देव मानवों को भी तेजस्वी बनाएँ ॥१२ ॥

३०८५. **त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।**
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥१३ ॥

नेतृत्व करने वालों में श्रेष्ठ तेजयुक्त तथा नित्य तरुण हे अग्निदेव ! आप सभी मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । सोमरस अभिषुत करने वाले, परिचर्या करने वाले तथा प्रार्थना करने वाले याजकों को आप अत्यन्त हर्षप्रदायक सम्पत्तियाँ प्रदान करते हुए उनकी सब प्रकार से रक्षा करें ॥१३ ॥

३०८६. **अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।**
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार कोई शिल्पकार रथ को तैयार करता है, उसी प्रकार आपकी कामना करते हुए, यज्ञ कर्म में निरत तथा उत्तम कर्म करने वाले अंगिरादि ऋषियों ने अपनी भुजाओं से (अरणि मंथन करके) सत्यरूप आपको प्रकट किया था । उसी के निमित्त हम भी अपने हाथों, पैरों तथा शरीर से कार्य करते हैं ॥१४ ॥

३०८७. **अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।**
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५ ॥

हम सात सूर्य पुत्र सबसे पहले (जाग्रत् होने वाले) विद्वान् हैं । हमने माता उषा से (उषा काल में यज्ञ के निमित्त) अग्नि की किरणों को पैदा किया है । हम आलोकवान् सूर्यदेव के पुत्र अंगिरा हैं । हम तेज -सम्पन्न होकर ऐश्वर्य वाले पहाड़ों (जल से सम्पन्न मेघों) को विदीर्ण करें ॥१५ ॥

३०८८. **अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।**
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥१६ ॥

हमारे पूर्वजों ने श्रेष्ठ, प्राचीन और ऋतरूप यज्ञ कर्मों में निरत रहकर श्रेष्ठ स्थान तथा ओज को प्राप्त किया । उन लोगों ने स्तोत्रों को उच्चारित करके तम को नष्ट किया त[illegible] रंगवाली उषा को प्रकाशित किया ॥१६ ॥

३०८९. **सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न [illegible] जनिमा धमन्तः ।**
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्र[illegible] गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥१७ ॥

जिस प्रकार लोहार धौंकनी द्वार[illegible] लोहे को पवित्र बनाते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ यज्ञादि कर्म में निरत तथा अभिलाषा करने वाले याज[illegible] यज्ञादि कर्म से मनुष्य जीवन को पवित्र बनाते हैं । वे अग्निदेव को प्रदीप्त करके इन्द्रदेव को समृद्ध करते हैं । चारों तरफ से घेर करके उन्होंने महान् गौओं (पोषक प्रवाहों) के झुण्ड को प्राप्त किया था ॥१७ ॥

[यज्ञ मात्र स्थूल कर्मकाण्ड नहीं है । जीवन को परिष्कृत एवं तेजस्वी बनाने की विद्या के रूप में ऋषिगण उसका प्रयोग करते रहे हैं ।]

३०९०. **आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।**
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥१८ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! जैसे अन्न से सम्पन्न घर में पशुओं के झुण्ड की सराहना की जाती है , उसी प्रकार जो लोग देवताओं के निकट उनकी प्रार्थना करते हैं, उनकी सन्तानें समर्थ होती हैं और उनके स्वामी पालन करने में सक्षम होते हैं ॥१८ ॥

३०९१. **अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।**
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥१९ ॥

हे आलोकवान् अग्निदेव ! हम आपकी उपासना करते हैं , जिससे हम सत्कर्म वाले होते हैं । आलोकमान उषाएँ आपके ही सम्पूर्ण तेज को धारण करती हैं । उस तेज से लाभान्वित होते हुए हम विविध प्रकार से, हर्षकारी आप की उपासना करते हैं ॥१९ ॥

३०९२. **एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।**
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ॥२० ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! आप विधाता हैं । आपके निमित्त हम समस्त स्तोत्रों को उच्चारित करते हैं, आप इन्हें स्वीकार करके प्रदीप्त हों । आप हमें अत्यधिक ऐश्वर्यवान् बनाएँ । बहुतों द्वारा वरण करने योग्य हे अग्निदेव ! आप हमें श्रेष्ठ सम्पत्तियाँ प्रदान करें ॥२० ॥

[सूक्त - ३]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३०९३. **आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।**
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥१ ॥

हे सत्पुरुषो ! चंचल बिजली की तरह आने वाली मृत्यु के पूर्व ही अपनी रक्षा के लिए यज्ञ के स्वामी, देवों के आवाहक, रुद्र रूप, द्यावा-पृथिवी के बीच वास्तविक यजन प्रक्रिया चलाने वाले, स्वर्णिम आभायुक्त अग्निदेव का पूजन करें ॥१ ॥

३०९४. **अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।**
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! श्रेष्ठ परिधानों से अलंकृत स्त्री, जिस प्रकार पति की अभिलाषा करती हुई उसे अपने निकट श्रेष्ठ आसन प्रदान करती है, उसी प्रकार हम भी आपको श्रेष्ठ आसन (उत्तर वेदी के रूप में) प्रदान करते हैं । वही स्थान आपके लिए उपयुक्त है । हे सत्कर्म करने वाले अग्निदेव ! आप अपनी तेजस्विता से अलंकृत होकर पधारें । हम आपकी वन्दना करते हैं ॥२ ॥

३०९५. **आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।**
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीळे ॥३ ॥



हे अग्निदेव ! आप याजकों द्वारा की गई स्तुतियों को ध्यान पूर्वक सुनने वाले, सम्पूर्ण जगत् का एक दृष्टि से दर्शन करने वाले, सज्जनों को सुख प्रदान करने वाले, प्रखर, तेजस्वी तथा अविनाशी हैं ॥३ ॥

३०९६. त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥४ ॥

सत्कर्म करने वाले, विद्वान् हे अग्निदेव !आप ही हमारे यज्ञ के अनुष्ठान को समझें । आपके लिए गान किये गये स्तोत्र हमें कब हर्ष प्रदान करने वाले होंगे ? हमारे घर पर आपको मित्रभाव से प्रतिष्ठित करने का अवसर कब प्रकट होगा ? ॥४ ॥

३०९७. कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे पाप कर्मों की चर्चा वरुणदेव से क्यों करते हैं ? आप सूर्यदेव से हमारी निन्दा क्यों करते हैं ? हम लोगों का कौन सा अपराध है ? हर्ष प्रदाता मित्रदेव, पृथ्वी, अर्यमा और भगदेव नामक देवताओं से आपने हमारे प्रति कौन से वचन कहे हैं ? ॥५ ॥

३०९८. कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप जब यज्ञ की हवियों से संवर्द्धित होते हैं, तब उन कथाओं को क्यों कहते हैं ? महान् शक्तिशाली, कल्याणकारी, सभी स्थानों पर गमन करने वाले, सत्य के नायक वायुदेव से तथा पृथ्वी से उन बातों को क्यों कहते हैं ? हे अग्निदेव ! पाप करने वाले व्यक्तियों का संहार करने वाले रुद्रदेव से उस बात को क्यों कहते हैं ? ॥६ ॥

३०९९. कथा महे पुष्टिम्भराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! श्रेष्ठ पुष्टि-प्रदायक पूषादेव से उस पाप कथा को क्यों कहते हैं ? श्रेष्ठ यज्ञ वाली आहुतियों से समृद्ध रुद्रदेव से, बहुप्रशंसनीय विष्णुदेव से उस पाप कर्म को क्यों कहते हैं ? बृहत् संवत्सर से इस पाप युक्त बात को क्यों कहते हैं ? ॥७ ॥

३१००. कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! यथार्थभूत मरुतों से हमारे उस पापकर्म को क्यों कहते हैं ? पूछे जाने पर आदित्य से, अदिति तथा शीघ्रगामी वायु से उस पापकर्म को क्यों कहते हैं ? हे अग्निदेव ! आप समस्त पदार्थों को जानने वाले हैं । आप सब कुछ जानकर दिव्यता प्रदान करें ॥८ ॥

३१०१. ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! हम ऋत यज्ञ से सम्बद्ध ऋत गौ (यज्ञ से उद्‌भूत पोषक प्रवाह) की याचना करते हैं । वह (गौ) कच्ची अवस्था में भी मधुर परिपक्व दुग्ध (पोषक रस) संचरित करने में समर्थ होती है । वह श्यामवर्ण होने पर भी श्वेत पुष्टिवर्धक दुग्ध से प्रजा का पालन करती है ॥९ ॥

[ऊपर क्रमांक पाँच से आठ तक के मंत्रों में अग्निदेव से यह प्रार्थना की गई है कि सर्वज्ञाता होने के कारण हमारे पाप कर्मों को जानकर उन्हें प्रचारित न करें, बल्कि अपनी शक्ति से पापों को नष्ट करके हमें दिव्यता प्रदान करें। प्रचारित करने से दोष बढ़ते हैं, सत्पुरुषों को चाहिए कि वे उन्हें बढ़ाने के नहीं, समाप्त करने के माध्यम बनें।]

३१०२. **ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन।**
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१० ॥

बलशाली तथा महान् अग्निदेव पोषण करने वाले दुग्ध से सिंचित होते हैं। अन्नप्रदाता वे अग्निदेव एक-एक स्थान पर विद्यमान रहकर भी अपनी सामर्थ्य से सभी जगह गमन करते हैं। पानी बरसाने वाले सूर्यदेव आकाश से दिव्यरस रूप प्राणपर्जन्य का दोहन करते हैं ॥१० ॥

३१०३. **ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।**
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥११ ॥

अङ्गिरावंशियों ने यज्ञ की सामर्थ्य से पर्वतों को नष्ट करके रिपुओं (बाधाओं) को दूर किया और गौओं (प्रकाश किरणों) को ग्रहण किया। उसके बाद मनुष्यों ने हर्षपूर्वक उषा को प्राप्त किया। उसी समय अग्निदेव के प्रकट होने पर सूर्यदेव उदित हुए ॥११ ॥

३१०४. **ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने।**
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित्स्रवितवे दधन्युः ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! अमरधर्मा, अविरल रूप से प्रवाहित होने वाली, मीठे जल वाली दिव्य सरिताएँ, संग्राम में जाने वाले उत्साही घोड़े की तरह, यज्ञ द्वारा प्रेरित होकर हमेशा प्रवाहित होती हैं ॥ १२ ॥

३१०५. **मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।**
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! किसी हिंसा करने वाले के यज्ञ में आप कभी न जाएँ तथा पाप बुद्धि वाले हमारे पड़ोसी के यज्ञ में भी न जाएँ। हमें छोड़कर अन्य दुष्ट भ्राता के यज्ञ में न जाएँ और कपट स्वभाव वाले भाई की आहुति की अभिलाषा न करें। हम सभी किसी भी मित्र या शत्रु के अधीन न रहें ॥१३ ॥

३१०६. **रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।**
प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम् ॥१४ ॥

हे सुमुख (यज्ञ रूप) अग्निदेव ! आप हम सबके संरक्षक होकर प्रसन्नतापूर्वक रक्षण साधनों द्वारा हमारी सुरक्षा करें और हम सबको तेजस्वी बनाएँ। आप हमारे कठिन-से-कठिन पापों को विनष्ट करें तथा बढ़े हुए भयंकर असुरों का विनाश करें ॥१४ ॥

३१०७. **एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।**
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे अर्चन-योग्य स्तोत्रों द्वारा हर्षित मन वाले हों। हे पराक्रमी ! आप हमारे हविरूप अन्नों को मननीय स्तोत्रों के साथ स्वीकार करें। हे अङ्गिरस् को जानने वाले अग्निदेव ! आप हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें तथा देवताओं को हर्षित करने वाली प्रार्थनाओं से आप समृद्ध हों ॥१५ ॥



३१०८. **एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।**
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६ ॥

हे विधाता अग्निदेव ! आप विद्वान् तथा क्रान्तदर्शी हैं । हम विप्रगण आपके निमित्त फल प्रदायक, गूढ़, अत्यधिक व्याख्याओं से ग्रथित (गुथे हुए) प्रार्थनाओं को मन्त्रों तथा उक्थों (स्तोत्रों) के साथ उच्चारित करते हैं ॥१६ ॥

[सूक्त - ४]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - रक्षोहा अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३१०९. **कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।**
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप शत्रुओं को दूर करने में सक्षम हैं । जिस प्रकार सशक्त राजा हाथियों पर सवार होकर राक्षसी वृत्ति के शत्रुओं पर हमला करते हैं, वैसे ही आप भी हमला करें । पक्षियों को पकड़ने वाले विस्तृत आकार वाले जाल द्वारा दुष्टों को विविध प्रकार के कष्ट देकर प्रताड़ित करें ॥१ ॥

३११०. **तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।**
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥२ ॥

वायु के सम्पर्क से डोलती हुई द्रुतगामी लपटों से असुरों को भस्म कर डालें । आहुति प्रदान करने पर आप बढ़ी हुई ज्वालाओं के द्वारा असुरों का संहार करें । इस हेतु टूटकर गिरने वाले तारे की गति से अपने तेज को प्रेरित करें ॥२ ॥

३१११. **प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।**
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥३ ॥

हे अदम्य अग्निदेव ! हमारे निकटस्थ या दूरस्थ जो भी शत्रु हैं, उन सबको वश में करने के लिए अति गतिशील सैनिकों को भेजें । हमारी सन्तानों की रक्षा करें । कोई भी आपके भक्तों को पीड़ा न पहुँचा सके ॥३ ॥

३११२. **उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्य१मित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।**
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप जीवन्त होकर अपनी ज्वालाओं का विस्तार करें । उन तीव्र ज्वालाओं के प्रभाव से शत्रुओं को पूर्णरूपेण भस्म कर डालें । हे ज्योतिर्मय ! हमारी प्रगति में जो बाधक हैं, उन्हें सूखे वृक्ष के समान ही समूल भस्म कर डालें ॥४ ॥

३११३. **ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।**
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं से युक्त होकर हमारे शत्रुओं को विध्वंस करें । प्राणियों को कष्ट देने वाले दुष्टों को विजय श्री से हीन करके, हमारे अपराजित शत्रुओं को विनष्ट करें ॥५ ॥

३११४. **स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।**
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥६ ॥

हे नित्य युवा अग्निदेव ! आप तीव्र गति से ऊर्ध्वगमन करने वाले तथा महान् हैं । जो व्यक्ति आपकी प्रार्थना



करते हैं, वे आपकी कृपा प्राप्त करते हैं । आप यज्ञ के स्वामी हैं । आप उस व्यक्ति के निमित्त समस्त शुभ दिनों, ऐश्वर्यों तथा रत्नों को धारण करें । आप उसके घर के सम्मुख प्रकाशित हों ॥६ ॥

३११५. सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! जो याजक मन्त्रोच्चारण करते हुए आहुतियाँ समर्पित करके प्रतिदिन आपको तुष्ट करने की कामना करते हैं, वे सभी श्रेष्ठ, सौभाग्यशाली तथा दानी हों । कठिनाई से प्राप्त करने योग्य सौ वर्ष के आयुष्य को वे प्राप्त करें । उनके सभी दिन शुभ हों और वे यज्ञीय साधनों से परिपूर्ण रहें ॥७ ॥

३११६. अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपकी कृपालु-श्रेष्ठ बुद्धि की पूजा करते हैं । आपके लिए उच्चारित की जाने वाली वाणी, आपके गुणों का गान करे । पुत्र-पौत्रों, श्रेष्ठ अश्वों तथा रथों से सम्पन्न होकर हम आपकी अभ्यर्थना करेंगे । आप नित्यप्रति हमारे निमित्त समस्त पोषक शक्तियों को धारण करें ॥८ ॥

३११७. इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप सदैव प्रज्वलित रहते हैं । इस जगत् में सभी आपकी समीपता का लाभ लेते हुए सदैव आपकी सेवा करते हैं । हम भी अपने शत्रुओं के ऐश्वर्यों को नियन्त्रित करते हुए उत्साह एवं हर्षपूर्वक आपकी उपासना करते हैं ॥९ ॥

३११८. यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! जो व्यक्ति यज्ञ के लिए उपयोगी धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न तथा श्रेष्ठ घोड़ों से योजित स्वर्णिम रथों द्वारा आपके निकट पहुँचते हैं, साथ ही जो आपका अतिथि के सदृश स्वागत -सम्मान करते हैं; सच्चे मित्र की भाँति आप उनकी सुरक्षा करते हैं ॥१० ॥

३११९. महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११ ॥

हे सत्कर्मशील युवा, होतारूप अग्निदेव ! आपकी स्तुतियाँ करते हुए हमने जो बन्धुभाव अर्जित किया है, उससे हम बड़ी-बड़ी आसुरी शक्तियों को नष्ट करें । उन स्तोत्र वचनों को हमने अपने पिता 'गौतम' ऋषि से प्राप्त किया था । हे रिपुओं का दमन करने वाले अग्निदेव ! आप हमारी प्रार्थना को सुनें ॥११ ॥

३१२०. अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥१२ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आपकी वे किरणें सदैव जाग्रत् रहने वाली, द्रुतगामी, हर्षप्रद, प्रमाद से दूर रहने वाली, हिंसा न करने वाली, न थकने वाली, परस्पर मिलकर चलने वाली तथा सुरक्षा करने वाली हैं । वे इस यज्ञ में पधार कर हमारी सुरक्षा करें ॥१२ ॥



३१२१. ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी रक्षक किरणों ने अनुग्रह करके ममता के अन्धे पुत्र को पापों से बचाया था । आप सर्वज्ञ हैं । आपने उसके सम्पूर्ण पुण्यों की सुरक्षा की थी । हानि पहुँचाकर पराजित करने की कामना करने वाले शत्रु आपके कारण सफल नहीं हो सके ॥१३ ॥

३१२२. त्वया वयं सधन्य१स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान्।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥१४ ॥

(यज्ञस्थल पर) निःसंकोच पहुँचने वाले हे अग्निदेव ! हम याजक आपकी कृपा से आपके द्वारा संरक्षित होकर तथा आपके द्वारा निर्देशित पथ पर चलकर धन-धान्य का लाभ प्राप्त करें । हे सत्य का विस्तार करने वाले अग्निदेव ! आप हमारे निकटस्थ तथा दूरस्थ रिपुओं का विनाश करें और क्रम से सम्पूर्ण कार्य करें ॥१४ ॥

३१२३. अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय।
दहाशसो रक्षसः पाह्य१स्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! समिधाओं के द्वारा हम आपको प्रज्वलित करते हैं । आप हमारी स्तुतियों को ग्रहण करें और स्तुतिरहित असुरों का विनाश करें । सखा के सदृश, वंदनीय हे अग्निदेव ! आप रिपुओं, निन्दकों तथा विद्रोहियों से हमारी रक्षा करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ५]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - वैश्वानर अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३१२४. वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥१ ॥

सभी प्राणियों के प्रति समान भाव रखने वाले हम याजकगण, उन सुखकारी एवं तेजस्वी वैश्वानर अग्निदेव के निमित्त, किस प्रकार आहुति प्रदान करें ? जिस प्रकार स्तम्भ छप्पर को धारण करता है, उसी प्रकार वे अग्निदेव अपने अत्यधिक बृहत् शरीर से समस्त जगत् को धारण करते हैं ॥१ ॥

३१२५. मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान्।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२ ॥

हे होताओ ! जो वैश्वानरदेव आहुतियों से सन्तुष्ट होकर, ज्ञानी तथा मरणधर्मा हम याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उनकी आलोचना न करें । वे अग्निदेव अत्यन्त मेधावान्, अविनाशी तथा बुद्धिमान् हैं, वे अत्यन्त श्रेष्ठ नायक तथा महिमावान् हैं ॥२ ॥

३१२६. साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान्।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥३ ॥

वे अग्निदेव दोनों लोकों (द्यु तथा भूलोक) में अपनी लपटों को विस्तृत करने वाले, तीक्ष्ण ओजवाले, सहस्रों प्रकार की सामर्थ्य वाले, अत्यन्त शौर्यवान् तथा साहसी हैं । वे गो पद के सदृश रहस्यमय हैं । विद्वानों के सहयोग से हम उनका ज्ञान प्राप्त करें ॥३ ॥



[गोपद गाय का खुर एक होते हुए भी दो भागों में विभक्त होता है, अग्निदेव भी एक होते हुए दो भागों में विभक्त होकर द्यावा-पृथिवी दोनों में सक्रिय होते हैं। मनुष्य का मस्तिष्क भी गोखुर की तरह विभक्त है। पूरे तंत्र को संचालित करने वाली रहस्यमय ऊर्जा उसी में सन्निहित है। इस मन्त्र से रहस्यमय मस्तिष्क का भी संकेत मिलता है।]

३१२७. **प्रताँ अग्निर्बभसत्तिग्मजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।**
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४ ॥

ज्ञानी मित्रदेव और वरुणदेव के प्रिय पात्रों को जो व्यक्ति विनष्ट करते हैं, उनको श्रेष्ठ धन वाले तथा तीक्ष्ण दाँतों वाले अग्निदेव अपने प्रखर तेज से भस्मसात् करें ॥४ ॥

३१२८. **अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।**
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥५ ॥

बन्धु विहीन तथा पति से विद्वेष करने वाली स्त्री जिस प्रकार दुःख पाती है, उसी प्रकार सत्यविहीन यज्ञानुष्ठान से रहित तथा अग्नि से विद्वेष करने वाले असत्यभाषी पापी व्यक्ति नरक जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं ॥५ ॥

३१२९. **इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।**
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥६ ॥

सभी को पवित्रता प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! जैसे कोई उदारचेता पुरुष कम याचना करने वाले को भी अधिक दान देता है, उसी प्रकार आप मुझ अहिंसक को, रिपुओं को परास्त करने योग्य बल से युक्त, गम्भीर तथा महान् आश्रय प्रदान करने वाले सप्त धातुओं से सम्पन्न प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६ ॥

३१३०. **तमिन्न्वे३व समना समानमभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।**
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥७ ॥

अनेक रंगों वाली तथा समस्त पदार्थों को उत्पन्न करने वाली धरती पर द्रुतगामी वैश्वानर देव को प्रजापति ने विचरण करने के लिए आरोपित किया। हमारे द्वारा यज्ञादि सत्कर्मों के समय पहले ही मनोयोगपूर्वक की गई पवित्रताकारक प्रार्थनाएँ उन समदर्शी वैश्वानर को प्राप्त होती हैं ॥७ ॥

३१३१. **प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति ।**
यदुस्त्रियाणामप वारिव व्रन्पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥८ ॥

विद्वानों का मत है कि गोपालक जिस दूध को पानी के सदृश दुहते हैं, उसी दूध को वैश्वानरदेव गुहा में छिपाकर रखते हैं। वे विस्तृत धरती के प्रीतियुक्त तथा उत्तम प्रदेश की सुरक्षा करते हैं। हमारे इस वक्तव्य में अनुचित कौन सी बात है ? ॥८ ॥

३१३२. **इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्त्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।**
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥९ ॥

जिन अग्निदेव की दुग्ध प्रदान करने वाली गौएँ (जल वर्षा करने वाली किरणें) यज्ञादि कर्मों में सहायक होती हैं, जो स्वयं आलोकवान् हैं, गुहा में निवास करते हैं तथा जो द्रुतगति से गमन करते हैं, सूर्यमण्डल में व्याप्त उन वन्दनीय वैश्वानर देव के विषय में हम जानते हैं ॥९ ॥

३१३३. **अध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।**
मातुष्पदे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥१० ॥



माता-पिता के सदृश द्यावा-पृथिवी के मध्य में आलोकित होनेवाले (वैश्वानर) सूर्यदेव गाय के श्रेष्ठ दुग्ध का मुख से पान करते हैं। बलशाली, तेजोयुक्त तथा प्रयत्नशील वैश्वानर की जिह्वा, गो माता के उत्कृष्ट स्थान में स्थित दूध को पीने की इच्छा करती है ॥१० ॥

३१३४. ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम्।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत्पृथिव्याम् ॥११ ॥

किसी के द्वारा पूछे जाने पर हम यजमान नमस्कार करते हुए इस सत्य बात का निवेदन करते हैं कि हे अग्निदेव ! आपकी कृपा से जो कुछ भी हमें प्राप्त हुआ है, उसके आप ही अधिकारी हैं। द्यावा-पृथिवी में विद्यमान समस्त ऐश्वर्यों के भी आप स्वामी हैं ॥११ ॥

३१३५. किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान्।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२ ॥

सभी प्राणियों के ज्ञाता हे अग्निदेव ! इस सम्पत्ति में से कौन सा ऐश्वर्य तथा रत्न हमारे लिए उपयुक्त है ? उसको आप बताएँ, क्योंकि आप सर्वज्ञाता हैं। हमारे योग्य गुफा में विद्यमान ऐश्वर्य को प्राप्त करने का श्रेष्ठ मार्ग हमें बताएँ, जिससे हम लक्ष्य पूर्ति के अभाव में निन्दित होकर अपने घर न लौटें ॥१२ ॥

३१३६. का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम्।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥१३ ॥

धन प्राप्त करने की क्या सीमा है ? वह मनोहर धन क्या है ? जिस प्रकार द्रुतगामी अश्व संग्राम की ओर गमन करते हैं, उसी प्रकार हम समस्त ऐश्वर्यों की तरफ गमन करते हैं। अविनाशी आदित्यदेव की तेजस्वी पत्नियाँ उषाएँ अपने द्युलोक से हमें कब प्रकाशित करेंगी ? ॥१३ ॥

३१३७. अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! रूखी, फलरहित, कठोर तथा अल्पाक्षर वाणी वाले अतृप्त लोग इस यज्ञ में आपकी क्या प्रार्थना करेंगे ? शौर्य एवं आयुधों से रहित मनुष्य दुःख प्राप्त करते हैं ॥१४ ॥

३१३८. अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५ ॥

प्रज्वलित रहने वाले, बल वाले तथा सबको निवास प्रदान करने वाले अग्निदेव का तेज यजमान के हित के लिए यज्ञमण्डप में सदैव आलोकित होता रहता है। शुभ्र तेजस्वी परिधान धारण करने के कारण उनका रूप मनोहर है। वे अनेकों के द्वारा आहूत होकर उसी प्रकार आलोकित होते हैं, जिस प्रकार धन-ऐश्वर्य को प्राप्त करके कोई राजपुरुष आलोकित होता है ॥१५ ॥

[सूक्त - ६]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

३१३९. ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान्।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥१ ॥

यज्ञ के सम्पादक हे अग्ने ! आप सर्वश्रेष्ठ याज्ञिक हैं । अत: हम याजकों से आप ऊँचे स्थान पर विराजमान हों । आप ही हमारी स्तुतियों को सुनने वाले हैं । आप विद्वान् याजकों की बौद्धिक क्षमता को बढ़ाने वाले हैं ॥१ ॥

३१४०. अमूरो होता न्यसादि विक्ष्व१ग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥२ ॥

ज्ञानवान्, यज्ञसम्पादक, हर्षप्रदायक तथा मेधावी अग्निदेव यज्ञ में याजकों के बीच प्रतिष्ठित होकर सुशोभित होते हैं । वे आदित्य के सदृश अपनी रश्मियों को ऊर्ध्वमुखी करते हैं तथा स्तम्भ के सदृश द्युलोक के ऊपर धूम्र को स्थापित करते हैं (अर्थात् यज्ञीय ऊर्जा का ऊर्ध्व लोकों तक विस्तार करते हैं) ॥२ ॥

३१४१. यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः ।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥३ ॥

याजकों ने घृत से परिपूर्ण प्राचीन स्रुवा पात्र हाथ में सँभाल लिया है । यज्ञ संवर्धक अध्वर्युगण यज्ञ के चारों तरफ प्रदक्षिणा करते हैं तथा नवनिर्मित यूप सीधा खड़ा है । आक्रामक, प्रदीप्त, सर्वदर्शी तथा श्रेष्ठ प्रतिभाशाली अग्निदेव प्रज्वलित हो रहे हैं ॥३ ॥

३१४२. स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥४ ॥

कुश-आसनों के बिछाये जाने पर तथा अग्नि के प्रज्वलित होने पर याजक देवताओं को हर्षित करने के लिए खड़े होते हैं । यज्ञ सम्पादक, तेजस्वी तथा महान् गुण सम्पन्न अग्निदेव, समर्पित की गई आहुतियों को विस्तृत करते हुए तीनों लोकों में फैलाते हैं । इस प्रकार सबका पालन करते हैं ॥४ ॥

३१४३. परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥५ ॥

देवों का आवाहन करने वाले, सबको हर्ष प्रदान करने वाले तथा मधुर ध्वनि करने वाले यज्ञाग्नि देव, सामान्य गति से चारों ओर घूमते हैं । उनकी रश्मियाँ वेगवान् अश्व की तरह चारों ओर दौड़ती हैं और उनके प्रज्वलित होने पर सभी लोक उनसे भयभीत हो जाते हैं ॥५ ॥

३१४४. भद्रा ते अग्ने स्वनीक सन्दृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी३ रेप आ धुः ॥६ ॥

हे श्रेष्ठ ज्वालाओं वाले अग्निदेव ! आप शत्रुओं को भयभीत करने वाले तथा सब जगह विद्यमान रहने वाले हैं । आपकी श्रेष्ठ तथा हितकारी छवि भली प्रकार दिखायी देती है; क्योंकि रात्रि के अंधकार द्वारा आपका आलोक ढका नहीं जा सकता । आसुरी वृत्ति के दुष्टजन आपके शरीर में पाप की स्थापना (आपका दुरुपयोग) नहीं कर सकते ॥६ ॥

३१४५. न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावकोऽ३ग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥७ ॥

सबको पैदा करने वाले हे अग्निदेव ! आपके दान (पोषण या प्रकाश) को कोई रोक नहीं सकता । माता-पिता रूप द्युलोक तथा भूलोक भी आपकी कामना को तुरन्त पूर्ण करने में सक्षम नहीं होते । आप ज्ञानवान् तथा शुद्ध करने वाले हैं । आप सज्जनों के मध्य परम हितैषी मित्र की भाँति प्रकाशित होते हैं ॥७ ॥



३१४६. द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु।
उषर्बुधमथर्यो३ न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥८ ॥

बहिन रूप दसों अँगुलियाँ जिन अग्निदेव को अरणि मन्थन द्वारा प्रकट करती हैं; वे अग्निदेव प्रातः काल में जागने वाले, आहुतियों को ग्रहण करने वाले, तेज वाले तथा सुन्दर शरीर वाले हैं। वे तीक्ष्ण फरसे की तरह विरोधी असुरों का संहार करने वाले हैं ॥८ ॥

३१४७. तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः।
अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमह्वन्त दस्माः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आपके वे घोड़े (प्रकाश किरणें) यज्ञ में बुलाये जाते हैं। वे लाल रंग वाले, श्रेष्ठ चाल वाले, आलोक फैलाने वाले, सुगठित शरीर वाले, घृत बढ़ाने वाले, युवा तथा दर्शनीय हैं ॥९ ॥

३१४८. ये ह त्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ॥१० ॥

हे अग्ने ! आपकी वे किरणें रिपुओं को परास्त करने वाली, प्रकाशित होने वाली, गतिशील तथा वंदनीय हैं। वे अश्वों के सदृश अपने निर्धारित स्थान पर गमन करती हैं तथा मरुतों की तरह अत्यधिक शब्द करती हैं ॥१०॥

३१४९. अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११ ॥

हे प्रज्वलित अग्निदेव ! आपके निमित्त हम याजकों ने स्तोत्र रचित किये हैं। हम उक्थों (स्तोत्रों) का उच्चारण करते हैं तथा यज्ञ करते हैं। आप उन्हें ग्रहण करें। यजमानों द्वारा प्रार्थनीय होता रूप अग्निदेव की पूजा करते हुए श्रेष्ठ ऐश्वर्य की अभिलाषा से याजकगण यज्ञस्थल पर आसीन होते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ७]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ - जगती, २ - ६ अनुष्टुप्।]

३१५०. अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥१ ॥

देवों के आवाहक, यज्ञीय कर्मों के निर्वाहक अग्निदेव यज्ञों में ऋत्विजों के द्वारा प्रशंसनीय स्तुतियों को प्राप्त करने वाले हैं। यज्ञीय कार्य हेतु इस यज्ञवेदी में इन्हें स्थापित किया गया है। यजमानों के उत्कर्ष हेतु भृगुवंशी ऋषियों ने इन विलक्षण एवं विस्तृत कर्मों के सम्पादक अग्निदेव को वनों में प्रज्वलित किया ॥१ ॥

३१५१. अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम्।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों द्वारा प्रार्थनीय तथा आलोक सम्पन्न हैं। सभी लोग आपको जीवन दाता के रूप में ग्रहण करते हैं। आपका आलोक हर तरफ कब विस्तृत होगा ? ॥२ ॥

३१५२. ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः। विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥३ ॥

वे अग्निदेव ज्ञान से युक्त, माया से रहित तथा समस्त यज्ञों को आलोकित करने वाले हैं। जैसे नक्षत्रों के द्वारा द्युलोक सुशोभित होता है, उसी प्रकार आप मनुष्यों के यज्ञगृह को सुशोभित करते हैं ॥३ ॥



३१५३. आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥४ ॥

जो अग्निदेव द्रुतगामी, याजकों के संदेशवाहक, केतुस्वरूप, तेजोमय तथा अपनी विशेषताओं से समस्त मनुष्यों का उपकार करने वाले हैं; उनको सभी मनुष्य अपने गृहों में प्रतिष्ठित करते हैं ॥४ ॥

३१५४. तमीं होतारमानुषक्चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ॥५ ॥

यज्ञ सम्पादक, ज्ञानवान्, मनोहर, पवित्र दीप्ति वाले, होताओं में सर्वश्रेष्ठ तथा सात रंग वाली प्रकाश किरणों से सम्पन्न अग्निदेव को यजमानों ने उपयुक्त स्थान पर स्थापित किया है ॥५ ॥

३१५५. तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥६ ॥

अद्‌भुत ज्ञान वाले उन अग्निदेव को याजकों ने प्रतिष्ठित किया है, जो जल तथा वृक्षों के समूह में विद्यमान रहने वाले, गुफा में रहने वाले, आहुति ग्रहण करने वाले तथा कमनीय होकर भी पास में न रखने लायक हैं ॥६ ॥

३१५६. ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्नणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥७ ॥

वे अग्निदेव साधकों द्वारा नित्य नमनपूर्वक सम्पन्न किये जाने वाले यज्ञों को जानते हैं । वे श्रेष्ठ सत्यवान् तथा आहुतियों को ग्रहण करने वाले हैं । याजकगण प्रातः काल निद्रा को त्यागकर यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करते हुए उन अग्निदेव को हर्षित करते हैं ॥७ ॥

३१५७. वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी सञ्चिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥८ ॥

हे विद्वान अग्निदेव ! आप यज्ञदूत के (अपने) कार्य के ज्ञाता हैं तथा द्यावा-पृथिवी के बीच में विद्यमान आकाश को जानने वाले हैं । आप अत्यन्त प्राचीन, सबको समृद्ध करने वाले, रिपुओं से पराजित न होने वाले तथा देवताओं के संदेशवाहक हैं । आप दिव्य लोक से भी ऊँचे स्थान में गमन करते हैं ॥८ ॥

३१५८. कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्व१र्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥९ ॥

हे तेजसम्पन्न अग्निदेव ! आपका पथ काले रंग का है तथा आपकी प्रभा श्रेष्ठ है । आपका गमनशील तेज तेजस्वी पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ है । जब अरणियों के बीच में आप पैदा होते हैं, तब पैदा होकर आप यजमानों के संदेशवाहक हो जाते हैं ॥९ ॥

३१५९. सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ॥१० ॥

अरणिमन्थन के पश्चात् पैदा हुए अग्निदेव का ओज दिखायी देने लगता है । जब अग्नि की लपटों को लक्ष्य बनाकर हवा चलती है, तब वे काष्ठ के ढेर में अपनी तीक्ष्ण लपटों को संयुक्त कर देते हैं और कठोर-से कठोर अन्नरूप काष्ठों को अपने तीक्ष्ण दाँतों (लपटों) से भक्षण कर जाते हैं ॥१० ॥



३१६०. तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११ ॥

वे अग्निदेव अपनी द्रुतगामी किरणों द्वारा अन्नरूप काष्ठों को शीघ्र ही भस्मीभूत कर देते हैं । उसके बाद वे अपने आप को संदेशवाहक बना लेते हैं । वे समिधाओं को जलाकर वायु प्रवाहों से युक्त हो जाते हैं । जिस प्रकार घुड़सवार घोड़े को परिपुष्ट करता है, उसी प्रकार अग्निदेव अपनी लपटों को तेजस्वी बनाते हुए सबको प्रेरणा देते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

३१६१. दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥१ ॥

सम्पूर्ण ज्ञान से सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप हविवाहक हैं । आप समस्त देव शक्तियों के प्रतिनिधि हैं, यज्ञ के साधनरूप हैं । हम आपसे स्तुति के माध्यम से अनुकूल होने की प्रार्थना करते हैं । आप सदा कृपावान् बने रहें ॥१ ॥

३१६२. स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ॥२ ॥

महिमावान् वे अग्निदेव समस्त ऐश्वर्यों के ज्ञाता हैं । वे दिव्यलोक के श्रेष्ठतम स्थानों के भी ज्ञाता हैं । इसलिए वे समस्त इन्द्रादिदेवों का हमारे इस यज्ञ में आवाहन करें ॥२ ॥

३१६३. स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥३ ॥

वे आलोकवान् अग्निदेव इन्द्रादिदेवों को नमन-वन्दन करने की विधि को जानते हैं । यज्ञ की कामना करने वालों को वे यज्ञ मण्डप में अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३ ॥

३१६४. स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥४ ॥

याजकों से प्राप्त हव्य को देवताओं तक पहुँचाने वाले वे होतारूप अग्निदेव दूत के कार्य को भली-भाँति जानने वाले हैं । वे स्वर्ग लोक के आरोहण-योग्य स्थान को जानने वाले तथा सब जगह विद्यमान रहते हैं ॥४ ॥

३१६५. ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥५ ॥

जो याजक आहुति प्रदान करके उन अग्निदेव को हर्षित करते हैं; उन्हें समिधाओं द्वारा प्रज्वलित करते हुए समृद्ध करते हैं, ऐसे याजक के समान हम भी यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करते हुए अग्निदेव को प्रसन्न करें ॥५ ॥

३१६६. ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ॥६ ॥

जो याजक अग्निदेव को हवि प्रदान करते हुए उनकी सेवा करते हैं, वे समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं । ऐसे याजक शक्तिशाली पुत्रों आदि से भी सम्पन्न होते हैं ॥६ ॥

३१६७. अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ॥७ ॥

अनेकों द्वारा स्पृहणीय ऐश्वर्य नित्य हमारे समीप आए । वे अग्निदेव हमारे यज्ञों में विविध प्रकार से धन-धान्य प्रदान करें ॥७ ॥

३१६८. स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ॥८ ॥

वे मेधावी अग्निदेव अपनी सामर्थ्य द्वारा मानवों के कष्टों को द्रुतगामी बाणों के सदृश तीक्ष्ण प्रहार करके पूर्णरूपेण नष्ट कर देते हैं ॥८ ॥



[सूक्त - ९]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

३१६९. **अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम्। इयेथ बर्हिरासदम् ॥१ ॥**

हे अग्निदेव ! आप उपासकों को समृद्ध और सुखी बनाएँ, क्योंकि आप सामर्थ्यवान् हैं- महान् हैं । उपासक यजमानों के समीप पवित्र कुश- आसन पर बैठने के लिये आप पधारें ॥१ ॥

३१७०. **स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः। दूतो विश्वेषां भुवत् ॥२ ॥**

असुरों द्वारा किये गये प्रहार जिनको नष्ट नहीं कर सकते, मनुष्यलोक में स्वतन्त्र रूप से विचरने वाले वे अनश्वर अग्निदेव सम्पूर्ण देवताओं के दूत हैं ॥२ ॥

३१७१. **स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु। उत पोता नि षीदति ॥३ ॥**

वे अग्निदेव यज्ञ मण्डप के चारों तरफ ले जाये जाते हैं । सोमयज्ञों में प्रार्थनीय वे अग्निदेव यज्ञ सम्पादक, होता तथा परिशोधक के रूप में विराजते हैं ॥३ ॥

३१७२. **उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे। उत ब्रह्मा नि षीदति ॥४ ॥**

वे अग्निदेव प्रार्थनीय एवं यज्ञादि कर्म सम्पन्न करने वाले होतारूप हैं । वे यज्ञ-मण्डप में गृहस्वामी तथा ब्रह्मा रूप में विद्यमान रहते हैं ॥४ ॥

३१७३. **वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम्। हव्या च मानुषाणाम् ॥५ ॥**

हे अग्निदेव ! आप यज्ञों में याजकों द्वारा प्रदत्त आहुतियों की अभिलाषा करते हैं । (यज्ञ में विद्यमान मनुष्यों को) श्रेष्ठ प्रेरणाएँ प्रदान करते हैं ॥५ ॥

३१७४. **वेषीद्वस्य दूत्यं१ यस्य जुजोषो अध्वरम्। हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ॥६ ॥**

हे अग्निदेव ! आहुतियाँ ग्रहण करने के लिए आप जिस याजक के यज्ञ को स्वीकार करते हैं, उसके हव्य को देवताओं तक पहुँचाकर दूत का कार्य भी करते हैं ॥६ ॥

३१७५. **अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः। अस्माकं शृणुधी हवम् ॥७ ॥**

अंङ्गिरारूप हे अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञ में हव्य को ग्रहण करें तथा हमारी स्तुति को सुनें ॥७ ॥

३१७६. **परि ते दूळभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः ॥८ ॥**

किसी से प्रभावित न होने वाला आपका वह रथ जिससे आप (लोकहित हेतु) दान देने वालों की रक्षा करते हैं; उससे हम सबकी चारों ओर से भली-भाँति रक्षा करें ॥८ ॥

[सूक्त - १०]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - पद पंक्ति, ४, ६,७ पदपंक्ति अथवा उष्णिक् ५ महापद पंक्ति, ८ उष्णिक् ।]

३१७७. **अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम्। ऋध्यामा त ओहैः ॥१ ॥**

हे अग्निदेव ! आज हम याजकगण यज्ञ के समान (हितकारी) , अश्व के समान गतिशील, आपके यश को



बढ़ाने के लिए ओह नामक हृदयस्पर्शी स्तोत्रों का प्रयोग करते हैं ॥१ ॥

३१७८. **अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः। रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२ ॥**

हे अग्निदेव ! कल्याणकारी, बलवर्द्धक, अभीष्ट प्रदान करने वाले और सत्य स्वरूप आप महान् हैं तथा हमारे यज्ञ के मुख्य आधार हैं ॥२ ॥

३१७९. **एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्स्व१र्ण ज्योतिः। अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः॥३ ॥**

हे अग्निदेव ! सूर्य के समान तेजस्वी, श्रेष्ठमना, आप पूज्य इन्द्रादि देवों के साथ हमारे यज्ञ में पधारें ॥३ ॥

३१८०. **आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम। प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥४ ॥**

हे अग्निदेव ! आज हम श्रेष्ठतम स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए आपकी प्रार्थना करते हैं। हम आपको आहुतियाँ प्रदान करते हैं। आपकी तेजस्वी लपटें मेघसदृश ध्वनि करती हैं ॥४ ॥

३१८१. **तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः। श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके॥५ ॥**

हे अग्निदेव ! आपकी प्रीतियुक्त प्रभा आभूषण के सदृश है। समस्त पदार्थों को आश्रय देने के लिए वह रात-दिन सुशोभित होती है ॥५ ॥

३१८२. **घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम्। तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥६ ॥**

हे अन्नसम्पन्न अग्निदेव ! आपका स्वरूप शुद्ध घृत के सदृश पापरहित है। आपका पवित्र तथा मनोहर तेज आभूषण के सदृश आलोकवान् है ॥६ ॥

३१८३. **कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्तात्। इत्था यजमानादृतावः ॥७ ॥**

हे सत्य से सम्पन्न अग्ने ! यज्ञ करने वाले मनुष्यों के प्राचीन से प्राचीन पाप को भी आप दूर कर देते हैं ॥७ ॥

३१८४. **शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे। सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥८ ॥**

हे अग्निदेव ! देवताओं तथा आपके साथ हमारी मित्रता और बन्धुत्व भाव कल्याणकारी हो। यह मित्रता यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के रूप में हम सबका मंगल करे ॥८ ॥

[सूक्त - ११]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

३१८५. **भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य।**
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥१ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! आपका हितकारी तेजस् दिन में भी चारों तरफ आलोकित होता है तथा सुन्दर और देखने योग्य तेजस् रात्रि में भी दिखाई देता है। आप सौंदर्यवान् हैं। स्निग्ध आज्य (घृत) हव्य के रूप में आपको समर्पित किया जाता है ॥१ ॥

३१८६. **वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः।**
विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्र देवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥२ ॥

विभिन्न रूपों में प्रकट होने वाले हे अग्निदेव ! यज्ञादि कर्मों के साथ प्रार्थना करने वालों से आप प्रशंसित होकर उनके लिए स्वर्गलोक के द्वार (उन्नति का मार्ग) खोल देते हैं। श्रेष्ठतम तेज से सम्पन्न हे अग्निदेव ! समस्त देवताओं तथा याजकों को जो महान् ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, वही हमको भी प्रदान करें ॥२ ॥



३१८७. **त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि।**
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥३ ॥

हे अग्ने ! उत्कृष्ट चिन्तन करने वाली बुद्धि (प्रज्ञा) तथा आराधनीय स्तोत्र आपके द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। शुभ कर्म करने वाले तथा दान देने वाले मनुष्य के निमित्त पुष्टिकारक ऐश्वर्य भी आपके द्वारा प्रकट किये गये हैं॥३ ॥

३१८८. **त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः।**
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥४ ॥

हे अग्ने ! बलशाली, अन्न से सम्पन्न , श्रेष्ठ यज्ञ कर्म तथा सत्यबल से सम्पन्न (पुरुष या पुत्र) आपके द्वारा ही पैदा होते हैं। देवताओं के द्वारा प्रेरित हर्षप्रदायक ऐश्वर्य तथा द्रुतगामी (अश्व) भी आपके द्वारा ही उत्पन्न होते हैं ॥४॥

३१८९. **त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम्।**
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥५ ॥

हे अविनाशी अग्ने ! आप देवताओं में सर्वश्रेष्ठ, महान् गुणसम्पन्न, हर्षप्रदायक जिह्वा वाले, असुरों के संहारक, दुष्टों के विनाशक, गृहपति तथा ज्ञानी हैं। देवाभिलाषी याजकगण विवेक द्वारा आपकी परिचर्या करते हैं ॥५ ॥

३१९०. **आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि।**
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ॥६ ॥

बल से उत्पन्न होने वाले हे अग्निदेव ! आप रात्रि के समय कल्याणकारी तथा तेजस्वी होकर हमारे हित के लिए हमारी सुरक्षा करते हैं। जिस प्रकार आप याजकों का पोषण करते हैं, उसी प्रकार हमारे अविवेक को दूर करें। हमारे समीप से पाप तथा दुर्बुद्धि को भी दूर करें ॥६ ॥

[सूक्त - १२]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३१९१. **यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन्।**
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥१ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! जो व्यक्ति स्रुक् (स्रुवा या इन्द्रियों) को संयमित करके आप (अग्नि या प्राणाग्नि) को प्रदीप्त करते हैं तथा जो नित्य तीनों सवनों में हवि रूप अन्न प्रदान करते हैं, वे इन तुष्टिकारक कार्यों द्वारा आपके तेज को प्राप्त करते हैं। उस तेजस्विता के द्वारा सभी शत्रुओं को परास्त करते हैं ॥१ ॥

[इन्द्रिय संयम से प्राणाग्नि तेजस्वी बनती है, उसके माध्यम से सभी बाधाओं को परास्त किया जाना सम्भव है।]

३१९२. **इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन्।**
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन्रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप महान् हैं। जो मनुष्य परिश्रमपूर्वक आपके निमित्त समिधाएँ लाते हैं और सभी जगह विद्यमान आपके तेज की उपासना करते हैं, जो प्रातः- सायं आपको प्रज्वलित करते हैं, वे सभी बलशाली होकर अपने रिपुओं का विनाश करते हैं तथा ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

३१९३. **अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः।**
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ॥३ ॥



शौर्य एवं पराक्रम के धनी वे अग्निदेव श्रेष्ठ अन्न तथा धनों के स्वामी हैं । अत्यन्त शक्ति तथा धन-धान्य से सम्पन्न अग्निदेव, स्तोताओं को परम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३ ॥

३१९४. यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्व१स्माँ अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥४ ॥

चिरयुवक हे अग्निदेव ! यदि आपके उपासकों के बीच हमने भूलवश कोई पाप किया हो, तो आप हमें उन समस्त पापों से मुक्त करें । सब जगह विद्यमान रहने वाले हे अग्निदेव ! आप हमारे पापों को शिथिल करें ॥४ ॥

३१९५. महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे मित्र होने के कारण आप हमें इन्द्र आदि देवताओं अथवा मानवों के प्रति अज्ञानवश किये गये पापों से दण्डित न करें । आप हमारे पुत्र तथा पौत्रों को हर्ष और आरोग्य प्रदान करें ॥५ ॥

३१९६. यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षितामभुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥६ ॥

हे पूजनीय तथा सबको आश्रय प्रदान करने वाले अग्निदेव ! जिस प्रकार आपने पैर बँधी गौ को छुड़ाया था, उसी प्रकार हमारे पापों से हमें मुक्त करें । हे अग्निदेव ! आप हमारी आयु को और भी अधिक बढ़ायें ॥६ ॥

[सूक्त - १३]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - अग्नि (लिङोक्त देवता) । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३१९७. प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत्सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥१ ॥

सुन्दर मनवाले अग्निदेव उषाओं के पूर्व ही रत्न के सदृश देदीप्यमान अपने ओज को फैलाते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आप यज्ञादि सत्कर्म करने वालों के गृह में गमन करें । तेजस्वी सूर्यदेव उदित हो रहे हैं ॥१ ॥

३१९८. ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्द्रप्सं दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत्सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥२ ॥

जिस प्रकार बलशाली वृषभ गौओं की इच्छा करके धूल को उड़ाते हैं, उसी प्रकार तेजस्वी आदित्य अपनी रश्मियों को ऊपर की ओर फैलाते हैं । जब रश्मियाँ आदित्य को द्युलोक में चढ़ाती हैं, तब मित्रावरुण अपने-अपने कर्मों का अनुगमन करते हैं ॥२ ॥

३१९९. यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥३ ॥

अपने स्थान पर दृढ़ रहने वाले तथा अपने कर्म का परित्याग न करने वाले देवताओं ने चारों तरफ की तमिस्रा को नष्ट करने के लिए जिन आदित्यदेव का सृजन किया, उन सम्पूर्ण जगत् का अवलोकन करने वाले आदित्यदेव को सात अश्व वहन करते हैं ॥३ ॥

[संचरित होने वाली किरणों को अश्व कहा जाता है । सूर्य का प्रकाश सात रंग की किरणों से मिलकर बना है । इसीलिए इसे सात अश्वों से संचालित कहा गया है ।]



३२००. **वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।**
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्व१न्तः ॥४ ॥

हे आलोकवान् सूर्यदेव ! आप अपनी रश्मियों को बिखेरते हुए तथा काली रात रूपी आवरण को नष्ट करते हुए अपने शक्तिशाली अश्वों द्वारा सब जगह गमन करते हैं । कम्पायमान आपकी रश्मियाँ आकाश के बीच में चर्म के समान विद्यमान अंधकार को दूर करती हैं ॥४ ॥

३२०१. **अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।**
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५ ॥

बिना आश्रय तथा बन्धन के ये सूर्यदेव किस शक्ति से ऊपर की ओर गमन करते हैं ? वे नीचे क्यों नहीं पतित होते ? इसे किसने देखा है ? द्युलोक के आश्रय रूप होकर वे सत्यरूप सूर्यदेव स्वर्ग की सुरक्षा करते हैं ॥५॥

[सूक्त - १४]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि (लिङ्गोक्त देवता) । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३२०२. **प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः ।**
आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥१ ॥

देवत्व सम्पन्न, सर्वज्ञाता अग्निदेव (सूर्य रूप में) अपने ओज द्वारा तेजयुक्त उषा को आलोकित करते हैं । हर प्रकार से प्रार्थनीय हे अश्विनीकुमारो ! आप भी अपने रथ द्वारा हमारे यज्ञ में पधारें ॥१ ॥

३२०३. **ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।**
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥२ ॥

वे सवितादेव, सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते हुए अपनी ऊर्ध्वमुखी रश्मियों का आश्रय लेते हैं । वे सबका अवलोकन करने वाले हैं । अपनी रश्मियों के द्वारा द्यावा-पृथिवी तथा अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करते हैं ॥२ ॥

३२०४. **आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।**
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्यु१षा ईयते सुयुजा रथेन ॥३ ॥

ऐश्वर्य धारण करने वाली, रक्तवर्ण वाली, ज्योति से सम्पन्न रश्मियों के माध्यम से सुन्दर उषा प्रकट होती हैं । वे प्राणियों को जाग्रत् करती हुई उनका कल्याण करने के निमित्त अपने श्रेष्ठ रथ द्वारा सर्वत्र गमन करती हैं ॥३ ॥

३२०५. **आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।**
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! उषा के आलोकित होने पर, रथ को खींचने में अत्यन्त सक्षम आपके घोड़े हमारे इस यज्ञ में आप दोनों को ले आएँ । हे शक्तिशाली अश्विनीकुमारो ! यह सोमरस आपके लिए है, अत: इस यज्ञ में सोमरस पान करके आनन्दित हों ॥४ ॥

३२०६. **अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।**
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५ ॥

बिना आश्रय तथा बन्धन के सूर्यदेव किस शक्ति से ऊपर की ओर गमन करते हैं ? वे नीचे क्यों नहीं पतित होते ? इसे किसने देखा है ? द्युलोक के आश्रय रूप होकर वे सत्यरूप सूर्यदेव स्वर्ग की सुरक्षा करते हैं ॥५ ॥



[सूक्त - १५]

[**ऋषि**- वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि, ७- ८ सोमक साहदेव्य, ९-१० अश्विनीकुमार । **छन्द** -गायत्री ।]

३२०७. **अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥१ ॥**

यज्ञ के होता, देवों के भी देव तथा यजनीय अग्निदेव यज्ञ मण्डप में द्रुतगामी अश्वों के द्वारा लाये जाते हैं ॥१॥

३२०८. **परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥२ ॥**

वे देव देवों के निमित्त अन्न ग्रहण करके रथी के सदृश यज्ञस्थल के चारों ओर तीन बार चक्कर लगाते हैं ॥२ ॥

३२०९. **परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥३ ॥**

सर्वज्ञ, अन्नों के स्वामी अग्निदेव याजकों द्वारा दिये गये हवनीय पदार्थों को स्वीकार करते हैं तथा परमार्थ-परायणों को धन-धान्य से परिपूर्ण बनाते हैं ॥३ ॥

३२१०. **अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥४ ॥**

रिपुओं का संहार करने वाले, देदीप्यमान अग्निदेव को देवताओं के द्वारा इच्छित विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से सबसे आगे प्रदीप्त किया जाता है ॥४ ॥

३२११. **अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥५ ॥**

तेजस्वी ज्वालाओं वाले, इच्छित परिणाम वाले तथा गमन करने वाले अग्निदेव की भक्ति करने वाले व्यक्ति पराक्रमी बनकर समस्त धनों के स्वामी बनते हैं ॥५ ॥

३२१२. **तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥६ ॥**

द्रुतगामी अश्वों और द्युलोक पुत्र आदित्य के सदृश प्रकाशमान तथा सबके द्वारा प्रार्थनीय अग्निदेव की याजकगण नित्य प्रति परिचर्या करते हैं ॥६ ॥

३२१३. **बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥७ ॥**

जब 'सहदेव' के पुत्र सोमक नामक राजा ने हमें अश्व प्रदान करने का विचार किया, तब हम भली प्रकार उनके समीप पहुँचे । वहाँ से सन्तुष्ट होकर लौटे ॥७ ॥

३२१४. **उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आ ददे ॥८ ॥**

उन प्रशंसा के योग्य तथा प्रयत्नशील अश्वों को हमने सहदेव के पुत्र 'सोमक' से ग्रहण किया ॥८ ॥

३२१५. **एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥९ ॥**

हे अश्विनीकुमारो ! आपके प्रीति पात्र 'सहदेव' पुत्र 'सोमक' दीर्घ आयुष्य वाले हों ॥९ ॥

३२१६. **तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥१० ॥**

हे अश्विनीकुमारो ! 'सहदेव' के पुत्र 'सोमक' को आप दोनों लम्बी आयु प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - १६]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३२१७. **आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।**
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१ ॥



व्यवहार कुशल, सत्यनिष्ठ तथा धनवान् इन्द्रदेव हमारे समीप पधारें । दौड़ते हुए उनके अश्व (उन्हें साथ लेकर) हमारे समीप शीघ्र ही पहुँचें । उन इन्द्रदेव के निमित्त हम याजक अन्नरूप सोमरस अभिषुत करते हैं । तृप्त होकर वे हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥१ ॥

३२१८. अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥२ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! जिस प्रकार लक्ष्य पर पहुँचे हुए अश्वों को मुक्त करते हैं, उसी प्रकार आप हमें मुक्त करें; ताकि हम इस यज्ञ में आपको हर्षित करने के लिए भली-भाँति परिचर्या कर सकें । हे इन्द्रदेव ! आप सर्वज्ञाता तथा असुरों का संहार करने वाले हैं । याजकगण 'उशना' ऋषि के सदृश उत्तम स्तोत्रों को उच्चारित करते हैं ॥२ ॥

[इन्द्रदेव लक्ष्य पर पहुँचकर अपने अश्वों को मुक्त कर देते हैं, यह कथन एक सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रक्रिया को स्पष्ट करता है । इन्द्रदेव संगठन (संयुक्त रखने) की सामर्थ्य के रूप में मान्य हैं । किसी-किसी ऊर्जा स्रोत से उभरने वाले ऊर्जा प्रवाह (अश्व) इन्द्रशक्ति के कारण अपने स्रोत से जुड़े रहते हैं । वे ऊर्जा प्रवाह जब किसी पदार्थ या प्राणी तक पहुँच जाते हैं, तो वे उन (पदार्थों - प्राणियों) के द्वारा धारण किये जाते हैं और उन्हीं के अंगों के तन्त्र बनने के लिए ऊर्जा स्रोत के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं । जैसे सूर्य की हर किरण सूर्य से जुड़ी है, जब वह किसी वृक्ष की पत्ती पर पड़ जाती है, तो वह वृक्ष के (रस पकाने जैसे) प्राण चक्र का अङ्ग बन जाती है । सूर्य उसे मुक्त कर देता है ।]

३२१९. कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३ ॥

जब यज्ञों को सम्पादित करते हुए तथा सोमपान ग्रहण करते हुए वे इन्द्रदेव पूजे जाते हैं, तब वे द्युलोक से सप्त रश्मियों को उत्पन्न करते हैं । जैसे विद्वान् गूढ़ अर्थों को जानते हैं, उसी प्रकार कामना की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव समस्त कार्यों को जानते हैं । उनकी रश्मियों की सहायता से याजकगण अपने कर्मों को सम्पन्न करते हैं ॥३॥

३२२०. स्वः यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४ ॥

जब विस्तृत तथा तेजोयुक्त द्युलोक प्रकाशित होकर दर्शनीय बनता है, तब सभी के आवास भी आलोकित होते हैं । जगत् के श्रेष्ठ नायक सूर्यदेव ने उदित होकर मनुष्यों के देखने के निमित्त सघन तमिस्रा को विनष्ट कर दिया है ॥४ ॥

३२२१. ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५ ॥

अपरिमित महिमा को धारण करने वाले इन्द्रदेव ने समस्त भुवनों पर अपना अधिकार कर लिया है । सोमरस पान करने वाले वे इन्द्रदेव अपनी महिमा के द्वारा द्यावा-पृथिवी दोनों को पूर्ण करते हैं । इसीलिए इनकी महानता की कोई तुलना नहीं की जा सकती ॥५ ॥

३२२२. विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥६ ॥

वे इन्द्रदेव मनुष्यों के समस्त कल्याणकारी कार्यों के ज्ञाता हैं । कामना करने वाले सखाभाव युक्त मरुतों के निमित्त उन्होंने जल वृष्टि की । जिन मरुतों ने अपनी ध्वनि के द्वारा मेघों को भी विदीर्ण कर दिया, उन आकांक्षा करने वाले मरुतों ने गौओं (किरणों) के भण्डार खोल दिये ॥६ ॥



३२२३. अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुरक्षा करने वाले आपके वज्र ने जब पानी को अवरुद्ध करने वाले मेघ को विनष्ट किया, तब पानी बरसने से धरती चैतन्य हुई । हे रिपुओं के संहारक, पराक्रमी इन्द्रदेव ! आपने अपनी शक्ति से लोकपति होकर आकाश में स्थित जल को प्रेरित किया ॥७ ॥

३२२४. अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८ ॥

बहुतों के द्वारा आहूत किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! जब 'सरमा' ने आपके निमित्त गौओं (प्रकाश किरणों) को प्रकट किया, तब आपने जल से परिपूर्ण मेघों को विदीर्ण किया । अंगिरा वंशियों से स्तुत्य होकर आप हमें प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥८ ॥

३२२५. अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥९ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! मनुष्य आपका सम्मान करते हैं । ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए आप 'कुत्स' के पास गये थे । उनके द्वारा प्रार्थना करने पर रिपुओं के विप्लव से आपने उन्हें रक्षित किया था । कुटिल याजकों के कार्यों को आपने अपनी बुद्धि से जाना और कुत्स के ऐश्वर्य की कामना करने वाले रिपुओं को संग्राम में नष्ट किया था ॥९ ॥

३२२६. आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने मन में रिपुओं का संहार करने की कामना करके 'कुत्स' के घर में आगमन किया था । कुत्स भी आपके संग मित्रता करने के लिए अत्यधिक लालायित हुए थे । इसके बाद आप दोनों अपने घर में बैठे थे, तब सत्यावलोकन करने वाली 'शची' आप दोनों की एक जैसी आकृति देखकर द्विविधा में पड़ गई थी ॥१० ॥

३२२७. यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥११ ॥

जिस दिन दूरदर्शी कुत्स (कुण्ठाग्रस्त साधक) योग्य अन्न (आहार) की तरह ऋजुता (सरलता) को अपनाकर (संकट से) पार होने के लिए तत्पर होता है, तब उसके रक्षण की कामना से शत्रुहन्ता, वायु वेगवाले अश्वों के स्वामी आप (इन्द्रदेव) कुत्स के साथ एक ही रथ पर आरूढ़ हो जाते हैं ॥११ ॥

{ जब कुण्ठाग्रस्त साधक अपनी दूरदर्शिता का प्रयोग करके सहजभाव से कुण्ठा के कारणों को पार करने के लिए संकल्पित होता है, तब इन्द्र (आत्मबल) उसके मनोरथ को पूर्ण करने के लिए उसके साथ हो जाता है । }

३२२८. कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! 'कुत्स' की सुरक्षा के लिए आपने अत्यन्त बलशाली 'शुष्ण' नामक असुर का संहार किया था । आपने दिवस के पूर्व भाग (पूर्वाह्न) में ही सहस्रों सैनिकों वाले 'कुयव' राक्षस का संहार किया । अनेकों स्वजनों से घिर कर आपने उसी क्षण अपने वज्र से दस्युओं का भी विनाश किया तथा युद्ध में सूर्य के सदृश तेजस्वी शस्त्रास्त्रों को नष्ट किया ॥१२ ॥



३२२९. त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! वैदथि के पुत्र 'ऋजिश्वा' के निमित्त आपने, अत्यन्त शक्तिशाली असुर 'पिप्रु' तथा 'मृगया' को विनष्ट किया । आपने पचास हजार श्याम वर्ण वाले राक्षसों का संहार किया । जिस प्रकार बुढ़ापा सौन्दर्य को नष्ट कर देता है अथवा पुराने वस्त्रों को फाड़ दिया जाता है; उसी प्रकार आपने रिपुओं के नगरों को नष्ट किया था ॥१३ ॥

३२३०. सूर उपाके तन्वं१ दधानो वि यत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥१४ ॥

हे अविनाशी इन्द्रदेव ! जब आप सूर्य के समीप अपने देह को धारण करते हैं, तब आपका रूप और अधिक आलोकित होने लगता है । हे इन्द्रदेव ! आप शक्तिशाली हाथी के सदृश विकराल रिपुओं की सेनाओं को भस्मसात् करते हैं । जब आप हथियार धारण करते हैं, तब सिंह की तरह भयंकर होते हैं ॥१४ ॥

[इन्द्र, सूक्ष्मकणों को परस्पर सम्बद्ध किये रहने वाली शक्ति सहज रूप में पोषक एवं रक्षक है, किन्तु जब उसका उपयोग हथियार (अणु-आयुध-एटामिक वैपन) के रूप में होता है, तब वह भयानक हो जाता है ।]

३२३१. इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥१५ ॥

असुरों द्वारा पैदा किये गये भय को दूर करने की तथा धन की कामना करने वाले याजकगण, युद्ध के समान यज्ञों में देदीप्यमान इन्द्रदेव से अन्न की याचना करते हैं । वे याजकगण स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना करते हुए उनके पास गमन करते हैं । वे इन्द्रदेव निवास स्थान के सदृश हर्षदायक और मनोहर हैं तथा श्रेष्ठ धन के समान दर्शनीय हैं ॥१५ ॥

३२३२. तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥१६ ॥

स्पृहणीय ऐश्वर्य वाले जिन इन्द्रदेव ने मनुष्यों के कल्याण के लिए अनेकों ख्यातिपूर्ण कार्य सम्पन्न किये तथा जो हम याजकों के निमित्त ग्रहणीय अन्न तुरन्त प्रदान करते हैं, ऐसे श्रेष्ठ आवाहन योग्य इन्द्रदेव को हम सबकी सहायता के लिए बुलाते हैं ॥१६ ॥

३२३३. तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥१७ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! जब मनुष्यों के किसी भी संग्राम में हम याजकों के ऊपर तीक्ष्ण वज्रपात हो अथवा घमासान युद्ध हो, तब आप हमारे शरीरों के संरक्षक बनें ॥१७ ॥

[ऋषियों के पास इन्द्रशक्ति के आयुध रूप में उपयोग के साथ-साथ उसके 'कवच' रूप में उपयोग की भी विद्या थी । वर्तमान विज्ञान अभी उसका प्रयोग केवल आयुध रूप में ही कर सका है, रक्षक कवच के रूप में प्रयोग की विधि अभी तक खोजी नहीं जा सकी है ।]

३२३४. भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! 'वामदेव' ऋषि द्वारा सम्पन्न किये जा रहे यज्ञ-कृत्य के आप संरक्षक हों । आप कपट रहित होकर संग्राम में हमारे सखा हों । हम श्रेष्ठ ज्ञानी बनकर आपका अनुसरण करें और आप हम स्तोताओं के निमित्त सदैव प्रार्थनीय हों ॥१८ ॥



३२३५. एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥१९ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! हम समस्त युद्धों में धन से सम्पन्न हों । द्युलोक के सदृश ओजस्वी अपने सहायक मरुतों के साथ होकर आप रिपुओं को परास्त करें । हम अनेक वर्षों तक रात-दिन आपको हर्षित करते रहें ॥१९ ॥

३२३६. एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥२० ॥

जिस प्रकार भृगुवंशियों ने इन्द्रदेव को रथ प्रदान किया था, उसी प्रकार हम शक्तिशाली तथा इच्छाओं की पूर्ति करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त स्तोत्र पाठ करते हैं । इस प्रकार हमारी उनकी मित्रता परिपक्व हो । वे हमारे शरीर के पोषक तथा संरक्षक हों ॥२० ॥

३२३७. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सरिताएँ जल प्रदान करती हैं, उसी प्रकार आप स्तुतियों द्वारा प्रशंसित होकर हम याजकों के लिए अन्न प्रदान करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम आपके निमित्त अभिनव स्तोत्रों को रचते हैं, जिससे हम रथों से युक्त होकर आपके सेवक बने रहें ॥२१ ॥

[सूक्त - १७]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १५ एकपदा विराट् ।]

३२३८. त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान् ॥१ ॥

हे महान् इन्द्रदेव ! आपके क्षात्र-बल का धरती अनुसरण करती है तथा आपके महत्त्व को महिमावान् द्युलोक स्वीकार करता है । आपने अपनी सामर्थ्य से वृत्र का संहार किया तथा 'अहि' द्वारा अवरुद्ध की गयी सरिताओं को प्रवाहित किया ॥१ ॥

३२३९. तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौ रेजद्भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्व१ः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः ॥२ ॥

महान् तेजस्विता से सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आपके पैदा होते ही, आपके मन्यु से भयभीत होकर आकाश-पृथिवी काँपने लगे तथा बृहत् मेघों के समूह भयभीत होने लगे । इन मेघों ने जीवों की प्यास को बुझाते हुए मरुस्थल में भी जल को प्रेरित किया (बरसाया) ॥२ ॥

३२४०. भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥३ ॥

रिपुओं को परास्त करने वाले इन्द्रदेव ने अपने ओज को प्रकट करके अपनी शक्ति से वज्र को प्रेरित किया और मेघों को विदीर्ण किया । उन्होंने सोमपान से हर्षित होकर अपने वज्र द्वारा वृत्र का संहार किया । वृत्र के नष्ट हो जाने पर जल आवरण (अवरोध) रहित होकर वेग के साथ प्रवाहित होने लगा ॥३ ॥



३२४१. सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रशंसनीय श्रेष्ठ वज्र को धारण करने वाले, अपने स्थान से च्युत न होने वाले तथा ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं । आपको पैदा करने वाले प्रकाशमान प्रजापति ने स्वयं को श्रेष्ठ सन्तानवान् स्वीकारा । आपको जन्म देने वाले प्रजापति, श्रेष्ठ कर्म करने वाले थे ॥४ ॥

३२४२. य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५ ॥

समस्त मनुष्यों के राजा, अनेकों द्वारा आवाहन किये जाने वाले इन्द्रदेव अकेले होकर भी अनेकों रिपुओं को अपने स्थान से च्युत कर देते हैं । समस्त धनवान् मनुष्य उन इन्द्रदेव को आनन्दित करते हैं; जो महान् गुणों से सम्पन्न तथा याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं ॥५ ॥

३२४३. सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥६ ॥

समस्त सोमरस उन इन्द्रदेव के निमित्त है । यह हर्षप्रदायक सोमरस उनको तृप्त करता है । वे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हैं । हे इन्द्रदेव ! आप समस्त मनुष्यों का पोषण करते हुए उन्हें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥६ ॥

३२४४. त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः ॥७ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! पैदा होते ही सर्वप्रथम आपने समस्त मनुष्यों को वृत्र के प्रकोप से बचाया । प्रवाहशील जल को अवरुद्ध करके सोने वाले 'अहि' को आपने अपने वज्र से विनष्ट किया ॥७ ॥

३२४५. सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥८ ॥

शत्रु समूह के संहारक, उन्हें भयभीत करने वाले, (पराजित करके) भगा देने वाले, अत्यधिक शक्तियुक्त, श्रेष्ठ वज्रधारक, वृत्रहन्ता, अन्नदायक, धनरक्षक इन्द्रदेव अपने उपासकों को धन प्रदान करने वाले हैं ॥८ ॥

३२४६. अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥९ ॥

जो संग्राम में अकेले ही विजय प्राप्त करने वाले के रूप में विख्यात हैं, ऐसे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ने एकत्रित हुए रिपुओं को विनष्ट कर दिया । वे इन्द्रदेव जिस व्यक्ति को अन्न प्रदान करने की कामना करते हैं, उसे देते ही रहते हैं । उनके साथ हमारी मित्रता प्रीतियुक्त हो ॥९ ॥

३२४७. अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळहं भयत एजदस्मात् ॥१० ॥

वे इन्द्रदेव रिपुओं को युद्ध में जीतकर उनका विनाश करते हुए ख्याति प्राप्त करते हैं । वे शत्रुओं से गौएँ छीनकर लाते हैं । वे इन्द्रदेव जब सचमुच क्रोध करते हैं, तब समस्त स्थावर-जंगम जगत् उनसे भयभीत होने लगता है ॥१० ॥



३२४८. समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः ॥११ ॥

जिन्होंने शत्रुओं से युद्ध करके उनके स्वर्ण भण्डार, गौओं, अश्वों तथा उनकी विशाल सेनाओं को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया । सभी शक्तिशाली, धनवान् तथा श्रेष्ठ मनुष्यों द्वारा उन इन्द्रदेव की स्तुति की जाती है । वे इन्द्रदेव सभी को अपना ऐश्वर्य वितरित कर देते हैं; फिर भी सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न बने रहते हैं ॥११ ॥

३२४९. कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥१२ ॥

वे इन्द्रदेव अपने माता-पिता के पास से कितनी शक्ति प्राप्त करते हैं ? जिन्होंने अपने उत्पन्न करने वाले प्रजापति के पास से इस दिखायी पड़ने वाले जगत् को प्रकट किया तथा उन्हीं के पास से इस जगत् को बारम्बार सामर्थ्य प्रदान किया, वे इन्द्रदेव गर्जना करने वाले मेघों द्वारा प्रेरित वायु के समान बुलाये जाते हैं ॥१२ ॥

३२५०. क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप निराश्रितों को आश्रय प्रदान करते हैं तथा किये गये पापों को विनष्ट करते हैं । आप द्युलोक के सदृश सुदृढ़ वज्र धारण करने वाले हैं और रिपुओं का संहार करने वाले हैं । आप धनवान् हैं, इसलिए स्तोताओं को भी धन प्रदान करते हैं ॥१३ ॥

३२५१. अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४ ॥

उन इन्द्रदेव ने आदित्य के चक्र को प्रेरित किया और संग्राम के निमित्त गमन करने वाले 'एतश' को लौटाया । कुटिल चाल वाले और काले रंग वाले मेघों ने तेजस्वी जल के मूल स्थान आकाश में विद्यमान इन्द्रदेव को अभिषिक्त किया ॥१४ ॥

३२५२. असिक्न्यां यजमानो न होता ॥१५ ॥

रात्रि के समय याजकगण सोमरस के द्वारा इन्द्रदेव का अभिषेक करते हैं । वे भी रात्रि में ही सभी मनुष्यों को परम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥१५ ॥

३२५३. गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥१६ ॥

हम ज्ञानी याजक गौओं, घोड़ों, अन्नों तथा स्त्रियों की कामना करते हैं । जिस प्रकार पिपासु जल-कुण्ड में से जलपूर्ण पात्र को निकालते हैं, उसी प्रकार हम भी सृजनात्मक क्षमता प्रदान करने वाले तथा कभी नष्ट न होने वाले रक्षण - साधनों से सम्पन्न उन इन्द्रदेव को अपनी ओर बुलाते हैं ॥१६ ॥

३२५४. त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप रक्षक की तरह सबका अवलोकन करते हुए हमारी सुरक्षा करें । सोम अभिषवकर्त्ता साधकों के लिए आप हर्षित करने वाले सखा हैं । प्रजापति की तरह आपकी प्रसिद्धि है । आप पालन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ पालक हैं । आप इस लोक के स्रष्टा हैं और याजकों के अन्नप्रदाता हैं ॥१७ ॥



३२५५. **सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः ।**
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥१८ ॥

हे प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! हम आपकी मित्रता की कामना करते हैं । आप हमारे संरक्षक और हमारे मित्र हों । आप याजकों के निमित्त अन्न धारण करें । हे इन्द्रदेव ! हम संकटग्रस्त होकर इन स्तोत्रों द्वारा आपकी प्रार्थना करते हुए आपको आहूत करते हैं ॥१८ ॥

३२५६. **स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।**
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥१९ ॥

जब धनवान् इन्द्रदेव हम मनुष्यों के द्वारा प्रशंसित होते हैं, तब वे पीछे न हटने वाले अनेक रिपुओं को अकेले ही विनष्ट कर देते हैं । उन इन्द्रदेव की शरण में रहने वाले प्रिय याजक को न तो देवता नष्ट कर सकते हैं और न ही मनुष्य नष्ट कर सकते हैं ॥१९ ॥

३२५७. **एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।**
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥२० ॥

अनेक प्रकार के शब्द करने वाले, मनुष्यों के धारणकर्त्ता, रिपुरहित तथा ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव हमारी सत्य अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले हैं । हे इन्द्रदेव ! आप सम्पूर्ण जन्मधारियों के सम्राट् हैं । स्तुति करने वाले लोग जिस महान् कीर्ति को आप से प्राप्त करते हैं, उस कीर्ति को आप हम मनुष्यों को प्रचुर परिमाण में प्रदान करें ॥२० ॥

३२५८. **नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।**
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस तरह सरिताओं को जल प्रवाह पूर्ण करते हैं, उसी प्रकार आप प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रशंसित होकर तथा हमारे द्वारा स्तुत होकर हम याजकों को अन्न से पूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हमने अपनी बुद्धि द्वारा आपके निमित्त स्तोत्र तैयार किया है; अतः हम रथवान् हों और आपकी सेवा करें ॥२१ ॥

[सूक्त - १८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम, १ - इन्द्र, ४ का उत्तरार्द्ध एवं ७ अदिति । **देवता** - १ वामदेव, २-४ पूर्वार्द्ध मंत्र का तथा ८ - १३ इन्द्र, ४, ५-६ का उत्तरार्द्ध तथा ७ वामदेव । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३२५९. **अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।**
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥१ ॥

यह पथ सनातन है । समस्त देवता और मनुष्य इसी मार्ग से पैदा हुए हैं तथा प्रगति की है । हे मनुष्यो ! आप अपने उत्पन्न होने की आधाररूपा अपनी माता को विनष्ट न करें ॥१ ॥

[मनुष्य अपनी प्रतिभा इस प्रकार प्रकट न करे, जिससे माता-प्रकृति नष्ट होने लगे ।]

३२६०. **नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।**
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥२ ॥

यह पूर्वोक्त मार्ग अत्यन्त दुरूह है; अतः हम इस मार्ग से गमन नहीं करेंगे । हम बगल के मार्ग से निकलेंगे । अन्यों के द्वारा करने योग्य अनेकों कार्य हमें करने हैं । हमें एक साथ लड़ना है तथा एक-एक से पूछना है ॥२ ॥



[प्रकृति नष्ट न हो, प्रगति के ऐसे मार्ग खोजने हैं। माता प्रकृति की रक्षार्थ एक साथ संघर्ष करना है, हर एक से परामर्श करना है।]

३२६१. परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥३ ॥

मरणासन्न हुई माता को हम देख चुके हैं, अत: हम प्राचीन मार्ग का अनुसरण नहीं करेंगे। तुरन्त ही अन्य मार्ग पर अनुगमन करेंगे। लकड़ी के बर्तन में सोमरस अभिषुत करने वाले त्वष्टा के गृह में इन्द्रदेव ने अनेकों प्रकार से लाभ प्रदान करने वाले सोमरस का पान किया ॥३ ॥

३२६२. किं स ऋधक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥४ ॥

अदिति ने उन शक्तिशाली इन्द्रदेव का अनेकों वर्षों तथा महीनों तक पालन किया। इसलिए वे इन्द्रदेव विपरीत कार्य क्यों करेंगे ? अब तक पैदा हुए तथा पैदा होने वालों में से कोई भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता ॥४॥

३२६३. अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥५ ॥

माता ने गर्भ-गुहा में पैदा होने वाले इन्द्रदेव को समर्थ मानकर शक्तिपूर्वक बाहर निकाला। पैदा होते ही इन्द्रदेव अपने ओज को धारण करके स्वयं उठ खड़े हुए और द्यावा-पृथिवी को अपने तेज से पूर्ण कर दिया ॥५ ॥

३२६४. एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव सङ्क्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥६ ॥

हर्ष ध्वनि करती हुई जल से पूर्ण ये सरिताएँ कल-कल करती हुई प्रवाहित हो रही हैं। हे ऋषे ! ये सरिताएँ क्या कहती हैं ? इनसे पूछें। क्या ये इन्द्रदेव का गुणगान करती हैं ? उन इन्द्रदेव के आयुध जल को आवृत करने वाले मेघों को विदीर्ण करते हैं ॥६ ॥

३२६५. किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥७ ॥

इन्द्रदेव द्वारा वृत्र का संहार करने पर लगे ब्रह्महत्या के पाप के विषय में वेद-वाणी क्या निर्देश देती है ? उनके पाप कर्म को पानी ने फेन रूप में ग्रहण किया। मेरे पुत्र इन्द्रदेव ने अपने हथियार वज्र से वृत्र का संहार किया और इन सरिताओं को प्रवाहित किया ॥७ ॥

३२६६. ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी माता अदिति ने हर्षित होकर, आपको उत्पन्न किया। एक बार 'कुषवा' नाम वाली राक्षसी ने आपको निगलने का प्रयास किया था। सूतिका गृह में आप राक्षसी का वध करने के लिए तैयार हो गये थे। जब आप बालक थे, तब जल ने आपको हर्षित किया था। उसके बाद आप अत्यधिक सामर्थ्यवान् होकर उठ खड़े हुए ॥८ ॥

३२६७. ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥९ ॥



हे धनवान् इन्द्रदेव ! 'व्यंस' नामक राक्षस ने मदयुक्त होकर आपकी ठोड़ी पर प्रहार किया। इसके बाद अत्यधिक बलशाली होकर आपने उस राक्षस के सिर को वज्र से विदीर्ण कर दिया ॥९ ॥

३२६८. गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीळहं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥१० ॥

जैसे गौ बछड़े को पैदा करती है, उसी प्रकार अदिति माता अपनी इच्छानुसार विचरण करने के लिए इन्द्रदेव को उत्पन्न करती हैं। वे इन्द्रदेव उम्र से प्रौढ़, अत्यन्त शक्तिशाली, रिपुओं से अजेय, प्रेरक, न मारे जाने वाले तथा स्वयं गमन के लिए शरीर की अभिलाषा करने वाले हैं ॥१० ॥

[इन्द्र संगठक शक्ति (यूनाइटिंग फोर्स) के पर्याय हैं। अदिति (विभक्त न होने वाली) चेतन सत्ता इन्द्र की माता है। वह परमाणु (एटम) को सूक्ष्म उपकणों (सब एटामिक पार्टिकल्स) में विभक्त न होने देने के लिए संगठक शक्ति इन्द्र को उत्पन्न करती है।]

३२६९. उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥११ ॥

माता अदिति ने अपने महिमावान् वत्स इन्द्र से निवेदन किया कि ये देवगण आपका परित्याग कर रहे हैं। इसके बाद वृत्र का संहार करने की अभिलाषा करते हुए इन्द्रदेव ने विष्णु से कहा कि हे सखा विष्णु ! आप श्रेष्ठ पराक्रमी हों ॥११ ॥

[इन्द्र (संगठक शक्ति) के प्रभाव से पदार्थ बन जाते हैं। तब देवशक्तियों को उनकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। अदिति-विभाजन न चाहने वाली चेतना, तब पोषण करने वाली विष्णु शक्ति को विकसित करती है। इन्द्र अपनी संगठक शक्ति को विष्णु (पोषण) के समर्थन में लगाने लगते हैं।]

३२७०. कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपके पिता के चरण को पकड़कर फेंका गया, तब आपकी माता अदिति को किस देव ने विधवा किया ? जिस समय आप शयन कर रहे थे तथा गमन कर रहे थे, उस समय आपको किस देव ने मारने की अभिलाषा की थी ? आपकी अपेक्षा और कौन देवता अधिक सुख प्रदान करते हैं ? ॥१२ ॥

३२७१. अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥१३ ॥

हमने क्षुधा से पीड़ित होकर कुत्ते की अभक्षणीय अँतड़ियों को भी पकाया। हमने देवताओं में इन्द्रदेव के अलावा किसी दूसरे देवता को सुख प्रदान करने वाला नहीं पाया। जब हमने अपनी पत्नी को अपमानित होते हुए पाया, तब वे इन्द्रदेव ही हमारे लिए मधुर आहार लाये ॥१३ ॥

[सूक्त - १९]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३२७२. एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥१ ॥

वज्र धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! सुरक्षा करने वाले समस्त देवगण तथा द्यावा-पृथिवी वृत्र का संहार करने के लिए आपका आवाहन करते हैं। आप प्रार्थनीय, वृद्ध, महान् तथा दर्शनीय हैं ॥१ ॥



३२७३. अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार वृद्ध पिता तरुण पुत्र को प्रेरणा देते हैं, उसी प्रकार समस्त देवता रिपुओं का विनाश करने के लिए आपको प्रेरणा देते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप सत्य के आश्रय स्थान हैं । आप सम्पूर्ण लोकों के अधिष्ठाता हैं । जल के चारों ओर शयन करने वाले 'अहि' का विनाश करके, सबको हर्षित करने वाली सरिताओं को आपने ही प्रेरित किया है ॥२ ॥

३२७४. अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अतृप्त इच्छाओं से युक्त, शिथिल अंग वाले, अज्ञानी, शयन करने की कामना करने वाले, सप्त सरिताओं को आवृत करने वाले तथा अंतरिक्ष में निवास करने वाले वृत्र का वज्र द्वारा संहार किया ॥३ ॥

३२७५. अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥४ ॥

जैसे वायुदेव अपनी शक्ति द्वारा पानी को हिलाते हैं, उसी प्रकार इन्होंने अपनी शक्ति द्वारा द्युलोक तथा भूलोक को कँपा दिया । बलाकांक्षी इन्द्रदेव ने अत्यन्त शक्तिशाली रिपुओं का विनाश किया तथा पर्वतों (मेघों) के पंखों को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥४ ॥

३२७६. अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथाइव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार माताएँ अपने पुत्र के समीप जाती हैं, उसी प्रकार मरुद्‌गण आपके समीप जाते हैं । जिस प्रकार संग्राम में रथ साथ गमन करते हैं, उसी प्रकार आयुध आपके साथ गमन करते हैं । आपने मेघों को विदीर्ण करके, नदियों को तुष्ट किया तथा अवरुद्ध की हुई नदियों को प्रवाहित किया ॥५ ॥

३२७७. त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! राजा 'तुर्वीत' तथा -'वय्य' के लिए आपने पृथ्वी को, तुष्ट करने वाली, धान्य प्रदान करने वाली तथा अन्न-जल से समृद्ध बनाया । हे इन्द्रदेव ! आपने सरिताओं को सरलतापूर्वक पार करने योग्य बनाया ॥६ ॥

३२७८. प्राग्रुवो नभन्वो३ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः ॥७ ॥

उन इन्द्रदेव ने रिपु सहायक सेनाओं के सदृश किनारों को नष्ट करने वाली, पानी से भरी हुई तथा अन्न पैदा करने वाली सरिताओं को परिपूर्ण किया । उन्होंने मरुस्थलों तथा प्यासे व्यक्तियों को तृप्त किया और दस्युओं द्वारा नियन्त्रित गौओं को दुहा ॥७ ॥

३२७९. पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥८ ॥

इन्द्रदेव ने घने अन्धकार में आवृत उषाओं को एवं वर्षों (१२ महीनों के समुच्चय) को वृत्रासुर का वध करके विमुक्त किया । उन्होंने मेघों को विदीर्ण कर वृत्र द्वारा अवरुद्ध नदियों को प्रवाहित कर पृथ्वी को तृप्त किया ॥८ ॥

३२८०. **वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।**
व्य१ न्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व ॥९ ॥

हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! आपने दीमकों द्वारा भक्ष्यमान 'अग्रु' के पुत्र को उनके स्थान (बिल) से बाहर निकाला । बाहर निकाले जाते समय अन्धे 'अग्रु' - पुत्र ने अहि (सर्प) को भली प्रकार देखा । उसके बाद चींटियों द्वारा काटे गये अंगों को आपने (इन्द्रदेव ने) संयुक्त किया (जोड़ा) ॥९ ॥

३२८१. **प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि ।**
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥१० ॥

तेजस् सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आप सर्वज्ञाता तथा स्वयं प्रशंसित हैं । आपने मनुष्यों के लिए कल्याणकारी तथा पराक्रम से सम्पन्न कर्मों को जिस प्रकार पूर्ण किया, उन समस्त ज्ञानयुक्त कर्मों के ज्ञाता हम 'वामदेव' ऋषि उन सबका वर्णन करते हैं ॥१० ॥

३२८२. **नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।**
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रशंसित होकर तथा हमारे द्वारा स्तुत होकर हमें सरिताओं के सदृश अन्न से पूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी मेधा द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों को रचते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २०]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३२८३. **आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।**
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥१ ॥

अभीष्ट को पूर्ण करने वाले, अत्यन्त तेजस्वी, बलों से युक्त, मनुष्यों के पालक, वज्रधारी, अनेक छोटे-बड़े युद्धों में शत्रुओं का मर्दन करने वाले, इन्द्रदेव हमारी रक्षा के निमित्त दूरस्थ देश से आयें और यदि निकट हों, तो वहाँ से भी आयें ॥१ ॥

३२८४. **आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।**
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥२ ॥

महान् ऐश्वर्यवान् वज्रधारी इन्द्रदेव हमारी रक्षा के निमित्त और धन देने के निमित्त हमारे लिये अनुकूल होकर हरिनामक अश्वों से भली प्रकार पधारें । हमारे इस यज्ञ में अपने उपयुक्त हविष्यान्न के भाग को ग्रहण करने के लिए यहाँ (यज्ञशाला में) विराजमान हों ॥२ ॥

३२८५. **इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः ।**
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिञ्जयेम ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम लोगों का मित्र की भाँति हित चाहते हुए, आप हमारे द्वारा किये जाने वाले यज्ञों को ग्रहण करें । वज्र धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार शिकारी हरिण का शिकार करता है, उसी प्रकार हम आपकी सहायता से ऐश्वर्य लाभ के लिए किये जा रहे युद्धों में विजय प्राप्त करें ॥३ ॥



३२८६. उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥४ ॥

हे अन्नवान् इन्द्रदेव ! आप हर्षित मन से हमारे समीप पधारें तथा हमारे द्वारा अभिषुत मधुर सोमरस का पान करें । हमारे पृष्ठ भाग में विद्यमान अन्न रूप सोमरस का पान करके हर्षित हों ॥४ ॥

३२८७. वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभिमन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥५ ॥

जो इन्द्रदेव फल वाले वृक्ष के समान तथा आयुध संचालन में कुशल योद्धा के समान नवीन ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से प्रशंसित होते हैं, उन बहुतों द्वारा आहूत इन्द्रदेव की हम वैसे ही प्रार्थना करते हैं, जैसे मनुष्य अपनी पत्नी की प्रशंसा करता है ॥५ ॥

३२८८. गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥६ ॥

जो महान् तथा पराक्रमी इन्द्रदेव पर्वत के सदृश बलशाली हैं । वे रिपुओं को विजित करने के लिए पुरातन काल से ही पैदा हुए हैं तथा जल से पूर्ण कलश के सदृश तेज से युक्त विशाल वज्र को धारण करते हैं ॥६ ॥

३२८९. न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके पैदा होने मात्र से ही कोई विनाशक नहीं रहा तथा आपके द्वारा प्रदान किये गये ऐश्वर्य का भी कोई विनाशक नहीं रहा । हे शक्तिशाली, पराक्रमी तथा बहुतों द्वारा आहूत इन्द्रदेव ! आप अत्यधिक सामर्थ्यवान् हैं । आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥७ ॥

[अणु-विखंडित-विभाजित होने पर विध्वंसकारी असुर शक्ति के रूप में कार्य करने लगते हैं । इन्द्र-संगठक शक्ति के उत्पन्न होते ही वे संयुक्त हो जाते हैं, विनाशक शक्ति कण (डिस्ट्रक्टिव पावर पार्टिकल्स) का अस्तित्व समाप्त हो जाता है । इसीलिए अदिति (विखंडित न होने देने वाली चेतना) को देवों की माता तथा दिति (विखंडित चेतना) को असुरों की माता कहा गया है ।]

३२९०. ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप मनुष्यों के ऐश्वर्य तथा घर पर नियंत्रण करने वाले हैं और गौओं के गोष्ठ को खोलने वाले हैं । आप ज्ञान के द्वारा मनुष्य को ऊँचा उठाने वाले तथा संग्राम में रिपुओं पर प्रहार करने वाले हैं । आप प्रचुर धन-सम्पदा को प्राप्त कराने वाले हैं ॥८ ॥

३२९१. कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥९ ॥

शक्तिशाली तथा महान् इन्द्रदेव किस सामर्थ्य के द्वारा विख्यात हैं ? वे जिसके द्वारा बारम्बार कर्म करते हैं, वह कौन सी सामर्थ्य है ? वे इन्द्रदेव दानदाता के पापों को नष्ट करते हैं तथा याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥९॥

३२९२. मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥१० ॥



हे इन्द्रदेव ! आप हम मनुष्यों का वध न करें; बल्कि हमारा पोषण करें । हे इन्द्रदेव ! आपका जो प्रचुर धन हविप्रदाता को प्रदान करने के लिए है, उस धन को हमें प्रदान करें । हम आपका स्तवन करते हैं । इस अभिनव, दान देने योग्य, अनुशासित यज्ञ में हम आपका विशेष रूप से गुणगान करते हैं ॥१० ॥

३२९३. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रशंसित होकर तथा हमारे द्वारा स्तुत होकर, हमें सरिताओं के सदृश अन्नों से परिपूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी मेधा के द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों को रचते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों (सेवकों) से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २१]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३२९४. आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥१ ॥

वे इन्द्रदेव द्युलोक की तरह तेजस् सम्पन्न हैं । उनके प्रभूत बल है । वे हमारी सुरक्षा के लिए पधारें । स्तुतियों से सन्तुष्ट होकर इस यज्ञ में हमें हर्ष प्रदान करें तथा रिपुओं को पराजित करने वाले बल को पुष्ट करें ॥१ ॥

३२९५. तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥२ ॥

जो इन्द्रदेव शासक के समान रिपुओं को पराजित तथा उनका विनाश करने वाले हैं, उनकी कुशलता और सामर्थ्य मनुष्यों पर नियन्त्रण करती है । हे याजको !ऐसे ओजस्वी और प्रचुर ऐश्वर्य वाले देव की आप प्रार्थना करें ॥२ ॥

३२९६. आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सभी मरुद्गणों के साथ दिव्यलोक से, भूलोक से, अन्तरिक्ष लोक से, जल से, सूर्यलोक से, दूर प्रदेश से तथा यज्ञस्थल से हमारी सुरक्षा के लिए पधारें ॥३ ॥

३२९७. स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥४ ॥

जो इन्द्रदेव समस्त महान् ऐश्वर्यों के अधिपति हैं, जो प्राणरूपी शक्ति के सहयोग से गौओं की प्राप्ति के निमित्त संग्राम में शत्रु की सेनाओं पर विजय प्राप्त करते हैं । जो याजकों को श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उन इन्द्रदेव की हम इस यज्ञमण्डप में स्तुति करते हैं ॥४ ॥

३२९८. उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥५ ॥

जो इन्द्रदेव समस्त लोकों को आश्रय प्रदान करते हैं और यज्ञ करने वाले याजकों के निमित्त गर्जनापूर्वक जल बरसाते-अन्न उपलब्ध कराते हैं । जो स्तोत्रों द्वारा वंदनीय हैं तथा कर्मों को पूर्ण करने वाले हैं; उन इन्द्रदेव को याजकगण यज्ञों में हर्षित करते हैं ॥५ ॥



३२९९. धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥६ ॥

उशिक् वंशज के आवास पर स्तोतागण स्तुति करते हुए जब सोम कूटने के लिए तत्पर होते हैं, तब वे इन्द्रदेव आगमन करते हैं। वे संग्राम में हम मनुष्यों की सहायता करने वाले हैं। वे याजकों द्वारा आयोजित यज्ञ के सम्पादक हैं। उनका क्रोध अत्यन्त भयंकर है ॥६ ॥

३३००. सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥७ ॥

जगत् का पालन-पोषण करने वाले प्रजापति के पुत्र तथा अभीष्ट की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव की सामर्थ्य स्तुति करने वाले याजकों की सुरक्षा करती है। वह सामर्थ्य याजकों का पोषण करने के लिए उनके गुफा रूप हृदय में प्रकट होती है। वह सामर्थ्य याजकों के अंतरंग तथा कर्म में विद्यमान रहती है। उनके हर्ष तथा कामनाओं की प्राप्ति के लिए पैदा होकर उनका सदैव पालन करती है ॥७ ॥

३३०१. वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो३ वहन्ति ॥८ ॥

इन्द्रदेव ने मेघों को आवरणरहित किया और सरिताओं के प्रवाह को जल से परिपूर्ण किया, उन शक्तिशाली इन्द्रदेव के लिए मेधावी यजमान जब यज्ञमण्डप पर सोमरस तैयार करते हैं, तब वे याजकों को गौ आदि धन-धान्य प्रदान करते हैं ॥८ ॥

३३०२. भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके हितकारी दोनों हाथ श्रेष्ठ कर्म करने वाले हैं तथा याजक को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। हे इन्द्रदेव ! आपका निवास स्थान कहाँ है ? आप हमें हर्षित क्यों नहीं करते ? हमें ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए आप शीघ्र ही प्रसन्न क्यों नहीं होते ? ॥९ ॥

३३०३. एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥१० ॥

इस प्रकार प्रशंसित होकर सत्यनिष्ठ, धन के स्वामी तथा वृत्र को मारने वाले, इन्द्रदेव याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। हे बहुप्रशंसित इन्द्रदेव ! हम मनुष्यों की प्रार्थनाओं से सन्तुष्ट होकर आप हमें धन-धान्य प्रदान करें, जिससे हम श्रेष्ठ ऐश्वर्य का सेवन कर सकें ॥१० ॥

३३०४. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हमारे द्वारा प्रशंसित होकर हमें सरिताओं के सदृश अन्नों से परिपूर्ण करें। हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी बुद्धि द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों का गान करते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २२]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३३०५. यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥१ ॥

महाबलशाली इन्द्रदेव हम मनुष्यों के हविष्यान्न का सेवन करते हैं । वे अपने वज्र को धारण करते हुए शक्ति के साथ पधारते हैं । वे आहुति, स्तुति, सोमरस तथा स्तोत्रों को स्वीकार करते हैं ॥१ ॥

३३०६. वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२ ॥

कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव अपनी भुजाओं द्वारा वर्षणकारी चार धाराओं वाले वज्र को रिपुओं के ऊपर फेंकते हैं । वे अत्यन्त पराक्रमी, श्रेष्ठ नायक तथा कर्मवान् होकर परुष्णी नदी को परिपूर्ण करते हैं । उन्होंने 'परुष्णी' नदी के विभिन्न प्रदेशों को मित्रता के लिए आवृत किया था ॥२ ॥

३३०७. यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम ॥३ ॥

जो ओजस्वी, महान् इन्द्रदेव पैदा होते ही विशाल अन्न तथा बृहत् बल से सम्पन्न हुए थे; वे अपनी दोनों भुजाओं में सुन्दर वज्र धारण करके अपनी शक्ति द्वारा द्युलोक तथा भूलोक को प्रकम्पित करते थे ॥३ ॥

३३०८. विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥४ ॥

उन महान् इन्द्रदेव के पैदा होते ही समस्त पर्वत, जल से पूर्ण नदियाँ, द्युलोक तथा पृथ्वी लोक कम्पित होने लगे । वे बलशाली इन्द्रदेव सूर्य की माताओं द्यावा-पृथिवी को धारण करते हैं । उनके द्वारा प्रेरणा पाकर वायुदेव मनुष्य के सदृश ध्वनि करते हैं ॥४ ॥

[इन्द्रदेव इन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं । उनके द्वारा प्रेरित-कंपित वायुदेव ही शब्द रूप में वाणी को प्रकट करते हैं ।]

३३०९. ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥५ ॥

हे शूरवीर तथा रिपुओं को दबाने वाले इन्द्रदेव ! आपने समस्त भुवनों को धारण करके रिपुओं को परास्त करने वाले वज्र द्वारा शक्तिपूर्वक 'अहि' का विनाश किया था । हे इन्द्रदेव ! आप महिमावान् हैं और आपके कर्म भी महिमावान् हैं । आप सम्पूर्ण सवनों में प्रार्थना करने योग्य हैं ॥५ ॥

३३१०. ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।
अधा ह त्वद्वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥६ ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव ! आपके वे समस्त कर्म निश्चित रूप से सत्य हैं । हे इन्द्रदेव ! आप अभिलाषाओं की वर्षा करने वाले हैं । आपके डर से गौएँ अपने थनों से दूध टपकाती हैं । हे श्रेष्ठ मनोबल वाले इन्द्रदेव ! आपके भय से सरिताएँ वेग के साथ प्रवाहित होती हैं ॥६ ॥



३३११. **अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः ।**
यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥७ ॥

जब आपने वृत्र द्वारा अवरुद्ध की हुई विशाल सरिताओं को प्रवाहित होने के निमित्त मुक्त किया, तब हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! अवरुद्ध की हुई सरिताओं ने आपके द्वारा संरक्षित होने के लिए आपकी प्रार्थना की ॥७ ॥

३३१२. **पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।**
अस्मद्र्यक्शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके निमित्त, हर्षप्रदायक सोमरस पीसकर, उसमें जल मिलाकर तैयार कर दिया गया है । जिस प्रकार सारथी द्रुतगामी अश्वों की लगाम को सँभालते हैं, उसी प्रकार बलशाली सोमरस, तेजस् सम्पन्न तथा प्रार्थना के योग्य इन्द्रदेव को हमारी ओर ले आएँ ॥८ ॥

३३१३. **अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।**
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥९ ॥

हे सहिष्णु इन्द्रदेव ! आप हमारे निमित्त रिपुओं को पराजित करने वाला, महान् तथा प्रशंसनीय पुरुषार्थ करें । विनाश करने योग्य रिपुओं को हमारे अधीन करें तथा हिंसा करने वाले व्यक्तियों के आयुधों को विनष्ट करें ॥९ ॥

३३१४. **अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।**
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हम मनुष्यों की प्रार्थनाओं को सुनें तथा अनेक प्रकार के अन्न प्रदान करें । आप हमारे निमित्त सम्पूर्ण ज्ञान को प्रेरित करें तथा हमें ज्ञान सम्पन्न करें । हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप हमारे लिए गौओं को प्रदान करने वाले हों ॥१० ॥

३३१५. **नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।**
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हमारे द्वारा प्रशंसित होकर हमें नदियों के सदृश अन्न से परिपूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी बुद्धि द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों का गान करते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २३]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र, ८-१० के इन्द्र अथवा ऋत । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३३१६. **कथा महामवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।**
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥१ ॥

हम मनुष्यों द्वारा की गई प्रार्थनाएँ उन महान् इन्द्रदेव को कैसे संवर्द्धित करेंगी ? वे किस यज्ञ सम्पादक के यज्ञ में प्रेमपूर्वक पधारेंगे ? वे महान् इन्द्रदेव सोमपान करते हुए तथा अभिलाषापूर्वक अन्न ग्रहण करते हुए किस याजक को प्रदान करने के लिए तेजस्वी धन धारण करते हैं ? ॥१ ॥

३३१७. **को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।**
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥२ ॥

कौन वीर उन इन्द्रदेव के साथ सोम पान करता है ? कौन व्यक्ति उनकी श्रेष्ठ बुद्धि से सम्पन्न होता है ? उनके अद्‌भुत धन कब बाँटे जायेंगे ? वे इन्द्रदेव स्तुति करने वाले याजकों को संवर्द्धित करने के लिए रक्षण साधनों से कब सम्पन्न होंगे ? ॥२ ॥

३३१८. कथा श्रृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आहूत करने वालों की स्तुतियों का आप कैसे श्रवण करते हैं ? स्तुतियों का श्रवण करके स्तोताओं के मार्ग को आप कैसे जानते हैं ? आपके प्राचीन दान कौन से हैं ? वे दान इन्द्रदेव को याजकों की इच्छाओं की पूर्ति करने वाले क्यों कहते हैं ? ॥३ ॥

३३१९. कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभियज्जुजोषत् ॥४ ॥

जो याजक विपत्तिग्रस्त होकर उन इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं और यज्ञ द्वारा तेज सम्पन्न बनते हैं, वे उनके ऐश्वर्य को कैसे प्राप्त करेंगे ? जब प्रकाशवान् इन्द्रदेव आहुति ग्रहण करके हमारे ऊपर हर्षित होते हैं, तब वे हमारी प्रार्थनाओं को अच्छी तरह जानने वाले होते हैं ॥४ ॥

३३२०. कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कामं सुयुजं ततस्रे ॥५ ॥

प्रकाशमान इन्द्रदेव उषा के प्रकट होने पर मनुष्यों के बन्धुत्व को कैसे और कब प्राप्त करेंगे ? जो याजकगण उन इन्द्रदेव के निमित्त श्रेष्ठ तथा मनोहर आहुतियों को विस्तृत करते हैं, उन मित्रों के निमित्त अपनी मित्रता को वे कब और कैसे प्रकाशित करेंगे ? ॥५ ॥

३३२१. किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्१ण चित्रतममिष आ गोः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम याजक, रिपुओं के आक्रमण से सुरक्षा करने वाली आपकी मित्रता का वर्णन, स्तुति करने वालों के समीप किस प्रकार करें ? आपके बन्धुत्व भाव का वर्णन कब करें ? सुन्दर दिखायी देने वाले इन्द्रदेव का कार्य स्तुतिकर्त्ताओं के हित के लिए है । सूर्यदेव के समान तेजसम्पन्न तथा सर्वत्र गमन करने वाले इन्द्रदेव के मनोहर तेज की सभी मनुष्य कामना करते हैं ॥६ ॥

३३२२. द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥७ ॥

विद्रोह करने वाली, हिंसक कार्य करने वाली तथा इन्द्रदेव को न मानने वाली राक्षसी का संहार करने के लिए उन्होंने अपने तीक्ष्ण आयुधों को और अधिक तीक्ष्ण किया । ऋण (देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण) भी हम मनुष्यों को उषा काल में (ध्यानादि साधनाओं में) बाधा पहुँचाता है । पराक्रमी इन्द्रदेव उन उषाओं में हमारे ऋण को (उनसे मुक्ति पाने की क्षमता प्रदान करके) दूर से ही नष्ट कर देते हैं ॥७ ॥

३३२३. ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥८ ॥

ऋत (सत्य, सूर्य या यज्ञ) के पास अनेकों शक्तियाँ हैं । ऋतदेव की प्रार्थना दुष्कर्मों को विनष्ट कर देती है ।



उनकी सद्‌बुद्धि प्रदान करने वाली प्रार्थनाएँ कान से बहरे मनुष्यों को भी लाभान्वित करती हैं ॥८ ॥

३३२४. ऋतस्य दृळहा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥९ ॥

ऋत के पुष्ट, धारक, हर्षप्रदायक आदि अनेकों रूप हैं । ऋतदेव के समीप मनुष्य प्रचुर अन्न की कामना करते हैं तथा उनकी सहायता से यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों में दानार्थ गौएँ प्रयुक्त होती हैं ॥९ ॥

३३२५. ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥१० ॥

ऋतदेव को वशीभूत करने के लिए याजकगण उनकी भक्ति करते हैं । ऋतदेव की शक्ति गौओं तथा अश्वों को प्रदान करने वाली है । इनसे ही प्रेरणा पाकर द्यावा-पृथिवी विस्तीर्ण तथा गम्भीर हुए हैं तथा उनके लिए ही गौएँ दूध प्रदान करती हैं ॥१० ॥

३३२६. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हमारे द्वारा प्रशंसित होकर , हमें नदियों के सदृश अन्न से - घी से पूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी बुद्धि द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों का निर्माण करते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २४]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १० - अनुष्टुप् ।]

३३२७. का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥१ ॥

बल के पुत्र तथा हमारी ओर पधारने वाले इन्द्रदेव को कौन सी प्रार्थना ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए प्रवृत्त करेगी ? हे याजको ! पराक्रमी तथा गौओं के पालक इन्द्रदेव हम मनुष्यों को रिपुओं का ऐश्वर्य प्रदान करें । हम उनकी प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

३३२८. स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥२ ॥

वृत्र का संहार करने वाले इन्द्रदेव युद्ध में बुलाये जाते हैं । वे प्रशंसनीय हैं । श्रेष्ठ रीति से प्रार्थना किये जाने पर वे यथार्थ ऐश्वर्य के प्रदाता बनते हैं । वे धनवान् इन्द्रदेव स्तोताओं तथा सोमाभिषव करने वाले याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥२ ॥

३३२९. तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत्त्यागमुभयासो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥३ ॥

अपनी सहायता के लिए सभी मनुष्य उन इन्द्रदेव को ही आहूत करते हैं । याजकगण तप द्वारा शरीर को क्षीण करके उनको ही अपना संरक्षक बनाते हैं याजक तथा स्तोता दोनों मिलकर पुत्र-पौत्रादि प्राप्ति के निमित्त उनके समीप जाते हैं ॥३ ॥



३३३०. क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बलशाली हैं । समस्त दिशाओं में विद्यमान मनुष्य, जल (पोषक रस) प्राप्त करने के लिए संयुक्तरूप से यजन करते हैं । जब युद्ध करने वाले मनुष्य संग्राम में एकत्रित होते हैं, तब सभी उन इन्द्रदेव की इच्छा करते हैं ॥४ ॥

३३३१. आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।
आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥५ ॥

इसके बाद युद्ध में योद्धागण बलशाली इन्द्रदेव का पूजन करते हैं तथा पकाने वाले पुरोडाश पकाकर उनको प्रदान करते हैं । सोम अभिषव करने वाले याजक, सोम अभिषव न करने वाले याजकों को ऐश्वर्य से दूर करते हैं । अन्य लोग कामनाओं की पूर्ति करने वाले बलशाली इन्द्रदेव के निमित्त आहुतियाँ समर्पित करते हैं ॥५ ॥

३३३२. कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्तमित्सखायं कृणुते समत्सु ॥६ ॥

कल्याण करने की अभिलाषा करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त जो मनुष्य सोम अभिषव करते हैं, उन्हें वे ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । श्रेष्ठ मानस से उनकी इच्छा करने वाले तथा सोम निचोड़ने वाले याजकों के साथ वे इन्द्रदेव युद्धों में मित्रता की भावना से सम्बन्ध स्थापित करते हैं ॥६ ॥

३३३३. य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥७ ॥

आज जो मनुष्य इन्द्रदेव के लिए सोम रस निचोड़ते हैं, पुरोडाश पकाते हैं, धान की खीलों को भूनते हैं; उनकी स्तुतियों का श्रवण करके इन्द्रदेव उन्हें अत्यधिक सामर्थ्य प्रदान करते हैं ॥७ ॥

३३३४. यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद् वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥८ ॥

जब रिपुओं का संहार करने वाले इन्द्रदेव रिपुओं को विशेष प्रकार से जानते हैं तथा बड़े युद्ध में विद्यमान रहते हैं, तब उनकी पत्नी सोम अभिषव करने वालों द्वारा प्रोत्साहित किये गये तथा कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव के यश का वर्णन करती हैं ॥८ ॥

३३३५. भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥९ ॥

किसी ने प्रचुर ऐश्वर्य (धन) प्रदान करके थोड़ी सी वस्तु प्राप्त कर ली । जब उस वस्तु का विक्रय नहीं हुआ, तब वह पुनः जाकर अपने धन की माँग करता है । बाद में विक्रेता प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करके थोड़ी सी वस्तु लेने के लिए तैयार नहीं हुआ । उसने कहा- चाहे आप सक्षम हों या अक्षम, विक्रय के समय आपने जो बोल दिया है, अब वही रहेगा ॥९ ॥

[मनुष्य प्रचुर जीवनी शक्ति खर्च करके थोड़ा सा भोग सुख प्राप्त करता है । वे भोग आत्मसन्तोष दिलाने में अपर्याप्त सिद्ध होते हैं । तब मनुष्य चाहने पर भी किया हुआ सौदा बदल नहीं सकता , जो ले लिया, उसे ही भोगना पड़ता है ।]

३३३६. क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः । यदा वृत्राणि जंघनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥१० ॥



दस गौओं द्वारा हमारे इन्द्रदेव को कौन खरीदेगा (दस इन्द्रियजन्य कामनाओं को समर्पित करके आत्मशक्ति कौन प्राप्त करेगा) ? जब वे (इन्द्र) रिपुओं का संहार करेंगे, तब उनको पुनः हमें वापस दें ॥१० ॥

३३३७. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हमारे द्वारा प्रशंसित होकर हमें नदियों के सदृश अन्नों से परिपूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी बुद्धि द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों का गान करते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २५]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३३३८. को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥१ ॥

देवताओं जैसी अभिलाषा करते हुए आज कौन मनुष्य इन्द्रदेव के साथ मित्रता करना चाहते हैं ? सोम अभिषव करने वाले कौन याजक संकटों से पार होने के लिए तथा महान् सुरक्षा के लिए अग्नि के प्रदीप्त होने पर उनकी स्तुति करते हैं ? ॥१ ॥

३३३९. को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥२ ॥

कौन याजक अपनी वाणी से सोमपान करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं ? कौन उनके द्वारा प्रदान की गयी गौओं का पालन करते हैं ? कौन उनकी सहायता की कामना करते हैं ? कौन उनके साथ मित्रता की कामना करते हैं । कौन उनके बन्धुत्व की कामना करते हैं ? तथा कौन उन दूरदर्शी इन्द्रदेव के संरक्षण की कामना करते हैं ? ॥२ ॥

३३४०. को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३ ॥

आज देवताओं का संरक्षण करने के लिए कौन कामना करते हैं ? आदित्य, अदिति तथा प्रकाशरूपी उषा की कौन प्रार्थना करते हैं ? इन्द्रदेव, अग्निदेव तथा अश्विनीकुमार प्रार्थना से हर्षित होकर किस याजक के द्वारा अभिषुत सोमरस का इच्छानुसार पान करते हैं ? ॥३ ॥

३३४१. तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥४ ॥

जो याजक मनुष्यों के मित्र तथा नायकों में सर्वश्रेष्ठ नायक इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस अभिषव करेंगे, भरण-पोषण करने वाले अग्निदेव उस याजक को सुख प्रदान करें तथा उदित होते हुए सूर्यदेव को वे याजक (चिरकाल तक) देखें ॥४ ॥

३३४२. न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत्प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥५ ॥

जो याजक इन्द्रदेव के निमित्त सोम निचोड़ते हैं। वे शत्रुओं द्वारा पीड़ित नहीं होते। उन याजकों को माता अदिति अत्यधिक हर्ष प्रदान करती हैं। इन्द्रदेव के निमित्त श्रेष्ठ कर्म करने वाले, यज्ञ करने वाले, सन्मार्ग पर गमन करने वाले तथा सोम यज्ञ करने वाले याजक उनके स्नेही बनते हैं ॥५॥

३३४३. सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥६॥

रिपुओं का संहार करने वाले, पराक्रमी इन्द्रदेव केवल सन्मार्ग पर गमन करने वाले तथा सोम अभिषव करने वाले याजकों के ही पुरोडाश को ग्रहण करते हैं। वे सोम अभिषव न करने वाले याजकों के मित्र अथवा बन्धु नहीं होते। बुरे मार्ग पर गमन करने वालों तथा प्रार्थना न करने वालों के वे संहार करने वाले होते हैं ॥६॥

३३४४. न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥७॥

सोमपान करने वाले इन्द्रदेव सोम अभिषव न करने वाले, ऐश्वर्य वाले तथा कंजूस व्यापारियों के साथ मित्रता स्थापित नहीं करते। वे उनको तथा उनके अनावश्यक ऐश्वर्य को नष्ट कर देते हैं। सोमरस निचोड़ने वाले तथा पुरोडाश पकाने वाले याजकों के ही वे मित्र होते हैं ॥७॥

३३४५. इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम्।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥८॥

उत्कृष्ट, निकृष्ट तथा मध्यम प्रकार के मनुष्य इन्द्रदेव को आहूत करते हैं। गमन करने वाले तथा बैठे रहने वाले मनुष्य भी उनको आहूत करते हैं। घर में विद्यमान रहने वाले तथा युद्ध करने वाले मनुष्य भी उनका आवाहन करते हैं। इसके अलावा अन्न की कामना करने वाले मनुष्य भी उनका आवाहन करते हैं ॥८॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम १ - ३ वामदेव अथवा इन्द्र। **देवता** - १ - ३ इन्द्र अथवा आत्मा ४ - ७ श्येन। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

३३४६. अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥१॥

मैं ही मनु के रूप में हुआ हूँ। मैं ही आदित्य हूँ तथा मैं ही विवेकी कक्षीवान् ऋषि हूँ। मैं ही अर्जुनी पुत्र 'कुत्स' के रूप में हूँ और मैं ही क्रान्तदर्शी उशना ऋषि हूँ। हे याजको ! आप मुझे भली प्रकार देखें ॥१॥

३३४७. अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२॥

मैंने सत्पुरुषों के निमित्त भूमि प्रदान की तथा दानी मनुष्यों के निमित्त जल बरसाया है। ध्वनि करते हुए जल प्रवाहों को मैंने ही आगे बढ़ाया था। अतः समस्त देवता मेरे संकल्प का अनुसरण करें ॥२॥

३३४८. अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥३॥

सोमरस पान से हर्षित होकर मैंने शम्बरासुर की निन्यानवे पुरियों को एक साथ ध्वस्त किया था। यज्ञ में



अतिथियों को गौएँ प्रदान करने वाले राजर्षि 'दिवोदास' की मैंने रक्षा की थी । इसके बाद उनके लिए सौवीं पुरी को निवास के योग्य बनाया था ॥३ ॥

३३४९. प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥४ ॥

हे मरुद्गण ! (तीव्रगति के लिए विख्यात) बाज़ पक्षियों की तुलना में वह सुपर्ण अधिक शक्तिशाली और द्रुतगामी हैं । देवों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले सोमरस रूपी हव्य को श्रेष्ठ पंखों वाले पक्षी ने चक्र विहीन रथ द्वारा स्वर्गलोक से लाकर मनुष्यों को (प्रजापति मनु को) प्रदान किया था ॥४ ॥

३३५०. भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥५ ॥

जब समस्त लोकों को कम्पायमान करते हुए वह बाज़ पक्षी द्युलोक से सोमरस को लेकर चला, तब उसने विस्तृत आकाश मार्ग में मन के सदृश वेग से उड़ान भरी । शान्ति प्रदायक तथा मधुर रस को शीघ्रतापूर्वक लाने के बाद उस बाज़ पक्षी ने इस जगत् में प्रचुर यश-लाभ प्राप्त किया ॥५ ॥

३३५१. ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥६ ॥

सुदूर प्रदेश से सोमरस को लेकर ऋजु मार्ग से गमन करने वाले तथा देवताओं के संग निवास करने वाले श्येन पक्षी ने मीठे तथा हर्ष प्रदायक सोमरस को उच्च द्युलोक से ग्रहण करके, उसे दृढ़तापूर्वक पृथ्वी पर पहुँचाया ॥६ ॥

३३५२. आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥७ ॥

उस श्येन पक्षी ने सहस्र संख्यक यज्ञों के माध्यम से सोमरस को प्राप्त करके उड़ान भरी । इसके बाद अनेक सत्कर्म करने वाले तथा ज्ञान सम्पन्न इन्द्रदेव ने सोमरस के पान से हर्षित होकर मूढ़ रिपुओं का संहार किया ॥७ ॥

[सूक्त - २७]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - श्येन अथवा इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् , ५ - शक्वरी ।]

३३५३. गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥१ ॥

(तत्वज्ञानी ऋषि वामदेव का कथन) गर्भ (समाधि अवस्था) में रहकर ही मैंने इन्द्रादि सम्पूर्ण देवताओं के जन्मों को भली-भाँति जान लिया था । सैकड़ों लोहे की पुरियों ने गर्भावस्था में मेरी सुरक्षा की थी । उसके बाद मैं श्येन पक्षी के समान वेग के साथ बाहर निकल आया था ॥१ ॥

३३५४. न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥२ ॥

उस अवस्था में मुझे मोह आदि दोष प्रभावित नहीं कर पाये । मैंने ही अपने तीक्ष्ण बल (ज्ञान) से उन दु:खों को आवृत कर लिया । सबको प्रेरणा देने वाले परमात्मा ने गर्भस्थ रिपुओं का संहार किया था तथा बढ़कर गर्भ में विद्यमान वायु के सदृश वेग वाले रिपुओं का विनाश किया था ॥२ ॥

३३५५. अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥३ ॥

सोम हरण करते समय जब श्येन पक्षी ने द्युलोक से गर्जना की , तब सोमपालों ने बुद्धिवर्धक सोमरस को छीनने का प्रयत्न किया । उसके बाद मन के वेग से गमन करने वाले सोमरक्षक कृशानु ने प्रत्यञ्चा चढ़ाई तथा श्येन पक्षी पर बाण छोड़ा ॥३ ॥

३३५६. ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ।
अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥४ ॥

जिस प्रकार अश्विनीकुमारों ने बलवान् इन्द्रदेव के द्वारा संरक्षित स्थान से 'भुज्यु' को अपहृत किया था, उसी प्रकार सरल मार्ग से गमन करने वाले श्येन पक्षी ने इन्द्रदेव द्वारा संरक्षित द्युलोक से सोम का अपहरण किया था । उस समय संग्राम में 'कृशानु' के आयुधों से घायल होकर उस पक्षी का एक पतनशील पंख गिर गया था ॥४ ॥

३३५७. अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः । अध्वर्युभिः
प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥५ ॥

पवित्र कलश में रखे हुए, गो-दुग्ध मिश्रित, तेजोयुक्त, तुष्टिदायक, मीठे रसों में सर्वश्रेष्ठ, अन्नरूप सोमरस को अध्वर्युओं के द्वारा प्रदान किये जाने पर, आनन्द प्राप्त करने के लिए धनवान् इन्द्रदेव पान करें तथा उसकी सुरक्षा करें ॥५ ॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र अथवा इन्द्रासोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३३५८ त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥१ ॥

हे सोम ! आपसे मित्रता करके तथा आपका सहयोग प्राप्त करके इन्द्रदेव ने प्रवाहित जल को मनु के लिए उत्पन्न किया । उन्होंने 'अहि' का संहार करके सप्त-सरिताओं को प्रवाहित किया तथा वृत्र द्वारा अवरुद्ध किये हुए द्वारों को खोला ॥१ ॥

३३५९. त्वा युजा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२ ॥

हे सोम ! इन्द्रदेव ने आपके सहयोग से, विस्तृत द्युलोक में गमन करने वाले सूर्य चक्र को अपने सामर्थ्य के द्वारा अपने नियन्त्रण में किया था । उन्होंने ही सर्वत्र गमन करने वाले महान् द्रोह शक्ति सम्पन्न (नष्ट-भ्रष्ट करने की शक्ति) से सूर्य-चक्र पर अधिकार किया था ॥२ ॥

३३६०. अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥३ ॥

हे सोम ! आपकी सहायता से इन्द्रदेव ने मध्याह्न से पूर्व ही (युद्ध में) रिपुओं का विनाश कर दिया तथा अग्निदेव ने उन्हें भस्मसात् कर दिया । जिस प्रकार रक्षारहित दुर्गम प्रदेश से गमन करने वाले मनुष्य को चोर मार डालते हैं, उसी प्रकार इन्द्रदेव ने अपने बल के द्वारा अनेकों सहस्र शत्रु सेनाओं को विनष्ट कर दिया ॥३ ॥



३३६१. विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ने इन दस्युओं को पतित किया तथा हीनभाव वाले मनुष्यों को निन्दित किया । हे इन्द्रदेव तथा सोमदेव ! आप दोनों उन रिपुओं को अवरुद्ध करते हैं तथा उन्हें आयुधों द्वारा विनष्ट करते हैं और उसके बाद सम्मान प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

३३६२. एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥५ ॥

हे सोमदेव ! यह सच है कि आप और इन्द्रदेव ने महान् अश्वों तथा गौओं के झुण्ड का दान किया था । हे धनवान् सोम तथा इन्द्रदेवो ! आप दोनों ने पाषाणों द्वारा अवरुद्ध गौ-समूहों तथा धरती को बल द्वारा मुक्त किया था और रिपुओं का संहार किया था ॥५ ॥

[सूक्त - २९]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३३६३. आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रशंसित होकर हम याजकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए हमारे अन्न से सम्पन्न अनेकों यज्ञों में घोड़ों के साथ पधारें । आप आनन्दमय, स्वामी, स्तोत्रों द्वारा प्रशंसित तथा अविनाशी धन से सम्पन्न हैं ॥१ ॥

३३६४. आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥२ ॥

मनुष्यों के लिए कल्याणकारी तथा सर्वज्ञाता हे इन्द्रदेव ! आप सोम अभिषव करने वालों के द्वारा आवाहित होकर हमारे यज्ञ के समीप पधारें । श्रेष्ठ अश्वों से सम्पन्न, निर्भय तथा सोम अभिषव करने वालों के द्वारा प्रशंसित इन्द्रदेव मरुतों के साथ आनन्दित होते हैं ॥२ ॥

३३६५. श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥३ ॥

हे मनुष्यो ! इन्द्रदेव को बलिष्ठ बनाने के लिए तथा समस्त दिशाओं में हर्षित होने के लिए, आप उनके कानों में उत्तम स्तो.. सुनायें । सोमरस से सम्पन्न शक्तिशाली इन्द्रदेव हम मनुष्यों को ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए श्रेष्ठ तीर्थों को भयमुक्त करें ॥३ ॥

३३६६. अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्याश्शून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥४ ॥

वज्रबाहु इन्द्रदेव, सैकड़ों तथा हजारों की संख्या में द्रुतगामी अश्वों को रथ वहन करने के स्थान में नियोजित करके, सुरक्षा के निमित्त याचना करने वालों, आवाहन करने वालों, प्रार्थना करने वालों तथा मेधावी याजकों के समीप गमन करते हैं ॥४ ॥

३३६७. **त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।**
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हम मनुष्य आपकी स्तुति करने वाले हैं । हम ज्ञानी तथा स्तुति करने वाले लोग आपके द्वारा संरक्षित हैं । आप अत्यन्त तेज सम्पन्न, प्रार्थना योग्य तथा अन्न से युक्त हैं । ऐश्वर्य दान करने के समय हम मनुष्य आपकी प्रार्थना करें ॥५ ॥

[सूक्त - ३०]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र, ९-११ इन्द्र - उषा । **छन्द** - गायत्री, ८, २४ अनुष्टुप् ।]

३३६८. **नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् ॥१ ॥**

हे शत्रु संहारक इन्द्रदेव ! आप से अधिक श्रेष्ठ और महान् कोई नहीं है । आपके समान अन्य और कोई देव नहीं है ॥१ ॥

३३६९. **सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥२ ॥**

हे इन्द्रदेव ! सब जगह व्याप्त चक्र जिस प्रकार गाड़ी का अनुगमन करता है, उसी प्रकार समस्त प्रजाएँ आपका अनुगमन करती हैं । आप सचमुच महान् हैं तथा गुणों के द्वारा विख्यात हैं ॥२ ॥

[प्रकृति का चक्र सब जगह व्याप्त है । यह चक्र प्राणियों के लिए अन्नादि पोषक पदार्थों को उपज रूपी शकट के माध्यम से पहुँचाता है । प्रजाओं को इन्द्रादि देवों द्वारा प्रदत्त अनुदानों को यज्ञों के माध्यम से सब तक पहुँचाकर सृष्टि चक्र संचालन में देवों का सहयोगी बनना चाहिए ।]

३३७०. **विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥३ ॥**

हे इन्द्रदेव ! विजय की अभिलाषा करने वाले समस्त देवों ने शक्ति के रूप में आपका सहयोग प्राप्त करके असुरों के साथ युद्ध किया था । उस समय आपने सभी रिपुओं का सम्पूर्ण विनाश किया था ॥३ ॥

३३७१. **यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रंकुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥४ ॥**

हे इन्द्रदेव ! उस संग्राम में युद्ध करने वाले 'कुत्स' तथा उनके सहयोगियों के विनाश के लिए आपने सूर्य के रथ चक्र को उठाया तथा अपने भक्तों की सुरक्षा की थी ॥४ ॥

३३७२. **यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥५ ॥**

हे इन्द्रदेव ! उस युद्ध में देवताओं के अवरोधक सम्पूर्ण असुरों के साथ आपने अकेले ही संग्राम किया तथा उन हिंसा करने वालों का संहार किया ॥५ ॥

३३७३. **यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥६ ॥**

हे इन्द्रदेव ! जिस संग्राम में आपने ऋषि 'एतश' के लिए सूर्य पर भी चढ़ाई की थी, उस संग्राम में लड़ाई करके आपने 'एतश' की सुरक्षा की थी ॥६ ॥

३३७४. **किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥७ ॥**

वृत्र का संहार करने वाले ऐश्वर्यवान् हे इन्द्रदेव ! उसके बाद क्या आप अत्यधिक क्रोधित हुए थे ? इस आकाश में आपने 'दानु' के पुत्र 'वृत्र' का संहार किया था ॥७ ॥

३३७५. **एतद्घेदुत वीर्य१मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् । स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥८ ॥**



हे इन्द्रदेव ! आपने बल से सम्पन्न पुरुषार्थ किया था । जिस प्रकार सूर्यदेव द्युलोक की पुत्री उषा का नाश करते हैं, उसी प्रकार आप विशाल शत्रु सेना का संहार करते हैं ॥८ ॥

३३७६. दिवश्चिद्घा दुहितरं महान्महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् हैं । विशाल शत्रुसेना को उसी प्रकार चूर-चूर कर दें, जिस प्रकार सूर्यदेव उषा को छिन्न-भिन्न कर देते हैं ॥९ ॥

३३७७. अपोषा अनसः सरत्संपिष्टादह बिभ्युषी । नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥१० ॥

बलशाली इन्द्रदेव ने जब उषा के रथ को विदीर्ण कर दिया था, तब भयभीत होने वाली उषा विदीर्ण रथ से दूर होकर प्रकट हुई थी ॥१० ॥

३३७८. एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥११ ॥

उस उषा देवी का इन्द्रदेव द्वारा विदीर्ण हुआ रथ 'विपाशा' नदी के किनारे गिर पड़ा और उस स्थान से उषा देवी दूर देश में चली गईं ॥११ ॥

३३७९. उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि । परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने समस्त जल को तथा परिपूर्ण रूप से भरी हुई वेग से प्रवाहित होने वाली सिन्धु नदी को अपनी बुद्धि के द्वारा धरती पर सब जगह स्थापित किया था ॥१२ ॥

३३८०. उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् । पुरो यदस्य संपिणक् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वर्षण करने वाले हैं । जब आपने 'शुष्ण' नामक असुर के नगरों को विदीर्ण किया था; तब आपने उसके ऐश्वर्य का भी अपहरण किया था ॥१३ ॥

३३८१. उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने 'कुलितर' के पुत्र विनाशक 'शम्बर' को विशाल पर्वत के ऊपर से नीचे की ओर धकेल कर मार डाला था ॥१४ ॥

३३८२. उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधींरिव ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! चक्र के अरों के समान नियोजित संगठित होकर रहने वाले वर्चस्वी दास के रिपुओं के पाँच लाख सैनिकों को आपने विनष्ट कर दिया था ॥१५ ॥

३३८३. उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥१६ ॥

सैकड़ों यज्ञ सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव ने 'अग्रु' के पुत्र 'परावृक्त' को स्तोत्र पाठ में भाग लेने योग्य बनाया ॥१६ ॥

३३८४. उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥१७ ॥

ययाति के शाप से पतित, विख्यात शासक 'यदु' तथा 'तुर्वश' को शची के पति ज्ञानी इन्द्रदेव ने अभिषेक के योग्य बनाया ॥१७ ॥

३३८५. उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! सरयू नदी के किनारे निवास करने वाले 'अर्ण' तथा 'चित्ररथ' नामक आर्य शासकों को आपने तत्काल मार दिया था ॥१८ ॥

३३८६. अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥१९ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! समाज के द्वारा परित्याग किये गये अन्धों तथा पंगुओं को आपने अनुकूल रास्ते पर चलाया था। आपके द्वारा प्रदान किये गये सुख को हटाने में कोई सक्षम नहीं हो सकता ॥१९ ॥

३३८७. **शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे ॥२० ॥**

रिपुओं के सैकड़ों पाषाण विनिर्मित नगरों को इन्द्रदेव ने हवि प्रदाता दिवोदास के लिए प्रदान किया ॥२० ॥

३३८८. **अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः। दासानामिन्द्रो मायया ॥२१ ॥**

उन इन्द्रदेव ने 'दभीति' के कल्याण के लिए अपनी सामर्थ्य के द्वारा असुरों के तीस हजार वीरों को हथियारों से मारकर सुला दिया ॥२१ ॥

३३८९. **स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः । यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥२२ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आप उन समस्त रिपुओं को हिला देते हैं। हे वृत्र का संहार करने वाले इन्द्रदेव ! आप गौओं के पालक हैं। आप समस्त याजकों के साथ समान व्यवहार करते हैं ॥२२ ॥

३३९०. **उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम्। अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥२३ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आपने अपनी इन्द्रियों का जो बल तथा पराक्रम प्रदर्शित किया है, उसे कोई भी विनष्ट नहीं कर सकता ॥२३ ॥

३३९१. **वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।**
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥२४ ॥

रिपुओं का संहार करने वाले हे इन्द्रदेव ! 'अर्यमा' देवता आपको वह मनोहर ऐश्वर्य प्रदान करें। दन्तहीन 'पूषा' तथा 'भग' देवता आपको वह रमणीय ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२४ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम। **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - गायत्री, ३ पादनिचृत् गायत्री ।]

३३९२. **कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥१ ॥**

निरन्तर प्रगतिशील हे इन्द्रदेव ! आप किन-किन तृप्तिकारक पदार्थों के भेंट करने से, किस तरह की पूजा विधि से प्रसन्न होंगे ? आप किन दिव्य शक्तियों सहित हमारे सहयोगी बनेंगे ? ॥१ ॥

३३९३. **कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृळहा चिदारुजे वसु ॥२ ॥**

सत्यनिष्ठों को आनन्द प्रदान करने वालों में सोम सर्वोपरि है; क्योंकि हे इन्द्रदेव ! यह आपको दुर्धर्ष शत्रुओं के ऐश्वर्य को नष्ट करने की प्रेरणा देता है ॥२ ॥

३३९४. **अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः ॥३ ॥**

स्तुतियों से प्रसन्न करने वाले अपने मित्रों के रक्षक हे इन्द्रदेव ! हमारी हर प्रकार से रक्षा करने के लिये आप उच्चकोटि की तैयारी से प्रस्तुत हों ॥३ ॥

३३९५. **अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः। नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥४ ॥**

हे इन्द्रदेव ! हम याजकगण आपका अनुगमन करते हैं। आप हम याजकों की प्रार्थनाओं से हर्षित होकर, हमारे सम्मुख गोल पहिए के समान पधारें ॥४ ॥

[वृत्ताकार चक्र सतत प्रगतिशीलता का प्रतीक है। इन्द्र का अनुगमन करते हुए हम सतत प्रगतिशील रहें, यह भाव है।]



३३९६. प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ।।५ ।।

हे इन्द्रदेव ! आप यज्ञ मण्डप में अपने स्थान को ज्ञात करके पधारते हैं । सूर्यदेव के साथ हम आपकी उपासना करते हैं ।।५ ।।

३३९७. सं यत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ।।६ ।।

हे इन्द्रदेव ! जब हम आपकी प्रार्थना करते हैं, तब वे प्रार्थनाएँ चक्र के सदृश आपकी ओर गमन करती हैं । वे प्रार्थनाएँ सर्वप्रथम आपके समीप जाती हैं, बाद में सूर्यदेव के समीप गमन करती हैं ।।६ ।।

३३९८. उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ।।७ ।।

शक्तियों के स्वामी हे इन्द्रदेव ! स्तोतागण आपको ऐश्वर्यवान्, धन प्रदायक तथा तेजस्वी कहते हैं ।।७ ।।

३३९९. उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते । पुरू चिन्मंहसे वसु ।।८ ।।

हे इन्द्रदेव ! स्तुति करने वालों तथा सोम अभिषव करने वालों को आप शीघ्र ही प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ।।८ ।।

३४००. नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः । न च्यौत्नानि करिष्यतः ।।९ ।।

हे इन्द्रदेव ! आपके सैकड़ों प्रकार के ऐश्वर्य को हिंसा करने वाले शत्रु नहीं प्राप्त कर सकते । रिपुओं का विनाश करने वाली आपकी सामर्थ्य को वे रोक नहीं सकते ।।९ ।।

३४०१. अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः । अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ।।१० ।।

हे इन्द्रदेव ! आपके सैकड़ों रक्षण-साधन हमारी सुरक्षा करें, आपके सहस्रों रक्षण-साधन हमारी सुरक्षा करें और आपकी समस्त प्रेरणाएँ हमारी सुरक्षा करें ।।१० ।।

३४०२. अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ।।११ ।।

हे इन्द्रदेव ! आप हमें अपनी मित्रता की छत्रछाया में रखकर हमारा कल्याण करें तथा हम याजकों को तेजस्वी वैभव प्रदान करें ।।११ ।।

३४०३. अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा । अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ।।१२ ।।

हे इन्द्रदेव ! आप अपने महान् धनों तथा सम्पूर्ण रक्षण-साधनों द्वारा प्रतिदिन हमारी सुरक्षा करें ।।१२ ।।

३४०४. अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः । नवाभिरिन्द्रोतिभिः ।।१३ ।।

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार वीर मनुष्य गृह-द्वार को खोलते हैं, उसी प्रकार आप हम मनुष्यों के निमित्त गौओं के गोष्ठ को खोलें ।।१३ ।।

३४०५. अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ।।१४ ।।

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे रिपुओं को परास्त करने वाले, अत्यधिक तेज वाले, विनष्ट न होने वाले तथा गौओं (किरणों) से युक्त हैं । आप अश्वों से युक्त रथ द्वारा सर्वत्र गमन करने वाले हैं । आप उस रथ के साथ हम याजकों की सुरक्षा करें ।।१४ ।।

३४०६. अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ।।१५ ।।

सबके प्रेरक हे सूर्यदेव ! जिस तरह आपने अत्यधिक ओजस्वी द्युलोक की स्थापना ऊपर की है, उसी प्रकार देवताओं के बीच में हमारे यज्ञों को श्रेष्ठता प्रदान करें ।।१५ ।।

[सूक्त - ३२]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र, २३-२४ इन्द्राश्व । छन्द - गायत्री]

३४०७. आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१ ॥

हे वृत्रहन्ता ! आप महान् बनकर, संरक्षण के विविध साधनों सहित हमारे पास आएँ ॥१ ॥

३४०८. भृमिश्चिद्घासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पुरुषार्थ करने वाले तथा हमें समृद्ध करने वाले हैं । हे अद्भुत शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आप अद्भुत कर्म करने वाले मनुष्यों को, सुरक्षा के लिए विलक्षण बल प्रदान करते हैं ॥२ ॥

३४०९. दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सखिभिर्ये त्वे सचा ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो याजक आपके साथ निवास करते हैं, उन थोड़े से मित्रों के सहयोग से आप उच्छृंखलता बरतने वाले बड़े-बड़े रिपुओं को भी विनष्ट कर देते हैं ॥३ ॥

३४१०. वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँ अस्माँ इदुदव ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके साथ निवास करते हैं तथा आपकी प्रार्थना करते हैं, अतः आप हमें विशेष रूप से संरक्षण प्रदान करें ॥४ ॥

३४११. स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरा गहि ॥५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अनेक प्रकार के प्रार्थनीय तथा रिपुओं द्वारा परास्त न किये जाने योग्य रक्षण-साधनों से सम्पन्न होकर हमारे समीप पधारें ॥५ ॥

३४१२. भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके समान गौओं से सम्पन्न व्यक्तियों के मित्र हों । प्रचुर अन्न-धन के निमित्त हम आपके साथ मिलते हैं ॥६ ॥

३४१३. त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौओं (प्रकाशयुक्त किरणों) से पैदा हुए अन्न पर आप अकेले ही शासन करते हैं; अतः आप हमें प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥७ ॥

३४१४. न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम् । स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥८ ॥

हे प्रार्थनीय इन्द्रदेव ! जब आप प्रशंसित होकर स्तुति करने वालों को ऐश्वर्य प्रदान करने की अभिलाषा करते हैं, तब कोई भी किसी तरह आपको रोक नहीं सकता ॥८ ॥

३४१५. अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने । इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऋषि 'गौतम' अपनी प्रार्थनाओं के द्वारा आपको समृद्ध करते हैं तथा श्रेष्ठ अन्न दान करने के निमित्त आपकी प्रार्थना करते हैं ॥९ ॥

३४१६. प्र ते वोचाम वीर्या३ या मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमरस पान से हर्षित होकर आपने दासों की पुरियों पर चढ़ाई करके उन्हें विदीर्ण कर दिया; अतः हम आपके उस शौर्य का वर्णन करते हैं ॥१० ॥

३४१७. ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या । सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥११ ॥



हे प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! आपने जिस शौर्य को प्रकट किया । सोम रस तैयार होने पर ज्ञानी जन आपके उस शौर्य की प्रशंसा करते हैं ॥११ ॥

३४१८. अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । ऐषु धा वीरवद्यशः ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! प्रशंसा करने वाले 'गौतम' ऋषि आपकी कीर्ति को समृद्ध करते हैं । इसलिए आप इन्हें सन्तानों से सम्पन्न करें तथा अन्न प्रदान करें ॥१२ ॥

३४१९. यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! यद्यपि समस्त याजकों के लिए आप सहज उपलब्ध देव हैं, फिर भी हम स्तुति करने वाले आपको विशेष रूप से आहूत करते हैं ॥१३ ॥

३४२०. अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥१४ ॥

सबको निवास प्रदान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप सोमरस पान करने वाले हैं । आप हम याजकों के सम्मुख पधारें तथा सोमरस पान करके हर्षित हों ॥१४ ॥

३४२१. अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपकी स्तुति करने वाले हैं । हमारी स्तुतियाँ आपको हमारे समीप ले आएँ । आप अपने अश्वों को हमारी ओर प्रेरित करें ॥१५ ॥

३४२२. पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥१६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे पुरोडाश रूपी अन्न का सेवन करें । जिस तरह स्त्री की अभिलाषा करने वाले पुरुष स्त्री के वचनों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं, उसी प्रकार आप हमारी प्रार्थनाओं को सुनें ॥१६ ॥

३४२३. सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥१७ ॥

हम स्तुति करने वाले लोग द्रुतगामी, कुशल, शिक्षित तथा रिपुओं को परास्त करने वाले सहस्रों अश्वों को इन्द्रदेव से माँगते हैं । इसके अलावा सैकड़ों की संख्या में सोम की खारियों (कलशों) की याचना करते हैं ॥१७ ॥

[खारी एक पुरातन माप है । १ खारी = १६ द्रोण । १ द्रोण = १ बाल्टी के लगभग होता है ।]

३४२४. सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपकी सैकड़ों तथा हजारों की संख्या वाली गौओं को आपसे प्राप्त करते हैं । आपका धन भी हमारे समीप आए ॥१८ ॥

३४२५. दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके स्वर्ण से पूर्ण दस कलशों को प्राप्त करते हैं । हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप प्रचुर दान प्रदान करने वाले हैं ॥१९ ॥

३४२६. भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥२० ॥

प्रचुर दानदाता हे इन्द्रदेव ! आप हमें प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करें । आप हमें थोड़ा धन नहीं, वरन् विपुल धन प्रदान करें; क्योंकि आप प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करने की अभिलाषा करते हैं ॥२० ॥

३४२७. भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि ॥२१ ॥

हे वृत्रहन्ता, शूरवीर इन्द्रदेव ! आप अत्यधिक ऐश्वर्य प्रदाता के रूप में अनेकों मनुष्यों में प्रसिद्ध हैं । आप अपने ऐश्वर्य में हमें भागीदार बनाएँ ॥२१ ॥

३४२८. **प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात्। माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥२२ ॥**

मेधावी तथा विनाशक हे इन्द्रदेव ! आप गौओं के पालन करने वाले हैं । हम आपके भूरे वर्ण के अश्वों की प्रशंसा करते हैं । इन अश्वों के द्वारा आप हमारी गौओं को नष्ट न करें ॥२२ ॥

३४२९. **कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके। बभ्रू यामेषु शोभेते ॥२३ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आपके भूरे रंग के अश्व दृढ़ काष्ठ निर्मित कठपुतली की तरह (पूरी तरह नियंत्रित होकर) यज्ञ में शोभा पाते हैं ॥२३ ॥

३४३०. **अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे। बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥२४ ॥**

हे इन्द्रदेव ! जब हम बैलों से युक्त रथ पर गमन करें या पैरों द्वारा गमन करें, तब आपके भूरे रंग के हिंसा रहित घोड़े हमारे लिए हितकारी हों ॥२४ ॥

[सूक्त - ३३]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - ऋभुगण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

क्र० ३३ से ३७ तक के सूक्त ऋभुदेवों के लिए हैं । पौराणिक सन्दर्भ में वे मनुष्य थे, जो श्रेष्ठ कर्मों के आधार पर देव बने । सूर्य से विकिरित किरणों को भी ऋभु कहा गया है । प्रतीत होता है कि वे विकिरण (रेडिएशन) प्रक्रिया के अधिष्ठाता देवता हैं । वे तीन भाई हैं - ऋभु, विभु एवं वाज । ये क्रमशः शिल्पी पदार्थों के रूपान्तरण कर्त्ता, विस्तारक तथा बल संचारक हैं । ये तीनों गुण किरणों में पाये जाते हैं । विभिन्न ऋचाओं में ऋभुओं के कौशल एवं सामर्थ्य का वर्णन है -

३४३१. **प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे।**
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१ ॥

जो ऋभुगण वायु के सदृश वेग वाले और उपकारजनक कर्म करने वाले हैं, जो अपने चतुर अश्वों के द्वारा शीघ्र ही द्युलोक को परिव्याप्त करते हैं, उन ऋभुओं के निमित्त हम यजमान सन्देशवाहक के सदृश प्रार्थनाओं को प्रेरित करते हैं । सोमरस को उत्कृष्ट बनाने के लिए हम उनसे दुधारू गौओं की याचना करते हैं ॥१ ॥

३४३२. **यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः।**
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥२ ॥

जब ऋभुओं ने अपने माता-पिता की परिचर्या करके अपनी महानता का परिचय दिया तथा श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा स्वयं को बलशाली बनाया, तब उन्होंने इन्द्र आदि देवताओं की बन्धुता को प्राप्त किया । उसके बाद उन मेधावी ऋभुओं ने अपने मन को भी बलशाली बनाया ॥२ ॥

[श्रेष्ठ कर्म करके तथा मन की शक्ति बढ़ाकर व्यक्ति देवों की श्रेणी में पहुँच सकते हैं ।]

३४३३. **पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना।**
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३ ॥

उन ऋभुओं ने यूप के सदृश जीर्ण होकर लेटे हुए अपने माता-पिता को सदैव के लिए युवा बना दिया । इन्द्रदेव की अनुकम्पा से युक्त होकर तथा मधुर सोमरस पान करके वाज, विभु तथा ऋभु हमारे यज्ञ की सुरक्षा करें ॥३ ॥

३२३४. **यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिंशन्।**
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४ ॥



उन ऋभुओं ने एक वर्ष पर्यन्त मरणासन्न गाय का पालन किया। उन्होंने एक वर्ष पर्यन्त उसे अवयवों से युक्त किया तथा उसे सौन्दर्य प्रदान किया। एक वर्ष पर्यन्त उन्होंने उसमें तेज स्थापित किया। इन सम्पूर्ण कार्यों के द्वारा उन्होंने अमरत्व को प्राप्त किया ॥४॥

[भूमि को गौ कहा गया है। मृतप्राय अर्थात् ऊसर, शक्तिहीन भूमि को किरणों के उपचार से पुनः उर्वर बनाने की प्रक्रिया का बोध इस ऋचा से होता है।]

३४३५. ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५॥

ज्येष्ठ ऋभु ने कहा-हम एक चमस को दो भागों में करेंगे, उससे भी छोटे ऋभु ने कहा-हम चार भाग करेंगे। हे ऋभुगण ! त्वष्टा देवता ने आपके इन वचनों की प्रशंसा की ॥५॥

[चमस द्वारा यज्ञ को संवर्धित करने के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं। अग्निहोत्र यज्ञ में उसके प्रयोग का विधान है। ऋभुओं (किरणों) ने यज्ञ संवर्धन की तीन प्रक्रियाएँ और विकसित कर दीं।(१) सूक्ष्म कणों को प्रकृति पोषण के लिए उपयुक्त स्वरूप देना।(२) उन्हें प्रकृति में व्यापक रूप से संचारित एवं स्थापित करना।(३) प्रकृति के घटकों को पुष्ट-सशक्त बनाना। प्रकृति पोषण-संचालन यज्ञ के लिए आहुतियाँ प्रदान करने के यह तीन क्रम ऋभुओं ने जोड़े। इन्हें त्वष्टा-यज्ञ उपकरण गढ़ने वाले देवता ने सराहा।]

३४३६. सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम्।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥६॥

मनुष्य रूपी ऋभुओं ने सच ही कहा था; क्योंकि उन्होंने जो कहा, वही किया था। उसके बाद ऋभुओं ने हव्य को ग्रहण किया। दिन की तरह तेजोयुक्त चार चमसों को त्वष्टादेव ने देखा और उन्हें प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारा॥६॥

३४३७. द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥७॥

जब ऋभुगणों ने द्यु (आकाश) के बारह प्रभागों (आर्द्रा आदि वर्षा कारक १२ नक्षत्रों) में सुखपूर्वक निवास किया, तब उन्होंने खेतों को श्रेष्ठ बनाया और सरिताओं को प्रेरित किया। जलरहित स्थानों में ओषधियों को उत्पन्न किया तथा जलों को नीचे की तरफ प्रवाहित किया ॥७॥

३४३८. रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम्।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥८॥

जिन ऋभुओं ने भली-भाँति बँधे हुए तथा मनुष्यों के आरूढ़ होने योग्य रथ का निर्माण किया। जिन्होंने समस्त जगत् को प्रेरित करने वाली तथा अनेकों रूपों वाली गाय को उत्पन्न किया; वे सत्कर्म करने वाले, अन्नों वाले तथा श्रेष्ठ हाथ वाले ऋभुगण हमें धन प्रदान करें ॥८॥

३४३९. अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९॥

देवताओं ने इन ऋभुओं के रथ निर्माण आदि कर्मों को वरदान के रूप में प्रसन्न हृदय से स्वीकारा। श्रेष्ठ कर्म करने वाले वाज देवताओं के प्रिय पात्र, बड़े ऋभु इन्द्रदेव के प्रियपात्र तथा विभु,वरुणदेव के प्रियपात्र बने ॥९॥

[ऋभु पदार्थों को उपयोगी स्वरूप देते हैं, वे पदार्थों के संगठक इन्द्र के सहयोगी हैं। विभु विस्तारक हैं, वे विद्वान् वरुण के प्रिय हैं। बल संचारक वाज देवताओं, दिव्य क्षमताओं के विकासक हैं।]



३४४०. **ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।**
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१० ॥

जिन ऋभुओं ने उक्थों (स्तोत्रों) से हर्षित होकर अपनी प्रज्ञा के द्वारा दो अश्वों को बलिष्ठ किया था तथा जिन्होंने इन्द्रदेव के लिए सरलता से रथ में नियोजित होने वाले दो अश्वों को तैयार किया था, मित्र के सदृश वे ऋभुगण कल्याण की कामना करने वाले हम मनुष्यों को ऐश्वर्य पुष्टि तथा गौ आदि धन प्रदान करें ॥१० ॥

३४४१. **इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।**
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥११ ॥

हे ऋभुओ ! देवताओं ने आपको तीसरे सवन में सोमरस तथा हर्ष प्रदान किया था । तप किये बिना देवतागण मित्रता नहीं करते । हे ऋभुगण ! हम मनुष्यों को आप इस तीसरे सवन में निश्चित रूप से ऐश्वर्य प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त - ३४]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - ऋभुगण । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३४४२. **ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।**
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥१ ॥

हे ऋभु, विभु, वाज तथा इन्द्रदेवो ! हमें रत्न प्रदान करने के निमित्त आप सब हमारे यज्ञ मण्डप में पधारें । आज दिन में स्नेहपूर्वक स्तुतिगान करते हुए आप सबकी तृप्ति के लिए सोमरस प्रस्तुत किया गया है । ये हर्ष प्रदायक सोमरस आपके साथ संयुक्त हो ॥१ ॥

३४४३. **विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।**
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२ ॥

हे अन्न से सुशोभित ऋभुओ ! आप समस्त जीवों के जन्मों को जान करके सम्पूर्ण ऋतुओं में हर्ष प्राप्त करें । हर्ष प्रदायक सोमरस तथा श्रेष्ठ बुद्धि आपको हमेशा प्राप्त होती रहे । आप हमारी ओर श्रेष्ठ सन्तति से सम्पन्न ऐश्वर्य प्रेरित करें ॥२ ॥

३४४४. **अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे ।**
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३ ॥

हे ऋभुगण ! यह यज्ञ आप सब के लिए किया गया है । आप ओजस्वी व्यक्ति के समान इस यज्ञ को ग्रहण करें । हर्षित करने वाला सोमरस आपकी ओर प्रेरित होता है । हे बलशाली ऋभुओ ! आप सब सर्वश्रेष्ठ हैं ॥३ ॥

३४४५. **अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।**
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥४ ॥

श्रेष्ठ नायक हे ऋभुगण ! आपका रत्न आदि धन, परिचर्या करने वाले तथा आहुति प्रदान करने वाले यजमान के निमित्त हो । हे बलवान् ऋभुगण ! हम आपको तृतीय सवन में, हर्षित होने के लिए प्रचुर सोमरस प्रदान करते हैं । इसलिए आप सब उसे पान करें ॥४ ॥

३४४६. **आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।**
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५ ॥



हे बलवान् नायक ऋभुओ ! आप अत्यधिक ऐश्वर्यवान् के रूप में विख्यात हैं । आप हमारे समीप पधारें । जिस प्रकार नव प्रसूता गौएँ घर की तरफ गमन करती हैं, उसी प्रकार ये सोमरस आपकी तरफ आगमन करते हैं ॥५ ॥

३४४७. आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६ ॥

हे बलशाली ऋभुओ ! आप स्तुतियों द्वारा आवाहित होकर इस यज्ञ मण्डप में पधारें । आप इन्द्रदेव के मित्ररूप तथा मेधावान् हैं; क्योंकि आप सब उनके सम्बन्धी हैं । आप सब इन्द्रदेव के साथ संयुक्त होकर रत्न प्रदान करते हुए मधुर सोमरस का पान करें ॥६ ॥

३४४८. सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वरुणदेव के साथ तथा मरुद्गणों के साथ प्रेमपूर्वक सोमरस पान करें । सर्वप्रथम सोमरस पान करने वाले और ऋतुओं के अनुसार सोमरस पान करने वाले देवताओं के साथ तथा श्रेष्ठ धन को धारण करने वाली उनकी पत्नियों के साथ आप सोमरस पान करें ॥७ ॥

३४४९. सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८ ॥

हे ऋभुओ ! आप आदित्यों तथा पर्वतों के साथ प्रेमपूर्वक हर्षित हों । आप देवताओं के हितैषी सविता देवता तथा रत्न-प्रदाता सागरों के साथ संगत होकर हर्षित हों ॥८ ॥

३४५०. ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९ ॥

जिन ऋभुओं ने अपने रक्षण साधनों से अश्विनीकुमारों को सक्षम बनाया, अपने माता-पिता को तरुण बनाया, गौओं को दुधारू तथा अश्वों को बलशाली बनाया; जिन्होंने कवचों को विनिर्मित किया, द्यावा-पृथिवी को पृथक् किया तथा जिन बलशाली नायकों ने उत्तम कर्मों को सम्पन्न किया, वे सर्वप्रथम सोम पान करने वाले हैं ॥९ ॥

[अश्विनीकुमार आरोग्यवर्धक सूक्ष्म प्रवाह हैं । ऋभुओं-किरणों द्वारा उनकी क्षमता बढ़ती है । उन्होंने गौ (प्रकृति-भूखण्डों) को उपजाऊ बनाया है । पृथ्वी और आकाश के बीच सुरक्षा कवच के रूप में आयन मण्डल (आयनो स्फियर) किरणों के प्रभाव से ही बना है । इसी कवच ने ही पृथ्वी और आकाश के बीच विभाजक सीमा बनायी है ।]

३४५१. ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१० ॥

हे ऋभुओ ! आप गौओं, अश्वों तथा श्रेष्ठ पराक्रमी सन्तानों से सम्पन्न द्रव्य तथा प्रचुर अन्न वाले ऐश्वर्य को धारण करते हैं । आपके ऐश्वर्य की सब जगह प्रशंसा होती है । आप सर्वप्रथम सोम पान करके हर्षित होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१० ॥

३४५२. नापाभूत न वोऽतीतृषामानिः शस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः ॥११ ॥

हे ऋभुओ ! आप सब हमसे दूर न जायें । हम भी आपको तृषित नहीं रखेंगे । हे ऋभुओ ! आप देवत्व से सम्पन्न होकर तथा आनन्दित होकर इन्द्रदेव के साथ इस यज्ञ में हर्षित हों । हे देवो ! रत्न दान के निमित्त आलोकमान मरुतों के साथ आप हर्षित हों ॥११ ॥

[सूक्त - ३५]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - ऋभुगण । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३४५३. इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥१ ॥

सुधन्वा के बलशाली पुत्र हे ऋभुओ ! आप हमारे समीप पधारें, हमसे दूर न जायं । इस यज्ञ मण्डप में रत्नप्रदाता इन्द्रदेव को प्रदान किया जाने वाला हर्षकारक सोमरस आपको भी प्राप्त हो ॥१ ॥

३४५४. आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२ ॥

हे ऋभुओ ! आपका रत्न आदि दान हमारे समीप आए । आप भली प्रकार अभिषुत सोमरस का पान करते रहें; क्योंकि आपने अपने कौशल तथा कर्म की इच्छा द्वारा एक चमस को चार प्रकार से विनिर्मित किया है ॥२ ॥

३४५५. व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३ ॥

हे ऋभुओ ! आपने एक चमस को चार प्रकार से बनाया था तथा कहा था - हे मित्र (अग्नि) देव ! आप कृपा करें । (तब अग्नि ने उत्तर दिया) हे ऋभुओ ! आप अविनाशी पथ पर गमन करें । आप कुशल हाथ वाले हैं । आप देव पथ पर चलते हुए अमरता प्राप्त करें ॥३ ॥

३४५६.. किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥४ ॥

हे ऋभुओ ! जिस चमस को आपने अपने कौशल द्वारा चार प्रकार का बनाया, वह चमस किस वस्तु से विनिर्मित था । हे ऋत्विजो ! हर्षित होने के लिए आप सब सोमरस अभिषुत करें । हे ऋभुओ ! आप सब मधुर सोमरस का पान करें ॥४ ॥

३४५७. शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥५ ॥

हे ऋभुओ ! आपने कर्म-कौशल के द्वारा अपने माता-पिता को युवा बनाया तथा चमस को देवताओं के पीने योग्य बनाया । रमणीय ऐश्वर्य वाले हे ऋभुओ ! आपने अपने कौशल के द्वारा इन्द्रदेव को वहन करने वाले अश्वों को बाण से भी ज्यादा वेगवान् बनाया ॥५ ॥

३४५८. यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥६ ॥

हे ऋभुओ ! आप सब अन्न से सम्पन्न हैं । दिन के अवसान काल में याजकगण आपको आनन्द प्रदान करने के लिए सोमरस अभिषुत करते हैं । हे बलशाली ऋभुओ ! आप हर्षित होकर उन याजकों को हर प्रकार से पराक्रमी, उत्तम सन्तानों से सम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥६ ॥

३४५९. प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीयाँ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥७ ॥



श्रेष्ठ अश्वों से सुशोभित हे इन्द्रदेव ! आप प्रात: काल अभिषुत किये गये सोमरस का पान करें । मध्याह्न-काल का सोमरस भी आपके निमित्त ही है । हे इन्द्रदेव ! उत्तम कार्य करते हुए आपने जिन रत्न-प्रदाता ऋभुओं से मित्रता स्थापित की है, उनके साथ सोमरस का पान करें ॥७ ॥

३४६०. ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥८ ॥

हे ऋभुओ ! आप सत्कर्म करने के कारण देवता बने हैं । अमरत्व प्रदान करने वाले हे सुधन्वा के पुत्रो ! आप श्येन पक्षी के समान द्युलोक में प्रतिष्ठित हों तथा सभी प्रकार से धन-ऐश्वर्य प्रदान करें ॥८ ॥

३४६१. यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥९ ॥

श्रेष्ठ हाथों वाले हे ऋभुओ ! आपने तृतीय सवन को अपने सत्कर्मों के द्वारा ऐश्वर्य प्रदान करने वाला बनाया है । हे ऋभुओ ! हर्षित इन्द्रियों के साथ अभिषुत सोमरस को आप ग्रहण करें ॥९ ॥

[सूक्त - ३६]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - ऋभुगण । **छन्द** - जगती; ९ त्रिष्टुप् ।]

३४६२. अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१ ॥

हे ऋभुओ ! आप लोगों का कार्य प्रशंसनीय है । आपके द्वारा अश्विनीकुमारों को प्रदान किये गये तीन पहियों वाले रथ, अश्वों तथा लगाम के बिना ही आकाश में चारों तरफ विचरण करते हैं । उस रथ के माध्यम से आप द्यावा-पृथिवी का पोषण करते हैं । यह महान् कार्य आपकी दिव्यता का परिचायक है ॥१ ॥

[अश्विनीकुमार आरोग्य के देवता है । ऋभुओं ने उनके लिए तीन चक्रों से युक्त रथ बनाया । तीन ऋभुओं की विशेषताओं के चक्र (सतत गतिशील प्रक्रियाएँ) हैं - पदार्थों का आरोग्यप्रद संस्कार, उनका विस्तार (रोगनाश) तथा बलसंवर्धन । इन तीन चक्रों के माध्यम से अश्विनीदेव सभी जगह सक्रिय रहते हैं ।]

३४६३. रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥२ ॥

श्रेष्ठ अन्तःकरण वाले हे ऋभुओ ! आपने मन के संकल्प द्वारा भली-भाँति घूमने वाले कुटिलतारहित रथ को विनिर्मित किया था । हे वाजगण तथा ऋभुगण ! हम सोमरस पीने के लिए आप लोगों को आमन्त्रित करते हैं ॥२ ॥

३४६४. तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥३ ॥

हे वाजगण ! हे ऋभुगण ! तथा हे विभुगण ! आपने अपने अत्यधिक वृद्ध तथा जीर्ण माता-पिता को चलने-फिरने के लिए पुन: युवा बना दिया था ।आपका वह महान् कार्य देवताओं के बीच अत्यन्त प्रशंसनीय हुआ ॥३ ॥

३४६५. एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४ ॥

हे ऋभुओ ! आपने एक चमस को चार हिस्सों में विभाजित किया था तथा अपने कार्यों के द्वारा केवल चमड़े वाली गौ को बलिष्ठ किया था। इसलिए आप लोगों ने देवताओं के बीच में

अमरता को प्राप्त किया । हे वाजगण तथा ऋभुगण ! आपके वे कार्य अतिप्रशंसनीय हैं ॥४ ॥

३४६६. ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥५ ॥

वाजगण तथा प्रसिद्ध नायक ऋभुओं ने जिस ऐश्वर्य को पैदा किया था, वह प्रचुर अन्न रूप ऐश्वर्य उनके द्वारा हमें प्राप्त हो । युद्ध में ऋभुओं द्वारा विनिर्मित रथ विशेष रूप से प्रशंसा के योग्य होता है । हे देवताओ ! आप लोग जिसको संरक्षण प्रदान करते हैं, वह प्रख्यात होता है ॥५ ॥

३४६७. स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥६ ॥

वाजगण, विभुगण तथा ऋभुगण जिस मनुष्य को संरक्षण प्रदान करते हैं, वह बलशाली होकर युद्ध में कुशल होता है, मन्त्र द्रष्टा ऋषि होकर प्रशंसनीय होता है, पराक्रमी होकर आयुध फेंकने वाला होता है तथा संग्राम में अपराजेय होता है, वह मनुष्य ऐश्वर्य, पुष्टि तथा श्रेष्ठ पराक्रम को धारण करता है ॥६ ॥

३४६८. श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥७ ॥

हे वाजगण तथा हे ऋभुगण ! आप लोग श्रेष्ठ तथा देखने योग्य रूप धारण करते हैं । हमने आपके लिए स्तोत्र की रचना की है, आप उसे ग्रहण करें । आप लोग धैर्यवान्, दूरदर्शी तथा मेधावी हैं । हम अपने स्तोत्रों द्वारा आपको आहूत करते हैं ॥७ ॥

३४६९. यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥८ ॥

हे ऋभुगण ! आप ज्ञान से सम्पन्न होकर हमारी आशा से भी अधिक, मनुष्यों के लिए हितकारिणी सम्पत्ति हमें प्रदान करें । आप लोग हमारे लिए दीप्तिमान् ऐश्वर्य से युक्त अधिकार, श्रेष्ठ अन्न-धन तथा बल प्रदान करें ॥८ ॥

३४७०. इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥९ ॥

हे ऋभुगण ! आप लोग हमारे इस यज्ञ में हर्षित होकर हमें संतान, ऐश्वर्य तथा पराक्रम देने वाला अन्न प्रदान करें । हमें ऐसा श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें , जिससे हम लोग दूसरों से आगे बढ़ सकें ॥९ ॥

[सूक्त - ३७]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - ऋभुगण । **छन्द** - त्रिष्टुप्; ५-८ अनुष्टुप् ।]

३४७१. उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा३ सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥१ ॥

हे मनोहर ऋभुगण ! आप जिस प्रकार दिनों की श्रेष्ठता प्रदान करने के लिए याजकों के यज्ञों को धारण करते हैं, उसी प्रकार देवताओं के मार्गों द्वारा आप हमारे यज्ञ में पधारें ॥१ ॥

३४७२. ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥२ ॥



आज आपके मन तथा हृदय को ये यज्ञ, हर्ष प्रदान करने वाले हों । घृत मिला हुआ प्रचुर सोमरस आपकी ओर गमन करे । उत्साह से पूर्ण अभिषुत सोमरस आपकी अभिलाषा करता है । सोमरस पीकर आप सत्कर्म करने की स्फूर्ति प्राप्त करें ॥२ ॥

३४७३. त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥३ ॥

हे वाजगण तथा ऋभुगण ! जिस प्रकार आपको स्तुतियाँ समर्पित की जाती हैं, उसी प्रकार हम आपके लिए, तीनों सवनों में अभिषुत किया जाने वाला तथा देवताओं का कल्याण करने वाला सोमरस समर्पित करते हैं । श्रेष्ठ मनुष्यों के बीच तेजस्वी जीवन जीने वाले हम आपके लिए सोमरस प्रदान करते हैं ॥३ ॥

३४७४. पीवोअश्वाः शुचद्रथा हि भूतायः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥४ ॥

हे ऋभुओ ! आप बलिष्ठ अश्वों वाले, तेजोयुक्त रथों वाले तथा लौह-कवचों को धारण करने वाले हैं । आप अन्नवान् तथा श्रेष्ठ धन वाले हैं । इन्द्रदेव के पुत्र तथा बल से उत्पन्न हे ऋभुओ ! आप सबके हर्ष के लिए यह उत्तम सोमरस प्रदान किया जाता है ॥४ ॥

३४७५. ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् । इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥५ ॥

हे ऋभुओ ! हम अत्यधिक संवर्धनशील ऐश्वर्य का आवाहन करते हैं, युद्ध में अत्यधिक बलशाली संरक्षक का आवाहन करते हैं तथा हमेशा उदार, इन्द्रदेव के प्रिय, श्रेष्ठ अश्वों वाले आपके गणों का आवाहन करते हैं ॥५ ॥

३४७६. सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् । स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥६ ॥

हे ऋभुओ ! आप तथा इन्द्रदेव जिस व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करते हैं, वही व्यक्ति महान् होता है । वही व्यक्ति अपने कर्मों द्वारा धन का भागीदार तथा यज्ञों में अश्वों से सम्पन्न होता है ॥६ ॥

३४७७. वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥७ ॥

हे वाजगण तथा ऋभुगण ! आप हमारे लिए सत्कर्म करने (यज्ञ) का श्रेष्ठ मार्ग प्रशस्त करें । हे ज्ञानियो ! आप लोग प्रशंसित होकर सम्पूर्ण दिशाओं में सफलतापूर्वक आगे बढ़ने के लिए हमें मार्ग दिखायें ॥७ ॥

३४७८. तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥८ ॥

हे वाजगण ! हे ऋभुगण ! हे अश्विनीकुमारो तथा हे इन्द्रदेव ! आप सब हम स्तोताओं को प्रचुर ऐश्वर्य तथा अश्वों (शक्ति) की प्राप्ति के लिए आशीर्वाद प्रदान करें ॥८ ॥

[सूक्त - ३८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - दधिक्रा; १ द्यावापृथिवी । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

अग्नि - ऊर्जा का एक रूप दधिक्रादेव अश्व संज्ञक अग्नि कहा गया है । सूक्त ३८ से ४० उन्हीं के प्रति हैं । सवार या भार को धारण करके गन्तव्य की ओर गमन करता है । 'दधत्' - धारण करने 'क्रा' संचरण के संदर्भ में प्रयुक्त शब्द हैं । अग्नि में अपने साथ सुगन्धि तथा विविध प्रकार के क्षमतावान् कणों को लेकर संचरित होने की क्षमता प्रत्यक्ष है । वर्तमान विज्ञान के अन्तर्गत ऊर्जा प्रवाहों की विद्युत् चुम्बकीय (इलैक्ट्रो मैग्नेटिक) तरंगों पर शब्द (रेडियो प्रणाली से) तथा चित्र (टेलीविजन प्रणाली

से) संस्थापित (सुपर इम्पोज) करके संचरित किये जाते हैं। प्राचीन काल में इसी प्रकार अनेक प्रकार के संचार करने की विधि ऋषियों को ज्ञात थी, ऐसा इन मंत्रों से आभास होता है --

३४७९. उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम्॥१॥

हे द्यावा-पृथिवि ! दान दाता त्रसदस्यु ने याजकों को जो सम्पत्ति प्रदान की, वह आपका ही वैभव है । आपने ही उन्हें जमीन जोतने वाले अश्व तथा जमीन को उर्वर बनाने वाले पुत्र प्रदान किये थे । आपने उन्हें (रिपुओं को) पराभूत करने वाले तीक्ष्ण हथियार प्रदान किये थे ॥१॥

३४८०. उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम्।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम्॥२॥

शक्तिशाली, अनेकों रिपुओं के संहारक, समस्त मनुष्यों के हितकारक, श्येन पक्षी के सदृश सरलगामी, ओजस्वी रूप वाले, महान् लोगों के द्वारा प्रशंसनीय, राजा के सदृश शूरवीर, द्रुत गति से गमन करने वाले दधिक्रा देवता (अश्वरूपी अग्नि) को ये द्यावा-पृथिवी धारण करते हैं ॥२॥

३४८१. यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम्॥३॥

समस्त मनुष्य बलिष्ठ होकर जिन दधिक्रादेव की प्रार्थना करते हैं, वे नीचे बहने वाले जल के समान गमनशील, युद्ध की कामना करने वाले, शूरवीर के समान पैर के द्वारा समस्त दिशाओं को लाँघने की कामना करने वाले तथा वायु के समान द्रुतगामी हैं ॥३॥

३४८२. यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन्।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः॥४॥

जो देव संग्राम में एकत्रित पदार्थों को अवरुद्ध करते हैं तथा महान् ऐश्वर्य से सम्पन्न होते हैं, जो समस्त दिशाओं में गमन करते हुए तीव्र गति से सब जगह व्याप्त होते हैं तथा अपने आयुधों को प्रकट करके संग्राम में विख्यात होते हैं; वे दधिक्रादेव हमारे रिपुओं को हमसे दूर करते हैं ॥४॥

३४८३. उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम्॥५॥

जिस प्रकार वस्त्राभूषण चुराने वाले तस्कर को देखकर सभी चीत्कार करते हैं, उसी प्रकार युद्ध में दधिक्रादेव को देखकर रिपुगण चीत्कार करने लगते हैं । जिस प्रकार नीचे की ओर झपट्टा मारते हुए श्येन (बाज़ पक्षी) को देखकर पक्षीगण भाग जाते हैं, उसी प्रकार अन्न तथा पशु समूह की तरफ सीधे गमन करने वाले दधिक्रादेव को देखकर समस्त रिपुगण भागने लगते हैं ॥५॥

३४८४. उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम्।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददश्वान्॥६॥

वे दधिक्रादेव, रिपु-सेनाओं के मध्य जाने की कामना से रथों की पंक्तियों से सम्पन्न हैं । जिस प्रकार महत्त्वाकांक्षी लोग अपने शरीर को मालाओं से अलंकृत करते हैं, उसी प्रकार मालाओं को पहनकर अत्यधिक मनोहर लगने वाले दधिक्रादेव, लगाम को दाँतों से खींचते हुए धूलि-धूसरित हो जाते हैं ॥६॥



३४८५. उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥७ ॥

वे बलशाली, संग्राम में रिपुओं का संहार करने वाले, अनुशासन पालने वाले, अपने को चाटकर शरीर की परिचर्या करने वाले, द्रुतगति से गमन करने वाली सेनाओं पर चढ़ाई करने वाले तथा ऋजु मार्ग से गमन करने वाले हैं । वे दधिक्रादेव पैरों से धूलि को उड़ाकरके अपनी भौहों के ऊपर फैलाते हैं ॥७ ॥

३४८६. उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीदुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥८ ॥

तेजस्वी तथा ध्वनि करने वाले, वज्र के समान शत्रुओं की हिंसा करने वाले दधिक्रादेव से युद्ध की अभिलाषा करने वाले मनुष्य भयभीत होते हैं । जब वे चारों तरफ सहस्रों रिपुओं से लड़ते हैं, तब उत्तेजित होकर भयंकर तथा अजेय हो जाते हैं ॥८ ॥

३४८७. उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥९ ॥

मनुष्यों की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले तथा तीव्र वेग वाले दधिक्रादेव के, शौर्य व गति की मनुष्यगण प्रार्थना करते हैं । संग्राम में जाने वाले योद्धा इनके बारे में कहते हैं कि ये दधिक्रादेव सहस्रों रिपुओं को भी पराभूत करके आगे बढ़ जाते हैं ॥९ ॥

३४८८. आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥१० ॥

जिस प्रकार आदित्यगण अपने तेज के द्वारा आकाश को व्याप्त कर देते हैं, उसी प्रकार दधिक्रादेव अपने तेज के द्वारा पाँचों प्रकार के मनुष्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) को व्याप्त कर देते हैं । शत तथा सहस्र प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले बलशाली दधिक्रादेव , हमारी स्तुतियों को मधुरता (मधुर प्रतिफल) से संयुक्त करें ॥१० ॥

[सूक्त - ३९]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - दधिक्रा । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।]

३४८९. आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥१ ॥

उन द्रुतगामी दधिक्रादेव की हम लोग प्रार्थना करेंगे और द्यावा-पृथिवी की भी प्रार्थना करेंगे । तम का निवारण करने वाली उषाएँ हमें उत्साहित करें तथा समस्त विपत्तियों से हमें पार करें ॥१ ॥

३४९०. महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥२ ॥

हम यज्ञ सम्पन्न करने वाले हैं । अनेकों के द्वारा वरण करने योग्य, महान् तथा अभीष्ट की वर्षा करने वाले दधिक्रादेव की हम प्रार्थना करते हैं । हे मित्रावरुण ! आप दोनों तेजस्वी अग्नि के सदृश स्थित तथा विपत्तियों से पार लगाने वाले दधिक्रादेव को याजकों के कल्याण के लिए धारण करते हैं ॥२ ॥



३४९१. **यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।**
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥३ ॥

जो मनुष्य उषा के प्रकट होने पर तथा अग्नि के प्रदीप्त होने पर अश्वरूप दधिक्रादेव की प्रार्थना करते हैं । ऐसे मनुष्य को मित्र, वरुण तथा अदिति के साथ दधिक्रादेव पाप रहित करें ॥३ ॥

३४९२. **दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।**
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥४ ॥

हम अन्न-प्रदाता, बल-प्रदाता, श्रेष्ठ तथा याजकों का हित करने वाले दधिक्रादेव तथा मरुतों के नाम की प्रार्थना करते हैं । मित्र, वरुण, अग्नि तथा हाथ में वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव को हम आहूत करते हैं ॥४ ॥

३४९३. **इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।**
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥५ ॥

जो मनुष्य युद्ध करने के लिए पराक्रम करते हैं तथा जो यज्ञ करने के लिए प्रयत्न करते हैं । वे दोनों ही दधिक्रादेव को इन्द्रदेव के समान आवाहित करते हैं । हे मित्रावरुण ! आपने मनुष्यों को प्रेरित करने वाले द्रुतगामी अश्वरूप दधिक्रादेव को हमारे लिए धारण किया ॥५ ॥

३४९४. **दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।**
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६ ॥

हम विजय से सम्पन्न, व्यापक तथा वेगवान् दधिक्रादेव की प्रार्थना करते हैं । वे हमारी मुख आदि इन्द्रियों को सुरभित (श्रेष्ठ) बनायें तथा हमारी आयु की वृद्धि करें ॥६ ॥

[सूक्त - ४०]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - दधिक्रा, ५ सूर्य । **छन्द** - जगती, १ त्रिष्टुप् ।]

३४९५. **दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।**
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥१ ॥

हम दधिक्रादेव की बार-बार प्रार्थना करेंगे । समस्त उषाएँ हमें प्रेरणा प्रदान करें । हम जल, अग्नि, सूर्य, उषा, बृहस्पति तथा आंगिरस जिष्णु की प्रार्थना करेंगे ॥१ ॥

३४९६. **सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।**
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥२ ॥

शक्तिशाली, भरण-पोषण करने वाले, गौओं को प्रेरित करने वाले, भक्तों के बीच में निवास करने वाले तथा द्रुतगति से गमन करने वाले दधिक्रादेव, उषाकाल में अन्न की कामना करें । सत्यगमनशील, वेगवाले, दूसरों को भी वेग प्रदान करने वाले तथा उछलते हुए गमन करने वाले दधिक्रादेव हमारे निमित्त अन्न, बल तथा हर्ष पैदा करें ॥२ ॥

३४९७. **उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।**
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥३ ॥

जिस प्रकार पक्षियों का अनुगमन उनके पंख करते हैं, उसी प्रकार गमन करने वाले, वेगपूर्वक भागने वाले तथा प्रतिस्पर्धा करने वाले दधिक्रादेव का अनुगमन मनुष्य करते हैं । बाज़ पक्षी के समान गमन करने वाले तथा



सुरक्षा करने वाले दधिक्रादेव के शरीर को एकत्र होकर अन्नादि के लिए सब लोग घेर लेते हैं ॥३ ॥

३४९८. उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥४ ॥

वे दधिक्रादेव बलशाली अश्व की तरह काँख तथा मुँह से बँधे होने पर भी अपने रिपुओं की ओर तीव्र गति से गमन करते हैं । वे अत्यधिक शक्तिशाली होकर यज्ञों का अनुगमन करके, कुटिल मार्गों को पार कर जाते हैं ॥ ४ ॥

३४९९. हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५ ॥

हंस (सूर्य) तेजोमय आकाश में एवं वसु (वायु) अन्तरिक्ष में अवस्थित हैं । होता (अग्नि) वेदिका पर अतिथि की तरह पूज्य होकर घरों में वास करते हैं । ऋत (सत्य या ब्रह्म) का वास मनुष्यों, वरणीय स्थानों, यज्ञस्थल एवं अन्तरिक्ष में होता है । वे जल में, रश्मियों में, सत्य एवं पर्वतों में उत्पन्न हुए हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ४१]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्रावरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३५००. इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँअमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥१ ॥

हे इन्द्र तथा वरुणदेवो ! हमारे द्वारा विवेकपूर्वक तथा विनम्रतापूर्वक उच्चारित किया हुआ कौन-सा स्तोत्र है, जो आपके हृदय को स्पर्श कर सके ? हे इन्द्र तथा वरुण देवो ! अविनाशी तथा आहुति से सम्पन्न अग्नि के सदृश प्रदीप्त वह स्तोत्र आपके अन्तः स्थल में प्रवेश करे ॥१ ॥

३५०१. इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥२ ॥

जो व्यक्ति आहुति से सम्पन्न होकर इन्द्र तथा वरुण दोनों देवताओं की मित्रता को प्राप्त करने के लिए उनको अपना बन्धु बनाता है, वह व्यक्ति अपने पापों को विनष्ट करता है, युद्ध में रिपुओं का विनाश करता है तथा महान् सुरक्षा प्राप्त करने के कारण विख्यात होता है ॥२ ॥

३५०२. इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥३ ॥

हे विख्यात इन्द्र तथा वरुणदेवो ! आप दोनों देव, हम स्तोता मनुष्यों के निमित्त मनोहर ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों । यदि आप दोनों परस्पर मित्र हैं और मित्रता के लिए अभिषुत सोमरस तथा उत्तम अन्नों से हर्षित हैं, तो हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ॥३ ॥

३५०३. इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४ ॥

हे पराक्रमी इन्द्र तथा वरुणदेवो ! जो हमारे अकल्याण करने वाले अदाता तथा हिंसक हैं; आप दोनों अपने विनाशकारी तेज को उन पर प्रकट करें । आप दोनों इस शत्रु के ऊपर अपने तेजस्वी तथा अत्यधिक ओजस्वी वज्र से प्रहार करें ॥४ ॥



३५०४. **इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।**
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५ ॥

हे इन्द्र तथा वरुणदेवो ! जिस प्रकार वृषभ गाय से प्रीति करते हैं, उसी प्रकार आप दोनों हमारी प्रार्थनाओं के प्रेमी हों । जैसे एक महान् गाय घास आदि खाकर सहस्र धाराओं वाले दुग्ध को दोहन के लिए प्रस्तुत रहती है, उसी प्रकार वे प्रार्थनाएँ हमारी अभिलाषाओं को पूर्णता प्रदान करें ॥५ ॥

३५०५. **तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।**
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! आप अपने रक्षण - साधनों से सम्पन्न होकर रिपुओं का विनाश करने के लिए रात्रि में भी तैयार रहें, जिससे हम लोग पुत्र-पौत्र और उपजाऊ जमीन से लाभान्वित हो सकें । लम्बे समय तक सूर्यदेव का दर्शन कर सकें तथा सन्तान उत्पन्न करने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकें ॥६ ॥

३५०६. **युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।**
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥७ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! गौओं की कामना करने वाले हम मनुष्य आप दोनों के पुरातन संरक्षण की अभिलाषा करते हैं । आप दोनों बलशाली, पराक्रमी तथा अत्यन्त वन्दनीय हैं । हम मनुष्य आप दोनों के समीप हर्षप्रदायक, पिता के समान मित्रता तथा प्रेम की प्रार्थना करते हैं ॥७ ॥

३५०७. **ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।**
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८ ॥

हे श्रेष्ठ फल प्रदाता इन्द्र तथा वरुणदेवो ! जिस प्रकार आपके उपासक युद्ध में अपनी सुरक्षा के लिए आपके समीप आगमन करते हैं, उसी प्रकार रक्षण और धन आदि की अभिलाषा करने वाली हमारी प्रार्थनाएँ आपके समीप गमन करती हैं । जिस प्रकार गौएँ तेज की अभिवृद्धि के निमित्त सोमरस के समीप गमन करती हैं, उसी प्रकार विवेकपूर्वक की गई हमारी प्रार्थनाएँ आप दोनों के समीप गमन करें ॥८ ॥

३५०८. **इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।**
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥९ ॥

जिस प्रकार ऐश्वर्य की कामना करने वाले लोग धनिक के समीप गमन करते हैं, उसी प्रकार हमारी प्रार्थनाएँ, ऐश्वर्य-लाभ की क़ामना से इन्द्र और वरुणदेवों के समीप गमन करती हैं । जिस प्रकार अन्न की याचना करने वाले भिक्षुक दानियों के समीप गमन करते हैं, उसी प्रकार हमारी प्रार्थनाएँ इन्द्र तथा वरुणदेवों के समीप गमन करती हैं ॥९ ॥

३५०९. **अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।**
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१० ॥

हम लोग अपने बल के द्वारा ही अश्वों, रथों, पोषक - पदार्थों तथा अविनाशी ऐश्वर्यों के अधिपति हों । गमनशील वे दोनों देव अपने नये रक्षण साधनों के द्वारा हमें अश्वों तथा धनों से संयुक्त करें ॥१० ॥

३५१०. **आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।**
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान्तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥११ ॥



हे महान् इन्द्र तथा वरुणदेवो ! संग्राम में आप हमारी सुरक्षा के लिए अपने बृहत् रक्षण साधनों से सम्पन्न होकर हमारे समीप पधारें । जिन संग्रामों में शत्रु-सेना के हथियार क्रीड़ा करते हैं, उन संग्रामों में आप दोनों की अनुकम्पा से हम लोग विजय प्राप्त कर सकें ॥११ ॥

[सूक्त - ४२]

[**ऋषि** - त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य । **देवता** - त्रसदस्यु (आत्मस्तुति) ; ७ - १० इन्द्रावरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३५११. **मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।**
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥१ ॥

हम क्षत्रिय जाति में उत्पन्न तथा समस्त मनुष्यों के राजा हैं । हमारे दो तरह के राष्ट्र हैं । जिस प्रकार समस्त देवता हमारे हैं, उसी प्रकार समस्त मनुष्य भी हमारे ही हैं । हम सौन्दर्यवान् तथा समीपस्थ वरुण हैं । समस्त देवता हमारे यज्ञ की परिचर्या करते हैं । हम मनुष्यों के भी शासक हैं ॥१ ॥

३५१२. **अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।**
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥२ ॥

हम ही अधिपति वरुण हैं । समस्त देवता हमारे ही महान् सामर्थ्य को धारण करते हैं, हम सौन्दर्यवान् तथा समीपस्थ वरुण हैं । समस्त देवता हमारे यज्ञ की परिचर्या करते हैं और हम मनुष्यों के भी स्वामी हैं ॥२ ॥

३५१३. **अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।**
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥३ ॥

हम ही इन्द्र तथा वरुण हैं । अपनी महानता के कारण विस्तृत, गम्भीर तथा श्रेष्ठ रूप वाली द्यावा-पृथिवी हम ही हैं । हम मेधावी हैं । हम त्वष्टा देवता की तरह समस्त भुवनों को प्रेरित करते हैं तथा द्यावा-पृथिवी को धारण करते हैं ॥३ ॥

३५१४. **अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।**
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥४ ॥

हमने ही सिंचनीय जल की वर्षा की है तथा जल के स्थानभूत स्वर्ग लोक में आदित्य की स्थापना की है । हम अदिति के पुत्र जल के लिए ऋतवान् हुए हैं । हमने ही तीन भुवनों वाली सृष्टि को विस्तारित किया है ॥४ ॥

३५१५. **मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।**
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥५ ॥

हम ही श्रेष्ठ अश्वों वाले तथा युद्ध करने वाले योद्धा आहूत करते हैं । वे वीर युद्ध में रिपुओं से आवृत हो जाने पर हमें ही आहूत करते हैं । हम धनवान् इन्द्रदेव के रूप में युद्ध करते हैं । हम पराजित करने वाले बल से सम्पन्न होकर धूल उड़ाते हैं ॥५ ॥

३५१६. **अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।**
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥६ ॥

हमने ही समस्त लोकों का सृजन किया है । हम कहीं भी न रुकने वाले दैव-बल से सम्पन्न हैं । कोई भी हमें रोक नहीं सकता । जब सोमरस तथा स्तोत्र हमें हर्षित करते हैं, तब असीम द्यावा-पृथिवी भयभीत हो जाती है ॥६ ॥



३५१७. **विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।**
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७ ॥

हे वरुणदेव ! आपके कर्म को समस्त लोक जानते हैं । हे स्तुति करने वालो ! आप वरुणदेव की प्रार्थना करें । हे इन्द्रदेव ! आपने रिपुओं का संहार किया है, इसलिए आप विख्यात हैं । आपने अवरुद्ध की हुई नदियों को प्रवाहित किया है ॥७ ॥

३५१८. **अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।**
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥८ ॥

'दुर्गह' के पुत्र पुरुकुत्स को बाँध दिये जाने पर इस राष्ट्र का पालन करने वाले सप्त ऋषि हुए थे । उन्होंने इन्द्र और वरुणदेवों की अनुकम्पा से पुरुकुत्स की स्त्री के लिए यजन किया तथा त्रसदस्यु को उपलब्ध किया । वह त्रसदस्यु इन्द्रदेव के सदृश रिपुओं के संहारक तथा वे देवों के अर्धभूत(समीपस्थ) इन्द्रदेव के समान थे ॥८ ॥

३५१९. **पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।**
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥९ ॥

हे इन्द्रावरुणो !ऋषियों के द्वारा प्रेरणा दिये जाने पर पुरुकुत्स की स्त्री ने आपको आहुतियों तथा प्रार्थनाओं से हर्षित किया था । इसके पश्चात् आप दोनों ने उसे रिपु संहारक अर्धदेव राजा त्रसदस्यु को प्रदान किया था ॥९ ॥

३५२०. **राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।**
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१० ॥

सत्य का विस्तार करने वाले हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों की तृप्ति के लिये सोमरस प्रस्तुत है । यज्ञशाला में पधारें, हम आपका आवाहन करते हैं । हे सोम ! उपयाम पात्र में इन्द्र और वरुण देवों के लिए ही आपको नियमानुसार तैयार किया है, उन्हीं के निमित्त समर्पित करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ४३]

[**ऋषि** - पुरुमीळ्ह सौहोत्र और अजमीळ्ह सौहोत्र । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३५२१. **क उ श्रवत्कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।**
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥१ ॥

यजनीय देवताओं के बीच में कौन देवता हमारी स्तुति सुनेंगे ? कौन से देवता वन्दन योग्य स्तोत्रों का सेवन करेंगे ? देवताओं के बीच में किस देवता के लिए हम अत्यन्त प्रिय, प्रकाशमान तथा हवि युक्त प्रार्थना करें ॥१ ॥

३५२२. **को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः ।**
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥२ ॥

कौन से देव हम मनुष्यों को हर्षित करते हैं तथा हमारे यज्ञ मण्डप में पधारने के लिए सबसे ज्यादा आतुरता प्रकट करते हैं ? देवताओं के बीच में कौन से देवता हम मनुष्यों को सबसे ज्यादा हर्षित करते हैं ? किसका रथ द्रुतगामी तथा वेगवान् अश्वों से सम्पन्न है, जिसको सूर्य की पुत्री ने स्वीकार किया था ? ॥२ ॥

३५२३. **मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।**
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥३ ॥



हे दिव्य और श्रेष्ठ पर्ण वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों द्युलोक से पधारने वाले हैं । अनेक बलों में किस बल के कारण आप अत्यधिक बलशाली बन जाते हैं ? रात्रि में आप इन्द्रदेव के समान बल प्रकट करते हैं । अभिषवण काल में होने वाले कार्यों के प्रति आप अतिशीघ्र गमन करते हैं ॥३ ॥

३५२४. **का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना ।**
को वां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥४ ॥

हे मधुर स्वभाव वाले तथा रिपुओं का विनाश करने वाले अश्विनीकुमारो ! कौन-सी प्रार्थना आप दोनों के अनुकूल होगी ? आप किस स्तुति से आहूत किये जाने पर हमारे समीप पधारेंगे । आपके अत्यधिक क्रोध को कौन व्यक्ति सहन कर सकता है ? अपने रक्षण के साधनों द्वारा आप हमारी सुरक्षा करें ॥४ ॥

३५२५. **उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्तते वाम् ।**
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो !आप दोनों का विशाल रथ द्युलोक में चारों ओर गमन करता है ।वह समुद्र से आपकी ओर पधारता है ।आप दोनों के निमित्त परिपक्व जौ के साथ सोमरस संयुक्त हुआ है ।हे मधुर जल को पैदा करने वाले तथा रिपुओं के विनाशक अश्विनीकुमारो !याजकगण आपके लिए सोमरस में दूध मिश्रित कर रहे हैं ॥५ ॥

३५२६. **सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।**
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥६ ॥

विशाल नदी ने आपके अश्वों का रसयुक्त जल के द्वारा सिंचन किया है । पक्षी के सदृश द्रुतगामी, प्रकाशवान् तथा रक्त वर्ण वाले घोड़े चारों तरफ गमन करते हैं । आपका वह द्रुतगामी रथ विख्यात है, जिसके द्वारा आप दोनों सूर्य का पालन करने वाले बनते हैं ॥६ ॥

३५२७. **इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।**
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७ ॥

हे शक्तिरूपी अन्न को अपने समीप रखने वाले अश्विनीकुमारो ! समान विचार वाले आप दोनों के लिए हम स्तुतियाँ समर्पित करते हैं । वे श्रेष्ठ स्तुतियाँ हम याजकों के लिए फल देने वाली हों । हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारी सुरक्षा करें । हमारी कामनाएँ आपकी ओर गमन करती हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ४४]

[**ऋषि** - पुरुमीळ्ह सौहोत्र और अजमीळ्ह सौहोत्र । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३५२८. **तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिं गोः ।**
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आज हम आपके प्रसिद्ध वेगवाले तथा गौ प्रदान करने वाले रथ को आहूत करते हैं । काष्ठ स्तम्भयुक्त वह रथ सूर्या को भी धारण करता है । वह स्तुतियों को ढोने वाला, विशाल तथा ऐश्वर्यवान् है ॥१॥

३५२९. **युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।**
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥२ ॥

हे द्युलोक को रोकने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों देवता हैं । आप दोनों उस श्रेष्ठता को अपने बल के



द्वारा प्राप्त करते हैं । जब विशाल अश्वों वाले रथ आपको वहन करते हैं, तब आप दोनों के शरीर को सोमरस पुष्ट करता है ॥२ ॥

३५३०. को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३ ॥

कौन से सोमरस प्रदाता आज अपनी सुरक्षा के लिए अथवा अभिषुत सोमरस को पीने के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं ? नमन करने वाले कौन लोग आप दोनों को यज्ञ के लिए प्रवृत्त करते हैं ॥३ ॥

३५३१. हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४ ॥

हे अनेकों प्रकार से अपनी सत्ता को प्रकट करने वाले तथा सत्य का पालन करने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों इस यज्ञ में स्वर्णिम रथ द्वारा पधारें, मधुर सोमरस पियें तथा पुरुषार्थी मनुष्यों को मनोहर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

३५३२. आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५ ॥

श्रेष्ठ, स्वर्णिम रथ द्वारा आप दोनों द्युलोक अथवा भूलोक से हमारी तरफ पधारें । आपके अभिलाषी अन्य याजक आपको बीच में ही अवरुद्ध न कर सकें, क्योंकि पुरातनकाल से ही हमने स्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं ॥५ ॥

३५३३. नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥६ ॥

हे रिपुओं के संहारक अश्विनीकुमारो ! आप अनेक वीरों से सम्पन्न प्रचुर ऐश्वर्य को हम दोनों के लिए प्रदान करें । हे अश्विनीकुमारो ! पुरुमीळ्ह के स्तोताओं ने आपको स्तुति द्वारा प्राप्त किया है और अजमीळ्ह के स्तोताओं की प्रशंसा भी उसी के साथ सम्मिलित है ॥६ ॥

३५३४. इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७ ॥

हे शक्तिरूप अन्न को अपने समीप रखने वाले अश्विनीकुमारो ! समान विचार वाले आप दोनों के लिए हम स्तुतियाँ समर्पित करते हैं । वे श्रेष्ठ स्तुतियाँ हम याजकों के लिए फल देने वाली हों । हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारी सुरक्षा करें । हमारी कामनाएँ आपकी ओर गमन करती हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ४५]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द - जगती; ७ त्रिष्टुप् ।]

३५३५. एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥१ ॥

प्रकाशमान सूर्यदेव उदित होते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के रथ चारों ओर विचरण करते हैं । वे रथ आलोकमान सूर्यदेव के साथ ऊँचे स्थान (द्युलोक) में मिलते हैं । इस रथ के ऊपर जोड़े से तीन प्रकार के अन्न रखे हैं तथा सोमरस का चौथा पात्र विशेष रूप से सुशोभित होता है ॥१ ॥



३५३६. उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥२ ॥

उषाओं के उदित होने पर मधुरअन्न तथा अश्वों से सम्पन्न आपके रथ, चारों तरफ विद्यमान तमिस्रा को नष्ट करते हुए, सूर्यदेव के समान प्रदीप्त तेज को चारों तरफ फैलाते हुए ऊर्ध्वमुखी होकर विचरण करते हैं ॥२ ॥

३५३७. मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप मधुर रस का पान करने वाले मुख के द्वारा सोमरस का पान करें तथा मधुर रस को प्राप्त करने के लिए अपने प्रिय रथ को अश्वों से नियोजित करके याजक के घर पधारें । आप दोनों जाने के मार्ग को मधुर रस से परिपूर्ण करें तथा सोमरस से पूर्ण पात्र को धारण करें ॥३ ॥

३५३८. हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥४ ॥

आप लोगों के द्रुतगामी, मधुरतायुक्त, विद्रोह न करने वाले, स्वर्णिम पंखों वाले, उषाकाल में जागने वाले, दूर तक गमन करने वाले, पसीने की बूँदों को गिराने तथा हर्षित करने वाले अश्व आपको वहन करते हैं । जिस प्रकार मधुमक्खियाँ मधु की ओर गमन करती हैं, उसी प्रकार आप हमारे सवनों में आगमन करते हैं ॥४ ॥

३५३९. स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥५ ॥

जब कार्य पूरा करने वाले मेधावी याजक मन्त्रपूरित जल के द्वारा हाथ को पवित्र करते हुए, पाषाणों से कूटकर मधुर सोमरस अभिषुत करते हैं, तब प्रत्येक उषाकाल में मधुरता युक्त, श्रेष्ठ अहिंसित कर्म करने वाले, अग्नि के सदृश तेजस्वी याजक अश्विनीकुमारों की प्रार्थना करते हैं ॥५ ॥

३५४०. आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६ ॥

निकट में अवतरित होने वाली किरणें दिन के द्वारा तमिस्रा को नष्ट करती हुई, सूर्यदेव के समान प्रदीप्त तेज को फैलाती हैं । अश्वों को नियोजित करते हुए सूर्यदेव भी गमन करते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आप अपनी धारक शक्ति के द्वारा समस्त मार्गों को अनुक्रम से बतलाते हैं ॥६ ॥

३५४१. प्र वामवोचमश्विना धियन्धा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हम स्तोता आप दोनों की प्रार्थना करते हैं । आप दोनों के श्रेष्ठ अश्वों वाला, कभी जीर्ण न होने वाला रथ; जिसके द्वारा पल भर में आप तीनों लोकों का परिभ्रमण करते हैं, उसी के द्वारा आप हवि वाले, शीघ्र गमन करने वाले तथा भोजन प्रदान करने वाले यज्ञ में आगमन करें ॥७ ॥

[सूक्त - ४६]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्रवायू, १ वायु । **छन्द** - गायत्री ।]

३५४२. अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु । त्वं हि पूर्वपा असि ॥१ ॥

हे वायु देवता ! यज्ञों में आसीन होकर आप, निचोड़े गये मधुर सोमरस का सर्वप्रथम पान करें; क्योंकि आप सबसे पहले सोमरस का पान करने वाले हैं ॥१ ॥

३५४३. शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः । वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥२ ॥

हे वायु देवता ! आप श्रेष्ठ अश्वों वाले हैं और इन्द्रदेव आपके सारथि हैं । आप कामनाओं को पूर्ण करने के लिए सैकड़ों अश्वों द्वारा हमारे समीप पधारें । आप तथा इन्द्रदेव अभिषुत सोमरस का पान करें ॥२ ॥

३५४४. आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥३ ॥

हे इन्द्र और वायुदेवो ! आप दोनों को हजारों संख्या वाले घोड़े द्रुतगति से सोम पान के लिए ले आएँ ॥३ ॥

३५४५. रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥४ ॥

हे इन्द्र और वायुदेवो ! आप दोनों सोने से जड़े हुए, यज्ञ को भली-प्रकार सिद्ध करने वाले तथा अंतरिक्ष को स्पर्श करने वाले रथ पर आकर आसीन होते हैं ॥४ ॥

३५४६. रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥५ ॥

हे इन्द्र और वायुदेवो ! आप दोनों अत्यधिक सामर्थ्यशाली रथ के द्वारा हविप्रदाता यजमान के निकट गमन करें तथा इस यज्ञ मण्डप में पधारें ॥५ ॥

३५४७. इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा । पिबतं दाशुषो गृहे ॥६ ॥

हे इन्द्र और वायुदेवो ! यह सोमरस आपके लिए अभिषुत किया गया है । देवताओं के साथ समान रूप से स्नेह करने वाले होकर आप दोनों हविप्रदाता यजमान के यज्ञ मण्डप में उसका पान करें ॥६ ॥

३५४८. इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ॥७ ॥

हे इन्द्र और वायुदेवो ! आप दोनों का इस यज्ञ में पदार्पण हो । यहाँ पधार कर सोमपान के निमित्त आप दोनों अपने अश्वों को मुक्त करें ॥७ ॥

[सूक्त - ४७]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्रवायू; १ वायु । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

३५४९. वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१ ॥

हे वायो ! निर्दोष हम, आपके लिए यज्ञ में सर्वप्रथम सोमरस भेंट करते हैं । हे देव ! आदर के योग्य आप नियुत (नामक) अश्व पर बैठ कर सोमपान के निमित्त पधारें ॥१ ॥

३५५०. इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२ ॥

हे वायु और इन्द्रदेवो ! आप दोनों सोमपान की पात्रता से युक्त हैं, इसीलिए नीचे की ओर जलधारा के समान ही आप दोनों तक सोमरस के प्रवाह पहुँचते हैं ॥२ ॥

३५५१. वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३ ॥

हे वायु और इन्द्रदेवो ! आप दोनों बल के स्वामी और सामर्थ्यवान् हैं । नियुत नामक घोड़े से युक्त आप



दोनों ही हमारी रक्षा के लिए सोमरस पान हेतु एक साथ पधारें ॥३ ॥

३५५२. **या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।**
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥४ ॥

हे नायक तथा यज्ञ सम्पादक इन्द्र और वायुदेवो ! आप दोनों के पास अनेकों द्वारा कामना किये जाने योग्य जो अश्व हैं, उन अश्वों को मुझ दानदाता यजमान को प्रदान करें ॥४ ॥

[सूक्त - ४८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - वायु । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

३५५३. **विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।**
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥१ ॥

हे वायुदेव ! रिपुओं को प्रकम्पित करने वाले योद्धा की तरह अन्यों के द्वारा न पिये गये सोमरस का आप पान करें तथा स्तोताओं के ऐश्वर्य की वृद्धि करें । हे वायुदेव ! आप सोमरस पीने के लिए शीतलतादायक रथ द्वारा आगमन करें ॥१ ॥

३५५४. **निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।**
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥२ ॥

हे वायुदेव ! आप वर्णन न किये जाने योग्य, तरुणता से युक्त अश्वों को नियोजित करते हैं । इन्द्रदेवता आपके सारथि हैं । हे वायुदेव ! आप सोमरस पीने के लिए तेजस्वी रथ द्वारा पधारें ॥२ ॥

३५५५. **अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।**
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥३ ॥

हे वायुदेव ! काले रंगों वाली, ऐश्वर्यों को धारण करने वाली, बहुत रूपों वाली द्यावा-पृथिवी आपका ही अनुगमन करती हैं । आप सोमरस पान के निमित्त तेजस्वी रथ द्वारा पधारें ॥३ ॥

३५५६. **वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।**
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥४ ॥

हे वायुदेव ! मन के समान वेग वाले, परस्पर नियोजित होने वाले निन्यानवे घोड़े आपको ले जाते हैं । हे वायुदेव ! आप तेजस्वी रथ द्वारा सोमपान के निमित्त पधारें ॥४ ॥

३५५७. **वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।**
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥५ ॥

हे वायुदेव ! आप अपने सैकड़ों संख्या वाले पोषण योग्य अश्वों को रथ में नियोजित करें । आपके हजारों अश्वों वाले रथ वेगपूर्वक पधारें ॥५ ॥

[सूक्त - ४९]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्राबृहस्पती । **छन्द** - गायत्री ।]

३५५८. **इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥१ ॥**

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेवो ! यह स्नेह युक्त आहुतियाँ हम आपके मुख (यज्ञाग्नि) में समर्पित करते हैं । आप दोनों को हम स्तोत्र तथा हर्षप्रदायक सोमरस प्रदान करते हैं ॥१ ॥

३५५९. अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥२ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेवो ! आपके हर्ष के लिए तथा सोमरस पान के लिए यह मनोहर सोमरस अभिषुत किया जाता है ॥२ ॥

३५६०. आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपीतये ॥३ ॥

हे सोमपान करने वाले इन्द्र तथा बृहस्पतिदेवो ! सोमरस पान के निमित्त आप तथा इन्द्रदेव हमारे घर में पधारें ॥३ ॥

३५६१. अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥४ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेवो ! आप हमें सैकड़ों गौओं तथा हजारों अश्वों से सम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

३५६२. इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥५ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेवो ! सोमरस के निचोड़े जाने पर हम सोमरस के निमित्त प्रार्थनाओं द्वारा आपको आवाहित करते हैं ॥५ ॥

३५६३. सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥६ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेवो ! आप दोनों हवि प्रदाता यजमान के गृह में सोमपान करें तथा उसके गृह में वास करके हर्षित हों ॥६ ॥

[सूक्त - ५०]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - बृहस्पति; १०-११ इन्द्राबृहस्पती । **छन्द** - त्रिष्टुप्; १० जगती ।]

३५६४. यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१ ॥

तीनों लोकों में निवास करने वाले जिन बृहस्पतिदेव ने धरती की दशों दिशाओं को स्तम्भित किया, उन मीठी बोली वाले बृहस्पतिदेव को पुरातन ऋषियों तथा तेजस्वी विद्वानों ने पुरोभाग में स्थापित किया ॥१ ॥

३५६५. धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्त्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जिनकी गति रिपुओं को प्रकम्पित करने वाली है, जो आपको आनन्दित करते हैं तथा आपकी प्रार्थना करते हैं; उनके लिए आप फल प्रदान करने वाले, वृद्धि करने वाले तथा हिंसा न करने वाले होते हैं । आप उनके विस्तृत यज्ञ को सुरक्षा प्रदान करते हैं ॥२ ॥

३५६६. बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! दूरवर्ती प्रदेश में जो अत्यधिक श्रेष्ठ स्थान हैं, वहाँ से आपके अश्व यज्ञ में पधारते हैं । जिस प्रकार गहरे जलकुण्ड से जल स्रवित होता है, उसी प्रकार आपके चारों ओर प्रार्थनाओं के साथ पत्थरों द्वारा निचोड़ा गया सोम , मधुर रस का अभिषिंचन करता है ॥३ ॥



३५६७. बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥४ ॥

सप्त छन्दोमय मुख वाले, बहुत प्रकार से पैदा होने वाले तथा सप्त रश्मियों वाले बृहस्पतिदेव, महान् सूर्यदेव के परम आकाश में सर्वप्रथम उत्पन्न होकर अपनी ज्योति के द्वारा तमिस्रा को नष्ट करते हैं ॥४ ॥

३५६८. स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण।
बृहस्पतिरुस्त्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५ ॥

बृहस्पतिदेव ने तेजस्वी तथा प्रार्थना करने वाले अंगिरागणों के साथ ध्वनि के द्वारा मेघ और वल नामक राक्षस का वध किया। उन्होंने हवि प्रेरित करने वाली तथा रँभाने वाली गौओं को ध्वनि करते हुए बाहर निकाला ॥५ ॥

३५६९. एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६ ॥

इस प्रकार सबके पालनकर्त्ता, समस्त देवों के स्वामी तथा बलशाली बृहस्पतिदेव की हम लोग यज्ञों, आहुतियों तथा प्रार्थनाओं के द्वारा सेवा करेंगे। हे बृहस्पतिदेव ! उनके प्रभाव से हम लोग श्रेष्ठ सन्तानों तथा पराक्रम से सम्पन्न ऐश्वर्य के स्वामी हो सकें ॥६ ॥

३५७०. स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥७ ॥

जो शासक सर्वप्रथम श्रेष्ठ, पोषक वस्तुओं के द्वारा बृहस्पतिदेव का सत्कार करते हैं, प्रार्थना करते हैं तथा नमन करते हैं। वे शासक समस्त शत्रुओं के बल को अपनी सामर्थ्य के द्वारा जीत लेते हैं ॥७ ॥

३५७१. स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम्।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥८ ॥

जिस शासक के शासन में ब्रह्मज्ञानी पुरोहित सबसे वंदनीय होकर अग्रगम्न करते हैं, वही शासक भली-प्रकार तुष्ट होकर अपने घर में निवास करता है। उसके लिए धरती सभी समय में फल उत्पन्न करती है। उसके सामने प्रजाएँ स्वयं ही सम्मानपूर्वक नमन करती हैं ॥८ ॥

३५७२. अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥९ ॥

जो राजा सुरक्षा की कामना करने वाले ब्रह्मज्ञानी को ऐश्वर्य आदि प्रदान करके उसकी सुरक्षा करते हैं, उस राजा को देवता लोग संरक्षित करते हैं तथा वे अप्रतिहत रूप से रिपुओं तथा प्रजाओं के ऐश्वर्य को विजित करते हुए महान् बनते हैं ॥९ ॥

३५७३. इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१० ॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप तथा इन्द्रदेव इस यज्ञ में हर्षित होकर याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करें। सब जगह विद्यमान रहने वाले सोमरस आप दोनों के अन्दर प्रवेश करें। आप हमें पराक्रमी सन्तानों से सम्पन्न धन प्रदान करें ॥१० ॥

३५७४. **बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।**
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥११ ॥

हे बृहस्पति और इन्द्रदेवो ! आप दोनों हमें संवर्द्धित करें । आप दोनों ही हमारे यज्ञ का संरक्षण करें तथा हमारी मेधा को जाग्रत् करें । आपकी प्रार्थना करने वाले हम याजकों के रिपुओं का आप विनाश करें ॥११ ॥

[सूक्त - ५१]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - उषा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३५७५. **इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।**
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥१ ॥

वह अत्यधिक विशाल तथा कर्मों में मनुष्यों को संलग्न करने वाला कांतिमान् तेज, पूर्व दिशा में तमिस्रा के बीच से ऊपर निकल रहा है । निश्चित रूप से सूर्य की पुत्री तथा दीप्तिमती उषाएँ याजकों के जाने के लिए मार्ग बता रही हैं ॥१ ॥

३५७६. **अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।**
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥२ ॥

जिस प्रकार यज्ञ मण्डप में यूप खड़े रहते हैं, उसी प्रकार मनोहारिणी उषाएँ पूर्व दिशा में संव्याप्त हो रही हैं । वे उषाएँ गौओं के गोष्ठों के तमिस्रामय द्वारों को उद्घाटित करती हैं और अपने शुद्ध - विमल प्रकाश से संसार को व्यापती हैं ॥२ ॥

३५७७. **उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः ।**
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३ ॥

आज अंधकार का निवारण करने वाली तथा ऐश्वर्य वाली उषाएँ भोजनदाता को ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए जाग्रत् करती हैं । न जाग्रत् होने वाले जो कंजूस वणिक हैं, वे अत्यधिक अंधकार में सोते रहें ॥३ ॥

३५७८. **कुबित्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।**
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४ ॥

हे देवी उषाओ ! आप लोगों का वह पुरातन अथवा नवीन रथ आज इस यज्ञ में अनेकों बार गमन करता रहे । उस रथ के द्वारा नवग्व, दशग्व तथा सप्त मुख वाले अंगिरागणों (सात छन्द युक्त मुख वाले) के निमित्त आप ऐश्वर्य - सम्पन्न होकर प्रकाशित होती रहें ॥४ ॥

३५७९. **यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।**
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५ ॥

हे देवी उषाओ ! आप यज्ञ में गमन करने वाले घोड़ों के द्वारा समस्त लोकों में चारों तरफ विचरण करती रहें तथा निद्राग्रस्त दो पैर वाले (मनुष्यों) और चार पैर वाले (पशुओं) जीवों को परिभ्रमण करने के लिए जाग्रत् करती रहें ॥५ ॥

३५८०. **क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।**
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥६ ॥



जिन उषाओं के निमित्त ऋभुओं ने चमस आदि विनिर्मित किया था, वे पुरानी उषाएँ कौन सी और कहाँ हैं ? जब प्रदीप्त उषाएँ सौन्दर्य को प्रदर्शित करती हैं, तब नित्य नूतन होने पर एक रूप होकर रहती हैं । इसमें से कौन नयी और कौन पुरानी हैं, यह पता नहीं लगता ॥६ ॥

३५८१. ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७ ॥

याज्ञिकगण जिन उषाओं का उक्थों स्तोत्रों द्वारा स्तवन करके तत्काल ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, वे ही हित करने वाली उषाएँ प्राचीन काल से ही, पहुँचते ही ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हैं । वे यज्ञ के निमित्त प्रकट हुई हैं तथा सत्य परिणाम प्रदान करती हैं ॥७ ॥

३५८२. ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८ ॥

वे उषाएँ समान रूप से पूर्व दिशा में चारों ओर विस्तृत हो रही हैं । वे एक जैसी उषाएँ समान आकाश के स्थान से फैलती हैं और यज्ञ स्थान को ज्ञापित करती हैं । वे देवी उषाएँ गौओं के झुण्ड के सदृश प्रशंसित होती हैं ॥८ ॥

३५८३. ता इन्न्वे३व समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥९ ॥

वे उषाएँ एक जैसी रंग-रूप वाली तथा अपरिमित रंगों से सम्पन्न होकर संचरित होती हैं । वे विस्तृत तमिस्रा को आच्छादित (निरस्त) कर देती हैं तथा अपने कान्तिपूर्ण शरीरों के द्वारा पवित्र प्रकाश को और भी देदीप्यमान कर देती हैं ॥९ ॥

३५८४. रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१० ॥

हे द्युलोक की दुहिता उषाओ ! आप द्योतमान् देवियाँ हैं । आप हम लोगों को सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें । हे देवियो ! हम मनुष्य हर्ष प्राप्ति के लिए आपसे निवेदन करते हैं, जिससे हम लोग श्रेष्ठ सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य के स्वामी हो सकें ॥१० ॥

३५८५. तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद्द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥११ ॥

हे प्रकाशमान सूर्य-पुत्री उषाओ ! हम याजक यज्ञ के निदेशक हैं । आपके समीप हम लोग स्तुति करते हैं, जिससे मनुष्यों के बीच में हम लोग यश तथा अन्न के अधिपति हो सकें । हमारी उस कामना को द्यावा-पृथिवी सफल करें ॥११ ॥

[सूक्त - ५२]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - उषा । **छन्द** - गायत्री ।]

३५८६. प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१ ॥

सब प्राणियों की प्रेरक, फल प्रदायक, अपनी बहिन के तुल्य रात्रि के अन्त में प्रकाश फैलाने वाली सूर्य पुत्री उषा को सब देखते हैं ॥१ ॥

३५८७. अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२ ॥

चपला (बिजली) के समान अद्‌भुत दीप्तिमान् किरणों की माता, यज्ञ आरम्भ करने वाली उषा अश्विनीकुमारों की मित्र हैं ॥२ ॥

[अश्विनीकुमार रोगों का उपचार करते हैं, उषा इस कार्य में सहायक है ।]

३५८८. उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥३ ॥

आप अश्विनीकुमारों की मित्र हैं और दीप्तिमान् रश्मियों की रचयित्री हैं, इसलिए हे उषा देवि ! आप स्तुति योग्य हैं ॥३ ॥

३५८९. यावयद् द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि । प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥४ ॥

हे मधुर बोलने वाली उषा देवि ! आप रिपुओं को अलग करने वाली हैं । आप ज्ञान सम्पन्न हैं । स्तुतियों के द्वारा हम आपको जाग्रत् करते हैं ॥४ ॥

३५९०. प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः । ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥५ ॥

हितकारी रश्मियाँ गौओं के समूह के समान दिखायी पड़ रही हैं । वे देवी उषा विशेष तेजस् को सब जगह भर देती हैं ॥५ ॥

३५९१. आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः । उषो अनु स्वधामव ॥६ ॥

हे दीप्तिमती उषा देवि ! आप संसार को तेज के द्वारा पूर्ण करने वाली हैं, अंधकार को प्रकाश के द्वारा दूर करने वाली हैं । इसके बाद आप अपनी धारण करने वाली शक्ति को संरक्षित करने वाली हों ॥६ ॥

३५९२. आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् । उषः शुक्रेण शोचिषा ॥७ ॥

हे उषा देवि ! आप अपनी रश्मियों के द्वारा द्युलोक को पूर्ण कर देती हैं तथा पवित्र प्रकाश के द्वारा प्रीतियुक्त विशाल आकाश को भी पूर्ण कर देती हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ५३]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - सविता । **छन्द** - जगती ।]

३५९३. तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥१ ॥

हम प्राण शक्ति प्रदाता तथा मेधावी सविता देव के उस वरण करने योग्य तथा श्रेष्ठ तेज की कामना करते हैं, जिस तेजस् के द्वारा वे हविप्रदाता यजमान को हर्ष प्रदान करते हैं । वे महान् सवितादेव हमें उस तेज को प्रदान करते हुए निशा के अवसान के समय उदित होते हैं ॥१ ॥

३५९४. दिवो धर्त्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत्सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥२ ॥

द्युलोक के धारक, समस्त भुवनों की प्रजाओं के पालक तथा विद्वान् सवितादेव अपने स्वर्णिम कवच को उतारते हैं । सबको देखने वाले सवितादेव अपने तेजस् को प्रकट करते हुए समस्त जगत् को परिपूर्ण करते हैं तथा प्रार्थना के योग्य प्रचुर सुख को उत्पन्न करते हैं ॥२ ॥



३५९५. आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।
प्र बाहू अस्राक्सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥३ ॥

वे सवितादेव अपने तेजस् द्वारा द्युलोक तथा भूलोक को पूर्ण करते हैं और अपने कर्म की सराहना करते हैं । वे जगत् को अपने कर्म में नित्य प्रति स्थापित करते हैं तथा प्रेरित करते हैं । वे सृजन के लिए अपनी भुजाओं को फैलाते हैं ॥३ ॥

३५९६. अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ॥४ ॥

वे सवितादेव हिंसारहित होकर समस्त लोकों को आलोकित करते हैं तथा सभी व्रतों की सुरक्षा करते हैं । वे समस्त लोकों के मनुष्यों के हित के लिए अपनी भुजाओं को प्रसारित करते हैं । व्रत को धारण करने वाले सवितादेव श्रेष्ठ जगत् के ईश्वर हैं ॥४ ॥

३५९७. त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ॥५ ॥

वे सवितादेव अपने तेजस् के द्वारा अन्तरिक्ष त्रय को परिपूर्ण करते हैं तथा अपनी महिमा द्वारा तीनों लोकों को परिपूर्ण करते हैं । वे सर्वश्रेष्ठ सवितादेव अग्नि, वायु तथा सूर्य को संव्याप्त करते हैं । वे तीन द्युलोक तथा तीन पृथ्वियों को व्याप्त करते हैं । वे अपने तीन व्रतों के द्वारा हमारी सुरक्षा करें ॥५ ॥

३५९८. बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ॥६ ॥

जो अपने पास प्रचुर ऐश्वर्य रखते हैं, सबको उत्पन्न तथा स्थिर करते हैं, स्थावर तथा जंगम को अपने अधीन रखते हैं, वे सवितादेव हमारे पापों को विनष्ट करने के लिए तीनों लोकों के सुख को हमें प्रदान करें ॥६ ॥

३५९९. आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥७ ॥

उदित होते हुए सवितादेव समस्त ऋतुओं में हमारे सुखों की वृद्धि करें तथा हमें श्रेष्ठ सन्तानों से सम्पन्न अन्न प्रदान करें । वे हम लोगों को रात-दिन समृद्धि से तुष्ट करें तथा हमें प्रजाओं से सम्पन्न धन प्रदान करें ॥७ ॥

[सूक्त - ५४]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - सविता । **छन्द** - जगती; ६ त्रिष्टुप् ।]

३६००. अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१ ॥

सवितादेव उदित हो रहे हैं, हम उनकी वन्दना करते हैं । जो मानवों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं तथा हमारे इस यज्ञ में हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं; वे सवितादेव दिन के इस भाग में याजकों के द्वारा प्रशंसनीय होते हैं ॥१ ॥

३६०१. देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥२ ॥

हे सवितादेव ! उदयकाल में आप यज्ञ के योग्य देवों को अमृतमय सार तत्त्वों का उत्तम भाग प्रदान करते



हैं, फिर उदित होकर दीप्तिमान् रश्मियों को विस्तीर्ण करते हैं और प्राणियों के निमित्त रश्मियों के द्वारा जीवन का विस्तार करते हैं ॥२ ॥

३६०२. अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥३ ॥

हे सवितादेव ! हमने भूल से दुर्बलता के कारण , धनाभिमानवश अथवा मनुष्य होने के गर्व से आपके प्रति, देवताओं या मनुष्यों के प्रति जो पाप किया हो, आप इस यज्ञ में हमें उस पाप से मुक्त करें ॥३ ॥

३६०३. न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४ ॥

जिससे समस्त लोकों को धारण करते हैं, सवितादेव की वह सामर्थ्य कभी विनष्ट नहीं होगी । सुन्दर हाथों वाले जो सवितादेव पृथ्वी तथा द्युलोक को विस्तृत होने के निमित्त प्रेरित करते हैं, उन सविता देव का कर्म सत्य है ॥४ ॥

३६०४. इन्द्रज्येष्ठान्बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥५ ॥

हे सवितादेव ! अत्यधिक धनवान् इन्द्रदेव हम याजकों के बीच वंदनीय हैं । आप हम मनुष्यों को विशाल पर्वतों से भी अधिक बड़ा बनाएँ । इन याजकों को आप घरों से युक्त स्थान प्रदान करें, जिससे वे आपके जाने के समय आपके द्वारा नियन्त्रित हों तथा आपकी आज्ञा में चलें ॥५ ॥

३६०५. ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६ ॥

हे सवितादेव ! जो याजक आपके लिए नित्य प्रति तीन बार सौभाग्यजनक सोमरस अभिषुत करते हैं । उन याजकों के लिए तथा हमारे लिए, इन्द्रदेव, द्यावा-पृथिवी, जल पूर्ण नदियाँ तथा आदित्यों के साथ अदिति देवी सुख प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ५५]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप्; ८-१० गायत्री ।]

३६०६. को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१ ॥

हे वसुओ ! आप लोगों के बीच में रक्षक कौन है ? दु:खों का निवारण करने वाला कौन है ? हे अखण्डनीया द्यावा-पृथिवि ! आप हमारी सुरक्षा करें । हे मित्रावरुण ! आप लोग बलशाली रिपुओं से भी हमारी सुरक्षा करें । हे देवो ! आप लोगों के बीच में कौन से देव यज्ञ में हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं ? ॥१ ॥

३६०७. प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥२ ॥

जो देवता स्तुति करने वालों को प्राचीन स्थान प्रदान करते हैं तथा अज्ञानान्धकार को विनष्ट करते हैं, वे फल प्रदायक देवता सदैव श्रेष्ठ फल प्रदान करते हैं । वे सत्कर्म करने वाले देवता दर्शनीय होकर सुशोभित होते हैं ॥२ ॥



३६०८. प्र पस्त्या३मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम्।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥३ ॥

सबको आश्रय प्रदान करने वाली अदिति, सिन्धु तथा स्वस्ति देवी की मित्रता प्राप्त करने के लिए हम स्तोत्रों द्वारा उनकी प्रार्थना करते हैं। द्यावा-पृथिवी हमारी सुरक्षा करें। अहोरात्र की अधिष्ठात्री देवी उषासानक्ता हमारी कामनाओं को सम्पादित करें ॥३ ॥

३६०९. व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवाना शर्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥४ ॥

अर्यमा तथा वरुणदेव यज्ञ मार्ग को प्रकाशित करें तथा अन्न के अधिपति अग्निदेव हर्षकारी मार्ग को दिखलायें। इन्द्र और विष्णुदेव भली-भाँति प्रशंसित होकर हम लोगों को , सन्तानों तथा बलों से युक्त मनोहर सुख प्रदान करें ॥४ ॥

३६१०. आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५ ॥

पर्वत, मरुद्गण तथा संरक्षक भगदेव की रक्षण सामर्थ्यों की हम कामना करते हैं। सबका पालन करने वाले वरुणदेव, मनुष्य सम्बन्धी पापों से बचायें। मित्रदेव सखा भाव से हमारी सुरक्षा करें ॥५ ॥

३६११. नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो३ अप व्रन् ॥६ ॥

हे देवी द्यावा-पृथिवि ! जिस प्रकार ऐश्वर्य प्राप्त करने की कामना करने वाले लोग बीच में जाने के लिए समुद्र की प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकार इच्छित कार्य लाभ के निमित्त 'अहिर्बुध्न्य' नामक देव के साथ हम आपकी प्रार्थना करते हैं। तेज ध्वनि करने वाली सरिताओं को आप मुक्त करें ॥६ ॥

३६१२. देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन्।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥७ ॥

देवताओं के साथ अदिति देवी हमारा पोषण करें तथा संरक्षण करने वाले इन्द्रदेव प्रमादरहित होकर हमारी सुरक्षा करें। हम मित्र, वरुण तथा अग्निदेवों के सोम रूप पोषक अन्नों में बाधा नहीं डाल सकते, उन्हें यज्ञादि से संवर्धित कर सकते हैं ॥७ ॥

३६१३. अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य। तान्यस्मभ्यं रासते ॥८ ॥

वे अग्निदेव ऐश्वर्य तथा सौभाग्य के अधिपति हैं; अतः हम लोगों को वे ऐश्वर्य तथा सौभाग्य प्रदान करें ॥८ ॥

३६१४. उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु। अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥९ ॥

हे धनसम्पन्न, सत्यरूप वचन वाली तथा अन्न प्रदान करने वाली उषादेवि ! हम लोगों को आप अत्यन्त मनोहर धन प्रदान करें ॥९ ॥

३६१५. तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा। इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥१० ॥

जिस ऐश्वर्य के साथ सविता, भग, मित्रावरुण, इन्द्र तथा अर्यमा देवगण पधारते हैं, उस ऐश्वर्य को वे सब देव हमें प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - ५६]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - द्यावा - पृथिवी । छन्द - त्रिष्टुप्; ५-७ गायत्री ।]

३६१६. मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्नुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥१ ॥

जब अत्यन्त श्रेष्ठ तथा बृहद् द्यावा-पृथिवी को हवाओं से प्रेरित होने वाले बादल चारों ओर से आवृत कर लेते हैं तथा ध्वनि करते हैं, तब ज्येष्ठ तथा महान् द्यावा-पृथिवी तेजस्वी स्तोत्रों द्वारा तेज-सम्पन्न हों ॥१ ॥

३६१७. देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥२ ॥

पूजन करने योग्य, हिंसा न करने वाली, अभीष्ट की वर्षा करने वाली, यज्ञ से सम्पन्न, विद्रोह न करने वाली, देवताओं को पैदा करने वाली तथा यज्ञ सम्पन्न करने वाली तेजस्वी द्यावा-पृथिवी देवियाँ, देवताओं के साथ यजन योग्य तेजस्वी मन्त्रों से सम्पन्न हों ॥२ ॥

३६१८. स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥३ ॥

जिन सद्बुद्धि प्रदाता देव ने अपने कौशल के द्वारा विस्तृत, गम्भीर तथा आधाररहिता द्यावा-पृथिवी को उत्पन्न किया तथा दोनों लोकों को विनिर्मित किया, वही सत्कर्म करने वाले देव समस्त लोकों में संव्याप्त हैं ॥३ ॥

३६१९. नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों हमारे लिए अन्न प्रदान करने की कामना वाली तथा परस्पर प्रेम से रहने वाली हों । आप दोनों विशाल क्षेत्र वाली तथा सबके द्वारा पूजने वाली होकर हमें गृहिणी से सम्पन्न श्रेष्ठ भवन प्रदान करें तथा हमारी सुरक्षा करें । हम अपने सत्कर्म के द्वारा दासों तथा रथों से सम्पन्न हों ॥४ ॥

३६२०. प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥५ ॥

हे पवित्र एवं तेजस्वी आकाश-भूमण्डल ! स्तुति के लिए आपके निकट आकर हम आप दोनों के लिए पर्याप्त मात्रा में स्तुतियों का उच्चारण करते हैं ॥५ ॥

३६२१. पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥६ ॥

हे दोनों देवियो ! अपनी अतुलित शक्ति से आप द्युलोक और पृथिवी लोक इन दोनों को पवित्र करती हुई प्रदीप्त होती हैं और सदैव यज्ञ का निर्वाह करने वाली हैं ॥६ ॥

३६२२. मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं नि षेदथुः ॥७ ॥

हे व्यापक आकाश और भू देवियो ! आप अपने सखा यजमान को अभीष्ट फल प्रदान करती हैं । यज्ञ की पूर्णता के लिए संरक्षण देती हुई यज्ञ को अवलम्बन प्रदान करती हैं ॥७ ॥



[सूक्त - ५७]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - १- ३ क्षेत्रपति; ४ शुन; ५, ८ शुनासीर; ६-७ सीता । **छन्द** - अनुष्टुप् ; ५ पुर उष्णिक्; २, ३, ८ त्रिष्टुप् ।]

३६२३. क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वंपोषयित्वा स नो मृळातीदृशे ॥१ ॥

सखा के समान हित करने वाले क्षेत्रपति के सहयोग से हम क्षेत्रों को विजित करें । वे क्षेत्रपति देव हमें गौओं तथा अश्वों को बलिष्ठ करने वाले ऐश्वर्य प्रदान करें तथा ऐसे ऐश्वर्य से हमें हर्षित करें ॥१ ॥

३६२४. क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥२ ॥

हे क्षेत्रपतिदेव ! जिस प्रकार गौएँ दुग्ध प्रदान करती हैं, उसी प्रकार आप हमें मधुरता तथा प्रवाह से सम्पन्न जल (रस) प्रदान करें । जिस प्रकार मधुरता टपकाने वाला तथा भली-भाँति पवित्र किया जाने वाला जल सुख प्रदान करता है, उसी प्रकार सत्कर्मों के पालक आप लोग हमें सुख प्रदान करें ॥२ ॥

३६२५. मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३ ॥

वनौषधियाँ हमारे लिए मधुरता से पूर्ण हों तथा द्युलोक, अन्तरिक्ष और जल हमारे लिए मीठे हों । क्षेत्र के स्वामी हमारे लिए मधु-सम्पन्न हों । हम रिपुओं द्वारा अहिंसित होकर उनका अनुगमन करें ॥३ ॥

३६२६. शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥४ ॥

अश्व आदि वाहन हमारे निमित्त हर्षकारी हों ।मानव हमारे लिए हर्षकारी हों तथा हल हर्षित होकर कृषि कर्म करें ।हल सुखपूर्वक खेतों में चलें । हल के जुवे सुखपूर्वक बाँधे जाएँ तथा चाबुक भी मधुरता के साथ प्रयुक्त हों॥ ४ ॥

३६२७. शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः । तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५ ॥

हे शुना और सीर ! आप दोनों हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार करें । आप दोनों ने द्युलोक में जिस जल को उत्पन्न किया है, उस जल के द्वारा आप इस धरती को सिंचित करें ॥५ ॥

[शौनक के मत से शुनः इन्द्र तथा सीर वायु हैं । निरुक्त के अनुसार शुनः वायु और सीर आदित्य हैं ।]

३६२८. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥६ ॥

हे श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करने वाली सीते ! आप हमारे ऊपर अनुकम्पा करने वाली हों । हम आपकी वन्दना करते हैं, जिससे आप हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें तथा श्रेष्ठ फल प्रदान करें ॥६ ॥

३६२९. इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७ ॥

इन्द्रदेव हल की मूठ सँभालें । पूषादेव उसकी देख-भाल करें, तब धरती श्रेष्ठ धान्य तथा जल से परिपूर्ण होकर हमारे लिए धान्य आदि का दोहन करे ॥७ ॥

३६३०. **शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।**
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥

हल के नीचे लगी हुई लोहे से विनिर्मित श्रेष्ठ फालें खेत को भली-प्रकार से जोतें और किसान लोग बैलों के पीछे-पीछे आराम के साथ जाएँ। हे वायु और सूर्यदेवो ! आप दोनों हविष्य से प्रसन्न होकर पृथ्वी को जल से सींचकर इन ओषधियों को श्रेष्ठ फलों से युक्त करें ॥८॥

[सूक्त - ५८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम। **देवता** - अग्नि अथवा सूर्य अथवा आप: देवता अथवा गौएँ अथवा घृत। **छन्द** - त्रिष्टुप्; ११ जगती ।]

३६३१. **समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट्।**
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१॥

समुद्र से मधुर लहर ऊपर को उद्भूत होती है, वह सोमरस के संग अमृतत्व को प्राप्त हो गयी। घृत (तेज) का जो रहस्यपूर्ण रूप है, वह देवताओं की जिह्वा तथा अमृत की नाभि है ॥१॥

३६३२. **वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः।**
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥२॥

हम याजक उस घृत की स्तुति करते हैं। इस यज्ञ मण्डप में नमन के द्वारा हम उसे धारण करते हैं। हमारे द्वारा गान किये जाने वाले स्तवनों को ब्रह्मा जी श्रवण करें। चार वेदरूपी शृंग वाले गौर वर्ण देव ने इस जगत् का सृजन किया ॥२॥

३६३३. **चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।**
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥३॥

इस यज्ञाग्नि देव के चार सींग हैं और तीन पैर, दो सिर तथा सात हाथ हैं। वे बलशाली देव तीन तरह से बद्ध होकर ध्वनि करते हैं तथा मनुष्यों के बीच में प्रवेश करते हैं ॥३॥

३६३४. **त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।**
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४॥

देवताओं ने पणियों के द्वारा गौओं के बीच तीन तरह से छिपाकर रखे हुए घृत (तेज) को ज्ञात कर लिया। उनमें से प्रथम को इन्द्रदेव ने पैदा किया, दूसरे को आदित्यदेव ने पैदा किया तथा तीसरे को देवताओं ने अपने बल के द्वारा ओजस्वी अग्नि से उत्पन्न किया ॥४॥

३६३५. **एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे।**
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५॥

ये धाराएँ मनोहर समुद्र से सैकड़ों गतियों से प्रवाहित हो रही हैं। रिपु उसे देख नहीं सकते। घृत की उन धाराओं को हम देख सकते हैं। उन धाराओं के बीच में विद्यमान अग्नि को भी हम देख सकते हैं ॥५॥

३६३६. **सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।**
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥



अन्तःकरण के बीच से निकलकर तथा चित्त के द्वारा शुद्ध की गयी तेज की धाराएँ हर्षप्रदायक सरिताओं के सदृश भली-भाँति प्रवाहित होती हैं । जिस प्रकार शिकारी से भयभीत होकर हिरण भागते हैं, उसी प्रकार घृत की धाराएँ तीव्र गति से प्रवाहित होती हैं ॥६ ॥

३६३७. सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७ ॥

जिस प्रकार नदी का जल नीचे की ओर तेजी से गमन करता है, उसी प्रकार वायु के समान बलशाली होकर घृत की बड़ी धाराएँ द्रुतगति से गमन करती हैं । तेजस्वी अश्वों के समान ये घृत धाराएँ अपनी परिधि को भेद करके लहरों के द्वारा वर्धित होती हैं ॥७ ॥

३६३८. अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्य१: स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८ ॥

जिस प्रकार समान विचार वाली तथा हँसने वाली स्त्रियाँ अपने पति के पास गमन करती हैं, उसी प्रकार घृत की धाराएँ अग्नि की ओर गमन करती हैं । ये घृत-धाराएँ प्रज्वलित होकर सब जगह व्याप्त होती हैं । वे जातवेदा अग्निदेव हर्षित होकर उन धाराओं की इच्छा करते हैं ॥८ ॥

३६३९. कन्याइव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९ ॥

जहाँ सोमरस अभिषुत किया जाता है तथा यज्ञ सम्पन्न किया जाता है; वहाँ पर ये घृत-धाराएँ उसी प्रकार प्रवाहित होती हैं, जिस प्रकार पति (वर) के समीप जाने के लिए कन्याएँ अलंकृत होती हैं । उन घृत-धाराओं को हम देखते हैं ॥९ ॥

३६४०. अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१० ॥

हे याजको ! देवताओं के लिए आप श्रेष्ठ स्तुतियाँ करें । हे देवताओ ! हम याजकों के लिए आप प्रशंसनीय ऐश्वर्य, गौ तथा विजय धारण करें । हमारे इस यज्ञ को आप देवताओं के समीप पहुँचाएँ । घृत की मधुर धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं ॥१० ॥

३६४१. धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्य१न्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११ ॥

हे परमात्मन् !आपका तेज समुद्र के बीच में बड़वाग्नि के रूप में, आकाश में सूर्यदेव के रूप में, हृदय के बीच में वैश्वानर के रूप में, अन्न में प्राण के रूप में, जल में विद्युत् के रूप में तथा युद्ध में शौर्याग्नि के रूप में विद्यमान है ।समस्त लोक आपके आश्रित हैं ।आपके उस मिठास से पूर्ण रस का उपयोग करने में हम समर्थ हों ॥११ ॥

॥ इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् ॥





॥ अथ पञ्चमं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[**ऋषि** - बुध और गविष्ठिर आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३६४२. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१ ॥

उषाकाल में जाग्रत् गौओं की तरह याजकों की समिधाओं (श्रद्धा) से जाग्रत्-प्रज्वलित इस (दिव्य) अग्नि की ज्वालाएँ, फैली हुई वृक्ष की डालियों के समान (अपनी किरणों से) द्युलोक तक फैल जाती हैं ॥१ ॥

३६४३. अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥२ ॥

यज्ञ के आधार अग्निदेव, यजन कार्य के निमित्त देवों द्वारा प्रदीप्त होते हैं । वे अग्निदेव प्रात:काल श्रेष्ठ मानसिकता से ऊर्ध्वगामी होते हैं । उस समय इनका तेजस्वी रूप प्रत्यक्ष हो उठता है । ये महान् देव, जगत् को तम से मुक्त कर देते हैं ॥२ ॥

३६४४. यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३ ॥

जब ये अग्निदेव बाधा डालने वाले अन्धकार को हर लेते हैं, तो शुभ्र किरणों से तेजस्वी बने अग्निदेव जगत् को प्रकाशित कर देते हैं । इन्हें बल देने के लिए जब घृतधारा यज्ञ पात्र से प्रवाहित होती है, तो अग्निदेव ऊँचे उठकर जिह्वाओं (ज्वालाओं) से घृतधारा का पान करते हैं ॥३ ॥

३६४५. अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४ ॥

लोगों की आँखें जैसे सूर्योदय की प्रतीक्षा में निरत रहती हैं, वैसे ही देव-याजकों के मन अग्नि की कामना से सब ओर घूमते हैं । आकाश और पृथिवी, विचित्र रूप वाली उषा के साथ जिन अग्निदेव को प्रकट करते हैं; वे अग्निदेव उज्ज्वल कान्तियुक्त और बलयुक्त हैं ॥४ ॥

३६४६. जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥५ ॥

उत्पादित होने योग्य ये अग्निदेव उषाकाल में उत्पन्न होते हैं । वनों के काष्ठों में हितकारी अग्निदेव प्रदीप्त होते हैं । ये प्रत्येक घर में सात रत्न रूपी दीप्तियाँ धारण कर यज्ञ के योग्य 'होता' रूप में अधिष्ठित होते हैं ॥५ ॥

३६४७. अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६ ॥

यज्ञ के योग्य 'होता' रूप में प्रतिष्ठित ये अग्निदेव, माता (पृथ्वी) की गोद में सुरभित वेदी पर विराजित होते



हैं । ये तरुण, विद्वान्, अति निष्ठावान्, सत्यस्वरूप और धारण करने योग्य अग्निदेव, मनुष्यों के मध्य प्रदीप्त होते हैं ॥६ ॥

३६४८. प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७ ॥

ये अग्निदेव अपनी सामर्थ्य से द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं । यजमान उन ज्ञानी, यज्ञ कार्य सिद्ध करने वाले, 'होता' रूप अग्निदेव का स्तोत्रों से स्तवन करते हैं । यजमान अन्न के स्वामी अग्निदेव का घृत-आहुतियों द्वारा नित्य यजन करते हैं ॥७ ॥

३६४९. मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८ ॥

सबको पवित्र करने वाले, विकारों का शमन करने वाले, ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित, अतिथि सदृश पूजनीय, हम सबका कल्याण करने वाले ओजस्वी ये अग्निदेव अपने स्थान पर पूजे जाते हैं । हे अग्ने ! आप अपनी सामर्थ्य से सबको पूर्ण करते हैं ॥८ ॥

३६५०. प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९ ॥

हे अग्ने ! आप यज्ञ में उत्पन्न सुन्दर रूप में प्रकट होते हैं । आप शीघ्र ही अन्यों को पार कर आगे बढ़ते हैं । आप मनुष्यों में अत्यन्त स्तुत्य, सुन्दर रूपवान्, प्रकाशवान् और प्रिय हैं । आप प्रजाओं में अतिथि रूप हैं ॥९ ॥

३६५१. तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१० ॥

हे युवा (सामर्थ्यवान्) अग्ने ! आपके उपासक लोग दूर से अथवा पास से आपके लिए भोज्य पदार्थ अर्पित करते हैं । आप शुद्ध उच्चारणयुक्त स्तुति करने वाले की श्रेष्ठ बुद्धि को जानें । हे अग्निदेव ! आपका महान् आश्रय अति कल्याणकारी है ॥१० ॥

३६५२. आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्व १न्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥११ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप तेजस्वी और सुन्दर रथ पर पूज्य देवों के साथ बैठकर आयें । सब देवों को जानने वाले आप उन्हें हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए व्यापक अन्तरिक्ष के सुगम मार्गों से यहाँ इस यज्ञ में लायें ॥११ ॥

३६५३. अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२ ॥

त्रिकालदर्शी, शक्तिशाली तथा सेचन (प्राण तत्त्व प्रदान करने) में समर्थ यज्ञाग्नि का स्तोत्र पाठ से हम स्तवन करते हैं । वाणी में स्थिर, हविदाता, आवाहित अग्नि में मंत्रोच्चारणपूर्वक हविष्यान्न उसी प्रकार समर्पित करते हैं, जिस प्रकार द्युलोक में प्रकाशमान आदित्य को संध्योपासना के समय कही गई विशिष्ट महिमायुक्त प्रार्थनाएँ समर्पित की जाती हैं ॥१२ ॥

[सूक्त - २]

[**ऋषि** - कुमार आत्रेय अथवा वृश जान (जार) अथवा दोनों; २,९-वृश जान (जार) । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्; १२ शक्वरी]

३६५४. **कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।**
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१ ॥

तरुणी माता (काष्ठ अरणियाँ) अपने पुत्र (अग्नि) को गर्भ में भली प्रकार गुप्त रखती हैं । इसका पोषण स्वयं करती हैं, पिता को नहीं देती हैं । प्रकट होने पर इस गुप्त शिशु को लोग साक्षात् देखते हैं, तब इसके तेज को लोग विनष्ट नहीं कर सकते ॥१ ॥

३६५५. **कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।**
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥२ ॥

हे महान् तरुणी ! आप बालक (अग्नि) को गर्भ में धारण करती हैं, उत्पन्न करती हैं और उसका भली प्रकार पोषण करती हैं । गर्भ में यह बालक पूर्व के अनेक वर्षों तक पुष्ट होता है । जब आपने इसे उत्पन्न किया, तब इस उत्पन्न बालक को सबने देखा ॥२ ॥

३६५६. **हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।**
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥३ ॥

हमने निकटस्थ स्थान से स्वर्ण सदृश ज्वाला वाले, उज्ज्वल वर्ण वाले, आयुध रूप दीप्तियों वाले अग्निदेव को देखा । हमने उन्हें अमृतमय स्तोत्र निवेदित किया । वे इन्द्रदेव को न मानने वाले और स्तुति न करने वाले भला हमारा क्या करेंगे ? ॥३ ॥

३६५७. **क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।**
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥४ ॥

पशुओं के झुण्ड के समान, अपने स्थान (अरणि) में गुप्त अग्नि को विचरते हुए हमने देखा है । अग्निदेव जब उत्पन्न होते हैं, तो उनकी दीप्त ज्वालाओं का स्पर्श नहीं कर सकते । युवतियों के वृद्धा होने के समान क्षीण होती ज्वालाएँ हविष्यान्न प्राप्त कर जरावस्था से पुनः युवतियों के समान पुष्ट होती जाती हैं ॥४ ॥

३६५८. **के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।**
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥५ ॥

जो कोई राष्ट्र के स्वामी और भूमिपति नहीं हैं; वे कौन हैं, जो मुझे भूमि से पृथक् कर सकते हैं ? जो इस भूमि पर अतिक्रमण करते हैं, उनसे हमें मुक्त करें । वे ज्ञानवान् अग्निदेव हमारे पशुओं के समीप रक्षक रूप में उपस्थित हों ॥५ ॥

३६५९. **वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।**
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६ ॥

ये अग्निदेव सब प्राणियों के स्वामी और सबको आश्रय देने वाले हैं । शत्रुओं ने इन अग्निदेव को मर्त्यलोक में छिपा कर रखा । अत्रि वंशजों ने मंत्र युक्त स्तोत्रों से उन्हें मुक्त किया । उन अग्निदेव की निन्दा करने वाले निन्दा के पात्र हों ॥६ ॥



३६६०. **शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।**
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! शुनः शेप ऋषि के स्तुति करने पर आपने उन्हें सहस्रों यूप (स्तम्भों) के बंधन से मुक्त किया । हे मेधावी अग्निदेव ! आप 'होता' रूप में इस यज्ञ में अधिष्ठित हों और हमें भी बंधनों से मुक्त करें ॥७ ॥

३६६१. **हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।**
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप जब क्रुद्ध होते हैं, तब हमसे दूर हो जाते हैं । नियमों के पालक इन्द्रदेव ने यह उपदेश हमें किया था । विद्वान् इन्द्रदेव ने आपको देखा है और उनके द्वारा प्रेरित होकर हम आपके सम्मुख उपस्थित हैं ॥८ ॥

३६६२. **वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।**
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥९ ॥

वे अग्निदेव अपने महान् तेजों से प्रकाशित होते हैं । वे अपनी महत्ता से सब पदार्थों को प्रकट करते हैं । वे अपनी सामर्थ्य से असुरों की दुःखप्रद माया को विनष्ट करते हैं । राक्षसों के विनाश के निमित्त अपनी ज्वालाओं को तीक्ष्ण करते हैं ॥९ ॥

३६६३. **उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।**
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥१० ॥

अग्नि की शब्द करने वाली ज्वालाएँ तीक्ष्ण आयुधों के समान राक्षसों का विनाश करने के लिए द्युलोक में प्रकट होती हैं । (हव्यादि से) पुष्ट होकर ज्वालाएँ अति विकराल रूप धारण कर राक्षसों को संतप्त करती हैं । आसुरी बाधाएँ अग्निदेव की सीमा को प्रतिबन्धित नहीं कर सकतीं ॥१० ॥

३६६४. **एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।**
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११ ॥

अनेक रूपों में उत्पन्न हे अग्निदेव ! आप धैर्यवान्, ज्ञानी और उत्तम कार्य करने वाले हैं । रथ के निर्माण के सदृश मनोयोगपूर्वक हमने आपके निमित्त स्तोत्रों को तैयार किया है । हे अग्निदेव ! आप इन स्तोत्रों से हर्षित होकर विजय प्राप्त करने वाले स्वर्गिक सुख से युक्त हों ॥११ ॥

३६६५. **तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्व१र्यः समजाति वेदः । इतीममग्निममृता**
अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥१२ ॥

असंख्यों ज्वालाओं वाले, अभीष्ट वर्षक, अबाध वृद्धि-युक्त, शत्रुरहित अग्निदेव श्रेष्ठ पुरुषों को धन देते हैं । अतएव अमर देवगण इन अग्निदेव से कहते हैं- 'आप कुशा के आसन बिछाने वाले तथा हवि देने वाले याजक को निश्चय ही सुख प्रदान करें ॥१२ ॥

[सूक्त -३]

[**ऋषि** - वसुश्रुत आत्रेय । **देवता** - अग्नि, ३ मरुद्गण, रुद्र तथा विष्णु । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३६६६. **त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः ।**
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१ ॥



हे अग्निदेव ! जब आप प्रकट होते हैं, तो वरुण के सदृश गुण वाले होते हैं और जब आप प्रदीप्त होते हैं, तो मित्र के सदृश होते हैं । आप में ही सम्पूर्ण देवगण स्थित हैं । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आप हविदाता यजमान के लिए इन्द्रदेव के सदृश पूज्य हैं ॥१ ॥

३६६७. त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥२ ॥

हे स्वधावान् अग्निदेव ! गुप्त नाम से आप कन्याओं के अर्यमा (नियंत्रक) रहते हैं ।जब आप पति-पत्नी द्वारा गो (गौओं अथवा इन्द्रियों) के रस से सिञ्चित किये जाते हैं, तब आप उन्हें समान मन वाले बनाकर सुख देते हैं ॥ २ ॥

[कन्याओं का कोई प्रत्यक्ष स्वामी नहीं कहा जा सकता, किन्तु परोक्ष रूप में अग्निदेव उनके तंत्र को अपने नियंत्रण में रखते हुए विकसित करते हैं । दम्पती यदि स्वार्थरत रहें, तो विग्रह होता है, यज्ञीय अनुशासन से वे एक मन वाले होकर सुख पाते हैं ।]

३६६८. तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम् ।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी शोभा बढ़ाने के लिए मरुद्‌गण शोधन प्रक्रिया चलाते हैं । हे रुद्ररूप ! आपका जन्म सुन्दर और विलक्षण है । विष्णुदेव आपके निमित्त उपमा योग्य पद निर्धारित करते हैं । आप देवों के इन गुह्य अनुग्रहों को संरक्षित करें ॥३ ॥

[यज्ञाग्नि के लिए स्थान एवं पदार्थों का शोधन मरुत् करते हैं । विकारनाशक रुद्र-अग्नि का जन्म विलक्षण है । पोषण के देवता विष्णु ने यज्ञ को अपना पद प्रदान किया है । याजकों को इन मर्यादाओं के अनुरूप ही अग्नि-प्रयोग करना चाहिए ।]

३६६९. तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरू दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥४ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! आपकी समृद्धि से ही सभी देवगण सुन्दर रूप और अत्यन्त तेज को धारण करते हुए अमृत तत्त्व की प्राप्ति करते हैं । कामना करने वाले मनुष्य स्तुतियों के साथ घृत की हवियाँ देते हुए होता रूप अग्निदेव की सेवा करते हैं ॥४ ॥

३६७०. न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपसे पूर्व अन्य कोई होता नहीं था । यज्ञ करने वाला भी अन्य कोई नहीं था । हे अन्न अभिपूरित अग्निदेव ! भविष्य में भी आपके सदृश अन्य कोई काव्य स्तोत्रों द्वारा स्तुत्य नहीं होगा । आप जिसके यहाँ अतिथि रूप होते हैं, वह यजमान यज्ञ के द्वारा पुत्र-पौत्रादि प्रजाओं को प्राप्त करता है ॥५ ॥

३६७१. वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! धन की कामना करने वाले हम आपको प्रज्वलित कर हवियों से प्रदीप्त करते हैं । आपके अनुग्रह से हम धनों से युक्त होकर आपसे संरक्षित हों । हम सभी छोटे-बड़े युद्धों में नित्य विजय हस्तगत करें । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! हम धनों से और सन्तानों से युक्त होकर सुखी हों ॥६ ॥

३६७२. यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥७ ॥



हे अग्निदेव ! जो मनुष्य हमारे प्रति अपराध या पापपूर्ण व्यवहार करता है, उस पाप को आप उस पापी में ही विस्थापित कर दें। हे ज्ञानी अग्निदेव ! जो हमें पाप या अपराध से प्रताड़ित करता है, आप उस पापी को मार डालें ॥७ ॥

३६७३. **त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।**
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥८ ॥

हे अग्ने !रात्रि की समाप्ति अर्थात् उषा की प्राकट्य वेला में पुरातन लोग आपको देवों का दूत बनाकर हवियों से यजन करते हैं ।उन श्रेष्ठ मनुष्यों द्वारा प्रज्वलित होकर आप धनों औरयोग्य धामों से संपन्न करते हैं ॥८ ॥

३६७४. **अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान्पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।**
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥९ ॥

हे बल के द्वारा उत्पन्न अग्निदेव ! पुत्र द्वारा पिता की सेवा करने के समान जो विद्वान् आपकी सेवा करता है, उसे आप संकटों से पार करें और पापों से मुक्त करें । हे ज्ञानी और यज्ञपालक अग्निदेव ! आप हम पर अपनी कृपा दृष्टि कब करेंगे ? और हमें कब श्रेष्ठ मार्ग पर प्रेरित करेंगे ? ॥९ ॥

३६७५. **भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।**
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥१० ॥

हे आश्रयदाता अग्निदेव ! आप पिता रूप में सबके पालनकर्त्ता हैं । स्तुतियों के साथ हवि देने वाले यजमान की हवियों से संतुष्ट होकर आप उन्हें बहुत यश प्रदान करते हैं । वृद्धि को प्राप्त होते हुए, तेजयुक्त शोभा और अतीव बलों से संयुक्त ये अग्निदेव उपासक को अत्यन्त सुख देते हैं ॥१० ॥

३६७६. **त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।**
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥११ ॥

हे प्रिय युवा अग्निदेव ! जो आपको चोर दिखाई देते हैं तथा जो कुटिल शत्रु अनजान मनुष्यों को प्रताड़ित करते हैं, ऐसे सम्पूर्ण आगत संकटों से आप हम स्तोताओं को पार लगायें ॥११ ॥

३६७७. **इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।**
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! स्तुति करने वाले हम उपासक अब आपकी ओर अभिमुख हुए हैं । हम अपने अपराधों को आपके सम्मुख निवेदन कर आपके आश्रय की कामना करते हैं । हमारी स्तुतियों से प्रवृद्ध ये अग्निदेव हमें निन्दकों की ओर और हिंसकों की ओर जाने से बचायें ॥१२ ॥

[सूक्त - ४]

[**ऋषि** - वसुश्रुत आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३६७८. **त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।**
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥१ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप धनों के अधीश्वर हैं । हम यज्ञों में आपकी स्तुति करते हैं । बल प्राप्ति की कामना वाले हम आपके द्वारा बलों को प्राप्त करें । शत्रु सेनाओं को मार भगाकर हम विजय प्राप्त करें ॥१ ॥



३६७९. **हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।**
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि ॥२ ॥

हव्यादि का हवन करने वाले अग्निदेव सदैव अजर रूप में स्थित हैं । वे पिता रूप में हमारे पालनकर्त्ता हैं । वे सर्वव्यापक रूप में सर्वत्र प्रकाशित होते हुए अति दर्शनीय होते हैं । हे उत्तम गार्हपत्य अग्निदेव ! हमारे निमित्त उत्तम अन्न प्रदान करें । हमारी ओर कीर्ति भी प्रेरित करें ॥२ ॥

३६८०. **विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।**
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! आप मनुष्यों के अधीश्वर, ज्ञानी, स्वयं पवित्र रहकर मनुष्यों को पवित्र करने वाले, दीप्तिमान् शरीर वाले, सर्वभूत-ज्ञाता इन अग्निदेव को यज्ञ में होता रूप में धारण करें । वे देवों द्वारा धारण करने योग्य धन हमें प्रदान करें ॥३ ॥

३६८१. **जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।**
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! वेदी में प्रतिष्ठित होकर प्रज्वलित हुए आप, सूर्यरश्मियों के साथ हमारी स्तुतियों को स्वीकार करें । हे सर्वभूत-ज्ञाता अग्निदेव ! आप हमारी समिधाओं को ग्रहण करते हुए देवों को यहाँ हवि भक्षण के निमित्त ले आयें ॥४ ॥

३६८२. **जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।**
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥५ ॥

घर में आये प्रिय और विनयशील अतिथि के समान पूज्य आप हमारे इस यज्ञ में आयें । सभी आक्रामक शत्रुओं का हनन कर शत्रुवत् व्यवहार करने वालों का धन हमारे पास ले आयें ॥५ ॥

३६८३. **वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे३स्वायै ।**
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! अपने शरीर के लिए अन्न ग्रहण करते हुए आप हमारे शत्रुओं का आयुधों से नाश करें । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आप देवों को तृप्त करते हैं । हे मनुष्यों में अग्रणी स्तुत्य अग्निदेव ! संग्राम में आप हमारी रक्षा करें ॥६ ॥

३६८४. **वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।**
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपकी श्रेष्ठ वचनों और हवियों से सेवा करते हैं । हे पवित्रकर्त्ता, कल्याणकारी तेज संयुक्त अग्निदेव ! आप हमें सबके द्वारा वरणीय श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें । हमें सब प्रकार के धनों को धारण करायें ॥७ ॥

३६८५. **अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।**
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥८ ॥

हे बल के पुत्र अग्निदेव ! जल, थल और पर्वत इन तीन सदनों में निवास करने वाले आप हमारे यज्ञ में प्रतिष्ठित होकर हविष्यान्न का सेवन करें । हम देवों के निमित्त श्रेष्ठ कर्म करने वाले हों । आप तीनों (कायिक वाचिक, मानसिक) पापों से हमारी रक्षा करें । उत्तम आश्रय स्थान देकर हमें सुखी करें ॥८ ॥



३६८६. विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिपर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो३स्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥९ ॥

हे सर्वभूत-ज्ञाता अग्निदेव ! जैसे नाविक नाव द्वारा लोगों को नदी के पार करता है, वैसे ही आप आगत सम्पूर्ण संकटों से हमें पार करें । अत्रि के समान अभिवादन योग्य स्तुतियाँ हम आपको निवेदित करते हैं; आप हमारे इस निवेदन को जानें, हमारे शरीरों की आप ही रक्षा करें ॥९ ॥

३६८७. यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप अविनाशी हैं और हम मरणधर्मा हैं । हम स्तुतिपूर्ण हृदय से आपको नमस्कार करते हुए बुलाते हैं । हे ऐश्वर्यों के स्वामी अग्निदेव ! हमें यश प्रदान करें । हम आपके अविनाशी रूप में स्थित होकर सन्तानों से युक्त हों ॥१० ॥

३६८८. यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥११ ॥

हे ऐश्वर्यों के स्वामी अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ कर्म करने वाले जिस यजमान पर अनुग्रह करते हैं; वह यजमान अश्वों, पुत्रों, वीरों और गौओं से युक्त कल्याणकारी ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥११ ॥

[सूक्त - ५]

[**ऋषि** - वसुश्रुत आत्रेय । **देवता** - आप्री सूक्त (१ इध्म अथवा समिद्ध अग्नि; २- नराशंस ; ३- इळ; ४-बर्हि; ५- देवीद्वार; ६- उषासानक्ता; ७-दिव्य होता प्रचेतस; ८-सरस्वती, इळा, भारती; ९-त्वष्टा; १०-वनस्पति; ११- स्वाहाकृति) । **छन्द** - गायत्री ।]

३६८९. सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥१ ॥

(हे यजमान !) श्रेष्ठ, भली-भाँति प्रज्वलित, जाज्वल्यमान, सर्वज्ञ (जातवेदा), देदीप्यमान यज्ञाग्नि में शुद्ध पिघले हुए घृत की आहुतियाँ प्रदान करें ॥१ ॥

३६९०. नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥२ ॥

मनुष्यों द्वारा अति प्रशंसित ये अग्निदेव इस यज्ञ को भली प्रकार सम्पन्न करें । वे अग्निदेव अडिग, ज्ञान-सम्पन्न और मधुर रश्मियुक्त हैं ॥२ ॥

३६९१. ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप सबके द्वारा स्तुत्य हैं । आप हमारी रक्षा के निमित्त प्रिय और विलक्षण शक्ति सम्पन्न इन्द्रदेव को यहाँ सुखकारी रथों से ले आयें ॥३ ॥

३६९२. ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य१र्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये ॥४ ॥

हे मनुष्यो ! आप ऊन के समान मृदु एवं सुखप्रद आसनों को बिछायें; क्योंकि स्तोताओं ने स्तुतियाँ आरम्भ कर दी हैं । हे शुभ्र अग्निदेव ! स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त हुए आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ॥४ ॥

३६९३. देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥५ ॥



हे हवियो ! आप उत्तम गुणों वाली, दिव्य द्वारों को खोलने वाली और श्रेष्ठ कर्म वाली हैं । आप हमारी रक्षा के निमित्त यज्ञ को परिपूर्ण करें ॥५ ॥

३६९४. सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥६ ॥

सुन्दर रूप वाली, आयु बढ़ाने वाली, महान् कर्मों को सम्पन्न कराने वाली, यज्ञ कर्मों की निर्मात्री रात्रि और उषा देवियों की हम उत्तम स्तुति करते हैं ॥६ ॥

३६९५. वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा गतम् ॥७ ॥

हे अग्नि और आदित्य रूप दिव्य होताओ ! आप दोनों हम मनुष्यों के इस यज्ञ में स्तुति से प्रेरित होकर वायु की गति से आयें ॥७ ॥

३६९६. इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥८ ॥

इला, सरस्वती और मही (महान् भारती) तीनों देवियाँ सुखकारक हैं । ये मार्ग में अबाधित होकर हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों ॥८ ॥

३६९७. शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥९ ॥

हे त्वष्टादेव ! आप व्यापक सामर्थ्य-सम्पन्न और कल्याणकारी कर्म करने वाले हैं । आप हमारे यज्ञ में आगमन करें । हमारे प्रत्येक यज्ञ कर्म के उत्तम पद में प्रतिष्ठित होकर हमारे रक्षक हों ॥९ ॥

३६९८. यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥१० ॥

हे वनस्पते ! जहाँ-जहाँ आप देवों के गुप्त स्थानों को जानते हैं, वहाँ-वहाँ इन हव्यादि साधनों को पहुँचायें ॥१० ॥

३६९९. स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥११ ॥

यह हवि अग्नि और वरुण देवों के लिए समर्पित है । यह हवि इन्द्रदेव और मरुद्गणों के लिए समर्पित है ॥११ ।

[सूक्त - ६]

[**ऋषि** - वसुश्रुत आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - पंक्ति ।]

३७००. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१ ॥

सबके आश्रय स्थल उन अग्निदेव से हम परिचित हैं, जिन अग्निदेव को प्रदीप्त जानकर गौएँ गोधूलि वेला में अपने-अपने बाड़े में वापिस लौटती हैं तथा तीव्रगामी अश्व नित्य ही उन अग्निदेव को प्रदीप्त देखकर अश्वशाला में लौटते हैं । हे अग्निदेव ! ऐसे आप याजकों के लिए प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥१ ॥

३७०१. सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२ ॥

जो सबके आश्रयरूप एवं सहायक हैं, उन्हीं अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं । जिनके समीप गौएँ आती हैं और शीघ्र गतिमान् अश्व भी जिनके समीप आते हैं, ऐसे अग्निदेव की श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होकर सुसंस्कार सम्पन्न विद्वान् पुरुष उपासना करते हैं । इन गुणों से युक्त हे अग्निदेव ! याजकों के लिए आप प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥२ ॥



३७०२. अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३ ॥

ये अग्निदेव निश्चय ही यजमान को अन्न देने वाले, पूज्य और सब पर दृष्टि रखने वाले हैं । वे प्रसन्न होकर यज्ञ में सबको ऐश्वर्य प्रदान करने में किञ्चित् मात्र संकोच नहीं करते । हे अग्निदेव !आप स्तोताओं को पर्याप्त पोषण दें ॥३ ॥

३७०३. आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! प्रकाशयुक्त एवं जरारहित (नित्य युवा) आपको हम प्रज्वलित करते हैं । आपकी श्रेष्ठ ज्योति द्युलोक में प्रकाशित होती है । आप स्तोताओं को अन्न (पोषण) से परिपूर्ण कर दें ॥४ ॥

३७०४. आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥५ ॥

विश्व का पोषण करने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, देवताओं को हवि पहुँचाने वाले, आनन्दवर्द्धक, स्वप्रकाशित हे अग्निदेव ! ऋचाओं का उच्चारण करते हुए, याजकगण आपकी ज्वालाओं में आहुति दे रहे हैं; उन स्तोताओं को आप ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५ ॥

३७०५. प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६ ॥

ये अग्निदेव अन्य सब अग्नियों में वरण करने योग्य, सब धनों को पुष्ट करते हैं । वे आनन्द प्रदायक अग्निदेव सबको श्रेष्ठ मार्ग में प्रेरित करते हैं । वे हविष्यान्न की कामना करते हैं, ऐसे हे अग्निदेव ! आप स्तोताओं को अभीष्ट अन्नादि से समृद्ध करें ॥६ ॥

३७०६. तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी किरणें आहुतियों से युक्त होकर वृद्धि पाती हैं । आपकी तेजस्वी किरणें शब्दवान् होकर हवि की कामना करती हैं । हे अग्निदेव ! स्तोताओं को अन्नादि से पूर्ण करें ॥७ ॥

३७०७. नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! हम स्तोताओं को नवीन अन्नों से युक्त उत्तम आवास प्रदान करें, जिससे हम घर-घर में आपकी पूजा करें और आपको दूत रूप में पाकर सुखी हों । हे अग्निदेव ! स्तोताओं को अभीष्ट अन्नादि से अभिपूरित करें ॥८ ॥

३७०८. उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९ ॥

प्रजा का पालन करने वाले, शक्ति-सम्पन्न, देदीप्यमान हे अग्निदेव ! आहुति प्रदान करते समय दोनों पात्र आपके मुख तक पहुँचते हैं । हविष्यान्न द्वारा आपको प्रसन्न करने वाले स्तोताओं को महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ॥९ ॥



३७०९. **एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।**
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१० ॥

हम लोग यज्ञों में उत्तम वाणियों के द्वारा अग्निदेव का पूजन करते हैं । वे अग्निदेव हमें उत्तम, वीर पुत्र-पौत्रादि और बलशाली अश्वों को प्रदान करें । स्तोताओं को अभीष्ट अन्नादि से समृद्ध करें ॥१० ॥

[सूक्त - ७]

[**ऋषि** - इष आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्, १० पंक्ति ।]

३७१०. **सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये ।**
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१ ॥

हे मित्र ऋत्विजो ! जल के पौत्र रूप ये वरिष्ठ अग्निदेव, श्रेष्ठ बलों को प्रदान करने वाले हैं । आप इनके निमित्त श्रेष्ठ स्तवनों का गान करते हुए हविष्यान्न समर्पित करें ॥१ ॥

३७११. **कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।**
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते सञ्जनयन्ति जन्तवः ॥२ ॥

जिनके प्रकट होने पर मनुष्य प्रसन्न होते हैं; जिनकी स्तुतियाँ कर ऋत्विग्गण यज्ञ स्थान में उन्हें प्रज्वलित करते हैं । सभी प्राणी भी जिनका दर्शन करने के लिए प्रकट हो जाते हैं, वे अग्निदेव कहाँ हैं ? ॥२ ॥

३७१२. **सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् । उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥३ ॥**

जब हम अन्न प्राप्ति की कामना करते हैं और हम मनुष्यों के द्वारा अग्निदेव को हवियाँ दी जाती हैं, तब वे (अग्निदेव) अपनी सामर्थ्य से देदीप्यमान होकर ऋत (सत्य) रूप रश्मियों को धारण करते हैं ॥३ ॥

३७१३. **स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आसते ।**
पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजरः ॥४ ॥

ये जरारहित और पवित्र करने वाले अग्निदेव जब वनस्पतियों को जलाने लगते हैं, तब वे रात्रि में भी गहन तमिस्रा को दूर करते हुए अपनी ज्वालाओं को फैलाते हैं ॥४ ॥

३७१४. **अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति । अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥५ ॥**

यज्ञ-मार्गों के पथिक ऋत्विग्गण, अग्नि की परिचर्या करते हुए घृत की आहुतियाँ देते हैं । तब वे घृत धारायें ज्वालाओं में उसी प्रकार आरूढ़ होती हैं; जैसे पुत्र पिता की पीठ पर आरूढ़ होते हैं ॥५ ॥

[यज्ञ में डाले गये पोषक हव्य पदार्थ नष्ट नहीं होते; बल्कि ऊर्जा प्रवाहों पर आरूढ़ होकर संचरित होते हैं ।]

३७१५. **यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे । प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६॥**

अग्निदेव अनेकों द्वारा चाहे जाने वाले, सबको धारण करने वाले, अन्नों का स्वाद लेने वाले और यजमानों को उत्तम आश्रय देने वाले हैं । यजमान उनके गुणों को जानते हैं ॥६ ॥

३७१६. **स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः । हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७ ॥**

तृणों को उखाड़कर खाने वाले पशु की तरह वे अग्निदेव निर्जन प्रदेश में स्थित शुष्क काष्ठों को पृथक् कर भस्मीभूत करते हैं । वे अग्निदेव स्वर्णिम मूँछ (ज्वाला) वाले और शुभ्र दाँतों वाले, बड़े विस्तृत और अपराजित सामर्थ्य वाले हैं ॥७ ॥



३७१७. शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८ ॥

जिन अग्निदेव की ऋत्विग्गण अत्रि ऋषि के समान परिचर्या करते हैं, जो कुल्हाड़ी के समान काष्ठों को विनष्ट करते हैं, जो हविष्यान्न का उपभोग करते हैं; उन दीप्तिमान् अग्निदेव को अरणि स्वेच्छा से उत्पन्न करती है॥८॥

३७१८. आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे। ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः॥९ ॥

हे अग्निदेव !आप हव्य पदार्थों का भक्षण करने वाले हैं। आप सम्पूर्ण जगत् के धारणकर्त्ता हैं। हमारी स्तुतियाँ आपको सुख देने वाली हों। मरणधर्मा स्तोताओं को आप तेजस्वी अन्नों और उत्तम मन(स्नेह) प्रदान करें ॥९ ॥

३७१९. इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥१० ॥

हे अग्ने !मन्यु को धारण करने वाले ऋषिगण आपके द्वारा प्रदत्त पशु (हवनीय पदार्थों) को प्राप्त करते हैं। आप हवि न देने वाले कृपण को अत्रिऋषि के वशीभूत करें और अन्नों को चुराने वाले दस्युओं को वशीभूत करें॥१० ॥

[सूक्त - ८]

[ऋषि - इष आत्रेय। देवता - अग्नि। छन्द -जगती।]

३७२०. त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१ ॥

हे बल से उत्पन्न अग्निदेव ! यज्ञ कर्म करने वाले पुरातन ऋषिगण अपने संरक्षण के निमित्त आपको भली प्रकार प्रज्वलित करते हैं।आप चिर पुरातन, आनन्ददायक, जगत् को धारण करने वाले, पूज्य, श्रेष्ठ गृह-पालक हैं ॥१ ॥

३७२१. त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! यजमानों ने आपको यज्ञ-वेदी में स्थापित किया है। आप अतिथि के समान पूजनीय और गृह स्वामी हैं। आप दीप्तिमान् ज्वालाओं वाले, उच्च केतु रूप ज्वालाओं वाले, अनेक रूप वाले, धन देने वाले, अतीव सुखकारी, समिधाओं को जलाने वाले और हमें सब प्रकार से उत्तम संरक्षण देने वाले हैं ॥२ ॥

३७२२. त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम्।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३ ॥

हे उत्तम धनों के स्वामी अग्निदेव ! मनुष्यगण आपकी स्तुति करते हैं। आप यज्ञ-कर्मों को जानने वाले, सत्य-विवेचक, रत्न-दान करने वालों में श्रेष्ठ, गुह्य रूप में रहने वाले, सबके लिए दर्शनीय, अति शब्दवान्, उत्तम रूप से पूजनीय और घृत-सिञ्चन से अति शोभायमान होते हैं ॥३ ॥

३७२३. त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप सबको धारण करने वाले हैं। हम प्रचुर स्तोत्रों से स्तुति करते हुए, नमस्कारपूर्वक अभिवादन करते हुए आपके सम्मुख आते हैं। हे अंगिराओं में श्रेष्ठ देव ! आप भली प्रकार प्रदीप्त होकर उत्तम दीप्तिमान् ज्वालाओं से हमारी हवियों को ग्रहण करें। हम मनुष्यों को कीर्ति प्रदान करें ॥४ ॥



३७२४. **त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत।**
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! विविध रूपों वाले आप सभी यजमानों को पहले के समान अन्नों से अभिपूरित करते हैं। आप बारम्बार सभी कर्मों में पूजित होते हैं। आप अपनी सामर्थ्य से विविध अन्नों के स्वामी हैं। आपकी तेजस्वी दीप्तियों को कोई दबा सकने में समर्थ नहीं है ॥५ ॥

३७२५. **त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम्।**
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६ ॥

हे युवा अग्निदेव ! आप उत्तम प्रकार से प्रज्वलित होने वाले हैं। देवों ने आपको हवि वहन करने वाले दूत रूप में प्रतिष्ठित किया है। घृत आधार से प्रदीप्त होकर हवि ग्रहण करने वाले हे अग्निदेव ! अत्यन्त वेगवान् और तेजस्वीरूप आपको लोगों ने बुद्धि का प्रेरक और चक्षुरूप मानकर धारण किया है ॥६ ॥

[अग्नि के प्रकाश से ही सभी वस्तुएँ देखी जाती हैं। नेत्रों के देखने की शक्ति को भी नेत्र ज्योति कहते हैं। इसलिए अग्नि को चक्षु रूप कहा गया है।]

३७२६. **त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे।**
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितो३भि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! सुख की अभिलाषा करने वाले पुरातन यजमान आपको उत्तम समिधाओं से, आहुतियों और घृत से प्रदीप्त करते हैं। ओषधियों आदि से सिञ्चित होकर वृद्धि को प्राप्त हुए, आप पृथ्वी की सतहों पर अन्नों में व्याप्त होकर अवस्थित हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ९]

[**ऋषि** - गय आत्रेय। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - अनुष्टुप्, ५, ७ पंक्ति।]

३७२७. **त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते। मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥१ ॥**

हे तेजस्वी अग्निदेव ! हम मनुष्य हवि पदार्थों से युक्त होकर आपकी उत्तम स्तुति करते हैं। आप सम्पूर्ण उत्पन्न जीवों को जानने वाले हैं। आप हमारी हवियों को देवों तक पहुँचाने वाले हैं ॥१ ॥

३७२८. **अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः।**
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥२ ॥

सभी यज्ञ जिन अग्निदेव का अनुगमन करते हैं। अन्न और यश की कामना करने वाले यजमानों के हव्य जिन्हें प्राप्त होते हैं; वे अग्निदेव हविदाताओं और कुश उच्छेदक यजमानों के घर, 'होता' रूप में प्रतिष्ठित होते हैं॥२॥

३७२९. **उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी। धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥३ ॥**

मनुष्यों का पोषण करने वाले अग्निदेव उत्तम रीति से यज्ञ-सम्पन्न करने वाले हैं। दो अरणियाँ इन अग्निदेव को नये शिशु की तरह उत्पन्न करती हैं ॥३ ॥

३७३०. **उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम्। पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥४॥**

हे अग्निदेव ! कुटिल गति वाले सर्प या अश्व के शिशु के समान आप अति दुर्गमता से धारण किए जाने वाले हैं। जौ के खेत में प्रविष्ट हुआ पशु जैसे जौ को खा जाता है, उसी प्रकार वनों में प्रविष्ट हुए आप वनों को भस्म कर देते हैं ॥४ ॥



३७३१. अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥५ ॥

अग्नि की धूम्रयुक्त शिखायें सर्वत्र व्याप्त होती हैं । लोहार अस्त्रादि द्वारा अग्नि को प्रवृद्ध करते हैं । यह संवर्द्धित अग्नि तीनों लोकों में व्याप्त होती है । कर्मकार (लुहार आदि) जिस प्रकार धौंकनी (धमन यन्त्र) द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, ये अग्निदेव उसी प्रकार स्वयं तेजस्वी बन जाते हैं ॥५ ॥

३७३२. तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः । द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपके मित्र भाव से युक्त होकर आपके निमित्त प्रशंसात्मक स्तोत्रों से आपका स्तवन करते हैं । आप अपने रक्षण सामर्थ्यों से संरक्षित कर हमें पाप कर्मों से पार करें और द्वेष करने वाले बाहरी शत्रुओं से भी पार करें ॥६ ॥

३७३३. तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७ ॥

हे बलवान् अग्निदेव ! आप हम मनुष्यों को उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न बनायें । आप हमारे शत्रुओं को विनष्ट करें और हमें सब प्रकार से पोषण प्रदान करें । अन्नों की प्राप्ति हमारे निमित्त सुगम हो । हे अग्ने ! युद्धों में हमें अग्रणी बनाने का यत्न करें ॥७ ॥

[सूक्त - १०]

[**ऋषि** - गय आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्, ४, ७ पंक्ति ।]

३७३४. अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१ ॥

हे निर्बाध गति वाले अग्निदेव ! ओजस्विता प्रदान करने वाली सम्पदा हमें प्रदान करें । हे देव ! हमें प्रशंसनीय धन और शक्ति प्राप्ति के मार्ग का दिग्दर्शन करायें ॥१ ॥

३७३५. त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्य१ मारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥२ ॥

हे अग्ने ! आप अत्यन्त विलक्षण कर्मों का सम्पादन करने वाले हैं ।हमारे उत्तम यज्ञादि कर्मों से प्रसन्न होकर आप हमें श्रेष्ठ बल प्रदान करें ।आप असुरों को पराभूत करने में समर्थ हैं ।आप सूर्य सदृश चारों ओर व्याप्त हों॥ २॥

३७३६. त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय । ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करने वाले मनुष्यों को आप श्रेष्ठ धनादि प्राप्त कराते हैं । आपकी स्तुति करने वाले हम भी उत्तम धनादि की वृद्धि करते हुए पुष्टि को प्राप्त हों ॥३ ॥

३७३७. ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥४ ॥

हे आह्लाद प्रदायक अग्निदेव ! जो मनुष्य उत्तम वाणियों से आपका स्तवन करते हैं, वे अश्वयुक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं । आपके उत्तम बलों से वे बलवान् होते हैं । उनकी उत्तम कीर्ति स्वर्ग से भी अधिक विस्तृत होती है; ऐसे लोगों को आप निश्चय ही जानते हैं ॥४ ॥



३७३८. **तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया।**
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी अत्यन्त चंचल और दीप्तिमती रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त होती हैं । वे विद्युत् के समान शब्द करती और अन्न की कामना से गमनशील मनुष्यों और वेगवान् रथ के समान सर्वत्र संचरित होती हैं ॥५ ॥

३७३९. **नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये।**
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप शीघ्र ही हमारी रक्षा करें । हमें धनादि ऐश्वर्य से युक्त करके हमारी आपत्तियों का निवारण करें । हमारे पुत्र-बन्धु आदि आपकी स्तुतियाँ करते हुए सम्पूर्ण अभिलाषाओं को प्राप्त करने वाले हों ॥६ ॥

३७४०. **त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर।**
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७ ॥

हे अंगिराओं में श्रेष्ठ अग्निदेव ! पुरातन ऋषियों ने आपकी स्तुतियाँ की हैं, आप उपास्य रहे हैं । वैभवशाली शत्रुओं का ऐश्वर्य आप हमें प्रदान करें । हम यज्ञादि कार्यों में होता रूप में आपकी स्तुति करने वाले हैं । हमारी स्तुतियों को बल दें । युद्ध में भी अपने बलों से हमारी वृद्धि करें ॥७ ॥

[सूक्त - ११]

[ऋषि - सुतम्भर आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - जगती ।]

३७४१. **जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।**
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१ ॥

प्रजा की रक्षा करने वाले, जागृति एवं दक्षता प्रदान करने वाले अग्निदेव याजकों को प्रगति का नवीन पथ प्रशस्त करने के लिए प्रकट हुए हैं । घृत की आहुतियों से अधिक प्रदीप्त होकर विराट् आकाश का स्पर्श करने में समर्थ, तेज से युक्त पवित्रता प्रदान करने वाले आप साधकों के लिए (अनुदान देने हेतु) चमकते हैं ॥१ ॥

३७४२. **यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे।**
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥२ ॥

यज्ञ की पताका वाले रथ पर देवताओं के साथ बैठने वाले पुरोहित अग्निदेव को, याजक तीन स्थानों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक) में भली-भाँति प्रज्वलित करते हैं । सत्कर्म में निरत यज्ञ करने के इच्छुक अग्निदेव अपने स्थान पर (यज्ञकुण्ड में) यज्ञ करने के लिए स्थित होते हैं ॥२ ॥

३७४३. **असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः।**
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप मातृ रूप दो अरणियों से निर्विघ्न रूप से जन्म लेते हैं । आप मेधावी, पवित्र करने वाले और स्तुत्य हैं । आपको यजमान अपनी हितकामना से प्रज्वलित करते हैं । पूर्वकालीन ऋषियों ने आपको घृत से प्रवृद्ध किया था । आहुतियों से प्रवृद्ध आपका धूम्र, केतु रूप में आकाश तक व्याप्त होता है ॥३ ॥

३७४४. **अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे।**
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥४ ॥



सब श्रेष्ठ कार्यों को सिद्ध करने वाले अग्निदेव हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों । सभी मनुष्य घर-घर में अग्निदेव की स्थापना करते हैं । वे हव्यवाहक अग्निदेव देवों के दूत रूप में प्रतिष्ठित होते हैं । स्तोतागण ज्ञान-सम्पन्न यज्ञ कर्म में अग्निदेव की सम्यक् स्तुतियाँ करते हैं ॥४ ॥

३७४५. तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे अतिशय मधुर वचन आपके निमित्त निवेदित हैं । ये स्तोत्र आपके हृदय में सुख प्रदायक हों । जैसे नदियाँ समुद्र को पूर्ण कर उसका बल बढ़ाती हैं, उसी प्रकार हमारी स्तुतियाँ आपको पूर्ण कर आपका बल बढ़ाने वाली हों ॥५ ॥

३७४६. त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! अंगिरावंशी ऋषियों ने गहन स्थलों में स्थित और विभिन्न वनस्पतियों में व्याप्त आपको, अन्वेषण करके प्राप्त किया । आप अत्याधिक बलपूर्वक घर्षण करने के उपरान्त अरणियों से उत्पन्न होते हैं । अतएव मनीषीगण आपको शक्ति के पुत्र कहकर सम्बोधित करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - १२]

[ऋषि - सुतम्भर आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३७४७. प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्ये३ सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥१ ॥

ये अग्निदेव अपनी सामर्थ्य से अतिशय महान्, यज्ञ-योग्य, जल की वृष्टि करने वाले, प्राणों के आधार और अभीष्टवर्षक हैं । यज्ञ के मुख में सिञ्चित घृत धारा के सदृश हमारी स्तुतियाँ अग्निदेव के लिए प्रीतिकारक हों ॥१ ॥

३७४८. ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! हमारी स्तुतियों को आप जानने वाले हैं, हमारी स्तुतियों का अनुमोदन करें । प्रचुर जल-वृष्टि के लिए हमारे अनुकूल हों । हम बल-संयुक्त होकर यज्ञ में कोई विघ्न उत्पन्न नहीं करते और न ही वैदिक कार्य के विधान को भंग करते हैं । आप अत्यन्त दीप्तिमान् हैं और कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । आपका हम स्तवन करते हैं ॥२ ॥

३७४९. कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप जल-वृष्टि करने वाले हैं । आप हमारे किस श्रेष्ठ यज्ञ-कर्म द्वारा हमारे नवीन स्तोत्रों को जानने वाले होंगे ? ऋतुओं का संरक्षण करने वाले अग्निदेव हमें जानें । सर्वदा यजन करने वाले हम, क्या धनों के अधीश्वर अग्निदेव को नहीं जानते ? (अर्थात् निश्चित ही जानते हैं ।) ॥३ ॥

३७५०. के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥४ ॥



हे अग्निदेव ! कौन शत्रुओं को बाँधने वाले हैं ? कौन लोगों का पोषण करते हैं ? कौन अति दीप्तिमान् और दानशील हैं ? कौन असत्य-धारकों की रक्षा करते हैं ? असत्य वचनयुक्तों की रक्षा कौन कर सकता है ? (अर्थात् आपके कृपा पात्र व्यक्ति ही ऐसा कर सकते है) ॥४ ॥

३७५१. सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन्।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! सर्वत्र व्याप्त आपके ये मित्रजन आपकी उपासना न करने से दु:खी हुए थे, तदनन्तर आपकी उपासना करके वे सुखों से युक्त हुए। हम आपके निमित्त सरल आचरण करते हैं; फिर भी जो हमारे साथ कुटिल वचनों से युक्त व्यवहार करते हैं, वे शत्रु स्वयं अपना अनिष्ट करके नष्ट होते हैं ॥५ ॥

३७५२. यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप दीप्तिमान् और इच्छित कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। जो यजमान हृदय से नमस्कारयुक्त स्तोत्रों से आपका स्तवन करते हैं और यज्ञ का सम्यक् पालन करते हैं, उनका घर विस्तीर्ण हो। आपकी भली प्रकार परिचर्या करने वाले वे यजमान कामनाओं को सिद्ध करने वाले पुत्रादि प्राप्त करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - १३]

[**ऋषि** - सुतम्भर आत्रेय। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - गायत्री।]

३७५३. अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि। अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! हम स्तोता अर्चन करते हुए आपका आवाहन करते हैं एवं स्तुति करते हुए हम अपनी रक्षा के निमित्त आपको प्रज्वलित करते हैं ॥१ ॥

३७५४. अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः। देवस्य द्रविणस्यवः ॥२ ॥

द्रव्य लाभ की कामना से हम आकाशव्यापी, तेजस्वी अग्निदेव के सिद्धि प्रदान करने वाले स्तोत्रों से स्तवन करते हैं ॥२ ॥

३७५५. अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा। स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥३ ॥

यज्ञ के साधन रूप और मनुष्यों के सहायक, अग्निदेव हमारी स्तुतियों को सुनें और देवताओं तक हमारे हव्य को पहुँचाएँ ॥३ ॥

३७५६. त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! हर्ष प्रदायक, वरणीय और यज्ञ साधक आप महान् हैं। सब यजमान आपको प्रतिष्ठित कर यज्ञ अनुष्ठान पूर्ण करते हैं ॥४ ॥

३७५७. त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम्। स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप अन्नों को प्रदान करने वाले और उत्तम स्तोत्रों से स्तुति किये जाने योग्य हैं। मेधावी स्तोतागण सम्यक् स्तुतियों से आपको प्रवृद्ध करते हैं। हे अग्निदेव ! आप हमें उत्तम पराक्रमयुक्त तेजस्वी बलों को प्रदान करें ॥५ ॥



३७५८. **अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥६ ॥**

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार चक्र की नाभि के चारों ओर 'आरे' लगे होते हैं; उसी प्रकार आप देवों के सब ओर व्याप्त होते हैं । आप हमें विविध प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त करें ॥६ ॥

[सूक्त - १४]

[**ऋषि** - सुतम्भर आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

३७५९. **अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥१ ॥**

हे मनुष्यो ! इन अविनाशी अग्निदेव को उत्तम स्तोत्रों से प्रवृद्ध करें । भली प्रकार प्रज्वलित होने पर वे हमारे हव्य पदार्थों को देवों तक पहुँचाएँ ॥१ ॥

३७६०. **तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥२ ॥**

साधकगण यज्ञों में दिव्य गुण-सम्पन्न, अमर और मनुष्यों के मध्य में परम पूजनीय उन अग्निदेव की उत्तम स्तुतियाँ करते हैं ॥२ ॥

३७६१. **तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळहवे ॥३ ॥**

अनेकों स्तोतागण यज्ञ में स्रुक् के साथ घृत-धारा बहाते हुए देवों के लिए हवियाँ वहन करने के उद्देश्य से दिव्य गुण-सम्पन्न अग्निदेव का स्तवन करते हैं ॥३ ॥

३७६२. **अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः । अविन्ददगा अपः स्वः ॥४ ॥**

अरणि-मंथन से उत्पन्न अग्निदेव अपने तेज से अन्धकार और राक्षसों को विनष्ट करते हुए प्रकाशित होते हैं । इन अग्निदेव से ही किरण, जल और सूर्यदेव प्रकट होते हैं ॥४ ॥

३७६३. **अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥५ ॥**

हे मनुष्यो ! आप स्तुति किये जाने योग्य और ज्ञानी अग्निदेव का पूजन करें । वे घृत की आहुतियों से प्रदीप्त ज्वालाओं वाले हैं । वे अग्निदेव हमारे आवाहन को सुनें और जानें ॥५ ॥

३७६४. **अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् । स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥६ ॥**

ऋत्विग्गण स्तोत्रों के साथ घृत की आहुतियों द्वारा, स्तुति की कामना वाले ध्यानगम्य देवों के साथ सर्वद्रष्टा अग्निदेव को प्रवृद्ध करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - १५]

[**ऋषि** - धरुण आङ्गिरस । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३७६५. **प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।**
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥१ ॥

ये अग्निदेव हविरूप घृत से प्रसन्न होते हैं । ये अतिशय बलशाली, अत्यन्त सुखकारी, धनों के अधीश्वर, हव्यवाहक, गृहप्रदाता, विधाता, क्रान्तदर्शी, यशस्वी, श्रेष्ठ, जानने योग्य और मेधावी हैं । ऐसे अग्निदेव के लिए हम स्तुतियों की रचना करते हैं ॥१ ॥

३७६६. **ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।**
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ॥२ ॥



जो यजमान ऋत्विजों द्वारा स्वर्ग को धारण करने वाले, यज्ञ में आसीन, नेतृत्वकर्त्ता, देवों को आवाहित कर प्रतिष्ठित करते हैं, वे (यजमान) यज्ञ के धारक, सत्यस्वरूप प्रतिष्ठित अग्निदेव को स्तोत्रों द्वारा प्रसन्न करते हैं ॥२ ॥

३७६७. **अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।**
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥३ ॥

जो यजमान श्रेष्ठ अग्नि के निमित्त दुष्टों द्वारा दुष्प्राप्य हविष्यान्न अर्पित करते हैं, वे यजमान निष्पाप शरीर से युक्त होकर वृद्धि पाते हैं । वे नवजात अग्निदेव क्रुद्ध सिंह की भाँति हमारे सभी संगठित शत्रुओं को विनष्ट करें और वर्तमान शत्रुओं को हमसे दूर स्थित करें ॥३ ॥

३७६८. **मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनञ्जनं धायसे चक्षसे च ।**
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥४ ॥

सर्वत्र प्रख्यात ये अग्निदेव माता के सदृश सभी जीवों का पोषण करते हैं । ये जन-जन को धारण करने और सबके द्रष्टा रूप होने के कारण स्तुत्य हैं । प्रज्वलित होकर ये सभी अन्नों को जीर्ण (पक्व) कर देते हैं और विविध रूपों में ये अपनी शक्ति से परिव्याप्त होते हैं ॥४ ॥

३७६९. **वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।**
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥५ ॥

विस्तीर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाले, धन के धारक हे दिव्य अग्निदेव ! हविष्यान्न आपके सम्पूर्ण बलों की उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे तस्कर अपहृत धन को गुफा में छिपाकर उसकी रक्षा करता है । हे अग्निदेव ! हमें विपुल धन-प्राप्ति का उत्तम मार्ग प्रदर्शित करें; अत्रि मुनि को प्रसन्न करें ॥५ ॥

[सूक्त - १६]

[**ऋषि** - पूरु आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्; ५ पंक्ति ।]

३७७०. **बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये । यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥१ ॥**

याजकगण मित्र के समान, तेजस्वी अग्निदेव को स्तुति के लिए अपने सम्मुख स्थापित करके उसमें प्रचुर मात्रा में हविष्यान्न की आहुति प्रदान करते हैं ॥१ ॥

३७७१. **स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।**
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥२ ॥

जो अग्निदेव देवताओं के लिए अनुकूल मार्गों से हव्यादि पदार्थों को पहुँचाते हैं, जो बाहुबल की दीप्तियों से प्रकाशित होते हैं, वे अग्निदेव यजमानों के लिए देवों का आह्वान करने वाले हैं । वे सूर्यदेव के सदृश सम्पूर्ण वरणीय धनों को प्रदान करने वाले हैं ॥२ ॥

३७७२. **अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।**
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥३ ॥

सब ऋत्विग्गण हव्य पदार्थों और उत्तम स्तोत्रों द्वारा बहुत शब्द युक्त विशिष्ट अग्निदेव में बलों को भली-भाँति स्थापित करते हैं । हम सब इस प्रवृद्ध, तेजस् सम्पन्न और ऐश्वर्यवान् अग्निदेव के साथ मित्र भाव में रहकर स्तुतियाँ करते हैं ॥३ ॥



३७७३. **अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना । तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥४ ॥**

हे अग्निदेव ! हमें अभिलषित, श्रेष्ठ, पराक्रमयुक्त बलों से युक्त करें । जैसे पृथ्वी और आकाश महान् सूर्यदेव के आश्रय पर अवस्थित हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण अन्न और धन आपके आश्रय से हम प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

३७७४. **नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर ।**
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हम यजमान आपकी स्तुति करते हैं । आप शीघ्र ही हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों और हमारे निमित्त वरणीय धन को धारण करें । हम स्तोतागण आपकी स्तुति करते हैं । आप युद्ध में हमें रक्षण-साधनों से समृद्ध करें ॥५ ॥

[सूक्त - १७]

[**ऋषि** - पूरु आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्; ५ पंक्ति ।]

३७७५. **आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये । अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥१ ॥**

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार पूरु ऋषि ने अपने द्वारा सम्पादित उत्तम यज्ञ में अपनी रक्षा की कामना से आपकी स्तुति की, उसी प्रकार मनुष्यगण भी अपने यज्ञ में अपनी रक्षा के लिए उत्तम स्तुतियों के साथ आपका आवाहन करते हैं ॥१ ॥

३७७६. **अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।**
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥२ ॥

हे धर्मानुयायी स्तोताओ ! आप अत्यन्त श्रेष्ठ और यशस्वी कर्म वाले हैं । जो स्तुत्य हैं, जिनका तेज अति विलक्षण है और जो दुःखरहित हैं, ऐसे उन अग्निदेव की आप (स्तोतागण) अपनी श्रेष्ठ बुद्धियुक्त वाणियों से स्तुति करें ॥२ ॥

३७७७. **अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।**
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३ ॥

जो अग्निदेव अपने बल और स्तुतियों से सामर्थ्ययुक्त हैं, जो सूर्यदेव की भाँति दीप्तिमान् हैं; जिनकी विस्तीर्ण ज्वालाओं और तेजों से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशयुक्त होता है, इनके वर्चस् से सूर्यदेव भी प्रकाशयुक्त हुए हैं ॥३ ॥

३७७८. **अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।**
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥४ ॥

श्रेष्ठ बुद्धि-सम्पन्न ऋत्विग्गण उन दर्शनीय अग्निदेव का यजन करके धन-संयुक्त रथ प्राप्त करते हैं । हव्यवाहक वे अग्निदेव सम्पूर्ण प्रजाओं द्वारा सम्यक् रूप से प्रशंसित होते हैं ॥४ ॥

३७७९. **नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।**
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! जिस धन को स्तोतागण आपकी स्तुतियों द्वारा प्राप्त करते हैं, वह वरणीय धन हमें शीघ्र प्राप्त करायें । हे बल संयुक्त अग्निदेव ! हमें अभीष्ट अन्नों को देकर रक्षित करें । हमें कल्याणकारी पशुधन से संयुक्त करें और संग्राम में हमारी वृद्धि का यत्न करें ॥५ ॥

[सूक्त - १८]

[**ऋषि** - मृक्तवाह द्वित आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्; ५ पंक्ति ।]

३७८०. प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१ ॥

ये अग्निदेव बहु प्रिय (सभी के प्रिय) हैं । ये प्रात: सवन में-प्रजाओं में अतिथि के तुल्य पूजनीय और स्तुत्य हैं । ये अविनाशी अग्निदेव यजमानों के मध्य सम्पूर्ण हव्य-पदार्थों की कामना करते हैं ॥१ ॥

३७८१. द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! अत्रि पुत्र द्वित ऋषि आपके निमित्त पवित्र हव्य लेकर पहुँचते हैं । उन्हें आप अपने बल से महत्ता प्रदान करें, क्योंकि वे आपके निमित्त सर्वदा ही सोमरस और स्तुतियाँ प्रस्तुत करते हैं ॥२ ॥

३७८२. तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥३ ॥

हे अश्वदाता अग्निदेव ! आप दीर्घ आयु वाले और तेजस्वी स्वरूप वाले हैं । हम अपने धनी यजमानों के लिए आपका उत्तम स्तुतियों से आवाहन करते हैं; जिससे उन धनिकों का रथ जीवन-संग्राम में निर्बाधित होकर गमन करता रहे ॥३ ॥

३७८३. चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥४ ॥

जो ऋत्विग्गण अनेक प्रकार से यज्ञादि कार्यों का सम्पादन करते रहते हैं, जो उत्तम स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञादि कर्मों की रक्षा कर इन्हें चैतन्य बनाये रखते हैं, वे ऋत्विग्गण अपने यजमानों को स्वर्ग प्राप्त करानें वाले यज्ञ में, विस्तृत कुशाओं पर विपुल हविष्यान्न स्थापित करते हैं ॥४ ॥

३७८४. ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५ ॥

हे अविनाशी अग्निदेव ! आपकी स्तुति करने के बाद जो धनिक यजमान हमें पचास अश्व प्रदान करता है । आप उस यजमान को दीप्तिमान् और बहुत सेवकों से युक्त महान् अन्न प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - १९]

[**ऋषि** - वव्रि आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री; ३-४ अनुष्टुप्; ५ विराड्रूपा ।]

३७८५. अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थेमातुर्वि चष्टे ॥१ ॥

वे अग्निदेव माता रूप पृथ्वी की गोद में प्रकट होकर सबको देखते हैं । वे अग्निदेव वव्रि ऋषि की स्थिति के अनुरूप उनकी हवियाँ ग्रहण करें, अथवा शरीर धारियों के शरीर की स्थिति के अनुरूप उनका पोषण करें ॥१ ॥

३७८६. जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आपके प्रभाव को जानकर जो याज्ञिक सर्वदा आपका आवाहन करते हैं और हवि तथा स्तोत्रों



द्वारा आपके बलों की रक्षा करते हैं, वे शत्रुओं के दुर्गम नगरों को तोड़कर उसमें प्रवेश कर जाते हैं ॥२ ॥

३७८७. आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥३ ॥

महान् स्तोत्रों का उच्चारण करने वाले, अन्नों को चाहने वाले, कण्ठ में स्वर्ण-अलंकारों को धारण करने वाले और जन्म लेने वाले मनुष्य अति मधुर स्तोत्रों द्वारा अग्नि की दीप्तियों को प्रवृद्ध करते हैं ॥३ ॥

३७८८. प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा । घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥४ ॥

यज्ञ के समान हविष्यान्न को अपने जठर में रखने वाले, शत्रुओं द्वारा अहिंसित रहकर शत्रुओं के हिंसक वे अग्निदेव आकाश और पृथ्वी के सहायक रूप में हैं । वे अग्निदेव दूध के समान कामनायोग्य और निर्दोष होकर हमारे प्रीतिकर स्तोत्रों का श्रवण करें ॥४ ॥

३७८९. क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५ ॥

हे प्रदीप्त अग्निदेव ! काष्ठों में क्रीड़ा करते हुए वायु द्वारा प्रेरित, भस्म द्वारा भासित होने वाले आप हमारी ओर उन्मुख हों । काष्ठों के वक्ष में स्थित आपकी ज्वालाएँ अत्यन्त तीक्ष्ण और शत्रुविनाशक हैं । वे ज्वालाएँ हमारे निमित्त तीक्ष्ण (कष्टदायक) न हों ॥५ ॥

[सूक्त - २०]

[**ऋषि** - प्रयस्वान् अत्रिगण । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्; ४ पंक्ति ।]

३७९०. यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१ ॥

हे अन्न प्रदायक अग्निदेव ! हम लोगों द्वारा प्रदत्त हव्यरूप जिस धन को आप स्वीकार करते हैं, हमारी स्तुतियों के साथ उस हव्य रूप धन को, देवों तक पहुँचाएँ ॥१ ॥

३७९१. ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः । अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! जो व्यक्ति पशु आदि धन से संयुक्त होकर भी आपको हवि प्रदान नहीं करता, वह व्यक्ति आपके उग्र बलों का सामना कर बल-विहीन हो जाता है । जो अन्यान्य वैदिक कर्मों से द्वेष या विरोध-भाव रखता है; वह भी आपके द्वारा हिंसित होता है ॥२ ॥

३७९२. होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम् । यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवों के आह्वानकर्त्ता, बलों को प्रदान करने वाले और अन्नों से सम्पन्न हैं । हम आपका वरण करते हैं । यज्ञों में श्रेष्ठ आपकी हम उत्तम स्तुतियाँ करते हैं ॥३ ॥

३७९३. इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥४ ॥

हे बलवान् अग्निदेव ! हम प्रतिदिन आपके आश्रय में संरक्षित हों । हे उत्तम कर्म वाले अग्निदेव ! हम लोग यज्ञादि कार्यों के निमित्त धन-प्राप्ति का पुरुषार्थ करें । (जिससे) हम लोग गवादि पशु धन और उत्तम वीर पुत्रों को पाकर सुखी हों, आप ऐसा ही करें ॥४ ॥



[सूक्त - २१]

[**ऋषि** - सस आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्; ४ पंक्ति ।]

३७९४. मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! हम मनु के सदृश आपको स्थापित करते और मनु के सदृश ही प्रज्वलित करते हैं । हे अंगिरा अग्निदेव ! मनु के सदृश ही देवों के अभिलाषी यजमानों के निमित्त आप देवों का यजन करें ॥१ ॥

३७९५. त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे । स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! स्तोत्रों द्वारा भली प्रकार प्रसन्न होकर आप मनुष्यों के लिए प्रदीप्त होते हैं । भली प्रकार उत्पन्न हे अग्निदेव ! घृतयुक्त हवियों से भरे पात्र आपको निरन्तर प्राप्त होते हैं ॥२ ॥

३७९६. त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत । सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥३ ॥

हे क्रान्तदर्शी अग्निदेव ! सब देवों ने प्रसन्न होकर, आपको देवों के दूत रूप में नियुक्त किया है । अत: यज्ञों में यजमान आपकी परिचर्या करते हुए देवों को बुलाने के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥३ ॥

३७९७. देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥४ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! मनुष्यगण देवों का यजन करने के निमित्त आपकी स्तुति करते हैं । आप हवियों द्वारा प्रवृद्ध होकर दीप्तिमान् होते हैं । आप 'सस' ऋषि के यज्ञ की वेदी में प्रतिष्ठित हों अथवा कृषि-हरीतिमा के रूप में प्रकट हों ॥४ ॥

[सूक्त - २२]

[**ऋषि** - विश्वसामा आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्; ४ पंक्ति ।]

३७९८. प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे । यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि॥१ ॥

हे विश्वसामा ऋषे ! आप पवित्र दीप्ति युक्त उन अग्निदेव का अत्रि ऋषि के समान पूजन करें । ये अग्निदेव सब ऋषियों द्वारा स्तुत्य हैं । ये देवों के आवाहक और अत्यन्त पूजनीय हैं ॥१ ॥

३७९९. न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् । प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२ ॥

हे यजमानो ! सब प्राणियों को जानने वाले, दिव्य यज्ञकर्त्ता अग्निदेव को आप स्थापित करें; जिससे देवों के लिए प्रीतिकर और यज्ञ के साधन रूप हवि-पदार्थ हम अग्निदेव के निमित्त प्रदान करें ॥२ ॥

३८००. चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये । वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप ज्ञान से सम्पन्न और मन से दीप्तिमान् हैं । अपनी रक्षा के निमित्त हम सब मनुष्य आपके सम्मुख उपस्थित होते हैं और आपको श्रेष्ठ हवियों से सन्तुष्ट करते हुए स्तुति करते हैं ॥३ ॥

३८०१. अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४ ॥

हे बलपुत्र अग्निदेव ! आप हमारे इन उत्तम वचनों को जानें । हे सुन्दर हनु (ठोड़ी) और नासिका वाले गृहपालक अग्निदेव ! अत्रि वंशज आपको उत्तम स्तोत्रों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं और उत्तम वाणियों द्वारा सुशोभित करते हैं ॥४ ॥



[सूक्त - २३]

[**ऋषि** - द्युम्न विश्वचर्षणि आत्रेय। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - अनुष्टुप्; ४ पंक्ति।]

३८०२. अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम्।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्या३सा वाजेषु सासहत्॥१॥

हे अग्निदेव ! 'द्युम्न' ऋषि के लिए शत्रुओं का ऐश्वर्य जीतकर लाने वाला एक वीर पुत्र प्रदान करें; जो स्तोत्रों से युक्त होकर युद्धों में सम्पूर्ण शत्रुओं को पराभूत कर सके॥१॥

३८०३. तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥२॥

हे बलशाली अग्निदेव ! आप सत्यस्वरूप, अद्‌भुत और गवादियुक्त अन्नों को देने वाले हैं। आप हमारे निमित्त शत्रुओं की सेना का ऐश्वर्य जीतकर हमें प्रदान करें॥२॥

३८०४. विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप देवों का आह्वान करने वाले 'होता' रूप और सबके हितकारी हैं। ये सम्यक् प्रीति रखने वाले और यज्ञार्थ कुश लाने वाले ऋत्विग्गण आपसे वरणीय धनों की याचना करते हैं॥३॥

३८०५. स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि॥४॥

हे अग्निदेव ! वे विश्वचर्षणि ऋषि शत्रुओं के संघर्षक बल को धारण करें। हे तेजस्वी अग्निदेव ! हमारे घरों में धनों का प्रकाश विस्तीर्ण करें। हे पापशोधक अग्निदेव ! आप उत्तम तेजों से युक्त होकर देदीप्यमान हों॥४॥

[सूक्त - २४]

[**ऋषि** - बंधु - सुबन्धु - श्रुतबन्धु तथा विप्रबन्धु गौपायन अथवा लौपायन। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - द्विपदा विराट्।]

३८०६. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः॥१॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे अति निकट रहने वाले हों, हमारे श्रेष्ठ संरक्षक और मंगलकारी हों॥१॥

३८०७. वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः॥२॥

सभी को आश्रय देने वाले, धनवानों में अग्रगण्य हे अग्निदेव ! आप हमारे पास सहजता से आएँ और तेजस्वितायुक्त होकर हमें धन प्रदान करें॥२॥

३८०८. स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात्॥३॥

हे अग्निदेव !हम लोगों को आप जानें। हमारे आवाहन को सुनें और समस्त पापाचारियों से हमें रक्षित करें॥३॥

३८०९. तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः॥४॥

हे तेजस्वी और प्रकाशवान् अग्निदेव ! मित्र आदि स्नेही परिजनों के लिए सुख की कामना करते हुए निश्चित ही हम आपकी प्रार्थना करते हैं॥४॥



[सूक्त - २५]

[**ऋषि** - वसूयु आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

३८१०. अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥१ ॥

हे यजमानो ! अपनी रक्षा की कामना से आप दिव्य अग्निदेव का स्तवन करें । वे अग्निदेव हमें आश्रय-स्थान प्राप्त करायें । ऋषियों द्वारा पुत्र रूप में पोषित, सत्य-स्वरूप वे अग्निदेव हमें शत्रुओं से पार लगायें ॥१ ॥

३८११. स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥२ ॥

पूर्वकाल के ऋषियों और देवों ने जिन अग्निदेव को प्रज्वलित किया था । जो अग्निदेव देवों के आह्वानकर्त्ता, प्रसन्नतादायी जिह्वा (ज्वाला) वाले, उत्तम दीप्तियों वाले तथा शुभ्र प्रभा वाले हैं । वे अग्निदेव सत्य-संकल्पों से अटल हैं ॥२ ॥

३८१२. स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम स्तोत्रों द्वारा स्तुति किये जाने वाले और वरणीय हैं । आप अपनी श्रेष्ठ धारणायुक्त और उत्कृष्ट बुद्धि से हमारे हव्यादियुक्त स्तोत्र से संतुष्ट होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

३८१३. अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् । अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥४ ॥

जो अग्निदेव, देवों में प्रतिष्ठित हैं और मनुष्यों के आवाहन से उनके बीच भी प्रविष्ट हैं । जो देवों के लिए हव्यादि पदार्थ वहन करने वाले हैं । हे यजमानो ! उन अग्निदेव की आप बुद्धिपूर्वक स्तुतियों द्वारा सेवा करें ॥४ ॥

३८१४. अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् । अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥५ ॥

अग्निदेव हविदाता यजमानों को ऐसा पुत्र दें, जो विविध अन्नों से युक्त, बहुत स्तोत्र करने वाला, उत्तम, अवध्य और उत्तम कर्मों से पूर्वजों का यश बढ़ाने वाला हो ॥५ ॥

३८१५. अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥६ ॥

अग्निदेव हम लोगों को ऐसा पुत्र दें, जो हमारा साथ देने वाला, शत्रुओं को परास्त करने वाला और सत्यपालक हो । साथ ही अग्निदेव हमें शत्रु-विजेता, अपराजेय, द्रुतगामी अश्व भी प्रदान करें ॥६ ॥

३८१६. यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो । महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७ ॥

अग्निदेव की शीघ्र प्रभावकारी स्तोत्रों से स्तुति की जाती है । वे दीप्तिमान् अग्निदेव, हमें अपरिमित धन-धान्य प्रदान करने की कृपा करें ॥७ ॥

३८१७. तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी शिखायें सर्वत्र दीप्ति से युक्त हैं । आप सोमलता कूटने वाले पाषाण की तरह महत्ता से युक्त हैं । आप स्वयं प्रकाश से युक्त हैं । आप मेघ-गर्जन के सदृश शब्द से युक्त हैं ॥८ ॥



३८१८. एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९ ॥

हम धन के अभिलाषी मनुष्य बलवान् अग्निदेव की स्तोत्रों से भली प्रकार स्तुति करते हैं । ये उत्तमकर्मा अग्निदेव हम लोगों को शत्रुओं से वैसे ही पार करें, जैसे नाव नदी से पार कर देती है ॥९ ॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि** - वसूयु आत्रेय । **देवता** - अग्नि; ९ विश्वेदेवा । **छन्द** - गायत्री ।]

३८१९. अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१ ॥

हे पवित्रता प्रदान करने वाले अग्निदेव ! देवताओं को प्रसन्न करने वाली ज्वालारूपी जिह्वा द्वारा, देवताओं को आमंत्रित करें और उनके निमित्त यज्ञ सम्पन्न करें ॥१ ॥

३८२०. तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥२ ॥

घृत से उत्पन्न होने वाले, अद्‌भुत तेजस्वी, सबको देखने वाले हे अग्ने ! आपकी हम प्रार्थना करते हैं । हवि के सेवन के लिए आप देवों को यहाँ बुलायें ॥२ ॥

३८२१. वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥३ ॥

हे ज्ञानी अग्ने ! यज्ञानुरागी, तेजस्वी तथा महान् आपको हम यज्ञ में प्रज्वलित करते हैं ॥३ ॥

३८२२. अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे ॥४ ॥

हे अग्ने ! आप सम्पूर्ण देवों के साथ हविदाता यजमान के लिए यज्ञ में आकर अधिष्ठित हों । हम देवों का आवाहन करने वाले होतारूप में आपका वरण करते हैं ॥४ ॥

३८२३. यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप सोम-सवन करने वाले यजमान के लिए श्रेष्ठ पराक्रम को धारण करें और आप देवों के साथ यज्ञ में बिछाये कुशाओं पर विराजमान हों ॥५ ॥

३८२४. समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ॥६ ॥

हे सहस्रों शत्रु-जेता अग्निदेव ! आप हव्य-पदार्थों से प्रदीप्त होकर, स्तोत्रों से प्रशंसित होकर, देवों के दूत रूप में सभी धर्म-अनुष्ठानों को सम्यक्‌रूप से पुष्ट करते हैं ॥६ ॥

३८२५. न्य१ग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥७ ॥

हे यजमानो ! आप सब अग्निदेव को भली प्रकार स्थापित करें । वे अग्निदेव प्राणिमात्र को जानने वाले, यज्ञ-सम्पादक, अति युवा तथा दीप्तिमान् हैं ॥७ ॥

३८२६. प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ॥८ ॥

हे ऋत्विजो ! आप अग्निदेव के विराजमान होने के लिए कुश बिछायें, जिससे तेजस्वी स्तोताओं द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न आज देवों को भली प्रकार प्राप्त हो ॥८ ॥

३८२७. एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः । देवासः सर्वया विशा ॥९ ॥

मरुद्‌गण, दोनों अश्विनीकुमार, मित्रदेव, वरुणदेव और अन्यान्य सभी देवगण अपनी प्रजाओं के साथ हमारे यज्ञ-स्थान में अधिष्ठित हों ॥९ ॥



[सूक्त - २७]

[**ऋषि** - त्र्यरुण त्रैवृष्ण, त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य तथा अश्वमेध भारत अथवा अत्रिभौम। **देवता** - अग्नि; ६ इन्द्राग्नी। **छन्द** - त्रिष्टुप्, ४-६ अनुष्टुप्।]

इस सूक्त की ऋचा क्र० १, २, ३ में 'त्रिवृष्ण', 'त्र्यरुण' तथा 'त्रसदस्यु' संबोधन आये हैं। पौराणिक सन्दर्भ में राजर्षि त्रिवृष्ण के पुत्र ऋषि त्र्यरुण हैं, इन्हें त्रिधातु का पुत्र भी कहा गया है। त्र्यरुण के पुत्र 'त्रसदस्यु' कहे गये हैं। उक्त पौराणिक संदर्भ में भी इन ऋचाओं के अर्थ किये जाते हैं। भावार्थ के अनुसार यह सभी संबोधन अग्निदेव के विभिन्न रूपों के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे-त्रिवृष्ण - तीन स्थानों (द्यु, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी) पर वर्षणशील ऊर्जा प्रवाह (कॉस्मिक शॉवर) को कहा जाता है। वे ऊर्जा प्रवाह ही तीनों स्थानों के धारणकर्त्ता हैं, इसलिए उन्हें त्रिधातु (तीन को धारण करने वाले) भी कहा गया है। त्रिवृष्ण या त्रिधातु के पुत्र हैं 'त्र्यरुण'-तीन स्थानों पर प्रकट अरुण रंग वाली (सूर्य, विद्युत् तथा गार्हपत्य रूप) अग्नि। इन्हें तीन गुणवाले (उत्पन्नकर्त्ता, पोषक तथा परिवर्तनकर्त्ता) वैश्वानर (विश्व के अग्रणी) भी कहा जाता है। त्र्यरुण (तीनों लोकों में प्रकट अग्नि के रूपों) से पोषक प्रवाहों के साथ-साथ विकारों को नष्ट कर देने वाली क्षमता भी प्रकट होती है। इस क्षमता को 'त्रसदस्यु' (भयकारक साहसी) कहकर संबोधित किया गया है। इस नाते 'त्रसदस्यु' को 'त्र्यरुण' का पुत्र भी कहते हैं।

यहाँ ऋचाओं का अर्थ इस प्रकार करने का प्रयत्न किया गया है कि उक्त दोनों संदर्भों में वे समीचीन सिद्ध हो सकें -

३८२८. **अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः।**
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥१॥

हे अग्ने ! हे वैश्वानर ! आप सज्जनों के स्वामी, ज्ञानवान्, बलशाली और ऐश्वर्यवान् हैं। त्रिवृष्ण के पुत्र त्र्यरुण ने शकट सहित दो वृषभ और दस सहस्र सुवर्णमुद्रा प्रदान करके प्रसिद्धि प्राप्त की थी ॥१॥

३८२९. **यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति।**
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥२॥

जिनने हमें सैकड़ों गौएँ (पोषक-प्रवाह) तथा बीसियों श्रेष्ठ धुरों (प्रयोजनों) से योजित अश्व (शक्ति-प्रवाह) प्रदान किये हैं; हे वैश्वानर अग्ने ! आप श्रेष्ठ मंत्रों से वर्धित होकर ऐसे त्र्यरुण को सुखप्रद आश्रय प्रदान करें ॥२॥

३८३०. **एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः।**
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥३॥

पूर्वकाल में हमारी वाणी से (अनेक स्तुतियों से) युक्त (प्रभावित) होकर 'त्र्यरुण' ने (हमें अनुदान देते हुए) कहा था - 'यह लो'। उसी प्रकार हे अग्ने ! हमारी नवीन स्तुतियों से युक्त (प्रसन्न) होकर, आपसे सुमति चाहने वाले हम (साधकों) से 'त्रसदस्यु' ने भी (हमें अनुदान देते हुए) कहा - 'यह लो' ॥३॥

ऋचा क्र. ४, ५, ६, में अश्वमेध का उल्लेख है। पौराणिक संदर्भ में इस नाम के ऋषि अथवा राजा का उल्लेख भी मिलता है। व्यापक रूप में अश्व का अर्थ है- तीव्र गति से संचरित होने वाली शक्ति धारा अथवा राष्ट्र। मेध का अर्थ होता है- दिव्य चेतना युक्त विचार शक्ति। अश्व को मेध से जोड़ना, मेधा का व्यापक संचार अथवा राष्ट्र की सामर्थ्य को श्रेष्ठ मेधा से जोड़ना अश्वमेध है। ऋचा के प्रस्तुत अर्थ दोनों ही संदर्भों में लिए जा सकते हैं -

३८३१. **यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये। दददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥४॥**

हे अग्नि- परमेश्वर ! जब कोई विद्वान् पुरुष 'अश्वमेध' को लक्ष्य करके कहता है 'यह मेरा है', तब आप उस यत्नशील को ऋत (सत्य अथवा यज्ञ) के लिए ऋचारूप में दिव्य सम्पदा एवं श्रेष्ठ मेधा प्रदान करते हैं ॥४॥

३८३२. **यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः। अश्वमेधस्य दानाः सोमाइव त्र्याशिरः ॥५॥**

जिस अश्वमेध से प्राप्त सौ (सैकड़ों) उक्षण (वृषभ या सेचन प्रवाह) हमें हर्षित करते हैं, उस अश्वमेध (दिव्य



मेधा प्रवाह या राष्ट्र) के दान त्र्याशिर (तीन को मिलाकर एकाकार किये गये) सोम (पोषक तत्त्व) की भाँति हमें आनन्दित करें ॥५ ॥

३८३३. इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम्। क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥६ ॥

हे इन्द्राग्ने ! सैकड़ों प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करने वाले अश्वमेध को आप श्रेष्ठ पौरुष एवं क्षात्रबल के साथ सूर्य के समान विशालता एवं अजरता प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि** - विश्ववारा आत्रेयी । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - १,३ त्रिष्टुप्; २ जगती; ४ अनुष्टुप्; ५-६ गायत्री ।]

३८३४. समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥१ ॥

सम्यक् प्रकार से प्रदीप्त अग्निदेव दीप्तिमान् अन्तरिक्ष में अपने तेजों से प्रकाशित होते हैं और उषा के सम्मुख विस्तीर्ण होकर विशेष प्रभायुक्त होते हैं । उस समय इन्द्रादि देवों का स्तवन करती हुई पुरोडाश आदि और घृतादि से युक्त स्रुक् को लेकर विश्ववारा पूर्व की ओर से झाँकती हुई अग्नि की ओर बढ़ती हैं ॥१ ॥

३८३५. समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप भली-भाँति प्रज्वलित होकर अमृततत्त्व को प्रकाशित करते हैं । हव्यदाता यजमान को आप कल्याण से युक्त करते हैं । आप जिस यजमान के समीप जाते हैं, वह सम्पूर्ण ऐश्वर्य को धारण करता है । हे अग्निदेव ! आपके आतिथ्य के अनुकूल हव्यादि पदार्थों को वह यजमान आपके सम्मुख स्थापित करता है ॥२ ॥

३८३६. अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप हम लोगों के उत्तम सौभाग्य (विपुल ऐश्वर्य) के लिए शत्रुओं को पराभूत करें ।आपका तेज श्रेष्ठतम हो । आप दाम्पत्य सम्बन्ध को सुखी और सुनियमित करें और शत्रुओं के तेज को दबा दें ॥३ ॥

३८३७. समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! जब आप प्रज्वलित होकर दीप्तिमान् होते हैं, तो आपकी शोभा का हम स्तवन करते हैं । आप अभीष्ट प्रदाता और तेजस्वी हैं तथा यज्ञों में भली प्रकार प्रदीप्त होते हैं ॥४ ॥

३८३८. समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप यजमानों द्वारा आहूत होते हैं । आप शोभायुक्त यज्ञ के सम्पादक हैं । आप सम्यक् प्रदीप्त होकर इन्द्रादि देवों का यजन करें; क्योंकि आप ही हव्यादि पदार्थों को वहन करने वाले हैं ॥५ ॥

३८३९. आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥६ ॥

हे ऋत्विजो ! आप लोग हमारे यज्ञ में प्रवृत्त होकर हव्य वहन करने वाले अग्निदेव को आहुतियाँ अर्पित करें । स्तुतियों द्वारा उनकी परिचर्या करें और देवों के दूतरूप में उनका वरण करें ॥६ ॥



[सूक्त - २९]

[**ऋषि** - गौरिवीति शाक्त्य । **देवता** - इन्द्र; ९ के प्रथमपाद के इन्द्र अथवा उशना । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३८४०. त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव !मनु के यज्ञ में जो तीन गुण हैं और अन्तरिक्ष में उत्पन्न तीन दिव्य तेज हैं, उन्हें मरुद्‌गणों ने धारण किया है ।हे इन्द्रदेव ! पवित्र बलों से युक्त मरुद्‌गण आपकी स्तुति करते हैं । आप इन मरुतों के द्रष्टा हैं ॥१ ॥

३८४१. अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥२ ॥

जब मरुद्‌गणों ने अभिषुत सोम के पान से हर्षित इन्द्रदेव की स्तुति की, तब इन्द्रदेव ने वज्र हाथ में धारण करके वृत्र को मारा और उसके द्वारा रोके गये बृहद् जल-प्रवाहों को बहने के लिए मुक्त किया ॥२ ॥

३८४२. उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥३ ॥

हे महान् मरुतो !इन्द्रदेव सहित आप सब भली प्रकार अभिषुत हुए इस सोमरस का पान करें । इस सोम युक्त हवि का पान करते हुएआप यजमानों को गौएँ प्राप्त करायें । इसी सोम को पीकर इन्द्रदेव ने वृत्र को मारा था॥३॥

३८४३. आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥४ ॥

सोमपान करने के बाद इन्द्रदेव ने द्यावा-पृथिवी को निश्चल किया तथा आक्रामक मुद्रा में इन्द्रदेव ने मृगवत् माया करने वाले वृत्र को भयभीत किया । भय से छिपकर वह वृत्र लम्बी श्वास ले रहा था, तब इन्द्रदेव ने उसके प्रपंच को नष्ट कर उसे मार डाला ॥४ ॥

३८४४. अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! सूर्य की आगे बढ़ने वाली घोड़ियों (किरणों) को आपने एतश (अश्व संज्ञक शक्तिशाली प्रवाह) के साथ संयुक्त किया । आपके कार्य से हर्षित होकर विश्वेदेवों ने आपके पान के लिए सोम प्रस्तुत किया ॥५ ॥

[आचार्य सायण ने पौराणिक संदर्भ में 'एतश' को ऋषि विशेष कहा है, किन्तु निगमार्थ के अनुसार उसे अश्व संज्ञक माना है । कहा है " स्वश्व पुत्रेण सूर्येण सह स्पर्धामकरोदिति यावत्" अर्थात् एतश अपने अश्वरूप पुत्र सूर्य के साथ स्पर्धा करते हैं । सूर्य जिनके लिए पुत्रवत् हैं, वह एतश अश्व (संचरित होने वाला) शक्तिशाली अंतरिक्षीय प्रवाह है, जो सूर्य को ऊर्जा प्रदान करता है । वर्तमान विज्ञान इतना तो मानता है कि सूर्य को ऊर्जा देने वाला कोई सूक्ष्म प्रवाह अंतरिक्ष में है । इन्द्र (संगठक देव शक्ति) सूर्य किरणों के साथ 'एतश' को संयुक्त करके उन्हें अधिक प्रभावशाली बनाते हैं । यह प्रक्रिया अभी वर्तमान विज्ञान के लिए खोज का विषय है ।]

३८४५. नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥६ ॥

महान् इन्द्रदेव ने शत्रु के निन्यानवे नगरों को एक ही क्षण में वज्र से ध्वस्त कर दिया और द्युलोक को थामकर स्थित किया, तब मरुद्‌गणों ने संग्राम-स्थल में त्रिष्टुप् छन्द युक्त ऋचाओं से इन्द्रदेव की स्तुतियाँ सम्पन्न कीं ॥६ ॥



३८४६. सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥७ ॥

इन्द्रदेव के मित्ररूप अग्नि ने इन्द्र की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए तीन सौ महिषों (प्राणधाराओं) को पकाया (परिपक्व किया) । वृत्र को मारने के लिए इन्द्रदेव ने मनुष्यों द्वारा निष्पन्न सोम के तीन पात्रों का एक साथ पान किया ॥७ ॥

[शत० ब्रा० ६/७/४/५ में प्राणों को ही महिष कहा है- प्राणा वै महिषः ।]

३८४७. त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपने तीन सौ महिषों (प्राण-प्रवाहों) को स्वीकार किया और सोम के तीन पात्रों का पान किया, तब आपने वृत्र को मारा । देवों ने कुशल कर्मकार की भाँति इन्द्रदेव का आवाहन किया ॥८ ॥

३८४८. उशना यत्सहस्यै३रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आप और 'उशना' (कवि-दूरदर्शी) दोनों संघर्षक और वेगवान् अश्वों के द्वारा घर गए, तब आपने शत्रुओं को मारा तथा कुत्स और देवों के साथ रथ पर आरूढ़ हुए । हे इन्द्रदेव ! आपने 'शुष्ण' असुर का भी हनन किया ॥९ ॥

३८४९. प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने सूर्य के चक्रों में एक चक्र को पृथक् कर दिया और अन्य चक्र 'कुत्स' को प्रतिष्ठा देने के लिए तैयार किया । आप नाकरहित (स्वर्गच्युत) और उच्च शब्द करने वाले दस्युओं को वज्र से मारकर संग्राम में विजयी हुए ॥१० ॥

[पौराणिक सन्दर्भ से कुत्स एक ऋषि हैं । भावार्थक संदर्भ में कठोरतम को काटने- छेदने में सक्षम को 'कुत्स' कहा गया है । जल प्रवाहों के अवरोधकों वृत्र एवं शुष्ण को विखण्डित करने के लिए इन्द्र को 'कुत्स' शक्ति की भी आवश्यकता हुई । सूर्य के सामान्य क्रम (चक्र) के स्थान पर अन्य क्रम (विशिष्ट चक्र) द्वारा कुत्स को प्रतिष्ठा प्रदान करना, सूर्य शक्ति प्रयोग का आलंकारिक उल्लेख किया गया प्रतीत होता है ।]

३८५०. स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौरिवीति के स्तोत्रों ने आपको प्रवर्द्धित किया, तो आपने विदथि पुत्र ऋजिश्वा के लिए 'पिप्रु' (असुर) को मारा । तब ऋजिश्वा ने आपकी मित्रता के पूरक रूप में आपके निमित्त पुरोडाश पकाकर निवेदित किया और उनके द्वारा निवेदित सोम का भी आपने पान किया ॥११ ॥

३८५१. नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥१२ ॥

सोमों का अभिषवण करने वाले 'नवग्वा' और 'दशग्वा' ने इन्द्रदेव के अभिमुख अर्चनीय स्तोत्रों से स्तुतियाँ कीं । तब प्रशंसित इन्द्रदेव ने अपने सहायक मरुद्गणों द्वारा असुरों को मारकर छिपे हुए गौ- समूहों को मुक्त किया ॥१२ ॥

३८५२. कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥१३ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपने जो पराक्रमयुक्त कार्य प्रकट किया है; उन्हें जानने वाले हम आपकी परिचर्या किस प्रकार करें ? हे बलशाली इन्द्रदेव ! आपने जो नये पराक्रम के कार्य सम्पादित किये हैं, आपके उन पराक्रमों का हम अपने यज्ञों में सम्यक् वर्णन करेंगे ॥१३ ॥

३८५३. एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं में अटल (अडिग) संघर्षक हैं । आपने जन्म लेकर अपने बल से सम्पूर्ण भुवनों को बनाया । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने शत्रुओं को मारते हुए जिन पराक्रमों को किया है, आपके उस बल का निवारण करने वाला अन्य कोई नहीं है ॥१४ ॥

३८५४. इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥१५ ॥

हे अतीव बलशाली इन्द्रदेव ! हमने आपके निमित्त जिन नवीन स्तोत्रों की रचना की है, हम लोगों द्वारा निवेदित उन स्तोत्रों को आप ग्रहण करें । हम स्तोता उत्तम कर्म करने वाले, बुद्धिमान् और धनाभिलाषी हैं । हम उत्तम वस्त्रों और उत्तम रथ के निर्माण की तरह इन स्तोत्रों का निर्माण करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - ३०]

[ऋषि - बभ्रु आत्रेय । देवता - इन्द्र और ऋणञ्चय (राजा) । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३८५५. क्व१स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥१ ॥

असंख्यों द्वारा आवाहित किये जाने वाले वज्रधारी इन्द्रदेव, धन से युक्त होकर संरक्षण-साधनों के साथ, अभिषुत सोम की इच्छा से यजमान के घर जाते हैं । वे पराक्रमी इन्द्रदेव कहाँ हैं ? अपने दोनों अश्वों से सुसज्जित, सुखदायक रथ पर जाने वाले इन्द्रदेव को किसने देखा है ? ॥१ ॥

३८५६. अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥२ ॥

हमने इन्द्रदेव के गुह्य और उग्र स्थान को देखा है । दर्शन की अभिलाषा से हम इन्द्रदेव के आश्रय स्थल में गये । हमने अन्यों से भी पूछा, तब उन्होंने बताया कि उत्तम ज्ञान के अभिलाषी मनुष्य ही इन्द्रदेव को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

३८५७. प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जिन कार्यों को किया है, उनका हम सोम-सवन वाले स्थानों में वर्णन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपने हमारे निमित्त जिन कर्मों को प्रयुक्त किया है, उन्हें सभी जान लें । जानने वाले साधक अनजान लोगों को सुनायें । सब सेनाओं से युक्त ये ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव अश्वों पर आरूढ़ होकर उन जानने वालों और सुनने वालों की ओर गमन करें ॥३ ॥



३८५८. स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित्।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्त्रियाणाम्॥४॥

हे इन्द्रदेव ! उत्पन्न होते ही आपने शत्रु-विजयी होने के लिए मन को संकल्प से स्थिर किया। आपने युद्ध में अकेले ही अनेक शत्रुओं को नष्ट किया तथा दृढ़ पर्वत के आवरण को विदीर्ण कर बन्द दुधारू गौओं के समूह को विमुक्त किया॥४॥

३८५९. परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत्।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप सबमें प्रमुख और श्रेष्ठतम हैं। आप जब अत्यन्त दूर तक श्रवणीय नाम को धारण कर प्रकट हुए, तो सभी देवगण भयभीत हुए। इन्द्रदेव ने वृत्र द्वारा प्रभुत्व स्थापित किये हुए जल को जीत लिया॥५॥

३८६०. तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः॥६॥

हे इन्द्रदेव ! उत्तम सेवा करने वाले ये मरुद्गण स्तोत्रों से आपकी ही अर्चना करते हैं और सोम निवेदित करते हैं। इन्द्रदेव ने जल को बन्द करने वाले और देवों को पीड़ित करने वाले मायावी 'अहि' को नष्ट कर दिया॥६॥

३८६१. वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सञ्चकानः।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन्॥७॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप सबके द्वारा प्रशंसित किये जाते हैं। आपने जन्म लेते ही 'दान' असुर को मारा और अन्यान्य हिंसक शत्रुओं को भी मारा। हे इन्द्रदेव ! इस युद्ध में मनु के लिए मार्ग बनाने की इच्छा से युक्त होकर 'नमुचि' नामक दस्यु के सिर को आप काट डालें॥७॥

[दान शब्द 'दा' धातु (दो अवखण्डने) से बना है। इन्द्र संगठन शक्ति (बाइंडिङ्ग फोर्स) के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस शक्ति के प्रकट होते ही पदार्थ का विखण्डन रुक जाता है। इसलिए इन्द्र द्वारा जन्म लेते ही 'दान' असुर के वध का भाव सिद्ध होता है। 'नमुचि' का अर्थ न छोड़ने वाला किया गया है। जल प्रवाहों अथवा प्रकाश किरणों को मुक्त न करने वाले 'नमुचि' को इन्द्र ने मारा, यह तथ्य सर्वमान्य है]

३८६२. युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
अश्मानं चित्स्वर्यं१ वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आपने गर्जनशील मेघ के समान गर्जना करने वाले दास नमुचि के सिर को टुकड़े-टुकड़े कर दिया, फिर हमें मित्र बनाया। उस समय मरुतों की सहायता से आपने आकाश-पृथिवी को चक्र की तरह परिभ्रमणशील बनाया॥८॥

३८६३. स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः॥९॥

दास 'नमुचि' ने जब स्त्रियों को युद्ध का साधन बनाया, तब 'इसकी यह निर्बल सेना मेरा क्या कर लेगी ? यह सोचकर इन्द्रदेव ने उसकी दो प्रमुख स्त्रियों को बन्दी बना लिया और नमुचि से लड़ने के लिए अग्रसर हुए॥९॥

३८६४. समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन्।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन्॥१०॥



'नमुचि' असुर द्वारा बभ्रु ऋषि की अपहृत गौएँ (किरणें) बछड़ों (प्राणियों) से विलग होकर इधर-उधर भटक रही थीं, तब अभिषुत सोम ने इन्द्रदेव को हर्षित किया और इन्द्रदेव ने अपने सहायक मरुतों के द्वारा गौओं को बछड़ों से युक्त किया ॥१० ॥

३८६५. यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्त्रियाणाम् ॥११ ॥

जब बभ्रु (भरण-पोषण करने वाले) के अभिषुत सोम ने इन्द्रदेव को प्रफुल्लित किया, तब बलवान् इन्द्रदेव ने संग्राम में घोर गर्जना की । शत्रु नगरों के विध्वंसक इन्द्रदेव ने सोम पान किया और बभ्रु (ऋषि या अग्नि) को दुधारू गौएँ पुन: प्राप्त करायीं ॥११ ॥

३८६६. भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! ऋणञ्चय राजा के अधीनस्थ रुशमवासियों ने हमें चार सहस्र गौएँ देकर कल्याणकारी काम किया । मनुष्यों के नेतृत्वकर्त्ता श्रेष्ठ ऋणञ्चय (धनसंग्रह करने वालों) द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्यों को भी हमने ग्रहण किया ॥१२ ॥

३८६७. सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रमममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! रुशमवासियों ने सहस्रों गौओं से युक्त और सुन्दर सुशोभित गृह हमें प्रदान किया है । रात्रि के अवसान काल (उष: काल) में हमने अभिषुत हुए तीक्ष्ण सोम को निवेदित कर इन्द्रदेव को हर्षित किया ॥१३ ॥

३८६८. औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४ ॥

रुशमवासियों के राजा ऋणञ्चय के पास जाने पर अन्धकारयुक्त रात्रि जो उपस्थित थी, उसके बीत जाने पर बभ्रु ऋषि ने निरंतर गतिमान् अश्वों की तरह द्रुतगामिनी चार सहस्र गौओं को प्राप्त किया ॥१४ ॥

३८६९. चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! हम मेधावी हैं । हमने रुशमवासियों से चार सहस्र गौ रूप पशुओं को प्राप्त किया और यज्ञ में पशुओं के दुग्ध दुहने के निमित्त अधिक तपाये हुए (अधिक शुद्ध) स्वर्णमय कलश को भी प्राप्त किया ॥१५ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि** - अवस्यु आत्रेय । **देवता** - इन्द्र; ८ वें के तृतीय पाद के इन्द्र अथवा कुत्स; चतुर्थ पाद के इन्द्र अथवा उशना; ९ इन्द्र एवं कुत्स । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३८७०. इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१ ॥

ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव जिस रथ पर अधिष्ठित होते हैं, उसे वे अतिवेग से संचालित करते हैं । ग्वाला जिस प्रकार अपने पशुओं को प्रेरित करता है, उसी प्रकार आप अपनी सेना को प्रेरित करते हैं । युद्ध में अहिंसित रहते हुए आप शत्रुओं के धन की कामना करते हैं ॥१ ॥



३८७१. आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनांश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥२ ॥

हे हरि नामक अश्व वाले इन्द्रदेव ! आप हमारे पास शीघ्र आएँ, हमें निराश न करें । हे धनवान् इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा निवेदित पदार्थों को स्वीकार करें । हे इन्द्रदेव ! आप से श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है । आप भार्याहीनों को पत्नी प्रदान करते हैं ॥२ ॥

३८७२. उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥३ ॥

जब सूर्यदेव के तेज से उषा का तेज फैला, तब इन्द्रदेव ने लोगों को सभी इन्द्रियाँ देकर सक्रिय किया ।पर्वत के आवरण में छिपी दुधारू गौओं को विमुक्त किया और सर्वत्र आच्छादित तमिस्रा को अपने तेजस् से दूर किया ॥३॥

३८७३. अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४ ॥

बहुतों द्वारा आवाहनीय हे इन्द्रदेव ! ऋभुओं ने आपके रथ को अश्वों से योजित करने के योग्य बनाया । त्वष्टादेव ने आपके निमित्त तीक्ष्ण वज्र बनाया । मन्त्रयुक्त स्तोत्रों से यजन (पूजा) करने वालों ने आपको वृत्र-वध के निमित्त स्तोत्रों से प्रवर्द्धित किया ॥४ ॥

३८७४. वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५ ॥

हे अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव ! उन बलवान् मरुतों ने जब स्तोत्रों से आपकी स्तुति की; उस समय दृढ़ पाषाण सोम अभिषवण के लिए संयुक्त हुए थे । आपके द्वारा प्रेरित होने पर अश्वहीन और रथहीन मरुतों ने पलायन करने वाले शत्रुओं को पराभूत किया ॥५ ॥

३८७५. प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥६ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपने अपने बलों से जिन कर्मों को सम्पादित किया है; उन नये और पुराने कर्मों का हम वर्णन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपने मनुष्यों के लिए अद्भुत विविध जल (रसों) को धारण किया ॥६ ॥

३८७६. तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वंयन्नप दस्यूँरसेधः ॥७ ॥

हे दर्शनीय और ज्ञानी इन्द्रदेव ! आपने वृत्र को मारकर जो अपने बल को इस लोक में प्रकाशित किया; वह आपका ही कर्म है । आपने 'शुष्ण' असुर की माया को जानकर उसे पकड़ा और युद्धस्थल में जाकर असुरों का संहार किया ॥७ ॥

३८७७. त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! विपत्तियों से पार करने वाले आपने 'यदु' और 'तुर्वश' के लिए वनस्पतियों को बढ़ाने वाले जल को प्रवाहित किया । आपने 'कुत्स' पर आक्रमण करने वाले 'शुष्ण' असुर से 'कुत्स' की रक्षा की; तब उशना कवि तथा देवों ने आपकी स्तुति की ॥८ ॥



३८७८. इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हे कुत्स ! आप दोनों एक रथ पर आरूढ़ होकर द्रुतगामी अश्वों द्वारा यजमानों के समीप आएँ । आपने 'शुष्ण' असुर को उसके आश्रय स्थान जल से निकालकर मारा था । आपने सम्पन्न यजमानों के हृदयों से (पाप रूप) तमिस्रा को दूर किया था ॥९ ॥

३८७९. वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! इस क्रान्तदर्शी 'अवस्यु' ने वायु के समान वेगवान् और रथ में उत्तम प्रकार से योजित होने वाले अश्वों को प्राप्त किया । हे इन्द्रदेव ! आपके सब मित्ररूप मरुतों ने स्तोत्रों से आपके बल को प्रवर्धित किया ॥१० ॥

३८८०. सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः ॥११ ॥

पूर्व में जब 'एतश' का सूर्य के साथ संग्राम हुआ था, तब इन्द्रदेव ने सूर्यदेव के अति वेगवान् रथ को भी गतिहीन कर दिया था । तत्पश्चात् इन्द्रदेव ने सूर्य के रथ के एक चक्र का हरण कर उसी से शत्रुओं का संहार किया था-ऐसे वे इन्द्रदेव हमारे स्तोत्रों से वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमारे यज्ञ का सेवन करें ॥११ ॥

३८८१. आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥१२ ॥

हे यजमानो ! आप लोगों को देखने के लिए और मित्ररूप आप यजमानों द्वारा अभिषुत सोम की इच्छा करते हुए इन्द्रदेव यहाँ आये हैं । अध्वर्युगण शब्द करते हुए सोम अभिषवण के पाषाण को तेजी से चलाते हैं, अनन्तर अभिषुत सोम वेदी पर लाया जाता है ॥१२ ॥

३८८२. ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३ ॥

हे अविनाशी इन्द्रदेव ! हम मनुष्य आपके आश्रय में सुखी हैं और सुखी ही रहें । हम कभी अनिष्टों से युक्त न हों । आप हम यजमानों की सेवा स्वीकार करें । मनुष्यों के बीच में हम आपके हैं, आप हममें बल स्थापित करें ॥१३ ॥

[सूक्त - ३२]

[ऋषि - गातु आत्रेय । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३८८३. अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव !आपने बादलों को भेदकर जल धाराओं को प्रकट करने के लिए बाधाओं को दूर किया और ऊँची तरंगों वाले समुद्र को अधिक जल प्रदान करके प्रसन्न किया । आपने ही राक्षसों का संहार किया ॥१ ॥

३८८४. त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥२ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप वर्षाकाल में अवरुद्ध मेघों के बन्धनों को तोड़कर मेघों के बल को नष्ट करने वाले



हैं । हे उग्र इन्द्रदेव ! आपने सोये हुए बलवान् वृत्र को मारकर अपने बल को विख्यात किया ॥२ ॥

३८८५. त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥३ ॥

एक मात्र इन्द्रदेव ही अतुलनीय हैं । उन्होंने वृत्र के पृथ्वी पर चलने (प्रयोग किये जाने) वाले अस्त्रों को नष्ट कर दिया । उससे (वृत्र के प्रभाव से) एक अन्य बलशाली (असुर) प्रकट हुआ ॥३ ॥

३८८६. त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥४ ॥

वर्षणशील मेघ पर प्रहार कर गिराने वाले और वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव ने उस 'शुष्ण' असुर को वज्र से मार गिराया, जो वृत्रासुर के क्रोध से उत्पन्न होकर तम से आच्छादित करता था । मेघों को अवरुद्ध कर गिरने (बरसने) नहीं देता था और प्राणियों के अन्नों को स्वयं खाकर हर्षित होता था ॥४ ॥

[वृत्र (वर्षा अवरोधक) के प्रभाव से दैत्य शुष्ण (सूखा रूप दुर्भिक्ष) पैदा होता है । इन्द्रदेव उसे भी नष्ट करते हैं ।]

३८८७. त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिसके मर्म को कोई नहीं जान सकता, उस वृत्र के गुह्य मर्म को आपने अपने कर्मों (पुरुषार्थ) से जान लिया । उत्तम बल सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! सोमपान से प्रमुदित होकर आपने युद्धाभिलाषी वृत्र को तमिस्रा पूर्ण स्थान में भी खोज लिया ॥५ ॥

३८८८. त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६ ॥

वृत्र सुखकारी जल में सोते हुए, गहन तमिस्रा में पुष्ट होता था । अभिषुत सोमपान से प्रमुदित होकर अतीव बलशाली इन्द्रदेव ने वज्र को ऊँचा उठाकर उस वृत्र को मारा ॥६ ॥

३८८९. उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥७ ॥

जब इन्द्रदेव ने उस भीमकाय दानव को मारने के लिए अजेय वज्र को उठाया और जब वृत्र पर उसके द्वारा प्रचण्ड प्रहार किया; तब उसे सब प्राणियों की अपेक्षा निम्नतम स्थिति में पहुँचा दिया ॥७ ॥

३८९०. त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम् ॥८ ॥

उग्रवीर इन्द्रदेव ने, विकराल मेघों को घेरकर सोने वाले, शत्रुओं का संहार करने वाले और सबको आच्छादित करने वाले उस असुर वृत्र को पकड़ लिया । संग्राम में इन्द्रदेव ने उस पादरहित, परिमाणरहित, दुष्ट वचन बोलने वाले वृत्र को क्षत-विक्षत किया ॥८ ॥

३८९१. को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥९ ॥

इन्द्रदेव के शोषक बल का निवारण कौन कर सकता है ? अप्रतिद्वन्द्वी इन्द्रदेव अकेले ही शत्रुओं के धन का हरण कर लेते हैं । दीप्तिमती द्यावा-पृथिवी भी वेगवान् इन्द्रदेव के बल से भयभीत होकर चलती हैं ॥९ ॥

३८९२. **न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।**
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥१० ॥

यह दीप्तिमान्, स्वयं धारणशील आकाश भी इन इन्द्रदेव के लिए नम्र होकर रहता है । जिस प्रकार कामना करने वाली स्त्रियाँ पति को आत्मसमर्पण कर देती हैं, उसी प्रकार पृथ्वी इन्द्रदेव के आगे आत्मसमर्पण कर देती है । जब ये इन्द्रदेव अपने सम्पूर्ण बल को प्रजाओं के मध्य स्थापित करते हैं, तब प्रजाएँ इन बलवान् इन्द्रदेव को नमन करती हैं ॥१० ॥

३८९३. **एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।**
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम मनुष्यों से सुनते हैं कि आप सज्जनों के पालक, पंचजनों के हितैषी और अतिशय यशस्वी हैं । एक मात्र आप ही इस वरीयता के साथ उत्पन्न हुए हैं । दिन-रात स्तुतियों के साथ हवि देने वाली और कामना करने वाली हमारी सन्तानें अतिशय स्तुत्य इन्द्रदेव को प्राप्त करें ॥११ ॥

३८९४. **एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।**
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम सुनते हैं कि आप समय-समय पर प्राणियों के प्रेरक बनते हैं । आप ज्ञानियों को धनादि दान करने वाले हैं । हे इन्द्रदेव ! जो स्तोतागण आपमें अपनी कामनाओं को स्थापित करते हैं, आपके वे ज्ञानी मित्र आपसे क्या पाते हैं ? ॥१२ ॥

[सूक्त - ३३]

[ऋषि - संवरण प्राजापत्य । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३८९५. **महि महे तवसे दीध्ये नृनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।**
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥१ ॥

ये इन्द्रदेव युद्धों में वीर पुरुषों से युक्त होकर अतिशय प्रकृष्ट पराक्रमों वाले जाने जाते हैं और अपनी उत्तम बुद्धि से सब मनुष्यों पर प्रभुत्व रखते और स्तुत्य होते हैं । हम निर्बल स्तोतागण मनुष्यों को बल सम्पन्न बनाने के लिए बलशाली इन्द्रदेव की प्रचुर स्तुतियाँ करते हैं ॥१ ॥

३८९६. **स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।**
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥२ ॥

हे इष्टवर्षक इन्द्रदेव ! आप हमारी स्तुतियों पर ध्यान देकर प्रीतिपूर्वक रथ में योजित अश्वों की लगाम हाथ में धारण करें । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप हमारे शत्रुओं को भी उसी प्रकार वशीभूत करें ॥२ ॥

३८९७. **न ते त इन्द्राभ्य१स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।**
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥३ ॥

हे तेजस्वी इन्द्रदेव ! जो मनुष्य आपके भक्तों से भिन्न हैं और आपके साथ नहीं रहते हैं, जो ब्रह्म कर्मों से रहित हैं, वह आपके भक्त नहीं हो सकते । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमारे यज्ञ में दीप्तिमान् और उत्तम अश्वों से युक्त उस रथ से पधारें, जिसे आप स्वयं नियंत्रित करते हैं ॥३ ॥



३८९८. पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन्।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके अनेक वर्णनीय स्तोत्र हैं । आपने जल अवरोधकों को नष्ट कर उपजाऊ भूमि में जल वर्षण के लिए मार्ग बनाया है और हे बलवान् इन्द्रदेव ! आपने युद्ध में 'नमुचि' दास के नाम को भी विनष्ट कर दिया ॥४ ॥

३८९९. वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम सब ऋत्विज् और यजमान आपके हैं । यज्ञ द्वारा आपके बल को प्रवर्द्धित करते हैं और आहुतियाँ प्रदान करने आपके सम्मुख उपस्थित होते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपकी शक्ति सर्वत्र संचरित है । युद्धों (जीवन समर) में भगरूप सेवक हमें आपके अनुग्रह से प्राप्त हों ॥५ ॥

३९००. पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६ ॥

आपके सम्पूर्ण बल अत्यन्त पूजनीय हैं । आप मनुष्यों में व्याप्त होकर भी अविनाशी (अमरणशील) हैं । आप अपनी सामर्थ्य से जगत् के आश्रयदाता हैं । आप हमें उज्ज्वल वर्ण के धनों को प्रदान करें । आप अत्यन्त धन-सम्पन्न और श्रेष्ठ दाता हैं । आपके दान की हम सम्यक् स्तुति करते हैं ॥६ ॥

३९०१. एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥७ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! हम यजमान आपकी स्तुति करते हैं और आपका यजन करते हैं । अपनी रक्षण-सामर्थ्यों से आप हमारी रक्षा करें । संग्रामों में आप आवरण (कवच) रूप में हमारी रक्षा करें । हमारे द्वारा भली प्रकार अभिषुत मधुर सोमरस को प्राप्त कर आप तृप्त हों ॥७ ॥

३९०२. उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥८ ॥

गिरिक्षित गोत्र में उत्पन्न 'पुरुकुत्स' के विद्वान् पुत्र 'त्रसदस्यु' स्वर्ण सम्पदाओं से युक्त हैं । उनके द्वारा प्रदत्त दस श्वेत वर्ण वाले अश्व हमें वहन करें । हम भी श्रेष्ठ कर्त्तव्यों से युक्त रहें ॥८ ॥

३९०३. उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥९ ॥

'मरुताश्व' के पुत्र 'विदथ' के यज्ञ में हमें उन्होंने रक्तवर्ण वाले द्रुतगामी अश्व प्रदान किये और सहस्रों प्रकार के धन देकर हमारे श्रेष्ठ शरीर को अलंकारों से युक्त किया ॥९ ॥

३९०४. उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥१० ॥

'लक्ष्मण' के पुत्र 'ध्वन्य' ने जो हमें उत्तम दीप्तियुक्त और पराक्रमी अश्व प्रदान किये, वे हमने स्वीकार किये । जैसे गौएँ चरने के स्थान को जाती हैं, वैसे उनके द्वारा प्रदत्त प्रभूत (विपुल) धन 'सम्वरण' ऋषि के स्थान में गया है ॥१० ॥

[सूक्त - ३४]

[**ऋषि** - संवरण प्राजापत्य । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - जगती, ९ त्रिष्टुप् ।]

३९०५. **अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।**
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥१ ॥

जिनके शत्रु उत्पन्न ही नहीं हुए हैं, ऐसे दर्शनीय इन्द्रदेव को क्षीण न होने वाले, सुखप्रद और अपरिमित हविष्यान्न प्राप्त होते हैं । वे इन्द्रदेव बहुतों द्वारा स्तुत एवं स्तोत्रों को धारण करने वाले हैं । हे ऋत्विजो ! उन इन्द्रदेव के निमित्त लोग पुरोडाश पकायें और श्रेष्ठ यज्ञादि कर्म सम्पादित करें ॥१ ॥

३९०६. **आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।**
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥२ ॥

इन्द्रदेव ने सोमरस द्वारा अपने पेट को भर लिया और मधुर हविष्यान्न द्वारा हर्ष से युक्त हुए, तब 'मृग' नामक असुर को मारने की इच्छा करते हुए महावधी इन्द्रदेव ने सहस्रधार वाले वज्र को हाथ में उठाया ॥२ ॥

३९०७. **यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।**
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥३ ॥

जो यजमान इन्द्रदेव के लिए दिन और रात सोम अभिषवण करते हैं, वे दीप्तिमान् होते हैं । जो यज्ञादि कार्य का आडंबर कर सन्तति की कामना करते हैं ; जो अपने शरीर को सजाने वाले, आडम्बर करने वाले और बुरे आचरण करने वालों के मित्र होते हैं; ऐसों को इन्द्रदेव छोड़ देते हैं ॥३ ॥

३९०८. **यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।**
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥४ ॥

जो मनुष्य यजमान के पिता-माता और भ्राता का वध करता है, सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव उस दुष्ट के पास नहीं जाते । उसके द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को भी स्वीकार नहीं करते । वे धनों के अधीश्वर और सर्व-नियामक इन्द्रदेव पाप से दूर रहते हैं ॥४ ॥

३९०९. **न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।**
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥५ ॥

युद्ध में इन्द्रदेव पाँच या दस मित्रों की सहायता की कामना नहीं करते । जो सोम सवन नहीं करता और बन्धुओं का पोषण नहीं करता, इन्द्रदेव उनकी संगति नहीं करते । शत्रुओं को कँपाने वाले इन्द्रदेव अयाज्ञिक को जीतकर उसे मारते हैं और याज्ञिकों को गौओं से युक्त गृह प्रदान करते हैं ॥५ ॥

३९१०. **वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।**
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥६ ॥

संग्राम में शत्रु-सामर्थ्य को क्षीण करने वाले इन्द्रदेव रथचक्र को वेग से चलाने वाले हैं । वे सोमयाग न करने वालों से दूर रहते और सोमयाग करने वालों को प्रवर्द्धित करते हैं । सम्पूर्ण विश्व के नियामक, शत्रुओं के लिए भयंकर वे श्रेष्ठ इन्द्रदेव 'नमुचि' दास को अपने वश में कर लेते हैं ॥६ ॥



३९११. समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥७॥

इन्द्रदेव कृपण बनिये के धन का हरण कर लेते हैं और उस धन को हविदाता यजमान को देकर उसे शोभावान् बनाते हैं। जो मनुष्य इन्द्रदेव के बल को कुपित करता है, इन्द्रदेव उसे विपदाओं के दुर्ग में कैद कर देते हैं ॥७॥

३९१२. सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु।
युजं ह्य१न्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥८॥

उत्तम धन वाले, अत्यन्त बलशाली दो मनुष्य जब शुभ्र गौओं के लिए परस्पर संघर्ष करते हैं; तो ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव उनमें से याज्ञिक की ही सहायता करते हैं। अपने बलों से शत्रुओं को कँपाने वाले इन्द्रदेव इस याज्ञिक को गौओं का समूह दान करते हैं ॥८॥

३९१३. सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥९॥

हे तेजस्वी गुण-सम्पन्न इन्द्रदेव ! हम सहस्रों प्रकार के धन-दाता, 'अग्निवेशि' के पुत्र 'शत्रि' ऋषि की स्तुति करते हैं; जो ध्वज के सदृश शिरोमणि रूप और श्रेष्ठ उपमा योग्य हैं। संयत जल-प्रवाह उन्हें सम्यक् रूप से तृप्त करें। आपका धन बलयुक्त और तेजोयुक्त हो ॥९॥

[सूक्त - ३५]

[**ऋषि** - प्रभूवसु आङ्गिरस। **देवता** - इन्द्र। **छन्द** - अनुष्टुप्; ८ पंक्ति।]

३९१४. यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! आपका जो विशिष्ट प्रभायुक्त कर्म है, उसे हमारे संरक्षण के लिए प्रयुक्त करें। आपका कर्म शत्रुओं को पराभूत करने वाला अति शुद्ध और संग्राम में कठिनता से पार पाये जाने वाला है ॥१॥

३९१५. यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः। यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आपके जो चार वर्णों में रक्षण साधन हैं। तीनों लोकों में जो रक्षण-साधन स्थित हैं अथवा पंचजनों के निमित्त जो रक्षण साधन हैं, उन सभी रक्षण साधनों से हमें अभिपूरित करें ॥२॥

३९१६. आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे। वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप इष्ट-फलों के प्रदाता, वृष्टिकर्त्ता और शत्रुओं के शीघ्र संहारक हैं। आपके सम्पूर्ण रक्षण साधनों की हम कामना करते हैं। आप सर्वत्र विद्यमान एवं सहायक मरुतों के साथ मिलकर हमारे लिए श्रेष्ठ दाता सिद्ध हों ॥३॥

३९१७. वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः। स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप इष्ट-प्रदायक हैं। यजमानों को धन-ऐश्वर्य देने के लिए ही आप उत्पन्न हुए हैं। आपका बल इष्टवर्षक है। आपका मन संघर्ष शक्ति से युक्त है। आपका बल शत्रुओं को वश में करने वाला है। आपका पौरुष शत्रु-संहारक है ॥४॥

३९१८. त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः। सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥५॥



हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप सैकड़ों यज्ञादि कर्मों के सम्पादक हैं । आपका रथ सर्वत्र अबाधगति से जाता है । जो मनुष्य आपके प्रति शत्रुवत् व्यवहार करते हैं, आप उनके विरुद्ध चलते हैं ॥५ ॥

३९१९. त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः । उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥६ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! यज्ञों में कुश के आसन बिछाकर अभिवादन करने वाले मनुष्य, जीवन-संग्राम में आपका आवाहन करते हैं । आप उग्र, वीर और सम्पूर्ण प्रजाओं में चिर पुरातन हैं ॥६ ॥

३९२०. अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु । सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे रथ की रक्षा करें । यह रथ युद्धों में ऐश्वर्य की कामना करने वाला है । यह अनुचरों के साथ अग्रगमन करने वाला और दुस्तर है ॥७ ॥

३९२१. अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निकट आएँ । अपनी प्रकृष्ट बुद्धि से हमारे रथ की रक्षा करें । आप अत्यन्त बलशाली हैं । आपके निमित्त हम ग्रहणीय एवं दीप्तिमान् अन्नों को हवि द्वारा स्थापित करते हैं और दिव्य स्तुतियों का उच्चारण करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ३६]

[**ऋषि** - प्रभूवसु आङ्गिरस । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ३ जगती ।]

३९२२. स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥१ ॥

जो धनों को देना जानते हैं, जो धनों के अनुपम दाता हैं; ऐसे इन्द्रदेव हमारे यज्ञ में आएँ । जैसे धनुर्धारी वीर शिकार की कामना करता है; वैसे ही तृषित इन्द्रदेव सोम की कामना करते हुए दुग्ध मिश्रित सोमरस का पान करें ॥१ ॥

३९२३. आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनुत्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥२ ॥

हे अश्वयुक्त शूर इन्द्रदेव ! जैसे सोम पर्वत के पृष्ठ भाग पर रहता है; वैसे यह सोम आपके सुन्दर होंठ पर चढ़े । बहुतों के द्वारा आवाहन किए जाने वाले दीप्तिमान् हे इन्द्रदेव ! जैसे अश्व तृण खाकर तृप्त होता है, वैसे आप हमारी स्तुतियों को पाकर तृप्त हों, जिससे हम भी प्रमुदित हों ॥२ ॥

३९२४. चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः ॥३ ॥

बहुतों के द्वारा स्तुत, वज्रधारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! जैसे गोल चक्र घूमते हुए काँपता है, उसी प्रकार हमारा मन बुद्धिहीनता के कारण भय से काँपता है । हे सर्वदा वर्धमान इन्द्रदेव ! आप असंख्यों धनों के अधीश्वर और अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हैं । हम स्तोतागण बारम्बार आपका स्तवन करते हैं । आप धन से युक्त रथ पर आरूढ़ होकर हमारे पास आएँ ॥३ ॥

३९२५. एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥४ ॥



जैसे सोम अभिषव करने वाला पाषाण शब्द करता है, वैसे हम स्तोता स्तुति करते हुए शब्द करते हैं । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप विपुल धन-सम्पन्न हैं । आप बाँयें और दायें दोनों हाथों से धन दान करने वाले हैं, हे दो अश्वों वाले इन्द्रदेव ! आप हमारी कामनाओं को विफल न करें ॥४ ॥

३९२६. वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः ॥५ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! बल-संयुक्त आकाश आपके बलों को संवर्द्धित करे । बल-सम्पन्न आप अति बलवान् अश्वों द्वारा वहन किये जाते हैं । उत्तम शिरस्त्राण और वज्र धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप अतीव बल-सम्पन्न कर्म करने वाले हैं । अत्यन्त बलशाली रथ पर अधिष्ठित होने वाले आप संग्राम में भली-भाँति हमारी रक्षा करें ॥५

३९२७. यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥६ ॥

इन्द्रदेव के सहायक हे मरुतो ! अन्नवान् श्रुतरथ राजा ने समान गति वाले एवं रोहित वर्ण वाले दो अश्व और तीन सौ गौएँ हमें प्रदान कीं । ऐसे तरुण श्रुतरथ के लिए उनकी समस्त प्रजाएँ सेवा भाव से युक्त होकर नमन करती हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ३७]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३९२८. सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१ ॥

उत्तम रूप से आवाहित और घृत आहुतियों से दीप्तिमान् अग्नि की ज्वालाएँ सूर्यरश्मियों से सुसंगत होकर चलती हैं । उस समय जो यजमान "इन्द्रदेव के लिए सोम-सवन करें" - ऐसा कहता है, उसके निमित्त उषा अत्यन्त सुखकारी होकर प्रकाशित होती है ॥१ ॥

३९२९. समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥२ ॥

अध्वर्यु अग्नि को प्रज्वलित करके, आसन विस्तीर्ण कर यजन कार्य में प्रवृत्त होता है । वह सोम अभिषवण के पाषाण से युक्त होकर स्तुति करते हुए पाषाण से तीव्र शब्द करता है । वह अध्वर्यु सोमयुक्त हविष्यान्न लेकर नदी तट पर यजन कार्य सम्पन्न करता है ॥२ ॥

३९३०. वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥३ ॥

जिस प्रकार श्रेष्ठ कामनाएँ करती हुई पत्नी यज्ञ में पति की अनुगामिनी होती है, उसी प्रकार इन्द्रदेव भी अपनी अनुगामिनी रानी को यज्ञ में वहन करते हैं । प्रभूत ऐश्वर्ययुक्त इन्द्रदेव के रथ की कीर्ति चतुर्दिक् फैलकर गुंजरित हो । वे इन्द्रदेव सहस्रों विपुल धनों को चारों ओर से हमारे पास लायें ॥३ ॥

३९३१. न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४ ॥

जिसके राज्य में इन्द्रदेव सर्वदा गो-दुग्ध मिश्रित सोमरस का पान करते हैं, वे राजा कभी व्यथित नहीं होते ।



अपने सत्य सेवकों के साथ सर्वत्र विचरते हैं । अपने शत्रुओं को मारते हैं । प्रजाओं को सुरक्षित रखते हैं । वे अपने सौभाग्य और नाम-यश को पुष्ट करते हैं ॥४ ॥

३९३२. **पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति ।**
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥५ ॥

जो इन्द्रदेव के निमित्त सोम अभिषवण कर उन्हें शुद्ध सोम प्रदान करता है । वह अपने बन्धुओं और सन्तानों का सम्यक् पोषण करता हुआ प्राप्त धन की रक्षा करने और अप्राप्त धन को प्राप्त करने में समर्थ होता है ।वह सभी जीवन-संग्रामों के उपस्थित होने पर विजयी होता है ।वह सूर्यदेव और अग्निदेव के लिए प्रिय होता है ॥५ ॥

[सूक्त - ३८]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

३९३३. **उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।**
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥१ ॥

सर्वज्ञ, श्रेष्ठदानी, सौ अश्वमेध (सैकड़ों यज्ञादि सत्कर्म) करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप महिमाशाली धन प्रदान कर हमें भी ऐश्वर्य-सम्पन्न बनायें ॥१ ॥

३९३४. **यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे । पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥२ ॥**

हे अत्यन्त बलशाली इन्द्रदेव ! आप स्वर्ण सदृश कान्ति से युक्त हैं । आप अत्यन्त यशस्वी अन्नों को धारण करने वाले हैं । वह आपका यश दुर्गमता से पार पाने (अनिवारणीय) योग्य है और दीर्घकाल तक अबाधित गति से फैलने वाला है ॥२ ॥

३९३५. **शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः । उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥३॥**

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अत्यन्त पूजनीय, सर्वत्र व्याप्त, प्रभूत बल-सम्पन्न तथा सहायकरूप मरुतों के साथ द्युलोक और पृथ्वीलोक में स्वेच्छा से विचरण करते हुए सब पर शासन करते हैं ॥३ ॥

३९३६. **उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन् ।**
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥४ ॥

वृत्रनामक असुर का विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम आपके बल-सामर्थ्य का वर्णन करते हैं । आप हमें किसी भी बल-सम्पन्न शत्रु का धन लाकर देते हैं; क्योंकि आप हम सबको धनवान् बनाने के अभिलाषी हैं ॥४ ॥

३९३७. **नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो । इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥५ ॥**

सौ यज्ञ (सैकड़ों सत्कर्म) करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम सब आपकी शरण में रहते हुए आपकी रक्षण-सामर्थ्यो द्वारा भली प्रकार सुरक्षित हों । हे शूरवीर इन्द्रदेव ! हम सब भली प्रकार संरक्षित हों ॥५ ॥

[सूक्त - ३९]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप्, ५ पंक्ति ।]

३९३८. **यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः । राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥१ ॥**

अद्भुत वज्र को धारण करने वाले ऐश्वर्यशाली हे इन्द्रदेव ! हमारे पास आपके समर्पण योग्य धन का अभाव है । अतएव मुक्त हस्त से हमें प्रचुर धन प्रदान करें ॥१ ॥



३९३९. यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर। विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप जिस धन-सामर्थ्य को श्रेष्ठ और तेजस्वितायुक्त मानते हैं, वह धन हमें भरपूर मात्रा में प्रदान करें। हम उस धन को (लोक कल्याणार्थ) दान देने की स्थिति में भी रहें ॥२ ॥

३९४०. यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत्।
तेन दृळहा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अपने सब दिशाओं में स्तुत्य, प्रसिद्ध और व्यापक मन (आन्तरिक शक्ति-इच्छा शक्ति) से हमें स्थिर धन और सामर्थ्य प्रदान करें ॥३ ॥

३९४१. मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम्। इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥४॥

इन्द्रदेव धनवानों में अनुपम शिरोमणि रूप हैं। वे मनुष्यों के अधीश्वर हैं। स्तोतागण प्राचीन स्तोत्रों से उनकी प्रशंसा के लिए सर्वदा उद्यत होकर सम्यक् सेवा करते हैं ॥४ ॥

३९४२. अस्मा इत्काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम्।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥५ ॥

इन्द्रदेव के लिए ही यह काव्य, स्तुति वचन और उक्थ वचन कहने योग्य हैं। उन स्तोत्रों को वहन करने वाले इन्द्रदेव के यज्ञ को अत्रि वंशज ऋषि स्तुतियों से संवर्धित करते हुए शुभ्र (उज्ज्वल) बनाते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ४०]

[**ऋषि** - अत्रि भौम। **देवता** - इन्द्र; ५ सूर्य; ६-९ अत्रि। **छन्द** - १-३ उष्णिक्; ५, ९ अनुष्टुप्, ४, ६-८ त्रिष्टुप्।]

३९४३. आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब। वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥१ ॥

हे सोमपालक इन्द्रदेव ! पाषाण से कूटकर निष्पन्न इस सोमरस का आप पान करें। हे इन्द्रदेव ! आप इष्टवर्षक मरुतों के साथ वृत्र का हनन कर वृष्टि करने वाले हैं ॥१ ॥

३९४४. वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः। वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥२ ॥

सोम- अभिषव में प्रयुक्त पाषाण (दोनों) वर्षणशील हैं। सोम से उत्पन्न हर्ष भी वर्षणशील है। यह अभिषुत किया हुआ सोम भी वर्षणशील है। इष्टवर्षक, वृत्रहन्ता हे इन्द्रदेव ! आप वर्षणकारी मरुतों के साथ सोमरस का पान करें ॥२ ॥

३९४५. वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः। वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥३ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप सोम के सिंचनकर्त्ता और वृष्टिकर्त्ता हैं। आपके संरक्षण साधनों से रक्षित होने के लिए हम आपका आवाहन करते हैं। इष्टवर्षक, वृत्रहन्ता हे इन्द्रदेव ! आप वर्षणकारी मरुतों के साथ सोमपान करें ॥३ ॥

३९४६. ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥४ ॥

इन्द्रदेव सोम धारणकर्त्ता, वज्रधारी, अभीष्टवर्षक, शत्रु- संहारक, शत्रुबलों के शोषक, सर्व अधीश्वर, वृत्रहन्ता और सोमपानकर्त्ता हैं। ऐसे इन्द्रदेव अपने अश्वों को रथ से युक्त करके हमारे समीप आयें और माध्यन्दिन सवन में सोमपान कर हर्षित हों ॥४ ॥

३९४७. **यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥५ ॥**

हे सूर्यदेव ! जब आपको स्वर्भानु (राहु) ने तमिस्रा से आच्छादित कर दिया था, तब जैसे मनुष्य अन्धकार में अपने क्षेत्र को न जानकर भ्रमित हो जाता है, वैसे ही सभी लोक तमिस्रा में सम्मोहित हो गये ॥५ ॥

३९४८. **स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥६ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आपने आकाश के नीचे विद्यमान स्वर्भानु की मायाओं को दूर कर दिया । तमिस्रा से आच्छादित सूर्य को अत्रि ऋषि ने अत्यन्त प्रकृष्ट मंत्रों द्वारा प्रकाशित किया ॥६ ॥

३९४९. **मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥७ ॥**

(सूर्य का कथन) हे अग्ने ! आपके विद्यमान रहते यह द्रोहकारक, असुररूप, भयोत्पादक तमिस्रा हमें निगल न जाए । आप सत्यपालक और मित्र स्वरूप हैं । आप और तेजोमय वरुण दोनों मिलकर हमें संरक्षित करें ॥७ ॥

३९५०. **ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥८ ॥**

ऋत्विज् अत्रि ऋषि ने पाषाणों को संयुक्त कर इन्द्रदेव के निमित्त सोम निष्पादित किया । स्तोत्रों से देवों का पूजन-अर्चन किया और हवियों से उन्हें तृप्त किया । द्युलोक में सूर्यदेव को उपदेश देकर उनके चक्षु को स्थापित किया और स्वर्भानु की माया को दूर कर दिया ॥८ ॥

३९५१. **यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥९ ॥**

जिन सूर्यदेव को स्वर्भानु ने तमिस्रा से आच्छादित किया था, अत्रि वंशजों ने उनको मुक्त किया । अन्य कोई ऐसा करने में समर्थ नहीं हुए ॥९ ॥

[सूक्त - ४१]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ; ६ - १७ अतिजगती; २० एकपदा विराट् ।]

३९५२. **को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥१ ॥**

हे मित्रावरुण देव ! कौन यजमान आपके यजन में समर्थ होता है ? हम आपका यजन करने वाले हैं । आप द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक के स्थान से हमारी रक्षा करें । हमें पशु, अन्न, धन आदि से युक्त करें ॥१॥

३९५३. **ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥२ ॥**

हे मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु (वायु), इन्द्र, ऋभुक्षा और मरुत् देवो ! आप सब देवगण हमारे शुभ्र स्तोत्रों को ग्रहण करें । आप सब मंगलकारी रुद्रदेव के साथ मिलकर हमारे नमस्कार और अभिवादन युक्त स्तोत्रों को प्रीतियुक्त मन से स्वीकार करें ॥२ ॥



३९५४. आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! वायु के सदृश वेगवान् अश्वों को रथ के मजबूत स्थान से आप भली प्रकार नियंत्रित करते हैं। आपका हम यज्ञ-सेवनार्थ आवाहन करते हैं। हे ऋत्विजो ! आप दीप्तिमान् , अतिशय पूज्य और प्राण-प्रदाता रुद्रदेव के लिए उत्तम स्तोत्र और हविष्यान्न प्रस्तुत करें ॥३ ॥

३९५५. प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥४ ॥

मेधावी जन जिनका आवाहन करते हैं, जो अत्यन्त दिव्य हैं, शत्रुविनाशक हैं, वे वायु , अग्नि , पूषा और भगदेव सम्मिलित होकर तीनों लोकों में व्याप्त होने वाले सूर्यदेव के साथ मिलकर प्रीतिपूर्वक यज्ञ में आएँ । सभी देवगण यज्ञ में सम्पूर्ण हविरूप भोज्य पदार्थ ग्रहण करने के लिए युद्ध क्षेत्र में जाते हुए वेगवान् अश्व की भाँति अतिशीघ्र आगमन करें ॥४ ॥

३९५६. प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥५ ॥

हे मरुतो ! उत्तम अश्वों से युक्त ऐश्वर्य को हमारे निमित्त स्थापित करें । हम स्तोता धन प्राप्ति के निमित्त और रक्षा के निमित्त उत्तम बुद्धि से आपका स्तवन करते हैं । हे मरुतो ! आपके जो वेगवान् अश्व हैं , उन अश्वों को पाकर 'औशिज' के होतागण सुखी हों ॥५ ॥

३९५७. प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥६ ॥

हे ऋत्विजो ! आप अत्यन्त द्युतिमान् , ज्ञानी , स्तुति योग्य वायुदेव को अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा रथ से संयुक्त करें । सर्वत्र गमन करने वाली , यज्ञ ग्रहण करने वाली रूपवती देवपत्नियाँ हमारी स्तुतियों को धारण कर यज्ञ में आगमन करें ॥६ ॥

३९५८. उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥७ ॥

हे उषा और रात्रि देवियो ! आप दोनों अत्यन्त महान् हैं । हम वन्दनीय स्वर्ग के देवों के साथ आप दोनों को श्रेष्ठ हवि प्रदान करते हैं । आप दोनों विदुषियों की तरह मनुष्य को सम्पूर्ण यज्ञादि कर्मों में प्रेरित करती हैं ॥७ ॥

३९५९. अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीँरोषधी राय एषे ॥८ ॥

धन प्राप्ति के लिए हम मनुष्यों के पोषक वास्तोष्पति और त्वष्टा देव की उत्तम स्तोत्रों द्वारा अर्चना करते हैं । हव्यादि द्वारा उन्हें संतुष्ट करते हैं । धन देने वाली, आनन्द देने वाली धिषणा (वाणी) की स्तुति करते हैं । वनस्पतियों और ओषधियों की हम स्तुति करते हैं ॥८ ॥

३९६०. तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥९ ॥

वीरों के सदृश जगत् के आश्रय-भूत मेघ , स्वेच्छा से सर्वत्र विहार करते हैं । वे विपुल दान के विषय में



हमारे प्रति अनुकूल हों । वे हमारे द्वारा स्तुत्य, ज्ञानी, यजनीय और मनुष्यों के हितैषी हैं । वे हम लोगों की स्तुति से तुष्ट होकर अभीष्ट फल प्रदान कर हमें समृद्ध करें ॥९ ॥

३९६१. वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥१० ॥

वृष्टि द्वारा भूमि को सींचने में समर्थ मेघ के गर्भ में स्थित जल के रक्षक अग्निदेव की हम उत्तम स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं । तीनों लोकों में व्याप्त होने वाले वे अग्निदेव जाते हुए अपनी सुखकर रश्मियों से हमें प्रताड़ित नहीं करते; किन्तु अपनी प्रदीप्त ज्वालाओं रूपी केशों से वनों को जलाकर भस्मीभूत कर देते हैं ॥१० ॥

३९६२. कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११ ॥

हम महान् रुद्र-पुत्र मरुद्गणों की किस प्रकार स्तुति करें ? धन प्राप्त करने की आकांक्षा से ज्ञान सम्पन्न भगदेव का स्तवन कैसे करें ? जलदेव, ओषधियाँ, आकाशदेव, वन और वृक्ष रूप केश वाले पर्वतदेव हमारी सब प्रकार से रक्षा करें ॥११ ॥

३९६३. शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥१२ ॥

अन्तरिक्ष में सर्वत्र संचरित होने वाले, पृथ्वी के चतुर्दिक् परिभ्रमणशील, बलों के अधिपति वायुदेव हमारी स्तुतियों का श्रवण करें । नगरों के सदृश उज्ज्वल, विशाल पर्वत के चतुर्दिक् निस्सृत जल-धारा हमारे वचनों का श्रवण करे ॥१२ ॥

३९६४. विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व१ आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३ ॥

हे महान् मरुतो ! आप हमारे स्तोत्रों को जानें । हे दर्शनीय मरुतो ! हम लोग वरणीय हविष्यान्न को धारण करते हुए उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं । आप क्षुब्ध होकर आने वाले शत्रुओं को आयुधों से मारकर हम लोगों के सम्मुख आयें ॥१३ ॥

३९६५. आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४ ॥

हम द्युलोक और पृथिवी लोक से जल की उत्तम स्तुतियाँ करके यज्ञ को भली प्रकार सम्पादित करते हैं । सूर्य , चन्द्र आदि ग्रह-नक्षत्र भी हमारी स्तुतियों को प्रवृद्ध करें । जल से परिपूर्ण नदियाँ जल से हमें संवर्द्धित करें ॥१४ ॥

३९६६. पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥१५ ॥

माता भूमि के प्रति प्रत्येक पद में हमारी स्तुतियाँ समाहित हैं । वे माता अपने रक्षण-साधनों और सामर्थ्यों से हमारी रक्षा करने वाली हों । वे हमारी स्तुतियों को प्रीतिपूर्वक ग्रहण करें और प्रसन्न होकर अनुकूल हाथों से कल्याणकारी दान करने वाली हों । वे माता अपने दिव्य रसों से हमारा सिंचन करें ॥१५ ॥

३९६७. कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६ ॥



हम लोग उत्तम दानशील मरुतों का स्तवन किस प्रकार करें ? स्तोत्रों के उच्चारण द्वारा हम किस प्रकार मरुतों की सेवा करें ? हविष्यान्न देकर हम किस प्रकार मरुतों की सेवा करें ? हे अहिर्बुध्न्य देव ! हमें हिंसकजन अपने वश में न कर सकें । आप हमारे शत्रुओं को विनष्ट करने वाले हों ॥१६ ॥

३९६८. इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः ।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥१७ ॥

हे देवो ! यजमान, सन्तान और पशुओं की प्राप्ति के लिए हम आपकी उपासना करते हैं । हे देवो ! सभी मनुष्य आपकी उपासना करते हैं । निर्ऋतिदेव कल्याणकारी अन्न देकर हमारे शरीर का पोषण करें और हमारे बुढ़ापे को निगलकर दूर करें ॥१७ ॥

३९६९. तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८ ॥

हे प्रकाशवान् वसुओ ! हम उत्तम स्तुतियों द्वारा आपकी सुमतिरूप गौ से बल प्रदायक अन्न (पोषण) प्राप्त करें । वे दानवती, सुखदायिनी देवी हमें सुख देती हुई हमारे पास आएँ ॥१८ ॥

३९७०. अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१९ ॥

गौ समूह की पोषणकर्त्री इला और उर्वशी, नदियों की गर्जना से संयुक्त होती हमारी स्तुतियों को सुनें । अत्यन्त दीप्तिमती उर्वशी हमारी स्तुतियों से प्रशंसित होकर हमारे यज्ञादि कर्म को सम्यक्रूप से आच्छादित कर हमारी हवियों को ग्रहण करें ॥१९ ॥

३९७१. सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥२० ॥

बल वृद्धि और सम्यक् पोषण के लिए देवगण हमारी स्तुतियों को स्वीकार करें ॥२० ॥

[सूक्त - ४२]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - विश्वेदेवा; ११ रुद्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्; १७ एकपदा विराट् ।]

३९७२. प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥१ ॥

हमारी सुखकर स्तुतियाँ हव्यादि पदार्थों के साथ वरुण, मित्र, भग और अदिति को निश्चय ही प्राप्त हों । पंच प्राणों के आधार भूत, विचित्र वर्ण वाले, अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले, अबाधितगति वाले, प्राण-प्रदाता और सुखदाता वायुदेव हमारी स्तुतियाँ सुनें ॥१ ॥

३९७३. प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥२ ॥

जैसे माता अपने पुत्र को प्रीतिपूर्वक धारण करती है, वैसे ही अदिति हमारे इन स्तोत्रों को हृदय से धारण करें ।देवों के प्रिय और हितकारी हमारे जो स्तोत्र हैं, उन्हें हम मित्र और वरुणदेव के निमित्त अर्पित करते हैं ॥२ ॥

३९७४. उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! आप लोग ज्ञानियों में अति श्रेष्ठ इन सवितादेव को प्रमुदित करें । इन देव को मधुर सोमरस और घृतादि द्वारा अभिषिक्त कर तृप्त करें । सवितादेव हमें शुद्ध, हितकारी, आह्लादक और जीवन को प्रकाशित करने वाला ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

३९७५. समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥४ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हमें श्रेष्ठ मन, गौओं, अश्वों, ज्ञानीजनों तथा श्रेष्ठ, कल्याणकारी भावनाओं से युक्त करें । देवों का हित करने वाला जो ज्ञान है, उससे तथा यज्ञीय (सत्कर्मशील) देवों की सुमति से हमें जोड़ें ॥४ ॥

३९७६. देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य सञ्जितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥५ ॥

दीप्तिमान् भगदेव, सर्वप्रेरक सवितादेव, धन के स्वामी त्वष्टादेव, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव और धनों के विजेता ऋभुक्षा, वाज और पुरन्धि आदि समस्त अमरदेव शीघ्र ही हमारे यज्ञ में उपस्थित होकर हम लोगों की रक्षा करें ॥५ ॥

३९७७. मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं१ नूतनः कश्चनाप ॥६ ॥

हम यजमान मरुतों की सहायता पाने वाले इन्द्रदेव के महान् कार्यों का वर्णन करते हैं । ये इन्द्रदेव युद्ध से कभी पलायन नहीं करते । ये सर्वदा विजयशील और जरारहित हैं । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपके पराक्रम को न तो पूर्वकाल में किसी पुरुष ने पाया है, न आगे कोई प्राप्त करने वाला है; न ही किसी नवीन ने भी आपके पराक्रम को प्राप्त किया है ॥६ ॥

३९७८. उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शम्भविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥७ ॥

हे ऋत्विजो ! आप सर्वश्रेष्ठ, रत्न धारणकर्त्ता और धनों के प्रदाता बृहस्पतिदेव की स्तुति करें । वे हवि प्रदाताओं को प्रभूत धनों से युक्त करने के लिए आगमन करते हैं । वे प्रशंसा करने वालों और स्तुति करने वालों को अतिशय सुख प्रदान करते हैं ॥७ ॥

३९७९. तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥८ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! आपके द्वारा संरक्षित होकर हम मनुष्य हिंसा से मुक्त, ऐश्वर्यवान् और उत्तम वीर पुत्रों से युक्त होते हैं । आपके अनुग्रह से जो मनुष्य उत्तम अश्वों, गौओं और वस्त्रों का दान करने वाला होता है, उनमें सौभाग्यशाली ऐश्वर्य स्थापित होता है ॥८ ॥

३९८०. विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥९ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो धनवान् स्तुति करने वालों को धन दान न करके उसका स्वयं ही उपभोग करता है, ऐसे मनुष्यों के धन को नष्ट हो जाने वाला करें । जो व्रत धारण नहीं करता और मन्त्र से द्वेष करता है, अमर्यादित सन्तान उत्पत्ति द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है, ऐसे लोगों को आप सूर्यदेव से दूर करें ॥९ ॥



३९८१. य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः ॥१० ॥

हे मरुतो ! जो मनुष्य यज्ञ में राक्षसी वृत्तियों से युक्त होता है; जो आपके लिए स्तुति करने वाले की निन्दा करता है; जो अन्न, पशु आदि कामनाओं की पूर्ति के लिए तुच्छता को अपनाता है, ऐसे मनुष्यों को आप चक्रविहीन रथ द्वारा अन्धकूप में निमग्न करें ॥१० ॥

३९८२. तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥११ ॥

हे ऋत्विज् ! आप रुद्रदेव की सम्यक् स्तुतियाँ करें, जो उत्तम बाण और धनुष से युक्त हैं, जो सम्पूर्ण ओषधियों द्वारा रोग निवारक हैं, उन रुद्रदेव का यजन करें। महान् मंगलकारी जीवन के लिए दीप्तिमान् और प्राणप्रदाता रुद्रदेव की नमनपूर्वक सेवा करें ॥११ ॥

३९८३. दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥१२ ॥

उदार मन वाले, निर्माण कार्य में कुशल हाथ वाले ऋभुदेव, विभुओं द्वारा निर्मित मार्ग वाली सरस्वती, वर्षणशील इन्द्रदेव की पत्नी रूप नदियाँ, तेजोयुक्त रात्रि आदि समस्त देवशक्तियाँ साधकों की मनोकामना पूर्ण करने वाली हैं। आप सब हमें धन प्रदान करें ॥१२ ॥

३९८४. प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम्।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥१३ ॥

महान् और उत्तम रक्षक अनेक रूपों में स्तुत्य इन्द्रदेव को हम नवीन रचनाएँ (स्तुतियाँ) बुद्धिपूर्वक समर्पित करते हैं। वर्षणकर्त्ता इन्द्रदेव ने कन्या रूपिणी पृथ्वी के हितार्थ नदियों में जल उत्पन्न कर उन्हें प्रवहमान बनाया ॥१३ ॥

३९८५. प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४ ॥

हे स्तोताओ ! आपकी उत्तम स्तुतियाँ उन गर्जनकारी, शब्दकारी, जल के स्वामी मेघों को निश्चय ही प्राप्त हों। वे मेघ जल से अभिपूरित हैं, वर्षणशील हैं और विद्युत् आलोक से सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवी को आलोकित करते हुए गमन करते हैं ॥१४ ॥

३९८६. एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥१५ ॥

हमारे ये स्तोत्र रुद्रदेव के पुत्र रूप तरुण मरुतों को प्राप्त हों। कल्याणप्रद धन प्राप्ति की इच्छा हमें निरन्तर प्रेरित करती है। बिन्दुदार चिह्नित अश्वों वाले मरुद्गण, जो यज्ञ की ओर गमन करते हैं, उनकी हम स्तुति करते हैं ॥१५ ॥

३९८७. प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतींरोषधी राये अश्याः।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६ ॥

धन-प्राप्ति की अभिलाषा से हमारे द्वारा निवेदित ये स्तोत्र पृथ्वी, अन्तरिक्ष, वनस्पति और ओषधियों को प्राप्त हों। हमारे यज्ञ में सम्पूर्ण दीप्तिमान् देवों का उत्तम आवाहन हो। माता पृथ्वी हमें दुर्मति में स्थापित न करें ॥ ६॥

३९८८. उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१७॥

हे देवो ! हम सब आपके अनुग्रह से निर्विघ्न होकर अतिशय सुख में निमग्न हों । ।१७ ॥

३९८९. समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१८॥

हम अश्विनीकुमारों के मंगलकारी, सुखकारी अनुग्रहों और उन रक्षण साधनों से संयुक्त हों, जो नूतन हों । हे अमर अश्विनीकुमारो ! आप हमें उत्तम ऐश्वर्य, वीर पुत्रों और सम्पूर्ण सौभाग्यों को प्रदान करें ॥१८ ॥

[सूक्त - ४३]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप्; १६ एकपदा विराट् ।]

३९९०. आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥१॥

द्रुत वेग से प्रवाहित होने वाली, (जल से परिपूर्ण) नदियाँ अनुकूल होकर हमारे निकट आगमन करें । ज्ञान सम्पन्न स्तोतागण धन प्राप्ति की कामना से सुखदायिनी सप्त महानदियों का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

३९९१. आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥२॥

हम अन्न प्राप्ति के लिए उत्तम स्तुतियों और नमन-अभिवादन द्वारा अहिंसक आकाश और पृथिवी का आवाहन करते हैं । वे मधुर वचन वाले, कुशल हाथों वाले और यशस्वी पिता रूप आकाश और माता पृथिवी प्रत्येक युद्ध में हमारी रक्षा करें ॥२ ॥

३९९२. अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥३॥

हे अध्वर्युगण ! आप मधुर सोमरस का अभिषव करते हुए सुन्दर और दीप्तिमान् रस सर्वप्रथम वायुदेव को अर्पित करें । हे वायुदेव ! आप होता रूप में हमारे द्वारा प्रदत्त सोमरस का सर्वप्रथम पान करें । हम आपको हर्षित करने के लिए यह मधुर सोमरस निवेदित करते हैं ॥३ ॥

३९९३. दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः ॥४॥

ऋत्विजों की दसों अँगुलियाँ और दोनों भुजाएँ पाषाण से युक्त होकर सोमरस-अभिषव में प्रयुक्त होती हैं । कुशल हाथों वाले ऋत्विज् अत्यन्त हर्षयुक्त मन से पर्वत पर उत्पन्न सोम वल्ली से रसों का दोहन करते हैं, जिससे दीप्तिमान् सोमरस की धारा बहती है ॥४ ॥

३९९४. असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी परिचर्या के लिए, पराक्रमयुक्त कार्य के लिए, बल के लिए और महान् हर्ष के लिए हम सोमाभिषव करते हैं । हे इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा आवाहन किये जाने पर आप उत्तम धुरी वाले रथ से योजित प्रिय अश्वों के साथ हमारे यज्ञ में आएँ ॥५ ॥



३९९५. आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे द्वारा प्रीतिपूर्वक सेवित होकर आप सर्वत्र व्याप्त, यज्ञ को जानने वाली महान् तेजस्विनी 'ग्ना' देवी को देवों द्वारा गन्तव्य मार्ग से हमारे पास लाएँ । वह देवी हमारे द्वारा नम्रतापूर्वक निवेदित हव्य पदार्थों और मधुर सोमरस को ग्रहण करके हर्षित हों ॥६ ॥

['ग्ना' उसे कहते हैं, जो सबके लिए सहज प्राप्य है । अग्नि की सहज प्राप्य शक्ति को 'ग्ना' कहकर आवाहित किया गया प्रतीत होता है ।]

३९९६. अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥७ ॥

रूपवान् शरीर को अलंकारों से पूर्ण करने के समान ज्ञानी पुरुष यज्ञ कुण्ड को यज्ञ-साधन हव्यादि से पूर्ण करते और अग्नि से तपाते हैं । यह यज्ञकुण्ड यज्ञ सम्पन्न करने के लिए अपने भीतर अग्नि को उसी प्रकार धारण करता है, जिस प्रकार पिता अपने प्रिय पुत्र को गोद में धारण करता है ॥७ ॥

३९९७. अच्छा मही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥८ ॥

पूज्य, महान् और सुखप्रद हमारी वाणी अश्विनीकुमारों को इस यज्ञ-स्थल पर बुलाने के लिए दूत रूप में सीधी गमन करे ।हे सुखदायक अश्विनीकुमारो !गमनशील रथ की धुरी की नाभि में लगी हुई कील के समान आप हमारे यज्ञ के मुख्य आधार हैं ।अतएव आप रथ पर आरूढ़ होकर हमारे यज्ञ में निधि के रूप में दर्शनीय हों ॥८ ॥

३९९८. प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥९ ॥

अत्यन्त बलशाली और वेगपूर्वक गमन करने वाले पूषा और वायुदेव के लिए हम नमस्कारपूर्वक स्तुति वचनों को कहते हैं । ये पूषा और वायुदेव आराधना किए जाने पर बुद्धि को प्रेरित करते हैं और आराधक को उत्तम अन्न एवं बल से युक्त करते हैं ॥९ ॥

३९९९. आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ॥१० ॥

प्राणिमात्र को जानने वाले हे अग्निदेव ! हमारे आवाहन किये जाने पर आप विभिन्न नामों वाले और विभिन्न रूपों वाले मरुतों के साथ उपस्थित हों । हे मरुतो ! आप सब स्तोताओं की वाणी युक्त उत्तम स्तुतियों को श्रवण कर उत्तम रक्षण-साधनों सहित हमारे यज्ञस्थल पर पधारें ॥१० ॥

४०००. आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥११ ॥

हम सभी लोगों द्वारा पूजनीय सरस्वती देवी द्युलोक से और पर्वतों से हमारे यज्ञ में पहुँचें । घृत सदृश कान्तिमती वे देवी हमारी हवियों को स्वीकार करती हुई स्वेच्छा से हमारे सुखकारी वचनों का श्रवण करें ॥११ ॥

४००१. आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥१२ ॥

अत्यन्त मेधावी, नील वर्ण प्रभायुक्त शरीर वाले, महान् बृहस्पतिदेव हमारे यज्ञगृह में अधिष्ठित हों। यज्ञगृह के मध्य श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित दीप्तिमान, स्वर्णिम आभा सम्पन्न, प्रकाशक देव बृहस्पति की हम सब सेवा करें ॥१२॥

४००२. आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥१३ ॥

सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले अग्निदेव, सम्पूर्ण रक्षण साधनों के साथ हमारे यज्ञस्थल पर आगमन करें। वे अत्यन्त दीप्तिमान् , आनन्दप्रद और सबके द्वारा आवाहन किये जाने वाले हैं। वे अग्निदेव प्रज्वलित शिखावाले, ओषधि से आच्छादित होने वाले, अबाधगति वाले, त्रिवर्ण (रोहित, शुक्ल और कृष्ण वर्ण) ज्वालाओं वाले हैं। वे अभीष्टवर्षक और अन्नों के धारणकर्त्ता हैं ॥१३ ॥

४००३. मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥१४ ॥

सम्पूर्ण होता और ऋत्विग्गण मातृरूप पृथ्वी के शुभ्र और अत्यन्त उच्च स्थान (उत्तर वेदी) पर गमन करते हैं। जैसे कोमल शिशु को वस्त्रों से आच्छादित करते हैं, वैसे ही नवजात सुखकारक अग्नि पर हविदाता यजमान स्तुतियों के साथ हविष्यान्न का आवरण बनाते हैं ॥१४ ॥

४००४. बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त महान् स्वरूप वाले हैं। आपकी स्तुति करते हुए बुढ़ापें को प्राप्त ये दम्पती (पति-पत्नी) एक साथ आपको विपुल अन्न देते रहे हैं। हे देवों के देव अग्निदेव ! आप हमारे उत्तम आवाहन से बुलाए जाते हैं। मातृरूप पृथ्वी हमें दुर्बुद्धि में स्थापित न करे ॥१५ ॥

४००५. उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१६ ॥

हे देवो ! हम आपके अनुग्रह से निर्बाधित रहकर अतिशय विस्तृत सुखों में निमग्न रहें ॥१६ ॥

४००६. समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१७ ॥

हम लोग अश्विनीकुमारों के मंगलकारी, सुखकारी अनुग्रहों और उनके रक्षण-साधनों से संयुक्त हों, जो अतिशय नूतन हों। हे अविनाशी अश्विनीकुमारो !आप हमें उत्तम ऐश्वर्य, वीर सन्तान और सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करें ॥१७ ॥

[सूक्त - ४४]

[**ऋषि** - अवत्सार काश्यप । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती; १४, १५ त्रिष्टुप् ।]

४००७. तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥१ ॥

पुरातन समय के याजकों, हमारे पुरखों तथा इस काल के सभी प्राणियों की भाँति हम भी इन्द्रदेव की स्तुतियाँ करके अपने मनोरथ पूर्ण करें। वे इन्द्रदेव देवताओं में ज्येष्ठ, सर्वज्ञाता, हम सबके सामने कुशासीन, बली, गतिमान् और विजयशील हैं। उन्हें स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करें ॥१ ॥



४००८. श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते ।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्वर्गलोक में अपनी आभा से प्रकाशित होते हैं । आप अवृष्टिकारक मेघों के मध्य स्थित सुन्दर जलराशि को बहाते हैं और सम्पूर्ण दिशाओं को शोभा से युक्त करते हैं । आप वृष्टि आदि उत्तम कर्मों द्वारा प्रजाओं के रक्षक हैं । आप प्राणियों की हिंसा न करने वाले और प्रपंचों को दूर करने वाले हैं; इसीलिए आपका नाम सत्यलोक में चिरकाल से विद्यमान है ॥२ ॥

४००९. अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥३ ॥

वे अग्निदेव अबाध गति वाले, अरणि मंथन से बलपूर्वक उत्पन्न होने वाले और यज्ञ-सम्पादक हैं । वे स्थिर और अस्थिर सत्यरूप हवियों को प्राप्त करते हैं । प्रारम्भ में वे अग्निदेव कुश पर बैठकर शिशु रूप होते हैं, तदनन्तर समिधाओं के मध्य विराजित होकर अत्यन्त तरुण और अजर अवस्था को प्राप्त होते हैं ॥३ ॥

४०१०. प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥४ ॥

सूर्यदेव की ये किरणें यज्ञ को बढ़ाने वाली, याज्ञिक को धन-ऐश्वर्य देने वाली, यज्ञ में गमन करने की कामना करती हुई अवतीर्ण होती हैं । सूर्यदेव से उत्पन्न ये रश्मियाँ उत्तम वेग से अवतीर्ण होने वाली, सब पर शासन करने वाली और अन्तरिक्ष मार्ग से जल राशि का शोषण करने वाली हैं ॥४ ॥

४०११. सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त सरल पथ से गमन करने वाले हैं । समिधाओं से प्रदीप्त होकर आप आयुवर्द्धक अभिषुत सोमरस का पान करने वाले हैं । विद्वान् साधकों की हृदय गुहा में स्थापित होकर अत्यन्त शोभायमान होते हैं । यज्ञ में चैतन्य होकर आप पत्नीरूप ज्वालाओं को प्रवर्धित करें ॥५ ॥

४०१२. यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥६ ॥

ये देवगण जिस प्रकार दृष्टिगत होते हैं, वैसे ही वर्णित भी होते हैं । इन देवों ने अपने सिद्ध तेजों से जल के आवरण में समायी पृथ्वी को धारण किया । ये देवगण हमें महान् विजय, उत्तम वीर पुत्र, अक्षय धन और विराट् बल प्रदान करें ॥६ ॥

[पृथ्वी के चारों ओर जलवाष्प का आवरण है, उसी के कारण आकाश नीला दिखता है । उस आवरण के बाहर-अन्तरिक्ष में (अन्तरिक्ष यात्रियों को) आकाश नीला नहीं दिखता ।]

४०१३. वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥७ ॥

सर्व उत्पादक, श्रेष्ठ क्रान्तदर्शी सूर्यदेव अपने उत्कंठित मन के कारण सभी स्पर्धावान् ग्रह-नक्षत्रों से अग्रणी रहते हैं । सम्पूर्ण विश्व की चारों ओर से रक्षा करने वाले तेजस्वी सूर्यदेव की हम सम्यक् रूप से स्तुतियाँ करें । वे सूर्यदेव हमें दीप्तिमान् एवं श्रेष्ठ ऐश्वर्य और अतिशय सुख प्रदान करें ॥७ ॥

४०१४. **ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।**
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥८ ॥

श्रेष्ठ यज्ञ सम्पादक हे अग्निदेव ! ऋषियों की स्तुतिपरक वाणी आपके निकट ही गमन करती है । इन स्तुतियों से आपका नाम (यश) संवर्द्धित होता है । वे ऋषिगण जिसकी कामना करते हैं; उसे अपने पराक्रम से प्राप्त कर लेते हैं । जिस कार्य-भार को स्वयं वहन करते हैं, उसे सिद्ध भी कर लेते हैं ॥८ ॥

४०१५. **समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।**
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥९ ॥

इन स्तोत्रों में सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र (प्रकाश के) समुद्र के समान, सूर्यदेव तक पहुँचकर प्रतिष्ठित हों । जिन यज्ञों में इन स्तोत्रों का विस्तार होता है, वे कभी नष्ट नहीं होते हैं । जहाँ पवित्र भावों से बँधी हुई बुद्धि रहती है, वहाँ याज्ञिकों के हृदयगत मनोरथ कभी विफल नहीं होते ॥९ ॥

४०१६. **स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।**
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥१० ॥

वे सवितादेव हम सबके द्वारा अत्यन्त रमणीय स्तोत्रों से स्तुति किये जाने योग्य हैं । सम्पूर्ण विद्वानों द्वारा भी अतिशय पूज्य हैं । हम क्षत्र, मनस, अवद, यजत, सध्रि और अवत्सार नामक ऋषिगण सूर्यदेव की स्तुतियों द्वारा श्रेष्ठ बलों और अन्नों की कामना करते हैं ॥१० ॥

४०१७. **श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।**
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥११ ॥

यह सोमरस जनित हर्ष कक्षा (उदर) को परिपूर्ण करने वाला, श्येन के सदृश सर्वत्र गमनशील और अदिति की तरह व्यापक है । यह सोमरस विश्ववार, यजत और मायी ऋषियों द्वारा अभिषुत होता है । ये सभी इसका पान करके हर्षित और पुष्ट होने की कामना करते हैं ॥११ ॥

४०१८. **सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।**
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥१२ ॥

जो देवगणों की उत्तम स्तुतियाँ करने वाले हैं, वे सदापृण, यजत, बाहुवृक्त, श्रुतवित् और तर्य ऋषिगण सब मिलकर अपने शत्रुओं का संहार करें । वे ऋषिगण दोनों लोकों- इस लोक और परलोक के मनोरथों को प्राप्त करते हुए तेजस्विता से दीप्तिमान् हों; क्योंकि वे विश्वेदेवों की विशेष स्तुतियाँ करते हैं ॥१२ ॥

४०१९. **सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।**
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३ ॥

यजमान अवत्सार के यज्ञ में सुतम्भर ऋषि, सत्यधर्म (यज्ञादि) कार्यों के पालक हैं । वे सम्पूर्ण यज्ञादि कार्यों में स्तुतियों के स्रोत स्वरूप हैं । इस यज्ञ में गौएँ रसरूप पेय पदार्थों को प्रदान करती हैं । सभी स्तोतागण इस यज्ञ के सारभूत फलों को प्राप्त करते हैं, अन्य सोने वाले व्यक्ति नहीं ॥१३ ॥

४०२०. **यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।**
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४ ॥

जो जाग्रत् हैं, उन्हीं से ऋचाएँ अपेक्षा रखती हैं । जाग्रतों को ही सामगान का लाभ मिलता है । जाग्रतों से



ही सोम कहता है कि "मैं तुम्हारे मित्र भाव में ही रहता हूँ" ॥१४॥

४०२१. **अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।**
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१५॥

अग्निदेव जाग्रत् रहते हैं, इसीलिए वह ऋचाओं द्वारा चाहे जाते हैं। अग्निदेव चैतन्यवान् हैं, अतः साम उसका गान करते हैं। चैतन्य (प्रज्वलित) अग्नि से ही सोम कहता है- "मैं सदा आपके मित्रभाव में आश्रय स्थान प्राप्त करूँ" ॥१५॥

[सूक्त - ४५]

[**ऋषि** - सदापृण आत्रेय । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप्; ९ पुरस्ताज्ज्योति ।]

४०२२. **विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।**
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥१॥

अंगिराओं की स्तुतियों से इन्द्रदेव ने स्वर्ग से वज्र द्वारा मेघों पर संघात किया, जिससे आने वाली उषा की रश्मियों का द्वार खुला और किरणें सर्वत्र व्याप्त हो गयीं। घनीभूत तमिस्रा विनष्ट हुई और सूर्यदेव प्रकट हुए। उन सूर्यदेव ने सब मनुष्यों के द्वारों को खोला ॥१॥

४०२३. **वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता जानती गात् ।**
धन्वर्णसो नद्य१: खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥२॥

जैसे मनुष्य आकर्षक वस्त्रालंकारों से सुन्दर रूप पाता है, वैसे ही सूर्यदेव विभिन्न वर्ण वाली दीप्तियों से शोभायमान होते हैं। प्रकाशक रश्मियों की मातृरूप उषा, सूर्योदय का दर्शन करते हुए विशाल आकाश से अवतीर्ण होती हैं। तट से तीव्र संघात करती हुई प्रवहमान नदियाँ अतिवेग से प्रवाहित होती हैं। घर में स्थित सुदृढ़ स्तम्भ की भाँति द्युलोक तीव्र प्रकाश से सुदृढ़ हुआ है ॥२॥

४०२४. **अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।**
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥३॥

इन चिर-पुरातन स्तोत्रों द्वारा भूमि को उत्पादनशील बनाने के लिए मेघ का गर्भ रूप वृष्टि जल बरसता है। आकाश वृष्टि कार्य में साधन रूप में प्रयुक्त होता है। निरन्तर कर्मशील मनुष्य अधिक परिश्रम में उद्यत होते हैं ॥३॥

४०२५. **सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्व१ग्नी अवसे हुवध्यै ।**
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! हम अपनी रक्षा के लिए देवों द्वारा सेवनीय सूक्त रूप वचनों से आप दोनों का आवाहन करते हैं। उत्तम प्रकार से आपका यज्ञ सम्पादन करने वाले मरुतों के सदृश आपकी परिचर्या करने वाले ज्ञानीजन आपकी पूजा करते हैं ॥४॥

४०२६. **एतो न्व१द्य सुध्यो३ भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।**
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥५॥

(हे देवो !) आप हमारे इस यज्ञ में शीघ्र आगमन करें। हम उत्तम कर्मों को करने वाले हों। आप हमारे शत्रुओं का विनाश करें। प्रच्छन्न शत्रुओं को अतिशय दूर ही रखें और यज्ञ के निमित्त यजमानों की ओर गमन करें ॥५॥



४०२७. **एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।**
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥६ ॥

हे मित्रो ! आओ हम स्तुतियाँ करें, जिसके द्वारा मातृरूप उषा ने विस्तृत किरण समूह को उत्पन्न किया; जिसके द्वारा मनु ने विशिशिप्र (वृत्र) को जीता था, और वंकु वणिक् ने विस्तृत जल-राशियों को प्राप्त किया था ॥६ ॥

४०२८. **अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।**
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥७ ॥

जिस पाषाण से सोमरस का अभिषवण करके नवग्वों ने दस मास तक पूजा-अर्चना की, वही पत्थर इस यज्ञ में हाथों से संयुक्त होकर निनादित होता है । यज्ञ के अभिमुख होकर सरमा ने स्तुतियों को प्राप्त किया; तदनन्तर अङ्गिरा ने सभी कर्म सफल कर दिखाये ॥७ ॥

४०२९. **विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिरङ्गिरसो नवन्त ।**
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः ॥८ ॥

इन पूजनीय उषा के प्रकट होने पर सभी अंगिराओं ने अपनी गौओं से दुग्ध प्राप्त किया । गौओं के दूध को उन्होंने यज्ञस्थल के उच्च-स्थान में स्थापित किया । सरमा ने यज्ञ मार्ग से गमन करते हुए उनकी स्तुतियों को जाना॥ ८ ॥

४०३०. **आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।**
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ॥९ ॥

सात अश्वों से संयुक्त होकर सूर्यदेव हमारे सम्मुख आएँ, क्योंकि उन्हें दीर्घ प्रवास के लिए अत्यन्त दूर स्थित गंतव्य की ओर जाना है । वे श्येन पक्षी की तरह द्रुतगामी होकर हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न प्राप्त करने के लिए अवतीर्ण हों । वे अत्यन्त युवा और क्रान्तदर्शी सूर्य किरणों के मध्य अवस्थित होकर देदीप्यमान हों ॥९ ॥

४०३१. **आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।**
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१० ॥

जब सूर्यदेव ने कान्तिमान् शरीर वाले अश्वों को रथ से युक्त किया, तब सूर्यदेव अन्तरिक्षव्यापी जल पर आरूढ़ हुए । तदनन्तर जैसे जल में डूबी नाव को बाहर निकालते हैं, वैसे ही विद्वानों ने स्तोत्रों से सूर्यदेव को बाहर निकाला । उनकी स्तुतियों से जल राशि भी नीचे अवतीर्ण हुई ॥१० ॥

४०३२. **धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः ।**
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥११ ॥

हे देवो ! जिन स्तुतियों से नवग्वों ने दस मास तक साध्य यज्ञ-अनुष्ठान किया था । जल प्राप्त कराने वाली, उत्तम ऐश्वर्य देने वाली उन स्तुतियों को हम धारण करते हैं । इन स्तुतियों से हम देवों द्वारा रक्षित हों और पाप-कर्मों से भी संरक्षित हों ॥११ ॥

[सूक्त - ४६]

[**ऋषि** - प्रतिक्षत्र आत्रेय । **देवता** - विश्वेदेवा ७-८ देवपत्नियाँ । **छन्द** - जगती; २,८ त्रिष्टुप् ।]

४०३३. **हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।**
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥१ ॥



अश्व जिस प्रकार रथ के जुए में जुड़ जाता है; उसी प्रकार विद्वान् (प्रतिक्षत्र) धुरी (यज्ञ) के साथ स्वयं योजित हो जाते हैं। हम भी उस विघ्नहर्त्ता और रक्षणकर्त्ता यज्ञ के भार को वहन करते हैं। इस भार-वहन से विमुक्त होने की इच्छा हम नहीं करते, बल्कि बारम्बार भार को धारण करने की कामना करते हैं। हे मार्ग जानने वाले देव ! आप हमारे मार्ग में अग्रगामी होकर सरल मार्ग द्वारा हमें ले चलें ॥१ ॥

[प्रतिक्षत्र सम्बोधन शौर्य- सम्पन्नों के लिए प्रयुक्त होता है। शौर्य सम्पन्न विद्वान् ही दायित्वों का भार उठाते हैं।]

४०३४. अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२ ॥

हे अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र , मरुत् और विष्णु आदि देवताओ ! आप हमें सामर्थ्य प्रदान करें। दोनों अश्विनीकुमार, रुद्र, देवपत्नियाँ, पूषा, भग, सरस्वती हमारी हवियाँ ग्रहण करें ॥२ ॥

४०३५. इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥३ ॥

इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, पृथ्वी, द्युलोक, आदित्य, मरुत्, पर्वत समूह, जल, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, भगदेव और सविता आदि देवों का हम आवाहन करते हैं; वे इस यज्ञशाला में शीघ्र पधारें एवं हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

४०३६. उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत्।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥४ ॥

विष्णुदेव और अहिंसक वायुदेव तथा धन प्रदाता सोमदेव हमें सर्व सुख प्रदान करें। ऋभुगण, दोनों अश्विनीकुमार, त्वष्टा और विभुगण; ये सभी देव हमें ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए अनुकूल प्रेरणा प्रदान करें ॥४ ॥

४०३७. उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं१ वरुणो मित्रो अर्यमा ॥५ ॥

वे स्वर्ग में रहने वाले एवं पूजनीय मरुद्गण हमारे यज्ञ में कुशाओं पर बैठने के लिए आगमन करें। बृहस्पति, पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमादेव हमें गृह सम्बन्धी सभी सुख प्रदान करें ॥५ ॥

४०३८. उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य१स्त्रामणे भुवन्।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥६ ॥

वे उत्तम स्तुति के योग्य और दान देने वाली नदियाँ, हमारे परित्राण के लिए उद्यत हों। वे धनों को बाँटने वाले भगदेव अपने बल और संरक्षण साधनों के साथ हमारे निकट आगमन करें। व्यापक प्रभायुक्त अदिति देवी हमारे आवाहन को सुनें ॥६ ॥

४०३९. देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥७ ॥

इन्द्रादि देवों की पत्नियाँ (स्तुतियों से) उत्साहित होकर हमारी रक्षा करें। उनके संरक्षण में हम पुत्रों और अन्न आदि के लाभ प्राप्त करें। ये देवियाँ चाहे पृथ्वी पर हों या अन्तरिक्ष और द्युलोक में हों; हमारे उत्तम आवाहन को सुनकर हमें सभी सुख प्रदान करने हेतु पधारें ॥७ ॥

४०४०. उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥८ ॥

सभी देवियाँ, देवपत्नियाँ भली प्रकार हमारी रक्षा करें । इन्द्राणी, अग्नायी, दीप्तिमती, अश्विनी, रोदसी, वरुणानी हमें परिरक्षित करें । इनके मध्य जो ऋतुओं की जन्मदात्री देवी हैं, वे भी हमारी स्तुतियाँ श्रवण करें ॥८ ॥

[सूक्त - ४७]

[ऋषि - प्रतिरथ आत्रेय । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४०४१. **प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।**
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥१ ॥

ये स्तुत्य, अत्यन्त विस्तृत मातृरूप उषादेवी अपनी पुत्री पृथ्वी को चैतन्य करती हैं । प्राणियों को अपने कर्मों में योजित करती हुई ये आकाश से प्रकाशित होती हैं । सबकी परिचर्या करने वाली ये तरुणी उषा बुद्धिपूर्वक स्तोत्रों से आवाहित होने पर यज्ञ-गृह में पितृ रूप देवों के साथ आगमन करती हैं ॥१ ॥

४०४२. **अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।**
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥२ ॥

सतत गमनशील, प्रकाशित होकर कर्मों को सम्पादित करती हुई अमृत रूप सूर्यदेव की नाभि में स्थित रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त होकर अनन्त पथों से द्यावा और पृथिवी का परिभ्रमण करती हैं ॥२ ॥

४०४३. **उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।**
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥३ ॥

समुद्र में जल को सिंचित करने वाले दीप्तिमान्, सुन्दर रश्मियों से युक्त ये सूर्यदेव अपने पितृ रूप आकाश के पूर्व स्थान में समाविष्ट हुए हैं । विविध दीप्तियुक्त उल्का के सदृश ये सूर्यदेव आकाश के मध्य में स्थापित होकर परिभ्रमण करते हैं और अन्तरिक्ष जगत् की सीमाओं की रक्षा करते हैं ॥३ ॥

४०४४. **चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।**
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥४ ॥

अपने कल्याण की कामना करते हुए चार ऋत्विग्गण हव्यादि देकर इन सूर्यदेव को धारण करते हैं । दसों दिशाएँ अपने गर्भ से उत्पन्न सूर्यदेव को गति के लिए प्रेरित करती हैं । तीनों लोकों में गमनशील सूर्यदेव की श्रेष्ठ किरणें द्रुतवेग से आकाश के सीमा प्रदेशों में भी परिभ्रमण करती हैं ॥४ ॥

४०४५. **इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।**
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या३ सबन्धू ॥५ ॥

हे मनुष्यो ! जिनके कारण ये नदियाँ प्रवाहशील हैं और जल स्थिर रहते हैं; उन सूर्यदेव का शरीर स्तुत्य है । माता पृथ्वी के स्वयं उत्पादक उन सूर्यदेव को विश्व-नियामक और बंधुत्व युक्त दो लोक धारण करते हैं ॥५ ॥

[सूर्य से पृथ्वी की उत्पत्ति विज्ञान भी मानता है । विश्व नियामक एवं बन्धुत्व सम्पन्न लोक-द्युलोक एवं अन्तरिक्ष है]

४०४६. **वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।**
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥६ ॥

जैसे माताएँ अपने पुत्रों के वस्त्र बुनती हैं, वैसे यजमान इन सूर्यदेव के लिए स्तुतियाँ और यज्ञादि कर्म की रचना करते हैं । इन वर्षणशील सूर्यदेव के प्रकट होने पर इनकी पत्नीरूप रश्मियाँ हर्षित होती हुई आकाश-पथ से होकर हमारे पास आती हैं ॥६ ॥



४०४७. **तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम्।**
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥७ ॥

हे मित्रावरुण देवो ! यह स्तोत्र आपके निमित्त है । हे अग्निदेव ! यह स्तोत्र हमारे सुख प्राप्ति के लिए आपके निमित्त है । हमें उत्तम स्थान एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति हो । सभी को श्रेष्ठ आश्रय प्रदान करने वाले सूर्यदेव को हम नमस्कार करते हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ४८]

[**ऋषि** - प्रतिभानु आत्रेय । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती]

४०४८. **कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम्।**
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥१ ॥

हम अपने बल के निमित्त, अपने यश के लिए और प्रीतिकर महान् तेज के लिए किस तरह की अर्चना करें ? यह माया रूप आच्छादन विस्तृत करने वाली शक्ति अपरिमित अन्तरिक्ष में मेघों के ऊपर जल राशि को फैलाती है ॥१ ॥

४०४९. **ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः।**
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥२ ॥

उन उषाओं ने वीर पुरुषों के कर्मों में उत्साह को विस्तारित किया । एक समान प्रकाशक आवरण से सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त किया । देवत्व की अभिलाषा वाले मनुष्य अवतीर्ण होने वाली एवं निवर्तमान उषाओं को त्यागकर वर्तमान उषा के सामने ही अपने कर्मों (यज्ञादि) का विस्तार करते हैं ॥२ ॥

४०५०. **आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि।**
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥३ ॥

सम्पूर्ण दिन और रात्रि में लगातार पत्थरों से अभिषुत सोम द्वारा हर्षित होकर इन्द्रदेव ने उस मायावी वृत्र के ऊपर अपने उत्कृष्ट वज्र का संघात किया । इन्द्र रूप सूर्यदेव की सैकड़ों किरणें दिनों के चक्र में प्रवृत्त और निवृत्त होती हुई अपने गृह-आकाश में परिभ्रमण करती रहती हैं ॥३ ॥

४०५१. **तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः।**
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥४ ॥

परशु के समान तीक्ष्ण उन अग्निदेव के स्वभाव को हम जानते हैं । रूपवान् , आदित्यरूप अग्निदेव के किरण समूह की स्तुति हम ऐश्वर्य के उपयोग के लिए करते हैं । ये अग्निदेव सहायक होकर यज्ञ-स्थान में यजमान को अन्नों से अभिपूरित गृह और उत्तम रत्न प्रदान करते हैं ॥४ ॥

४०५२. **स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम्।**
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥५ ॥

रमणीय तेजरूपी आच्छादन धारण कर अग्निदेव अन्धकार रूप शत्रु को मारते हैं । वे चारों ओर ज्वालाओं को विस्तृत कर जिह्वा रूप ज्वाला से घृतादि का पान करते हैं । जिसके माध्यम से भग और सवितादेव वरणीय धनों को प्रदान करते हैं । उन अग्निदेव के धनैश्वर्य-दान के पराक्रमों का ज्ञान हमें नहीं है ॥५ ॥



[सूक्त - ४९]

[ऋषि - प्रतिप्रभ आत्रेय । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४०५३. देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥१ ॥

यजमानों के लिए आज हम सवितादेव को और भगदेव को आवाहित करते हैं; क्योंकि वे दानशीलों को रत्न बाँटने वाले हैं । हे बहुत पदार्थों के उपभोगकर्त्ता, नेतृत्वकर्त्ता अश्विनीकुमारो ! हम आपसे मैत्री की अभिलाषा करते हुए प्रतिदिन आप दोनों का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

४०५४. प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! आप सब उन प्राण-प्रदायक सवितादेव के प्रत्यागमन को जानकर उत्तम वचनों से उनकी स्तुति करें । यजमानों को श्रेष्ठ रत्न बाँटने वाले उन सवितादेव को जानकर नमस्कारपूर्वक उनकी स्तुतियाँ करें ॥२ ॥

४०५५. अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥३ ॥

पूषा, भग और अदिति-ये देव वरण करने योग्य हविष्यान्न को ग्रहण करते और वरणीय अन्न को यजमानों को देते हैं । इन्द्र, विष्णु , वरुण, मित्र और अग्नि आदि दर्शनीय देव कल्याणकारी दिवस को उत्पन्न करते हैं ॥३ ॥

४०५६. तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥४ ॥

हम यज्ञ के सम्पादनकर्त्ता देव की स्तुतियाँ करते हैं । वे अपराजित सवितादेव हमें ग्रहणीय धन दें । प्रवाहशील नदियाँ भी उस धन को प्रदान करें । हम ऐश्वर्यों के अधिपति होकर अन्न-रत्नों के अधिपति बनें ॥४ ॥

४०५७. प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥५ ॥

जो यजमान वसुओं को हवियाँ प्रदान करते हैं, मित्र और वरुण देव के निमित्त उत्तम सूक्त वचनों द्वारा स्तुतियाँ करते हैं । हे देवगणो !उन्हें ऐश्वर्य से युक्त करें ।हम द्युलोक और पृथिवी लोक का संरक्षण प्राप्त कर हर्षित हों ॥५ ॥

[सूक्त - ५०]

[ऋषि - स्वस्ति आत्रेय । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - अनुष्टुप्; ५ पंक्ति ।]

४०५८. विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे॥१ ॥

सभी मनुष्य सर्वप्रेरक सवितादेव की मित्रता का वरण करते हैं । वे मनुष्य अपने पोषण के लिए दीप्तिमान् धनों को प्राप्त करते हैं और ऐश्वर्य के अधिपति होते हैं ॥१ ॥

४०५९. ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे । ते राया ते ह्या३पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥२ ॥

हे अग्रणी देव ! जो मनुष्य आपकी और अन्य देवों की उपासना करते हैं, वे सब आपके ही हैं । वे सब धनों से युक्त होकर पूर्णकाम हों ॥२ ॥



४०६०. **अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत । आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः॥३ ॥**

हे ऋत्विजो ! आप हमारे इस यज्ञ में अतिथि के समान पूज्य देवों की सेवा करें । उन देवों की पत्नियों की भी सेवा करें । वे विघ्नविनाशक सवितादेव हमारे सम्पूर्ण पथों के विघ्नों और शत्रुओं को दूर करें ॥३ ॥

४०६१. **यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद्द्रोण्यः पशुः । नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥४॥**

जहाँ अग्नि स्थापित होने के अनन्तर यूप योग्य पशु , यूप के निकट स्तुत्य होता है; वहाँ यजमान सवितादेव के अनुग्रह से उत्साहपूर्ण मन और पुत्र-पौत्रादि एवं भार्यायुक्त गृह प्राप्त करता है ॥४ ॥

४०६२. **एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।**
शं राये शं स्वस्तय इषः स्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५ ॥

हे सर्वनियामक सवितादेव ! आपका यह रथ ऐश्वर्य प्रदाता, सुखदाता और पालन करने वाला है । हम स्तोता सुखकर ऐश्वर्य और सुखकर कल्याण के लिए आपकी स्तुति करते हैं । देवों की स्तुतियों के साथ आपकी भी बारम्बार स्तुति करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ५१]

[**ऋषि** - स्वस्ति आत्रेय । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - १-४ गायत्री; ५-१० उष्णिक् ; ११-१३ जगती अथवा त्रिष्टुप् ; १४-१५ अनुष्टुप् ।]

४०६३. **अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि । देवेभिर्हव्यदातये ॥१ ॥**

हे अग्निदेव ! आप सोमरस का पान करने के निमित्त सभी संरक्षक देवों के साथ हव्य-प्रदाता यजमान के पास आयें ॥१ ॥

४०६४. **ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् । अग्नेः पिबत जिह्वया ॥२ ॥**

हे सत्य स्तुति योग्य देवो ! हे सत्य धारणकर्त्ता देवो ! आप सब हमारे यज्ञ में आयें । अग्नि की जिह्वा रूप ज्वालाओं द्वारा सोमरस अथवा घृतादि का पान करें ॥२ ॥

४०६५. **विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि । देवेभिः सोमपीतये ॥३ ॥**

हे मेधावी सेव्य (सेवा के योग्य) अग्निदेव ! आप प्रातः काल में आने वाले ज्ञानियों और देवों के साथ सोमपान के निमित्त यहाँ आयें ॥३ ॥

४०६६. **अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते । प्रिय इन्द्राय वायवे ॥४ ॥**

पाषाणों द्वारा कूटकर अभिषुत हुआ सोम पात्रों में छानकर भरा जाता है । यह सोम इन्द्र और वायुदेवों के लिए अत्यन्त प्रीतिकर है ॥४ ॥

४०६७. **वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये । पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥५ ॥**

हे वायुदेव ! सोम पान करने के लिए और हविदाता यजमान की प्रीति के लिए आप हव्य प्राप्त करने पधारें; हविष्यात्र ग्रहण करें और अभिषुत सोम का पान करें ॥५ ॥

४०६८. **इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः । ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥६ ॥**

हे वायुदेव ! आप और इन्द्रदेव इस अभिषुत हुए सोम का पान करने योग्य हैं । अहिंसक होकर आप आयें और हव्य रूप सोम का सेवन करें ॥६ ॥



४०६९. सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः । निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥७ ॥

इन्द्र और वायु देवों के लिए दधि मिश्रित सोमरस अभिषुत हुआ है । हे इन्द्र और वायुदेवो ! नीचे की ओर प्रवाहित नदियों के समान यह हविष्यान्न आपकी ओर ही जाता है ॥७ ॥

४०७०. सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! सम्पूर्ण देवों के साथ अश्विनीकुमारों और उषा के साथ समान प्रीतियुक्त होकर इस यज्ञ में आगमन करें । जैसे अत्रि ऋषि यज्ञ में हर्षित होते हैं; वैसे आप हमारे अभिषुत सोम से हर्षित हों ॥८ ॥

४०७१. सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप मित्र और वरुण के साथ तथा विष्णु और सोम के साथ हमारे यज्ञ में आगमन करें । जैसे अत्रि ऋषि यज्ञ में प्रमुदित होते हैं, वैसे ही आप भी हमारे अभिषुत सोम से प्रमुदित हों ॥९ ॥

४०७२. सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप आदित्य और वसुओं के साथ तथा इन्द्र और वायु के साथ समान प्रीतियुक्त होकर हमारे यज्ञ में आगमन करें । जैसे अत्रि ऋषि यज्ञ में हर्षित होते हैं, वैसे आप हमारे अभिषुत सोम से हर्षित हों ॥१० ॥

४०७३. स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥११ ॥

दोनों अश्विनीकुमार हमारे निमित्त कल्याण करें । भगदेवता और देवी अदिति हमारा कल्याण करें । अपराजित और प्राण दाता पूषादेव हमारा कल्याण करें । उत्तम ज्ञानी (प्रचेता) द्यावा-पृथिवी हमारा कल्याण करें ॥११ ॥

४०७४. स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२ ॥

हम अपने कल्याण के लिए वायुदेव का स्तवन करते हैं । सम्पूर्ण भुवनों के अधिपति सोम की स्तुति हम कल्याण के लिए करते हैं । सर्वगणों के अधीश्वर बृहस्पतिदेव की स्तुति हम कल्याण के लिए करते हैं । देवरूप आदित्य के पुत्र, देवरूप अरुणादि द्वादशदेव हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥१२ ॥

४०७५. विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥१३ ॥

इस यज्ञ में सम्पूर्ण देवगण हमारे कल्याण के रक्षक हों । सम्पूर्ण विश्व के नियामक और आश्रयदाता अग्निदेव हमारे कल्याण के रक्षक हों । दीप्तिमान् ऋभुगण हमारी रक्षा करते हुए कल्याणकारी हों । रुद्रदेव हमें पापों से रक्षित कर कल्याणकारी हों ॥१३ ॥

४०७६. स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥१४ ॥

हे मित्रावरुण देवो ! आप हमारा कल्याण करें । हे मार्गप्रदर्शिका और धनवती देवि ! आप हमारा कल्याण करें । इन्द्र और अग्निदेव हमारा कल्याण करें । हे अदिति देवि ! आप हमारा कल्याण करें ॥१४ ॥

४०७७. स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥१५ ॥

सूर्य और चन्द्रमा के सदृश हम बाधारहित पथों के अनुगामी हों । निरन्तर दान से युक्त होकर, ज्ञान से युक्त होकर, परस्पर टकराव या हिंसा से रहित होकर हम सुखपूर्वक सहगमन करें ॥१५ ॥



[सूक्त - ५२]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - अनुष्टुप् ; ६, १७ पंक्ति ।]

४०७८. प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥१ ॥

हे श्यावाश्व ऋषे ! आप संघर्षक शक्ति-सम्पन्न, स्तुत्य मरुतों की प्रकृष्ट अर्चना करें । ये यज्ञ के योग्य मरुद्गण अहिंसक हविरूप अन्नों को धारण कर हर्षित होते हैं ॥१ ॥

४०७९. ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥२ ॥

वे स्थायी बलों के सहायक रूप हैं । वे शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले हैं । वे भ्रमण करते हुए हमारे वीर पुत्रों को विजयशील सामर्थ्य देकर उन्हें परिरक्षित करते हैं ॥२ ॥

४०८०. ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥३ ॥

ये स्पन्दनयुक्त और वृष्टिकारक मरुद्गण रात्रि का अतिक्रमण करके आगे बढ़ते हैं । इसलिए अब हम मरुतों के आकाश और भूमि में व्याप्त तेजों की स्तुति करते हैं ॥३ ॥

४०८१. मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥४ ॥

आक्रामक सामर्थ्य से युक्त मरुतों के लिए हम स्तुति और यज्ञ के साधन हव्यादि अर्पित करते हैं । ये मरुद्गण मानवी युगों में हिंसकों से, मरणशील मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥४ ॥

४०८२. अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥५ ॥

हे ऋत्विजो ! जो पूजनीय, उत्तम दानशील, असीम बल सम्पन्न, नेतृत्वकर्ता वीर हैं; उन यज्ञ योग्य और प्रकाशक मरुद्गणों के लिए यज्ञ के साधन हविष्यान्न अर्पित कर विशिष्ट अर्चना करें ॥५ ॥

४०८३. आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जझ्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥६ ॥

दीप्तिमान् , अलंकारों से विभूषित , आयुधों से युक्त होकर महान् नेतृत्वकर्त्ता मरुद्गण विशेष शोभायमान होते हैं । ये अपने [illegible] आयुधों द्वारा मेघों पर संघात करते हैं । विशेष शब्द करती हुई प्रवाहित नदियों के समान विद्युत् , मरुतों की अनुगामिनी होती है । दीप्तिमान् मरुद्गणों का तेज स्वयं ही निस्सृत होता है ॥६ ॥

[घर्षण से मेघों में विद्युत् उत्पन्न होने की बात भौतिक विज्ञान द्वारा भी मान्य है ।]

४०८४. ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥७ ॥

पृथ्वी पर अवस्थित, विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में अवस्थित, नदियों के प्रवाह में अवस्थित, संग्राम क्षेत्रों में और महान् द्युलोक के मध्य में अवस्थित ये मरुद्गण सब प्रकार से प्रवर्धित होते हैं ॥७ ॥



४०८५. शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥८ ॥

सत्य बल से निरन्तर विवर्धमान मरुतों के उत्कृष्ट बल की स्तुति करें । ये स्पंदनशील और नेतृत्वकर्त्ता मरुद्गण प्रत्येक शुभकार्य में स्वयं योजित होते हैं ॥८ ॥

४०८६. उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः । उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥९ ॥

वे मरुद्गण परुष्णी नामक नदी में अवस्थित रहते हैं। सबको शुद्ध करने वाली दीप्ति द्वारा स्वयं को आच्छादित करते हैं । वे अपने बल से रथ चक्रों (चक्रवातों) को प्रक्षिप्त कर पर्वतों (मेघों) का भी भेदन करते हैं ॥९ ॥

४०८७. आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः । एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥१० ।

जो मरुद्गण 'आपथयः' (सामने के मार्गों से गमन करने वाले) , 'विपथयः' (विविध मार्गों से गमन करने वाले) , 'अन्तः पथाः' (गुह्य मार्गों से गमन करने वाले) और 'अनुपथाः' (अनुकूल मार्गों से गमन करने वाले)-इन चारों नामों से विख्यात हुए हैं; वे मरुद्गण हमारे लिए यज्ञ के हविष्यान्न वहन करते हैं ॥१० ॥

४०८८. अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥११ ॥

(ये मरुद्गण) कभी अग्रणी होकर, कभी नियुक्त (सहयोगी) होकर, कभी दूर रहकर ही (संसार को) धारण करते हैं । इस प्रकार इनके विभिन्न स्वरूप विचित्र और दर्शनीय होते हैं ॥११ ॥

४०८९. छन्दः स्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२ ॥

छन्दों द्वारा स्तुति करने वाले और जल की इच्छा करने वाले स्तोताओं के निमित्त मरुतों ने जल-प्रवाह प्रेरित किया । उनमें कुछ मरुद्गणों ने तस्करों की भाँति अदृश्य होकर रक्षा की थी और कुछ साक्षात् दृष्टिगत होकर उन्हें तेजस्वी बल प्रदान करते थे ॥१२ ॥

४०९०. य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥१३ ॥

हे ऋषिगण ! जो मरुद्गण विद्युतरूपी आयुधों से दीप्तिमान् होते हैं, जो महान् , क्रान्तदर्शी और मेधा-सम्पन्न हैं; उन मरुद्गणों का हर्षप्रद स्तुतियों से अभिवादन करें ॥१३ ॥

४०९१. अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥१४ ॥

हे ऋषिगण ! प्रिय मित्र के पास जाने की तरह आप हविष्यान्न लेकर मरुतों के पास उपस्थित हों । हे आक्रामक बल से पराभव करने वाले मरुतो ! आप लोग द्युलोक या अन्य लोकों से हमारे यज्ञ में पधारें और स्तुतियाँ ग्रहण करें ॥१४ ॥

४०९२. नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥१५ ॥

स्तोतागण मरुतों की स्तुति करके अन्य देवों की स्तुति करने की इच्छा नहीं करते । वे ज्ञान सम्पन्न, शीघ्रगमनकारी, प्रसिद्ध तथा श्रेष्ठफलदाता मरुतों से ही अभीष्ट दान प्राप्त कर लेते हैं ॥१५ ॥



४०९३. प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥१६ ॥

उन ज्ञानी मरुतों ने बंधुओं के जानने की इच्छा से यह वचन कहा कि - "गौएँ (किरणें) और पृथ्वी हमारी माताएँ हैं " और सामर्थ्यवान् मरुतों ने यह भी कहा कि - "वेगवान् रुद्र हमारे पिता हैं " ॥१६ ॥

४०९४. सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥१७ ॥

सात-सात संख्यक समर्थ मरुद्गण एक होकर हमें सौ (सैकड़ों) गौओं और अश्व (पोषक एवं शक्तिवर्द्धक प्रवाह) प्रदान करें । उनके द्वारा प्रदत्त प्रसिद्ध गौओं के समूह को हम यमुना नदी के किनारे पवित्र करते हैं और अश्व रूप धन को भी वहीं पवित्र करते हैं ॥१७ ॥

[प्रतीत होता है, इस मंत्र के ऋषि का आश्रम यमुना किनारे रहा होगा, जहाँ प्राप्त गौओं और अश्वों का शोधन (अर्थात् उनकी गुणवत्ता में वृद्धि) के प्रयोग किये जाते होंगे । भावार्थ रूप में यमुना यम की बहिन हैं । उनके संसर्ग से यम-यातना नहीं होती । पोषक एवं शक्ति प्रवाहों का शोधन यम-यातना के भय से ऊपर उठकर ही किया जा सकता है ।]

[सूक्त - ५३]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - १,५,१०-११, १५ ककुप् ; २ बृहती ; ३अनुष्टुप् ; ४ पुर उष्णिक् ; ६-७, ९, १३-१४, १६ सतो बृहती; ८,१२ गायत्री ।]

४०९५. को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् । यद्युयुज्रे किलास्यः ॥१ ॥

मरुतों ने जब बिन्दुदार (चिह्नित) मृगों को अपने रथ में नियोजित किया, तब इनकी उत्पत्ति को कौन जानता था ? कौन भला पहले मरुतों के सुख में आसीन था ? ॥१ ॥

४०९६. ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥२ ॥

ये मरुद्गण रथ पर अधिष्ठित हैं-यह कौन जानता है ?ये किस प्रकार गमन करते हैं ?इनके रथ की ध्वनि को किसने सुना है ?ये मित्ररूप हितैषी, वृष्टिकारक मरुद्गण किस यजमान के लिए बहुत अन्नों के साथ अवतीर्ण होंगे ? ॥२ ॥

४०९७. ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे । नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥३ ॥

तेजस्वी सोमपान से उत्पन्न हर्ष के लिए वे मरुद्गण हमारे निकट उपस्थित हुए तथा कहा- "हम नेतृत्वकर्त्ता मनुष्यों के हितैषी और निर्दोष मरुद्गण हैं ।" स्तोतागण (ऐसे मरुतों की) स्तुतियाँ करें ॥३ ॥

४०९८. ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु । श्राया रथेषु धन्वसु ॥४॥

ये मरुद्गण जिन दीप्तियों से स्वयं अति प्रकाशमान होते हैं, वे दीप्तियाँ अलंकारों में, मालाओं में, आयुधों में, स्वर्णिम हारों में, कंगनों में, रथों में तथा धनुषों में आश्रयभूत हैं । हम उनकी वन्दना करते हैं ॥४ ॥

४०९९. युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः । वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥५ ॥

हे शीघ्र दानशील मरुतो ! वृष्टि के सदृश वेगपूर्वक सर्वत्र गमनशील दीप्तिमान् आपके रथ को देखकर हम हर्षित होते हैं और आपका स्तवन करते हैं ॥५ ॥



४१००. **आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।**
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥६ ॥

वे नेतृत्वकर्त्ता और उत्तम दानशील, दीप्तिमान् हविदाता यजमान के लिए जिस खजाने को सञ्चित कर धारण करते हैं, उसे वे वृष्टि के समान उनमें बाँट देते हैं । वे मरुद्‌गण द्यावा-पृथिवी में व्यापक जल के साथ मेघों के समान संचरित होते और वृष्टि करते हैं ॥६ ॥

४१०१. **ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।**
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥७ ॥

जैसे धेनु दुग्ध सिंचन करती है; वैसे उदक के साथ मेघों को फोड़ती हुई जलराशि अन्तरिक्ष में प्रसारित होती हुई सिंचित होती है । द्रुतगामी अश्व की भाँति वेगपूर्वक प्रवाहित नदियाँ अपने मार्गों को विमुक्त करती जाती हैं ॥७ ॥

४१०२. **आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत । माव स्थात परावतः ॥८ ॥**

हे मरुतो ! आप सब द्युलोक से, अन्तरिक्ष लोक से या इसी लोक से यहाँ आगमन करें । दूरस्थ प्रदेशों में आप रुके न रहें ॥८ ॥

४१०३. **मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।**
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥९ ॥

हे मरुतो ! रसा, अनितभा, कुभा नदियाँ और वेगपूर्वक गमनशील सिन्धु नदी हमें अवरुद्ध न करें । जल से परिपूर्ण सरयू नदी हमें सीमित न करें । हम आपसे रक्षित होकर सुख में स्थित हों ॥९ ॥

४१०४. **तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् । अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥१० ॥**

रथों के बल से युक्त तेजस्वी मरुद्‌गणों का स्तवन हम करते हैं । मरुद्‌गणों के साथ वृष्टि वेगपूर्वक गमन करती है ॥१० ॥

४१०५. **शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणङ्गणं सुशस्तिभिः । अनु क्रामेम धीतिभिः ॥११ ॥**

हे मरुतो ! हम आपके प्रत्येक बल का, प्रत्येक समुदाय का और प्रत्येक गण का उत्तम स्तुतियों द्वारा बुद्धिपूर्वक अनुसरण करते हैं ॥११ ॥

४१०६. **कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः । एना यामेन मरुतः ॥१२ ॥**

आज मरुद्‌गण इस रथ द्वारा किस हविदाता यजमान और किस उत्तम मानव की ओर गमन करेंगे ? ॥१२ ॥

४१०७. **येन तोकाय तनयाय धान्यं१ बीजं वहध्वे अक्षितम् ।**
अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥१३ ॥

जिस सहृदयता से आप पुत्र-पौत्रों के लिए अक्षय धान्य-बीज वहन करते हैं, उसी हृदय से वह हमें भी दें । हम आपसे सम्पूर्ण आयु और सौभाग्यपूर्ण ऐश्वर्य की याचना करते हैं ॥१३ ॥

४१०८. **अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।**
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥१४ ॥

हे मरुतो ! हम कल्याण द्वारा पाप वृत्तियों को विनष्ट कर अपने शत्रुओं और गुप्त निंदकों का पराभव करें । हमें सम्पूर्ण शक्तियुक्त सुख, जल और दीप्तियुक्त ओषधि संयुक्त रूप से प्राप्त हो ॥१४ ॥



४१०९. सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः । यं त्रायध्वे स्याम ते ॥१५ ॥

हे नेतृत्वकर्त्ता मरुतो ! जिसकी आप रक्षा करते हैं, वह मनुष्य उत्तम तेजवान् , महिमायुक्त और उत्तम पुत्र-पौत्रादि से युक्त होता है, हम भी वैसे ही अनुगृहीत हों ॥१५ ॥

४११०. स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६ ॥

हे स्तोताओ ! तृणादि खाने के लिए जाती हुई गौओं के समान यजमान के यज्ञ में भोजन के लिए जाते हुए हर्षित हुए मरुतों की आप स्तुति करें; क्योंकि वे पूर्व परिचित प्रिय मित्रों के समान प्रीतिकर हैं । उन्हें समीप बुलाकर स्तुतियों से प्रशंसित करें ॥१६ ॥

[सूक्त - ५४]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - जगती; १४ त्रिष्टुप् ।]

४१११. प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥१ ॥

हे यजमानो ! इन स्वयंप्रकाशित , पर्वतों को कँपा देने वाले मरुतों के बल की प्रशंसा के लिए प्रयुक्त अपनी वाणी (स्तोत्र) को सुशोभित करें । इन अतिशय तेजसम्पन्न, सूर्यरूप, दीप्तिमान् यश वाले मरुतों की, याजक प्रभूत हविष्यान्न प्रदान कर अर्चना करें ॥१ ॥

४११२. प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥२ ॥

हे मरुतो ! आपके गण बलशाली, संसार के पोषणरूप जल देने वाले, अन्न बढ़ाने वाले, अश्वों को रथ में जोड़ने वाले और चतुर्दिक् गमनशील हैं । जब आप विद्युत् के साथ सम्मिलित होते हैं, तो तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं और गर्जना करते हुए पृथ्वी पर चतुर्दिक् गमनशील जलराशि बरसाते हैं ॥२ ॥

४११३. विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥३ ॥

विद्युत् के सदृश तेजसम्पन्न, नेतृत्वकर्त्ता, आयुधयुक्त, द्युतिमान् , वेगवान् पर्वतों के प्रकंपक, वज्र-प्रक्षेपक, गर्जनशक्ति से युक्त तथा उग्र बल वाले मरुद्गण बारम्बार जल प्रदान करने के लिए आविर्भूत होते हैं ॥३ ॥

४११४. व्य१क्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्य१न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥४ ॥

हे समर्थ, रुद्र पुत्र मरुतो ! आप रात्रि और दिन सतत परिभ्रमण करें । अन्तरिक्ष के सब लोकों में गमन करें । नौकाएँ जैसे नदियों में गमन करती हैं, वैसे आप विभिन्न प्रदेशों में गमन करें । हे शत्रुओं को कँपाने वाले मरुतो ! हमारी हिंसा न करें ॥४ ॥

४११५. तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥५ ॥

हे मरुतो ! सूर्यदेव जिस प्रकार अपनी दीप्ति को बहुत दूर तक विस्तारित करते हैं । अश्व जिस प्रकार पर्वतों



पर भी दूर तक विस्तारित होते हैं, उसी प्रकार आपकी महत्ता और शक्ति को स्तोतागण दूर तक विस्तारित करते हैं ॥५ ॥

४११६. अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥६ ॥

हे विधातारूप मरुतो ! आपका बल प्रखरता को प्राप्त हुआ है । भयंकर आँधी के समान आप वृक्षों को मरोड़ कर गिरा देते हैं । हे प्रसन्नचेता मरुतो ! आँख जैसे राही का पथ-प्रदर्शन करती है, वैसे आप हमारे मार्ग-प्रदर्शक रूप में अनुकूल पथ से हमें चलाएँ ॥६ ॥

४११७. न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥७ ॥

हे मरुद्गणो ! आप जिस ऋषि या राजा को सत्कार्य में प्रेरित करते हैं, वह किसी से पराजित नहीं होता, वह न हिंसित होता है, न क्षीण होता है, न व्यथित होता है और न बाधित होता है । उसके ऐश्वर्य और संरक्षण सामर्थ्य कभी नष्ट नहीं होते ॥७ ॥

४११८. नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कवन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥८ ॥

नियुत संज्ञक अश्वों से युक्त, ग्राम विजेता, नेतृत्वकर्त्ता, जल धारक, मरुद्गण जब अर्यमा के समान वेग से गमन करते हैं, तो शब्दवान् होते हैं । वे वृष्टि आदि से जल प्रवाहों को परिपूर्ण करते हैं और भूमि पर मधुर अन्नों को प्रवृद्ध करते हैं ॥८ ॥

४११९. प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥९ ॥

यह भूमि मरुद्गणों के लिए विस्तीर्ण पथ वाली है । द्युलोक भी वेगपूर्वक गमनशील मरुतों के लिए विस्तीर्ण पथ बनाते हैं । अन्तरिक्ष के सम्पूर्ण पथ भी मरुद्गणों के लिए विस्तृत होते हैं । मेघ भी मरुतों के लिए विस्तृत होकर शीघ्र वर्षा करने वाले होते हैं ॥९ ॥

४१२०. यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥१० ॥

हे मरुद्गणो ! आप समान भारवाहक और द्युलोक के नियामक हैं । हे तेजस्वी नेतृत्वकर्त्ता मरुतो ! आप सूर्यदेव के उदित होने पर अत्यन्त हर्षित होते हैं । सतत गमनशील आपके ये अश्व शिथिल नहीं होते, आप तीनों लोकों के सभी मार्गों को पार कर जाते हैं ॥१० ॥

४१२१. अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११ ॥

हे रथों में शोभायमान मरुतो ! आप कन्धों पर आयुध, पैरों में कड़े (कटक) , वक्षस्थल पर रमणीक हार, भुजाओं पर अग्नि सदृश प्रकाशमान वज्र और शीर्ष पर स्वर्णिम शिरस्त्राण धारण किये हुए हैं ॥११ ॥

४१२२. तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥१२ ॥



हे पूजनीय मरुद्गणो ! गमन करते हुए आप उस दीप्तिमान् अबाधित आकाश को और तेजस्वी जल को प्रकम्पित करते हैं । आप अपने बलों को संगठित कर अति तेजस्विता से युक्त हों । आप जलवर्षण की इच्छा करते हुए भयंकर गर्जना द्वारा वृष्टि का उद्घोष करते हैं ॥१२ ॥

४१२३. **युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।**
न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ स्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३ ॥

हे विशिष्ट ज्ञानी मरुतो ! हम आपके द्वारा प्रदत्त अन्नों से युक्त हों, हम रथों एवं ऐश्वर्य के स्वामी हों । हे मरुतो ! हमें आकाश में वर्तमान नक्षत्रों के सदृश नष्ट न होने वाले सहस्रों धनों से हर्षित करें ॥१३ ॥

४१२४. **यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।**
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥१४ ॥

हे मरुद्गणो ! आप हमें स्पृहणीय धन और पुत्रादि प्रदान करें । आप सामगान करने वाले विप्र का रक्षण करते हैं । आप प्रजा का भरण-पोषण करने वाले राजा को अश्व, अन्न और ऐश्वर्य से उसे भली प्रकार पुष्ट करते हैं ॥१४ ॥

४१२५. **तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्व१र्ण ततनाम नॄँरभि ।**
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥१५ ॥

हे शीघ्र रक्षणशील मरुतो ! हम आपके उस धन-ऐश्वर्य की याचना करते हैं, जिसे हम सूर्य-रश्मियों के समान वितरित करें । हे मरुतो ! हमारे इन उत्तम स्तोत्रों को ग्रहण करें, जिसके बल से हम सौ वर्ष के पूर्ण जीवन का उपयोग करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ५५]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - जगती; १० त्रिष्टुप् ।]

४१२६. **प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।**
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१ ॥

प्रकृष्ट यजनीय, दीप्तिमान् आयुध वाले, वक्षस्थल पर रमणीक हार धारण करने वाले मरुद्गण महान् बलों को धारण करते हैं । ये उत्तम नियामक मरुद्गण वेगवान् अश्वों द्वारा गमन करते हैं । जल वृष्टि आदि कल्याण युक्त कार्यों में गमन करने वाले मरुतों के रथादि भी उनके अनुगामी होते हैं ॥१ ॥

४१२७. **स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।**
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥२ ॥

हे मरुतो ! जैसा आप का ज्ञान है, उसी के अनुरूप आप स्वतः बल भी धारण करते हैं । भूमि को उर्वर बनाने की आपकी सामर्थ्य अति महान् है और अतिशय प्रकाशमान है । आप अपने बल से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करते हैं । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों में गतिशील मरुतों के रथ साधन भी उनके अनुगामी होते हैं ॥२ ॥

४१२८. **साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।**
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥३ ॥

ये मरुद्गण एक साथ उत्पन्न हुए और एक साथ जलवर्षक हैं, एक साथ बल- उत्पादक और नेतृत्वकर्ता हैं । अतिशय शोभा के लिए ये अत्यन्त प्रवर्धित होते हैं । सूर्य रश्मियों की भाँति विशिष्ट आभा से संयुक्त हैं । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील मरुतों के रथादि भी इनके अनुगामी होते हैं ॥३ ॥



४१२९. आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ।।४ ।।

हे मरुतो ! आपकी विशिष्ट महत्ता स्तोत्रों आदि द्वारा विभूषित होती है । वह सूर्य के रूप सदृश दर्शनीय है । आप हमें अमरता प्रदान करें । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील आपके रथादि साधन भी आपके अनुगामी होते हैं ।।४ ।।

४१३०. उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ।।५ ।।

हे जल सम्पन्न मरुतो ! आप अन्तरिक्ष से समुद्र के जल को प्रेरित करते हैं और जल वर्षण प्रारम्भ करते हैं । हे शत्रु संहारक मरुतो ! आपके निमित्त स्तुतियाँ कभी नष्ट नहीं होतीं । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील, आपके रथादि भी आपके अनुगामी होते हैं ।।५ ।।

४१३१. यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम्।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ।।६ ।।

हे मरुद्‌गणो ! जब आप बिन्दुदार (चिह्नित) अश्वों को अपने रथ से योजित करते हैं और स्वर्णमय कवच को धारण करते हैं, तब स्पर्धा रखने वाले सभी शत्रुओं को क्षत-विक्षत कर देते हैं । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील आपके रथादि भी आपके अनुगामी होते हैं ।।६ ।।

४१३२. न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ।।७ ।।

हे मरुतो ! पर्वत और नदियाँ आपके मार्ग को अवरुद्ध न करें । आप जहाँ जाने की इच्छा करें, वहाँ जाएँ । द्यावा-पृथिवी में सर्वत्र गमन करें । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील आपके रथादि साधन आपके अनुगामी होते हैं ।।७ ।।

४१३३. यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ।।८ ।।

हे सर्व निवासक मरुतो ! जो यज्ञादि अनुष्ठान पहले सम्पादित किये गये हैं, जो नूतन यज्ञ हो रहे हैं, उनके जो मन्त्रगान और स्तोत्रपाठ होते हैं, उन्हें आप जानने वाले हों । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील रथादि आपके अनुगामी होते हैं ।।८ ।।

४१३४. मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ।।९ ।।

हे मरुतो ! हमें सुखी बनायें, अपने क्रोध से नष्ट न करें, सुख प्रदान करें । हमारे मित्र भाव से युक्त स्तोत्रों से अवगत हों । जल-वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील रथादि साधन आपके अनुगामी होते हैं ।।९ ।।

४१३५. यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।१० ।।

हे स्तुत्य मरुद्‌गणो ! आप हमें पापों से विमुक्त करें और ऐश्वर्ययुक्त स्थान की ओर ले चलें । हे यजनीय मरुतो ! हमारे द्वारा प्रदत्त हव्यादि पदार्थ को ग्रहण करें, जिससे हम विविध ऐश्वर्यों के स्वामी हों ।।१० ।।



[सूक्त - ५६]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुद्‌गण । **छन्द** - बृहती; ३,७ सतोबृहती ।]

४१३६. अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१ ॥

हे अग्ने ! आज आप दीप्तिमान् अलंकारों से विभूषित, शत्रु संहारक वीर मरुद्‌गणों और उनकी प्रजाओं को आहूत करें । हम देदीप्यमान द्युलोक से उनका आवाहन करते हैं ॥१ ॥

४१३७. यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसन्दृशः ॥२ ॥

हे अग्ने ! जिस प्रकार आप मरुद्‌गणों को हृदय से पूज्य मानते हैं, उसी प्रकार के हमारे सम्मानित भावों से वे हमारे निकट आगमन करें । ये जब हमारे हवनों के निकट आगमन करें, तब उन विकराल स्वरूप वाले मरुतों को आप हव्य द्वारा प्रवृद्ध करें ॥२ ॥

४१३८. मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥३ ॥

पृथ्वी पर प्रभावित होकर व्यक्ति समर्थों के पास जाते हैं, उसी प्रकार हर्षित मरुतों की सेना हमारे निकट आ रही है । हे मरुतो ! आप वृषभ के सदृश सेचन में समर्थ (उत्पादन में समर्थ) और विशिष्ट सामर्थ्यवान् हैं ॥३ ॥

४१३९. नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं१ पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥४ ॥

दुर्धर्ष बैल के समान ये मरुद्‌गण अपने बल से सुगमतापूर्वक शत्रुओं का विनाश करते हैं । गर्जना करते हुए गमनशील ये मरुद्‌गण अपने आघात से मेघों को खण्ड-खण्ड कर वृष्टि करते हैं ॥४ ॥

४१४०. उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् । मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५ ॥

हे मरुतो ! आप उठें । स्तोत्रों से निश्चय ही समृद्ध हुए आप मरुद्‌गणों के, सर्वश्रेष्ठ और अपूर्व बलों की हम वन्दना करते हैं ॥५ ॥

४१४१. युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥६ ॥

हे मरुतो ! आप अपने रथ में अरुणिम मृगों को योजित करें अथवा रोहित वर्ण मृग को योजित करें अथवा वेगवान् , वहन कार्य में समर्थ अश्वों को भ्रमणशील धुरी को खींचने के लिए योजित करें ॥६ ॥

४१४२. उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥७ ॥

हे मरुतो ! उन अरुणिम आभा से युक्त, बड़े शब्दकारी, दर्शनीय अश्वों को रथ से योजित कर इस प्रकार प्रेरित करें कि वे आपकी यात्राओं में विलम्ब न करें ॥७ ॥

४१४३. रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥८ ॥

हम मरुतों के अन्नों से अभिपूरित, उस रथ का आह्वान करते हैं; जिसमें उत्तम रमणीय द्रव्यों की धारणकर्त्री मरुतों की माता अधिष्ठित हैं ॥८ ॥

४१४४. तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥९ ॥

हम मरुतों के रथ में शोभायमान, उस तेजस्वी और स्तुत्य संघ शक्ति का आह्वान करते हैं, जिसमें सुजाता और सौभाग्यवती कल्याणकारिणी देवी मरुद्गणों के साथ महत्ता को प्राप्त होती हैं ॥९ ॥

[सूक्त - ५७]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - जगती ; ७-८ त्रिष्टुप् ।]

४१४५. आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१ ॥

इन्द्र के अनुचर, समान प्रीति वाले, स्वर्णिम रथों पर आरूढ़ होने वाले, रुद्रों के पुत्ररूप हे मरुतो ! आप हमारे इस उद्देश्यपूर्ण यज्ञ में आगमन करें । हम आपके निमित्त बुद्धिपूर्वक स्तवन करते हैं । हे तेजस्वी मरुतो ! तृषित और जल अभिलाषी गौतम के निमित्त आपने जैसे जल प्रवाह प्रदान किया, उसी प्रकार हमें भी अनुगृहीत करें ॥१ ॥

४१४६. वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥२ ॥

हे मेधावी मरुतो ! आप कुठारों से युक्त, भालों से युक्त, उत्तम धनुषों से युक्त, बाणों से युक्त, तूणीर धारक, उत्तम अश्वों तथा रथों से युक्त और उत्तम आयुधों से युक्त हैं । आप हमारे कल्याण के निमित्त आगमन करें ॥२ ॥

४१४७. धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥३ ॥

हे मरुतो ! आप अन्तरिक्ष में मेघों को कम्पित करें । उस हविदाता यजमान को धन प्रदान करें । आपके आगमन के भय से वन भी प्रकम्पित होते हैं । हे मातृरूप पृथ्वी के पुत्रो ! जल वृष्टि आदि शुभ कार्य के निमित्त बिन्दुदार (चिह्नित) मृगों को रथ से योजित कर जब आप उग्रता को धारण करते हैं, तो आपके क्रोध से पृथ्वी भी क्षुब्ध हो जाती है ॥३ ॥

४१४८. वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमाइव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४ ॥

ये वीर मरुद्गण अत्यन्त तेजस्वी, वृष्टिजल के आच्छादक, जुड़वाँ के तुल्य (समानरूप वाले), उत्तम दर्शनीय और अति रूपवान् हैं । ये बभ्रु वर्ण और अरुणिम वर्ण अश्वों से युक्त, निष्पाप, शत्रुओं के महाविनाशक हैं । अपनी महत्ता से ये आकाश के सदृश विस्तृत हैं ॥४ ॥

४१४९. पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसन्दृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥५ ॥

विपुल जलवर्षक, अलंकारों से विभूषित, दानशील, तेजोयुक्त मूर्तिमान्, अक्षय धन से संयुक्त, जन्म से सुजन्मा हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, पूजनीय दीप्तिमान् मरुद्गण अपने शुभ कार्यों से अमर कीर्ति पाते हैं ॥५ ॥



४१५०. ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम्।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥६ ॥

हे मरुतो ! आपके कन्धों पर भाले रखे हैं । आपकी दोनों भुजाओं में शत्रु-संघर्षक बल सन्निहित है । शीर्षों पर शिरस्त्राण और रथों में सम्पूर्ण आयुध वर्तमान हैं । आपके शरीर विशिष्ट कान्ति से युक्त हैं ॥६ ॥

४१५१. गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥७ ॥

हे मरुतो ! आप हमें गौओं से युक्त, अश्वों से युक्त, रथों से युक्त, उत्तम पुत्रों और स्वर्णादि से युक्त अन्नों को प्रदान करें । हे रुद्र पुत्रो ! हमारी समृद्धि बढ़ायें । आपकी दिव्य संरक्षण शक्ति का हम उपभोग करें ॥७ ॥

४१५२. हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद् गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८ ॥

हे मरुतो ! आप हमें सुख से परिपूर्ण करें । आप नेतृत्वकर्त्ता, प्रभूत धन-सम्पन्न, अविनाशी, यज्ञ के ज्ञाता, वास्तविक ख्याति सम्पन्न, क्रान्तदर्शी, युवा, प्रचण्ड बलवान् और सर्वत्र स्तुति किये जाने योग्य हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ५८]

[ऋषि - श्यावाश्व आत्रेय । देवता - मरुद्गण । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४१५३. तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम्
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥१ ॥

हम निश्चय ही उन बल-सम्पन्न, स्तुत्य मरुद्गणों की स्तुति करें । वे मरुद्गण द्रुतगामी अश्वों के स्वामी, वेगपूर्वक गमन करने वाले तथा अमृत के शासक हैं ॥१ ॥

४१५४. त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम्।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥२ ॥

हे ज्ञानी पुरुष ! उन तेजस्वी, बल-सम्पन्न, हाथ में कड़े धारण करने वाले, शत्रुओं को कँपाने वाले, कुशल वीर, धन प्रदाता मरुतों की स्तुति करें । जो अत्यन्त सुखदायक हैं, महत्ता से परिपूर्ण हैं, अत्यन्त सामर्थ्यवान् और विपुल ऐश्वर्य के स्वामी हैं, उनकी वन्दना करें ॥२ ॥

४१५५. आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥३ ॥

ये सभी मरुद्गण जो वृष्टि को प्रेरित करते हैं, जल को वहन करते हैं, आज हमारे अभिमुख आगमन करें । हे तरुण और ज्ञानी मरुतो ! आपके निमित्त जो अग्नि प्रज्वलित है; उससे हव्यादि का प्रीतिपूर्वक सेवन करें ॥३ ॥

४१५६. यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥४ ॥

हे यजनीय मरुतो ! आप जनकल्याण के लिए यजमान को पुत्र प्राप्त कराते हैं, जो तेजस्वी, शत्रु संहारक और क्षमतावान् हों । हे मरुतो ! आपसे ही लोग मुष्टि युद्धों में बाहुबल प्राप्त करते हैं और आपसे ही लोग अश्वों के नियन्ता उत्तम वीर पुत्र प्राप्त करते हैं ॥४ ॥



४१५७. अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५ ॥

पहिये के आरों के सदृश सभी मरुद्गण एक समान दीखते हैं । ये अवर्णनीय मरुद्गण दिवस के सदृश अति महान् तेजों से संयुक्त होकर एक समान प्रकट होते हैं । भूमि-पुत्र ये मरुद्गण समान मास में जन्मे हैं । अतिशय वेगवान् ये मरुद्गण सम्मिलित होकर स्वयं प्रवृत्त होकर वृष्टि आदि कार्यों का सम्पादन करते हैं ॥५ ॥

४१५८. यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्त्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६ ॥

हे मरुतो ! जब बिन्दुदार अश्वों और सुदृढ़ चक्रों से योजित रथों द्वारा आप आगमन करते हैं, तब जलराशि क्षुब्ध होकर बरसने लगती है । वनों का नाश होता है और सूर्य रश्मि संयुक्त वर्षणकारी मेघों से आकाश भी भीषण शब्द से गुंजायमान होता है ॥६ ॥

४१५९. प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥७ ॥

मरुद्गणों के आगमन से पृथ्वी उर्वरता को प्राप्त होती है । पति द्वारा गर्भ की स्थापना करने के समान ये मरुद्गण अपने बल से वृष्टि जल को भूमि में प्रस्थापित करते हैं । ये रुद्रपुत्र मरुद्गण अपने द्रुतगामी अश्वों को रथ के अग्रभाग में नियोजित कर पराक्रमपूर्वक वृष्टि कार्य सम्पादित करते हैं ॥७ ॥

४१६०. हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद् गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८ ॥

हे मरुतो ! हमें सुख से परिपूर्ण करें । आप नेतृत्वकर्त्ता, प्रभूत धन-सम्पन्न, अविनाशी, सत्य ज्ञाता, सत्ययशा, क्रान्तदर्शी, युवा, प्रचण्ड-बलवान् और सर्वत्र स्तुति किये जाने योग्य हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ५९]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - जगती ; ८ त्रिष्टुप् ।]

४१६१. प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१ ॥

हे मरुतो ! अपने कल्याण के लिए हविदाता यजमान यजन कर्म प्रारम्भ कर रहा है । हे याजक ! आप प्रकाशक द्युलोक की पूजा करें । हम पृथ्वी माता के लिए स्तोत्रों का गान करते हैं । ये मरुद्गण अपने अश्वों को प्रेरित करते हैं और अन्तरिक्ष में दूर तक गमन करते हैं । वे अपने तेज से मेघों की विद्युत् को विस्तारित करते हैं ॥१ ॥

४१६२. अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥२ ॥

जैसे मनुष्यों से पूर्ण नौका नदी के मध्य कम्पित होकर गमन करती है, वैसे इन मरुद्गणों के बल से भयभीत पृथ्वी प्रकम्पित हो उठती है । वे मरुद्गण दूर से दृश्यमान होने पर भी अपनी गतियों से जाने जाते हैं । ये नेतृत्वकर्त्ता मरुद्गण अन्तरिक्ष के मध्य अधिक हव्यादि ग्रहण करने के लिए यत्न करते हैं ॥२ ॥



४१६३. गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्या इव सुभ्व१श्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३ ॥

हे मरुतो ! आप गौओं के शृंग के सदृश शोभायमान शिरोभूषण धारण करते हैं । तमिस्रा दूर करने वाले सूर्य की रश्मियों के समान आप निज किरणें विकीर्ण करते हैं । आप द्रुतगामी अश्वों के सदृश वेगवान् और उत्तम आभा से युक्त होकर दर्शनीय हैं । आप भी मनुष्यों की भाँति यज्ञादि कर्मों के ज्ञाता हैं ॥३ ॥

४१६४. को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४ ॥

हे मरुतो ! आपकी महत्ता की समानता कौन कर सकता है ? कौन आपके निमित्त स्तोत्र रचना कर सकता है ? कौन आपके समान पोषण सामर्थ्य से परिपूर्ण हुआ है ? हे मरुतो ! जब आप श्रेष्ठ हविदाता यजमान के हविष्यान्न से पूर्ण होते हैं, तब आप वृष्टिपात करके किरण के समान भूमि को प्रकम्पित करते हैं ॥४ ॥

४१६५. अश्वाइवेदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
मर्याइव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥५ ॥

ये मरुद्गण अश्वों के समान तेजस्वी हैं । ये बन्धु-बान्धवों से प्रीतिपूर्वक संयुक्त हैं । ये विशिष्ट योद्धा वीरों के समान वृष्टि आदि कार्य में प्रकृष्ट युद्ध करने वाले हैं । मनुष्यों के समान ही ये मरुद्गण भली प्रकार प्रवर्द्धमान हैं । वे वृष्टि आदि से सूर्य के तेज को भी क्षीण कर देते हैं ॥५ ॥

४१६६. ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६ ॥

उन मरुद्गणों में कोई ज्येष्ठ नहीं है, कोई कनिष्ठ नहीं है और न कोई मध्यम श्रेणी का है । वे सभी समान तेज से युक्त हैं । वे मेघों का भेदन करने वाले हैं । वे सुजन्मा, मातृरूप पृथ्वी के पुत्र और मानवों के हितैषी हैं । वे दीप्तिमान् मरुद्गण हमारे अभिमुख आगमन करें ॥६ ॥

४१६७. वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥७ ॥

हे मरुद्गणो ! आप पंक्तिबद्ध होकर उड़ने वाले पक्षियों के समान सम्मिलित होकर बलपूर्वक आकाश की सीमाओं तक और विस्तृत पर्वत शिखरों पर परिगमन करते हैं । आपके अश्व मेघों को खण्ड-खण्ड करके वृष्टि-पात करते हैं । आपके ये कर्म सभी देवगण और मनुष्यगण जानते हैं ॥७ ॥

४१६८. मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८ ॥

द्युलोक और पृथ्वी हमारे पोषण के लिए संलग्न हों । विविध दान देने वाली देवी उषा हमारे कल्याण के निमित्त यत्न करें ।हे ऋषिगण !ये रुद्रपुत्र मरुद्गण आपकी स्तुतियों से प्रसन्न होकर जल की वर्षा करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ६०]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुत् अथवा अग्नामरुत् । **छन्द** - त्रिष्टुप् , ७-८ जगती ।]

४१६९. ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः ।

रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१ ॥

हम श्यावाश्व ऋषि इस यज्ञ में भली प्रकार रक्षा करने वाले अग्निदेव की स्तोत्रों से नमनपूर्वक स्तुति करते हैं । वे हम पर प्रसन्न होकर हमारे स्तुति आदि कर्मों को जानें । लक्ष्य तक पहुँचने वाले रथों के समान हम भी स्तोत्रों द्वारा अभीष्ट अन्नादि से अभिपूरित हों । प्रदक्षिणा के साथ हम मरुतों का स्तोत्रपाठ करके प्रवृद्ध हों ॥१ ॥

४१७०. आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥२ ॥

हे रुद्रपुत्र मरुतो ! जब आप बिन्दुदार अश्वों से युक्त, प्रसिद्ध और सुखदायक रथों में अधिष्ठित होते हैं, तो आपके भय से वन भी कम्पित होते हैं । मेघों के कम्पन के साथ पृथ्वी भी कम्पायमान होती है ॥२ ॥

४१७१. पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आपइव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥३ ॥

हे मरुतो ! आपके द्वारा किये गये भीषण शब्द से अत्यन्त पुराने और महान् पर्वत भी भययुक्त होकर कम्पित हो उठते हैं । द्युलोक का शिखर भी प्रकम्पित होता है । हे मरुतो ! विशिष्ट आयुधों को धारण कर जब आप क्रीड़ा करते हैं, तो मेघों के समान सम्मिलित होकर विशेष दौड़ लगाते हैं ॥३ ॥

४१७२. वराइवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥४ ॥

धनवान् वर जैसे अपने शरीर को अलंकारों से सुसज्जित करते हैं, वैसे ये मरुद्गण अपनी शोभा के लिए स्वर्ण अलंकारों और उदक से अपने शरीरों को विभूषित करते हैं । ये कल्याणप्रद और बलशाली मरुद्गण रथ में संयुक्त बैठकर अपने शरीरों में तेज को धारण करते हैं ॥४ ॥

४१७३. अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५ ॥

इन मरुद्गणों में कोई ज्येष्ठ नहीं है, कोई कनिष्ठ नहीं है । ये परस्पर भ्रातृभाव से संयुक्त रहते हैं । ये सौभाग्य प्राप्ति के लिए सतत प्रवृद्ध होते हैं । नित्य तरुण और उत्तम-कर्मा मरुद्गणों के पिता रुद्र और मातृ स्वरूपा दोहन योग्या पृथ्वी हैं, जो मरुतों के लिए उत्तम दिनों की निर्मात्री हैं ॥५ ॥

४१७४. यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्व१ स्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६ ॥

हे सौभाग्यशाली मरुतो ! आप सब द्युलोक के उत्कृष्ट भाग, मध्यम भाग या अधोभाग में अवस्थित होते हैं । हे शत्रु- संहारक मरुतो (रुद्र रूप मरुतो) ! आप इन तीनों भागों से हमारी रक्षा के निमित्त आगमन करें । हे अग्निदेव ! हमारी आहुतियों को आप जानें ॥६ ॥

४१७५. अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७ ॥

हे सर्वज्ञ मरुतो ! आप और अग्निदेव द्युलोक के उच्चतम स्थान से अश्वों पर विराजित होकर इस सोमयाग में आगमन करें । सोमपान से हर्षित होकर हमारे शत्रुओं को प्रकम्पित करें, उनकी हिंसा करें और सोमयाग वाले यजमान के लिए वाञ्छित धन प्रदान करें ॥७ ॥



**४१७६. अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥८ ॥**

हे सम्पूर्ण विश्व के नियन्ता अग्निदेव ! आप अपनी तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त होकर अत्यन्त शोभनीय, तेजों से युक्त, गणों का आश्रय लेकर रहने वाले (समूह में रहने वाले) , पवित्रकर्त्ता, सबके तृप्तिकारक, आयुवर्द्धक मरुद्गणों के साथ सोमपान कर प्रमुदित हों ॥८ ॥

[सूक्त - ६१]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - १-४, ११-१६ मरुद्गण; ५-८ तरन्त महिषी शशीयसी; ९ वैददश्वि पुरुमीळ्ह; १० वैददश्वि तरन्त ; १७-१९ दार्भ्य रथवीति । **छन्द** - गायत्री, ३ निचृत् गायत्री; ५ अनुष्टुप् ; ९ सतोबृहती ।]

४१७७. के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय । परमस्याः परावतः ॥१ ॥

हे श्रेष्ठ नेतृत्व कर्त्ता ! आप सब कौन हैं ?जो अतिशय सुदूरवर्ती आकाश प्रदेशों से यहाँ आगमन करते हैं ॥१॥

४१७८. क्व१ वोऽश्वाः क्वा३ भीशवः कथं शेक कथा यय । पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥२ ॥

हे मरुतो ! आपके अश्व कहाँ हैं ? उनके लगाम कहाँ हैं ? कैसे गमन में समर्थ होते हैं ? कैसे गमन करते हैं ? उनकी पीठ पर की जीन और नथुने में डाली जाने वाली रस्सी कहाँ स्थित है ? ॥२ ॥

४१७९. जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृथे न जनयः ॥३ ॥

अश्व नियामक मरुद्गण जब इन घोड़ों की जाँघों पर चाबुक लगाते हैं, तो घोड़े अपनी जाँघों को प्रसूति के समय नारियों की भाँति फैला लेते (गतिशील हो जाते) हैं ॥३ ॥

४१८०. परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः । अग्नितपो यथासथ ॥४ ॥

हे वीर मरुद्गणो ! आप मनुष्यों के हितैषी, कल्याणरूप जन्म वाले, अग्नि में तपाये गये के सदृश तेजोमय हैं । आप जैसे स्थित हैं, वैसे ही हमारे अभिमुख आगमन करें ॥४ ॥

इस सूक्त की ऋचा क्र० ५ से ९ तक में कुछ विशिष्ट सम्बोधनों का प्रयोग किया गया है, श्यावाश्व, तरंत, उनकी पत्नी शशीयसी आदि; इन्हें सामान्य अर्थों में व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में लिया गया है; किन्तु भाववाचक-गुणवाचक संज्ञा के रूप में भी इनके अर्थों की संगति बैठती है । श्यावाश्व का अर्थ तैलीय रंग का अश्व भी होता है । यह सम्बोधन धूम्रयुक्त यज्ञाग्नि के लिए अनुकूल बैठता है । तरन्त-प्लवन्-उफान के लिए प्रयुक्त होता है । यज्ञ से एक सूक्ष्म उफान उमड़ता है, उसकी सहधर्मिणी शक्ति शशीयसी प्रशंसा योग्य है । वह अश्व (शक्ति कणों) , गौ (पोषक कणों) तथा अवि (रक्षक कणों) के अनुदान देती है । प्रकारांतर से इसे यज्ञीय प्रक्रिया का सूक्ष्म दर्शन कहा जा सकता है -

४१८१. सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् । श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥५॥

श्यावाश्व के द्वारा स्तुत उन वीरों (मरुद्गणों) के अभिवादन के लिए उन तरन्त महिषी शशीयसी देवी ने अपनी दोनों भुजाओं को फैलाया । उस देवी ने (मुझ श्यावाश्व को) अश्व, गौ और सौ भेड़ें (अवि) प्रदान कीं ॥५ ॥

४१८२. उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी । अदेवत्रादराधसः ॥६ ॥

जो पुरुष देवों की उपासना नहीं करता है, धनादि दान नहीं करता है, उसकी अपेक्षा स्त्री शशीयसी सब प्रकार से श्रेष्ठ है ॥६ ॥

४१८३. वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् । देवत्रा कृणुते मनः ॥७ ॥

वे शशीयसी देवी प्रताड़ितों को जानती हैं, प्यासों को भी जानती हैं, धन की कामना वालों को जानती हैं और वे चिरन्तन देव पूजा में अपने चित्त को लगाती हैं ॥७ ॥

४१८४. उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः । स वैरदेय इत्समः ॥८ ॥

उन शशीयसी के अर्धांग पुरुष तरन्त की स्तुति करके भी हम कहते हैं कि स्तुति ठीक प्रकार नहीं हुई; क्योंकि दान के क्रम में वे सदैव समान हैं ॥८ ॥

४१८५. उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥९ ॥

सर्वदा प्रमुदित रहने वाली युवती शशीयसी ने श्यावाश्व का मार्ग प्रदर्शित किया था । उनके रोहित वर्णवाले अश्व उन्हें बहुप्रशंसित, महान् यशस्वी विप्र के मार्ग की ओर वहन करते हैं ॥९ ॥

४१८६. यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् । तरन्तइव मंहना ॥१० ॥

विददश्व के पुत्र ने भी हमें तरन्त के समान सौ गाय और तेजस्वी धन प्रदान किया ॥१० ॥

४१८७. य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे ॥११ ॥

वे मरुद्गण द्रुतगामी अश्वों पर अधिष्ठित होकर अत्यन्त हर्षप्रद मधुर सोमपान करने के निमित्त आते हैं और हमें विपुल अन्न प्रदान करते हैं ॥११ ॥

४१८८. येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा । दिवि रुक्मइवोपरि ॥१२ ॥

जिन मरुतों की शोभा से द्यावा-पृथिवी भी परिव्याप्त होती हैं । वे मरुद्गण ऊपर आकाश में प्रकाशमान सूर्यदेव के सदृश रथों में विशिष्ट आभा विस्तारित करते हैं ॥१२ ॥

४१८९. युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः । शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥१३ ॥

यह मरुद्गणों का समुदाय सदा तरुण और अनिन्दनीय है । ये तेजस्वी रथ में विराजित होकर वृष्टि आदि शुभ कार्य के निमित्त अबाधगति से गमन करते हैं ॥१३ ॥

४१९०. को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः । ऋतजाता अरेपसः ॥१४ ॥

यज्ञादि कर्मों से उत्पन्न हुए ये मरुद्गण शत्रुओं को कँपाने वाले और पाप रहित हैं । ये जहाँ हर्षित होते हैं, उस स्थान को कौन जानता है ? ॥१४ ॥

४१९१. यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया । श्रोतारो यामहूतिषु ॥१५ ॥

हे स्तुतियोग्य मरुतो ! आप मनुष्यों के प्रकृष्ट नियन्ता हैं । उनके बुद्धिपूर्वक किये गये आवाहन को सुनकर आप शीघ्र आगमन करते हैं ॥१५ ॥

४१९२. ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः । आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥१६ ॥

विविध प्रकाशक धनों के स्वामी, शत्रुसंहारक, पूजनीय हे मरुतो ! हमें वाञ्छित धनादि प्रदान करें ॥६ ॥

४१९३. एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह । गिरो देवि रथीरिव ॥१७ ॥

हे रात्रिदेवि ! हमारे इन स्तोत्ररूप वाणियों को उन मरुद्गणों के निमित्त उसी प्रकार वहन करें, जैसे कोई रथी अपने गन्तव्य स्थान तक जाते हैं ॥१७ ॥

४१९४. उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ । न कामो अप वेति मे ॥१८ ॥



हे रात्रि देवि ! रथवीति द्वारा सम्पादित सोमयाग में हमारी कामनाएँ विफल नहीं हुईं, ऐसे मेरे वचन उनसे कहें ॥१८ ॥

४१९५. एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपश्रितः ॥१९ ॥

यह धनवान् रथवीति गोमती नदी के किनारे निवास करते हैं और पर्वतों में भी उनका निवास है ॥१९ ॥

[सूक्त- ६२]

[**ऋषि** - श्रुतवित् आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४१९६. ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥१ ॥

हे मित्रावरुण ! आप सबके अटल आश्रय स्थान हैं, जहाँ सूर्यदेव के अश्वों (रश्मियों) को विमुक्त किया जाता है । सूर्यदेव का ऋत (सत्य) रूप, ऋत (यज्ञ) से ढँका हुआ है । वहाँ सहस्र संख्यक अश्व (रश्मियाँ) स्थित हैं । उन सुन्दर रूपवान् देवों के श्रेष्ठ सौन्दर्य का दर्शन हमने किया है ॥१ ॥

[ऋत का अर्थ सनातन सत्य एवं यज्ञ होता है । सूर्य का ऋत सत्य या यज्ञरूप है । अन्दर क्या है, यह पता नहीं, ऊपर आवरण भी सत्य या यज्ञरूप है, जो सबको दिखायी देता है । ऋषियों ने उस दिव्य मर्म को दिव्य दृष्टि से देखा-समझा है ।]

४१९७. तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥२ ॥

हे मित्र ! हे वरुण ! आप दोनों का महत्त्व बहुत विख्यात है । आप में से एक सतत परिभ्रमणशील सूर्यदेव के साथ दिन में स्थावर का रस दोहन करते हैं । आप स्वयं भ्रमणशील सूर्यदेव की सम्पूर्ण दीप्तियों को प्रवर्धित करते हैं । आपमें से एक का चक्र सर्वत्र गतिशील रहता है ॥२ ॥

४१९८. अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥३ ॥

हे दीप्तिमान् मित्रावरुण ! आप अपने तेजों से द्यावा-पृथिवी को धारण करते हैं । हे शीघ्र दानकर्त्तादेव ! आप ओषधियों को प्रवर्धित करते हैं और गौओं को पुष्ट करते हैं । आपने हमारे निमित्त वृष्टि को प्रवाहित किया है ॥३ ॥

४१९९. आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥४ ॥

हे मित्रावरुणदेवो ! उत्तम प्रकार से प्रयोजित अश्व आप दोनों को वहन करें । सारथी लगाम से उन्हें नियन्त्रित करें । यज्ञ में घृतधारा के प्रवाहित होने के समान आपके द्वारा द्युलोक से नदियाँ प्रवाहित होती हैं ॥४ ॥

४२००. अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥५ ॥

हे बलसम्पन्न मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों शरीर की कान्ति को और भी प्रवर्धित करते हैं । यजुर्वेद के मंत्रों से जैसे यज्ञों की रक्षा होती है; उसी प्रकार आप पृथ्वी की रक्षा करें । हे अन्नवान् ! आप दोनों रथ पर विराजित होकर हमारे यज्ञ स्थान के मध्य आकर अधिष्ठित हों ॥५ ॥

४२०१. **अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।**
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥६ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों सिद्धहस्त, अदृश्य रक्षक और हिंसा न करने वाले हैं । हे तेजस्वीदेवो ! आप दोनों जिस उत्तमकर्मा यजमान के यज्ञों में उसकी रक्षा करते हैं, उसे धनादि से पूर्ण सहस्र स्तंभोंयुक्त गृह भी प्रदान करते हैं ॥६ ॥

४२०२. **हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१ श्वाजनीव ।**
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७ ॥

इन मित्र और वरुणदेवों का रथ स्वर्णमय है, इनके स्तम्भ भी स्वर्णिम हैं । इससे यह रथ आकाश में विद्युत् के सदृश विशिष्ट आभा विकीर्ण करता है । इस (रथ) के कल्याणकारी स्थान में अवस्थित यह रस पात्र, रस से भरा है । हम इस रथ में रखे मधुर रस को प्राप्त करें ॥७ ॥

४२०३. **हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य ।**
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥८ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप उषा के प्रकाशित होने तथा सूर्यदेव के उदित होने पर स्वर्णिम स्तम्भों वाले रथ पर आरोहण करते हैं और उस रथ से आप पृथ्वी और पृथ्वी के प्राणियों को देखते हैं ॥८ ॥

४२०४. **यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।**
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥९ ॥

हे उत्तम दानशील, लोकरक्षक मित्र और वरुणदेवो ! आपका जो घर अत्यन्त विशाल, आघातों से मुक्त और अखण्डित है, उसी घर से हमारी रक्षा करें । हम अभीष्ट धन प्राप्त करें और शत्रुजेता हों ॥९ ॥

[सूक्त - ६३]

[**ऋषि** - अर्चनाना आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - जगती ।]

४२०५. **ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।**
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१ ॥

हे जल-रक्षक, सत्य-धर्मपालक मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों हमारे यज्ञ में आने के लिए परम आकाश में रथ पर अधिष्ठित होते हैं । आप दोनों इस यज्ञ में जिस यजमान की रक्षा करते हैं, उसे आकाश से मधुर जल की वृष्टि कर पुष्ट करते हैं ॥१ ॥

४२०६. **सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।**
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२ ॥

हे स्वर्ग के द्रष्टा मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों इस लोक के सम्राट् हैं । आप यज्ञ में दीप्तिमान् होते हैं । हम आप दोनों से अनुकूल वृष्टि, ऐश्वर्य और अमरता की याचना करते हैं । आपकी प्रकाशमान किरणें आकाश और पृथ्वी में विचरण करती हैं ॥२ ॥

४२०७. **सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।**
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३ ॥



हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों अत्यन्त प्रकाशमान, उग्र बल-सम्पन्न और वृष्टिकर्त्ता हैं । आप द्युलोक और पृथ्वीलोक के अधिपति और विशिष्ट द्रष्टारूप हैं । आप विलक्षण मेघों के साथ गर्जनशील होकर अधिष्ठित हैं । अपने भयंकर बल से कुशलतापूर्वक आप द्युलोक से वृष्टि करते हैं ॥३ ॥

४२०८. माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥४ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों की माया (सामर्थ्य) द्युलोक में आश्रित है, जिससे सूर्यदेव का विलक्षण आयुधरूप प्रकाश सर्वत्र विचरता है । तब आप दोनों उन सूर्यदेव को वर्षणशील मेघों से आच्छादित करते हैं । हे पर्जन्य ! इन देवों से प्रेरित होकर आपसे मधुर जल राशि क्षरित होती है ॥४ ॥

४२०९. रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! युद्धों में जाने की अभिलाषा वाले वीर जैसे अपने रथ को सुसज्जित करते हैं, उसी प्रकार मरुद्गण आपसे प्रेरित होकर वृष्टि के लिए सुखकर रथ को नियोजित करते हैं । आकाश-निवासक वे मरुद्गण विविध लोकों में वृष्टि के लिए विचरते हैं । हे अत्यन्त प्रकाशक देवो ! मरुतों के सहयोग से आप उत्तम जल वृष्टि से हमें सिञ्चित करें ॥५ ॥

४२१०. वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आपके द्वारा मेघ अन्नोत्पादक, तेजोमयी, विचित्र गर्जनायुक्त वाणी कहता है । ये मरुद्गण अपनी सामर्थ्य से मेघों को भली प्रकार विस्तारित करते हैं । आप दोनों अरुणिम वर्ण और निर्मल आकाश से वृष्टि करते हैं ॥६ ॥

४२११. धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥७ ॥

हे मेधावान् मित्रावरुण देवो ! आप दोनों जगत्- कल्याणकारी वृष्टि आदि कर्मों से यज्ञादि व्रतों की रक्षा करते हैं । जल वर्षक मेघों की सामर्थ्य द्वारा आप यज्ञों से सम्पूर्ण लोकों को विशेष प्रकाशित करते हैं । आप पूजनीय और वेगवान् सूर्यदेव को द्युलोक में स्थापित करते हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ६४]

[**ऋषि** - अर्चनाना आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - अनुष्टुप् ; ७ पंक्ति ।]

४२१२. वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे । परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥१ ॥

जिस प्रकार गौएँ अपने गोचर स्थान में जाती हैं, उसी प्रकार सर्वत्र गमनशील, मित्र और वरुणदेवों को हम ऋचाओं से आवाहित करते हैं । ये मित्र और वरुणदेव अपनी सामर्थ्य से सर्वत्र गमन करते हैं । ये स्वर्णधन देने वाले और शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं ॥१ ॥

४२१३. ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते । शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥२ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! हम उत्साहपूर्ण मन से आपका पूजन करते हैं । हम पूजकों को आप दोनों हाथ फैलाकर (उदारतापूर्वक) प्रशंसित सुख प्रदान करें । हम आपकी प्रशस्ति का गान सभी लोकों में करें ॥२ ॥



४२१४. **यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा। अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥३॥**

हम मित्रदेव के पथों का अनुगमन करते हुए निश्चित गति प्राप्त करें। हमारे प्रिय और अहिंसक मित्रदेव के सुख हमें प्राप्त हों ॥३॥

४२१५. **युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा। यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥४॥**

हे मित्र और वरुणदेवो ! हम आपके उस धन को धारण करें, जो धनिक स्तोताओं के घर में परस्पर स्पर्धा का कारण बनता हो ॥४॥

४२१६. **आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ। स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे॥५॥**

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों उत्तम तेजों से युक्त होकर हमारे घर आगमन करें। आप निश्चित ही आयें और धनिक मित्रों को समृद्धियुक्त करें ॥५॥

४२१७. **युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः। उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये॥६॥**

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप यज्ञों में जो अति व्यापक बल धारण करते हैं, उस बल से हमारे अन्न, धन और कल्याण में वृद्धि करें ॥६॥

४२१८. **उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि।**
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ॥७॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप नेतृत्वकर्त्ता और पूजनीय हैं। उषाकाल में स्वर्णिम रश्मियों के प्रकाशित होने पर उपासकों को दोनों हाथों में धनादि धारण कराते हैं। यज्ञ में हमारे द्वारा अभिषुत सोम को ग्रहण करने के लिए आप शकटरूपी हाथों और चक्ररूपी पैरों वाले रथों से दौड़ते हुए आयें ॥७॥

[सूक्त - ६५]

[**ऋषि** - रातहव्य आत्रेय। **देवता** - मित्रावरुण। **छन्द** - अनुष्टुप्; ६ पंक्ति।]

४२१९. **यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः। वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः॥१॥**

जो स्तोता देवों के मध्य में इन मित्र और वरुणदेवों की स्तुति जानता है और उत्तम कर्म करते हुए स्तुतियाँ करता है, ये देवगण उनकी स्तुतियाँ ग्रहण करते हैं। वे स्तोतागण हमें उपदेश करें ॥१॥

४२२०. **ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा। ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने॥२॥**

ये मित्र और वरुणदेव प्रभूत तेज-सम्पन्न, अधिष्ठातारूप और दूरस्थ प्रदेशों से भी आवाहन को सुनने वाले हैं। ये सत्यशील यजमानों के अधिपति, यज्ञ को बढ़ाने वाले और प्रत्येक मनुष्य में सत्य के स्थापनकर्त्ता हैं ॥२॥

४२२१. **ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा।**
स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥३॥

पुरातन, उत्तम ज्ञान सम्पन्न हे मित्रावरुणदेवो ! हम आपके सम्मुख उपस्थित होकर अपनी रक्षा के लिए आपकी स्तुतियाँ करते हैं। उत्तम अश्वों के स्वामी हम अन्नों के दान के लिए आपकी प्रकृष्ट स्तुति करते हैं ॥३॥

४२२२. **मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते। मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः॥४॥**

मित्रदेव पापी स्तोता को भी संरक्षण के लिए महान् आश्रय प्राप्ति का उपाय बताते हैं। हिंसक भक्त के लिए भी मित्रदेव की उत्तम बुद्धि रहती है ॥४॥



४२२३. वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे । अनेहसस्त्वोतय: सत्रा वरुणशेषस: ।।५ ।।

हम मित्रदेव के अत्यन्त व्यापक संरक्षण में स्थित हों । वरुणदेव के सन्तानरूप हम लोग आप से रक्षित होकर तथा निष्पाप होकर संयुक्तरूप से रहें ।।५ ।।

४२२४. युवं मित्रेमं जनं यतथ: सं च नयथ: ।
मा मघोन: परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ।।६ ।।

हे मित्रावरुण देवो ! जो मनुष्य आप दोनों का स्तवन करते हैं, उन्हें आप उत्तम मार्ग से ले जाते हैं । हे ऐश्वर्यशालीदेवो ! हम यजमानों का त्याग न करें, ऋषियों की संतानों का त्याग न करें । सोमदेव यज्ञादि कार्य में हमारी रक्षा करें ।।६ ।।

[सूक्त - ६६]

[**ऋषि** - रातहव्य आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

४२२५. आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा । वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ।।१।।

हे ज्ञान-सम्पन्न मनुष्य ! आप शत्रुओं के हिंसक और उत्तम कर्म करने वाले दोनों देवों मित्र और वरुण को आवाहित करें । उदकरूप वाले, अन्न- उत्पादक, महान् वरुणदेव के लिए जल प्रदान करें । ।१ ।।

४२२६. ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्य१ माशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्व१र्ण धायि दर्शतम् ।।२ ।।

आप दोनों देवों का बल सज्जनों के लिए अहिंसक और असुरों के लिए विनाशक है । आप दोनों सम्पूर्ण बलों के अधिष्ठाता हैं । जैसे मनुष्यों में कर्म-सामर्थ्य और सूर्यदेव में प्रकाश स्थापित होकर दर्शनीय होता है, उसी प्रकार आप में बल स्थापित होकर दर्शनीय होता है ।।२ ।।

४२२७. ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् । रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ।।३।।

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों रातहव्य (हव्य प्रदाता) की उत्तम स्तुतियों से स्तुत होते हैं और आवाहित होने पर अत्यन्त विस्तृत मार्गों से भी गमन करते हैं ।।३ ।।

४२२८. अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता । नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ।।४ ।।

हे अद्‌भुत कार्य करने वाले, बल-सम्पन्न मित्र और वरुणदेवो ! हम कुशल साधकों की स्तुतियों से आप दोनों प्रशंसित होते हैं । आप दोनों अनुकूल मन से यजमानों के स्तोत्रों को जानें ।।४ ।।

४२२९. तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम् ।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभि: ।।५ ।।

हे पृथिवीदेवि ! हम ऋषियों की, अन्न की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए आप विपुल जल-राशि से परिपूर्ण हैं । ये मित्र और वरुणदेव अपने गमनशील साधनों से वह विपुल जल-वर्षण करते हैं ।।५ ।।

४२३०. आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरय: ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ।।६ ।।

हे दूरद्रष्टा मित्र और वरुणदेवो ! हम स्तोताजन आप दोनों का आवाहन करते हैं, जिससे हम आपके अत्यन्त विस्तीर्ण और बहुतों द्वारा संरक्षित राज्य में आवागमन करें ।।६ ।।



[सूक्त - ६७]

[ऋषि - यजत आत्रेय। देवता - मित्रावरुण। छन्द - अनुष्टुप्।]

४२३१. **बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत्। वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे॥१॥**

हे दीप्तिमान् आदित्य पुत्र मित्र, वरुण और अर्यमादेवो ! आप निश्चय ही अपराजेय, पूजनीय और अत्यन्त महान् बल को धारण करते हैं ॥१॥

४२३२. **आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः। धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा॥२॥**

हे मित्र और वरुणदेवो ! जब आप अत्यन्त रमणीय यज्ञभूमि में आकर अधिष्ठित होते हैं, तब हमें सुख प्रदान करें ॥२॥

४२३३. **विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा। व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः॥३॥**

सर्वज्ञाता वरुण, मित्र और अर्यमा- ये सभी देव हमारे यज्ञों में अपने स्थान के अनुरूप सुशोभित होते हैं और हिंसकों से मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥३॥

४२३४. **ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने। सुनीथासः सुदानवोंऽहोश्चिदुरुचक्रयः॥४॥**

वे देवगण (वरुण, मित्र और अर्यमा) सत्यस्वरूपवान्, यज्ञ-व्रतावलम्बी और यज्ञ-रक्षक हैं। वे प्रत्येक यजमान को सत्पथ पर प्रेरित करने वाले और उत्तम- दानशील हैं। वे वरुणादि देवगण पापी स्तोताओं को भी (शुद्ध करके) ऐश्वर्य देने वाले हैं ॥४॥

४२३५. **को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम्। तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः॥५॥**

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों के मध्य ऐसे कौन हैं, जो मनुष्यों में स्तुत नहीं होते ? हमारी बुद्धि आपकी स्तुति में नियोजित होती है। अत्रि वंशजों की बुद्धि भी आपकी स्तुति में नियोजित होती है ॥५॥

[सूक्त - ६८]

[ऋषि - यजत आत्रेय। देवता - मित्रावरुण। छन्द - गायत्री।]

४२३६. **प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा। महिक्षत्रावृतं बृहत्॥१॥**

हे ऋत्विजो ! आप मित्र और वरुणदेव हेतु तेज ध्वनि से गायन करें। महानतायुक्त, क्षात्रबल से सम्पन्न वे दोनों यज्ञ-स्थल पर विस्तृत स्तोत्रगान-श्रवण हेतु उपस्थित हों ॥१॥

४२३७. **सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च। देवा देवेषु प्रशस्ता॥२॥**

तेजस्विता के उत्पत्ति केन्द्र, मित्र और वरुण दोनों अधिपतियों की देवगणों के बीच प्रशंसा होती है ॥२॥

४२३८. **ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य। महि वां क्षत्रं देवेषु॥३॥**

देवताओं में प्रसिद्ध, पराक्रमी, हे मित्र और वरुणदेवो ! आप हमें पृथ्वी एवं द्युलोक का अपार वैभव प्रदान करें, हम आपका स्तवन करते हैं ॥३॥

४२३९. **ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते। अद्रुहा देवौ वर्धेते॥४॥**

सत्य से सत्य का पालन करने वाले अभीष्ट बल प्राप्त करते हैं। द्रोह न करने वाले मित्र और वरुणदेव अपनी सामर्थ्य से वृद्धि पाते हैं ॥४॥

४२४०. **वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः। बृहन्तं गर्तमाशाते॥५॥**



वर्षा के लिए जिनकी वंदना की जाती है, नियमानुसार सब कुछ प्राप्त करने वाले, दान की प्रवृत्ति वाले, अन्नों के अधिपति वे मित्र और वरुणदेव श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ६९]

[**ऋषि** - उरुचक्रि आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४२४१. त्री रोचना वरुण त्रींरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥१ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप तीन विशिष्ट तेजों, तीन द्युलोकों और तीन अन्तरिक्ष लोकों को धारण करते हैं । आप दोनों, क्षत्रियों की सामर्थ्य को प्रवर्द्धित करते हैं और अक्षय कर्मों की रक्षा करते हैं ॥१ ॥

४२४२. इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों की अनुकम्पा से गौएँ दुधारू होती हैं और नदियाँ मधुर जल का दोहन करती हैं । आप दोनों के साथ संयुक्त होकर जल-वर्षक, उदक-धारक और दीप्तिमान् तीन देव (अग्नि, वायु और आदित्य), तीन लोकों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक) के अधिपति रूप में स्थित हैं ॥२ ॥

४२४३. प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥३ ॥

हम प्रातः सवन में देवी अदिति का आवाहन करते हैं और माध्यन्दिन सवन में सूर्यदेव का स्तवन करते हैं । हे मित्रावरुण देवो !हम धन-प्राप्ति के लिए, पुत्र और पौत्रों के कल्याण के लिए यज्ञ में आपकी स्तुति करते हैं ॥३ ॥

४२४४. या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥४ ॥

हे आदित्य-पुत्र मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों द्युलोक और तेजस्वी पृथ्वीलोक को धारण करने वाले हैं । आप दोनों के अटल नियमों की अवहेलना इन्द्रादि अमरदेव भी नहीं करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - ७०]

[**ऋषि** - उरुचक्रि आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - गायत्री ।]

४२४५. पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥१ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों के पास प्रचुर मात्रा में उपयोगी साधन उपलब्ध हैं । आपकी श्रेष्ठ बुद्धि की अनुकूलता हमें सदैव प्राप्त होती रहे ॥१ ॥

४२४६. ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे । वयं ते रुद्रा स्याम ॥२ ॥

द्वेष न करने वाले आप दोनों (मित्र और वरुण) की हम भली-भाँति वन्दना करते हैं । हमें आपकी मित्रता का लाभ मिले तथा धन-धाम की प्राप्ति हो ॥२ ॥

४२४७. पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥३ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! श्रेष्ठ संरक्षक के रूप में अपने साधनों से हमारा संरक्षण एवं पालन करें । उस

सामर्थ्य के बल पर हम भी शत्रुओं को पराजित कर सकें ॥३ ॥

४२४८. मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः । मा शेषसा मा तनसा ॥४ ॥

हे अद्‌भुतकर्मा मित्र और वरुणदेवो ! हम अपने शरीर द्वारा किसी अन्य के धन का उपभोग न करें । अपने सम्बन्धियों द्वारा भी किसी अन्य के धन का उपभोग न करें ॥४ ॥

[दूसरों के धन के अधिकार की कामना ही पतन का कारण बनती है, इसलिए ऋषि अपने को और अपनों को उससे बचाकर चलना चाहते हैं ।]

[सूक्त - ७१]

[**ऋषि** - बाहुवृक्त आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - गायत्री ।]

४२४९. आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा । उपेमं चारुमध्वरम् ॥१ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों शत्रु-हिंसक और शत्रु-नाशक हैं । आप दोनों हमारे अत्यन्त निर्मल यज्ञ में पधारने की कृपा करें ॥१ ॥

४२५०. विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥२ ॥

हे प्रकृष्ट ज्ञानसम्पन्न मित्र और वरुणदेवो ! आप सम्पूर्ण विश्व के प्रशासक हैं और सब पर प्रभुत्व रखने वाले हैं । आप हमारी अभिलषित बुद्धि को तृप्त करें ॥२ ॥

४२५१. उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः । अस्य सोमस्य पीतये ॥३ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! हम अभिषुत-सोम युक्त हव्यादि देने वाले हैं । आप हमारे द्वारा अभिषुत सोम का पान करने के लिए हमारे पास आगमन करें ॥३ ॥

[सूक्त - ७२]

[**ऋषि** - बाहुवृक्त आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - उष्णिक् ।]

४२५२. आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥१ ॥

अत्रि वंशजों की तरह हम भी मित्र और वरुणदेवों का स्तुतियों द्वारा आवाहन करते हैं । हे देवो ! सोमपान के निमित्त कुशाओं पर अधिष्ठित हों ॥१ ॥

४२५३. व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥२ ॥

हे शत्रुविनाशक मित्र और वरुणदेवो ! आप अपने धर्मयुक्त नियमों के कारण अटल-आश्रय में स्थित हैं । आप सोमपान के निमित्त कुश के आसन पर अधिष्ठित हों ॥२ ॥

४२५४. मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये । नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥३ ॥

हे मित्रावरुणो !हमारे यज्ञ को स्वेच्छापूर्वक ग्रहण करें । आप सोमपान के निमित्त कुशाओं पर आसीन हों ॥३ ॥

[सूक्त - ७३]

[**ऋषि** - पौर आत्रेय । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

४२५५. यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना । यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥१ ॥

हे अनेक स्थानों (यज्ञों) में भोज्य पदार्थ पाने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दूरस्थ देश में हों अथवा निकटवर्ती



बहुत प्रदेशों में हों अथवा अन्तरिक्ष में हों, आप जहाँ भी हों, उन स्थानों से हमारे पास पधारें ॥१ ॥

४२५६. इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता । वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥२॥

इन अश्विनीकुमारों का सम्बन्ध अनेक यजमानों से है, जो विविध रूपों को धारण करने वाले और वरणीय हैं । ये अबाधित गति वाले और सर्वोत्कृष्ट बलों वाले हैं । इन्हें उत्तम आहुतियों के निमित्त हम आवाहित करते हैं॥२ ॥

४२५७. ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः । पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः॥ ३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने रथ के एक चक्र को सूर्य की शोभा बढ़ाने के लिए नियमित किया तथा अन्य (दूसरे) चक्र से मनुष्यों के युगों (कालों) को प्रकट करने के लिए आप सब ओर विचरते हैं ॥३ ॥

[अश्विनीकुमारों के रथ (दायित्व) का एक चक्र (व्यवस्थाक्रम) सूर्य के प्रभाव को बनाये रखने के लिए सक्रिय है तथा दूसरा चक्र (सर्किट) पृथ्वी की गति के आधार पर दिन-रात रूप काल विभाजन क्रम के साथ गतिशील रहता है ।]

४२५८. तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे । नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥४ ॥

हे सर्वत्र व्याप्त अश्विनीकुमारो !हम जिन स्तोत्रों द्वारा आप दोनों के अनुकूल स्तुति करते हैं, वे भली प्रकार सम्पादित हों ।हे निष्पाप और विभिन्न कर्मों के लिए प्रसिद्ध देवो !आप हमारे साथ बन्धुभाव में ही संयुक्त हों ॥४ ॥

४२५९. आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा । परिवामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥५॥

हे अश्विनीकुमारो ! जब आप दोनों के रथ पर सूर्या (उषा) आरोहित होती हैं, तब अत्यन्त दीप्त अरुणिम रश्मियाँ आपको चारों ओर से घेर लेती हैं ॥५ ॥

४२६०. युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा । घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥६ ॥

हे नेतृत्ववान् अश्विनीकुमारो ! अत्रि ऋषि ने जब आप दोनों की स्तुति करते हुए अग्नि के सुखप्रद रूप को जाना था, तब उन्होंने कृतज्ञ चित्त से आपका स्मरण किया था ॥६ ॥

४२६१. उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः । यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप जब गमन करते हैं, तो आपके सुदृढ़, ऊँचे , सतत गमनशील रथ का शब्द सुनायी पड़ता है, तब अत्रि ऋषि अपने कार्यों से आप दोनों को आकृष्ट करते हैं ॥७ ॥

४२६२. मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥८ ॥

हे मधु मिश्रित करने वाले रुद्रपुत्र अश्विनीकुमारो ! हमारी सुमधुर स्तुतियाँ आपमें मधुरता का सिंचन करती हैं । आप दोनों अन्तरिक्ष की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं और पके हुए हविष्यान्नों से परिपूर्ण होते हैं ॥८ ॥

४२६३. सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा । ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! विद्वज्जन आप दोनों को अत्यन्त सुखदायक बताते हैं, वह (कथन) निश्चय ही सत्य है । यज्ञ में आगमन के निमित्त आप आवाहित होते हैं, अतएव यहाँ आगमन कर हमारे निमित्त सुखप्रदायक हों ॥९ ॥

४२६४. इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।
या तक्षाम रथाँइवावोचाम बृहन्नमः ॥१० ॥

रथों के समान निर्मित ये मन्त्रादि स्तोत्र अश्विनीकुमारों के निमित्त विरचित किये गये हैं । ये स्तोत्र उनके निमित्त सुखकारी और प्रीतिवर्द्धक हों । नमनयुक्त स्तोत्र भी उनके निमित्त निवेदित हैं ॥१० ॥



[सूक्त - ७४]

[**ऋषि** - पौर आत्रेय । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

४२६५. **कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू । तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥१॥**

हे उत्कृष्ट मन-सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों द्युलोक से आगमन कर यज्ञ-भूमि पर स्थित हों । हे धनवर्षक देवो ! आप अत्रि ऋषि के उन स्तोत्रों का श्रवण करें, जो आपके निमित्त निवेदित किये गये हैं ॥१ ॥

४२६६. **कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।**
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥२ ॥

हे असत्यरहित दीप्तिमान् अश्विनीकुमारो ! आप दोनों कहाँ हैं ? द्युलोक में किस स्थान में आप सुने जाते हैं ? किस यजमान के गृह आप आगमन करते हैं ? तथा किस स्तोता की स्तुतियों के साथ आप संयुक्त होते हैं ? ॥२॥

४२६७. **कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।**
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप किस यजमान के लिए गमन करते हैं ? किसके पास संयुक्त होते हैं ? किसके अभिमुख गमन करने के लिए रथ नियोजित करते हैं ? किसके स्तोत्रों से प्रसन्नचित्त होते हैं ? हम आप दोनों की प्राप्ति की कामना करते हैं ॥३ ॥

४२६८. **पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः । यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥४ ॥**

हे अश्विनीकुमारो ! आप पौर ऋषि के लिए जलयुक्त मेघों को प्रेरित करें । जैसे वन में व्याध सिंह को प्रताड़ित करता है, वैसे आप इन मेघों को प्रताड़ित करें ॥४ ॥

४२६९. **प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।**
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपने जराजीर्ण हुए च्यवन ऋषि की कुरूपता को कवच के सदृश उतार दिया और उन्हें पुनः युवक रूप बना दिया, तब वे वधू के द्वारा कामना योग्य सुन्दर रूप से युक्त हुए ॥५ ॥

४२७०. **अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृशि श्रिये ।**
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके स्तोतागण इस यज्ञ-स्थल में विद्यमान हैं । इस समृद्धि के लिए आपके दृष्टि क्षेत्र में अविस्थत हों । हे सेनारूप धनों से युक्त अश्विनीकुमारो ! हमारी पुकार सुनें । अपने संरक्षण साधनों के साथ यहाँ आगमन करें ॥६ ॥

४२७१. **को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।**
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥७ ॥

हे ज्ञानियों द्वारा वन्दनीय और विपुल सेनारूप धन वाले अश्विनीकुमारो ! अनेकों प्रजाओं में से कौन ज्ञानी आपको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करता है ? कौन यजमान आपको यज्ञों द्वारा सम्यक् रूप से तृप्त करता है ? ॥७ ॥

४२७२. **आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।**
पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥८ ॥



हे अश्विनीकुमारो ! अन्य देवों के रथों के मध्य सर्वाधिक वेगवान् आपका रथ इधर आगमन करे । मानवों में हमारी कामना करने वाला, अनेकों शत्रुओं का संहार और यजमानों द्वारा प्रशंसित यह रथ इधर आगमन करे ॥८ ॥

४२७३. शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥९ ॥

हे मधुयुक्त अश्विनीकुमारो ! आपके निमित्त निवेदित स्तोत्र हमारे लिए सुखदायक हों । हे विशिष्ट ज्ञान-सम्पन्न देवो ! श्येन पक्षी के समान वेगवान् अश्वों से हमारे सम्मुख आगमन करें ॥९ ॥

४२७४. अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमारे आवाहन का श्रवण करें । चाहे जहाँ आप स्थित हों, सुनें । हम यज्ञ में आपके निमित्त उत्तम अन्नों को भली प्रकार मिश्रित कर हविरूप प्रशंसित भोज्य-पदार्थ निवेदित करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ७५]

[**ऋषि** - अवस्यु आत्रेय । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - पंक्ति ।]

४२७५. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके अत्यन्त प्रिय बलयुक्त, धनवाहक रथ को स्तोता ऋषि अपने स्तोत्रों से विभूषित करते हैं । हे मधुविद्या के ज्ञाताओ ! आप हमारे आवाहन का श्रवण करें ॥१ ॥

४२७६. अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अन्यों को लाँघकर हमारे निकट आएँ । हम अपने शत्रुओं पर विजय पाने में सफल हों । शत्रुनाशक, स्वर्ण रथयुक्त, उत्तम धनसम्पन्न, नदियों की भाँति प्रवहमान, हे मधुविद्याविद् ! आप हमारे आवाहन का श्रवण करें ॥२ ॥

४२७७. आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३ ॥

स्वर्णरथी, शत्रु उत्पीड़क, रत्नधारक, धन-धान्ययुक्त, यज्ञप्रेमी हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे यज्ञ में आकर प्रतिष्ठित हों । हे मधु विद्याविशारद ! आप हमारे आवाहन का श्रवण करें ॥३ ॥

४२७८. सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥४ ॥

हे धनवर्षक अश्विनीकुमारो ! हम स्तोताजन आप दोनों की उत्तम स्तुति करते हैं । अपनी वाणी (मंत्रशक्ति) को आपके रथ में स्थापित किया है । आपका महान् अन्वेषक (साधक-याजक) आपके निमित्त हविष्यान्न तैयार करता है । हे मधुविद्याविद् देवो ! आप हमारे आवाहन को सुनें ॥४ ॥

४२७९. बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५ ॥

हे अश्विनीदेवो ! आप दोनों द्रुतगामी रथ पर आरूढ़ रहने वाले, बोधयुक्त मन वाले एवं स्तुतियाँ सुनने वाले हैं। आप निश्छल मन वाले च्यवन ऋषि के समीप अश्वों से पहुँचे थे। हे मधुविद्या के ज्ञातादेवो ! आप हमारे आवाहन को सुनें ॥५ ॥

४२८०. आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६ ॥

हे नेतृत्वकर्त्ता अश्विनीकुमारो ! मन के संकेत मात्र से योजित होने वाले, बिन्दुदार चिह्नों वाले, वेगवान् अश्व आप दोनों को सोमपान के निमित्त सम्पूर्ण सुखों के साथ हमारी ओर लायें। हे मधुविद्याविशारद देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥६ ॥

४२८१. अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७ ॥

हे अडिग, असत्यरहित अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारे अभिमुख आगमन करें। हमारा निवेदन अस्वीकार न करें। हे सर्वदा विजयशील देवो ! आप दोनों अत्यन्त दूरस्थ प्रदेश से भी हमारे यज्ञगृह में आगमन करें। हे मधुविद्या के ज्ञाता देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥७ ॥

४२८२. अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८ ॥

हे शुभ कर्मों के पालक, अडिग, अश्विनीकुमारो ! इस यज्ञ में आप दोनों, स्तुति करने वाले अवस्यु के समीप जाकर उन्हें आप दोनों विभूषित करें। हे मधुविद्याविद् देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥८ ॥

४२८३. अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥९ ॥

हे धनवर्षक, शत्रुनाशक, अश्विनीकुमारो ! उषा प्रकाशित हुई है। ऋतु के अनुरूप तेजस्वी किरणों वाले अग्निदेव वेदी पर पूर्णतया संस्थापित हुए हैं। आपका अनश्वर रथ योजित किया गया है। हे मधु विद्याविद् देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥९ ॥

[सूक्त - ७६]

[**ऋषि** - अत्रि भौम। **देवता** - अश्विनीकुमार। **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४२८४. आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१ ॥

उषा के मुखरूप ये अग्निदेव दीप्तिमान् हो गये हैं (उषाकाल में अग्निहोत्र प्रारंभ हो गया है) तथा दिव्य स्तुतियाँ भी प्रारंभ हो गयी हैं। हे रथ में विराजित अश्विनीकुमारो ! हमें दर्शन देकर यज्ञ में पीने योग्य सोम के समीप उपस्थित होने की कृपा करें ॥१ ॥

४२८५. न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप संस्कारितों (प्राणियों, पदार्थों, क्रियाओं) को क्षति नहीं पहुँचाते हैं। इस यज्ञ में



उपस्थित होने वाले, आपके निमित्त स्तुति की जाती है । दिन के प्रारंभ होते ही हव्य पदार्थ लेकर आते हुए हविदाता (याजक) को आप सुख प्रदान करने वाले हैं ॥२ ॥

४२८६. उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! दिन में गाय दुहने (सायं गोधूलि वेला) के समय, प्रातः सूर्योदय के समय, मध्याह्न काल में, दिन के प्रखर रूप (अपराह्न काल) में अर्थात् सम्पूर्ण दिन-रात्रि में हमेशा सुखदायी, रक्षा करने के साधनों सहित पधारें । अभी सोमपान की क्रिया प्रारंभ नहीं हुई है । अतः आप शीघ्र पधारें ॥३ ॥

४२८७. इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के लिए यह उत्तर वेदी आपका पुरातन निवास योग्य स्थान है । ये सम्पूर्ण गृह और आश्रय-स्थान भी आपके ही हैं । आप उदक पूर्ण मेघों द्वारा अन्तरिक्ष से हमारे निमित्त अन्न और बल वहन करके यहाँ आएँ ॥४ ॥

४२८८. समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५ ॥

हम सब अश्विनीकुमारों के नूतन संरक्षण-सामर्थ्यों, सुखदायक अनुग्रहों और उत्तम नेतृत्व से संयुक्त हों । हे अविनाशी अश्विनीकुमारो ! हमारे निमित्त सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण सौभाग्य और वीर पुत्रों को प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - ७७]

[ऋषि - अत्रि भौम । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४२८९. प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! प्रातः काल में सब देवों से पहले आने वाले अश्विनीकुमारों का आप पूजन करें । वे अदानशील और लोभी (राक्षसों) से पूर्व ही आकर सोमपान करते हैं । वे प्रातः यज्ञ को सम्यक् रूप से धारण करते हैं । पूर्वकालीन ऋषिगण उनकी प्रशंसा करते हैं ॥१ ॥

४२९०. प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! अश्विनीकुमारों के लिए प्रातः काल यजन करें । उन्हें हव्यादि प्रदान करें । सायंकालीन प्रदत्त हव्य देवों को सेवनीय नहीं होता । वह देवों के पास गमन करने वाला नहीं होता । हमसे अन्य जो कोई पूर्व में यजन करता है, वह सब देवों को तृप्त करता है । हमसे पहले जो यजन करने वाला होता है, वह देवों के लिए विशिष्ट प्रीतिकारक होता है ॥२ ॥

४२९१. हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों का स्वर्ण से आच्छादित, मनोहरवर्ण, जलवर्षक, अन्नधारक, मन के तुल्य

वेगवान्, वायु के सदृश गमनशील रथ हमारी ओर आगमन करता है । आप उस रथ द्वारा सम्पूर्ण बाधाओं का अतिक्रमण करते हुए आगमन करें ॥३ ॥

४२९२. यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥४ ॥

जो यजमान यज्ञ में हविर्विभाग करने के समय अश्विनीकुमारों को विपुल हव्यादि प्रदान करता है; वह अपने पुत्रों का शुभ कर्मों से पालन करता है । जो यज्ञादि कर्मों के निमित्त अग्नि उद्दीप्त नहीं करता; वह सर्वदा हिंसित होता है ॥४ ॥

४२९३. समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५ ॥

हम सब अश्विनीकुमारों के नूतन संरक्षण सामर्थ्यों, सुखदायक अनुग्रहों और उत्तम नेतृत्व से संयुक्त हों । हे अविनाशी अश्विनीकुमारो ! हमारे निमित्त आप सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण सौभाग्य और वीर पुत्रों को प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - ७८]

[**ऋषि** - सप्तवध्रि आत्रेय । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - अनुष्टुप्; १-३ उष्णिक्, ४त्रिष्टुप् ।]

४२९४. अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे यज्ञ में पधारें । जैसे दो धवल हंस जल की ओर जाते हैं, वैसे आप दोनों सोम के निकट आएँ ॥१ ॥

४२९५. अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जैसे हरिण और गौर मृग तृणादि के प्रति दौड़ते हैं और हंस जैसे उदक के प्रति अवतीर्ण होते हैं; उसी प्रकार आप दोनों अभिषुत सोम के निकट अवतीर्ण हों ॥२ ॥

४२९६. अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥३ ॥

हे सेना एवं धन रखने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारे इष्ट सिद्धि के लिए यज्ञ को ग्रहण करें । जैसे हंस उदक के प्रति अवतीर्ण होते हैं, उसी प्रकार आप दोनों अभिषुत सोम के निकट अवतीर्ण हों ॥३ ॥

४२९७. अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! निवेदन करती हुई स्त्री के समान अत्रि ऋषि ने गहन तमिस्रा से व्याप्त लोक से मुक्ति के लिए आपका आवाहन किया था । तब आप अपने सुखकारी और नूतन रथ से श्येन पक्षी के सदृश वेगपूर्वक आये थे ॥४ ॥

४२९८. वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥५ ॥

हे वनस्पतिदेव ! आप प्रसवोन्मुख योनि की भाँति विस्तृत (नव जीवन प्रदायक के रूप में प्रकट-विकसित) हों । हे अश्विनीकुमारो ! हमारा आवाहन सुनकर आप आएँ और मुझ सप्तवध्रि (इस नाम के व्यक्ति अथवा सात स्थानों से बँधे हुए प्राणी) को मुक्त करें ॥५ ॥



[आगे की ऋचाओं से स्पष्ट होता है कि इस ऋचा में वनस्पति (वनौषधियों) द्वारा निर्विघ्न प्रसूति का संकेत है। गर्भस्थ शिशु अथवा जीव शरीर के सप्त धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं वीर्य) के विकारों से बँधा होता है। वह मुक्ति की कामना से अश्विनीकुमारों का आवाहन करता है।]

४२९९. **भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।**
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! सप्तवध्रि ने भयभीत होकर मुक्ति के लिए निवेदन किया, तो आप दोनों ने अपनी माया (कुशलता) से वनस्पति को विदीर्ण कर दिया ॥६ ॥

४३००. **यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः। एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥७ ॥**

वायु जिस प्रकार सरोवर को स्पन्दित करता है, उसी प्रकार आपका गर्भ दस मास का होकर, स्पन्दन युक्त होकर प्रकट हो ॥७ ॥

४३०१. **यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति। एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥८ ॥**

जैसे वायु , वन और समुद्र प्रकम्पित होते रहते हैं; उसी प्रकार दस मास का गर्भस्थ जीव जरायु के साथ बाहर प्रकट हो ॥८ ॥

४३०२. **दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।**
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९ ॥

माता के गर्भ में दस मास पर्यन्त सोता हुआ बालक जीवित और क्षतिरहित अवस्था में जननी से सुखपूर्वक जन्म ग्रहण करे ॥९ ॥

[सूक्त - ७९]

[**ऋषि** - सत्यश्रवा आत्रेय। **देवता** - उषा। **छन्द** - पंक्ति ।]

४३०३. **महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।**
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१ ॥

हे सुप्रकाशित उषादेवि ! पूर्व की भाँति हमें ज्ञान युक्त बनायें, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए बोध दें। हे श्रेष्ठ कुल वाली, सत्य भाषिणी , वय्य के पुत्र सत्यश्रवा (सच्ची कीर्ति वाले) को अपनी कृपा का पात्र बनायें ॥१ ॥

४३०४. **या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः।**
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२ ॥

हे द्युलोक की पुत्री उषादेवि ! आप शुचद्रथ के पुत्र सुनीथ के लिए अन्धकार को दूर करके प्रकाशित (प्रकट) हुईं। ऐसी आप, वय्य के पुत्र सत्यश्रवा पर अनुग्रह (प्रकाश) वृष्टि करें ॥२ ॥

४३०५. **सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः।**
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

हे आदित्य पुत्री उषादेवि ! आप हमें प्रचुर धन दें और आज हमारे अन्धकार को मिटायें। हे बलयुक्त , तमनाशक , प्रसिद्ध , सत्यरूपिणि उषादेवि ! वय्य के पुत्र सत्यश्रवा पर कृपा करें ॥३ ॥



४३०६. **अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।**
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४ ॥

हे प्रकाशवती उषादेवि ! ये (स्तोतागण) दीप्तिमान् उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं । वे ऐश्वर्य द्वारा उत्तम शोभावान् और उत्तम दानशील हैं । हे धनवती, जन्म से शोभावती उषादेवि ! स्तोतागण अश्व प्राप्ति के लिए आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥४ ॥

४३०७. **यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।**
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५ ॥

हे उषादेवि ! जो स्तोतागण धन-प्राप्ति के लिए आपका स्तवन करते हैं, वे निश्चय ही ऐश्वर्य धारण करते हैं और अक्षय हव्यादि रूप धन देते रहते हैं । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्वप्राप्ति के लिए स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥५ ॥

४३०८. **ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।**
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६ ॥

हे धनवती उषादेवि ! इन स्तोताओं को उत्तमवीर पुत्रों से युक्त अन्न प्रदान करें, जिससे वे धन-सम्पन्न होकर हमें विपुल धन दें । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के लिए स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते है ॥६ ॥

४३०९. **तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।**
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥७ ॥

हे धनवती उषादेवि ! जो यजमान-स्तोता हमें गौओं, अश्वों से युक्त धन प्रदान करते हैं; उनके लिए आप तेजस्वी धन और प्रभूत अन्न प्रदान करें । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के लिए स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥७ ॥

४३१०. **उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।**
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥८ ॥

हे सूर्य पुत्री उषादेवि ! सूर्य एवं अग्नि की शुभ्र, प्रदीप्त रश्मियों के साथ हमारी ओर आगमन करें । हमें गौओं से युक्त अन्न प्रदान करें । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के निमित्त स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥८ ॥

४३११. **व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।**
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥९ ॥

हे सूर्य पुत्री प्रकाशवती उषादेवि ! हमारे कर्म के लिए विलम्ब न करें । जैसे राजा अपने शत्रु और चोर को सन्तप्त करते हैं, वैसे सूर्यदेव अपने तेज से आपको सन्तप्त न करें । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के निमित्त स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥९ ॥

४३१२. **एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।**
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥१० ॥

हे उषादेवि ! आप अभिलषित धन और अतिरिक्त धन भी प्रदान करने में समर्थ हैं । आप स्तोताओं का तम



(अन्तर्तम) विनष्ट करने वाली हैं और उनका सन्ताप दूर करने वाली हैं । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के निमित्त स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ८०]

[**ऋषि** - सत्यश्रवा आत्रेय । **देवता** - उषा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४३१३. द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥१ ॥

दीप्तिमान् रथ पर आरोहित रहने वाली, सर्वव्यापिनी, यज्ञ द्वारा पूजनीय, अरुणिम वर्णयुक्त, दीप्तिमती तथा सूर्यदेव के आगे चलने वाली उषा देवी के प्रति ज्ञानीजन विचारपूर्वक श्रेष्ठ स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥१ ॥

४३१४. एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥२ ॥

ये दर्शनीय उषादेवी प्रसुप्तजनों को चैतन्य करती हैं और मार्गों को सुगम बनाती हुई अत्यन्त व्यापक रथों पर आरूढ़ होकर सूर्यदेव के आगे-आगे गमन करती हैं । महती और विश्वव्यापिनी उषादेवी दिन के आरम्भ में प्रकाश विस्तीर्ण करती हैं ॥२ ॥

४३१५. एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥३ ॥

ये उषादेवी अरुणाभ वृषभों (किरणों) को नियोजित करने वाली हैं और अक्षय धनों को स्थिर रखती हैं । ये अत्यन्त दीप्तिमती, बहुतों द्वारा स्तुत और सबके द्वारा वरण करने योग्य हैं, जो मार्गों को प्रकाशित करती हुई स्वयं प्रकाशमती हैं ॥३ ॥

४३१६. एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥४ ॥

ये उषादेवी रात्रि और दिवस दोनों कालों में ऊर्ध्व और निम्न द्युलोक में गमन करती हुई पूर्व दिशा में प्रकट होती हैं ।ये सूर्यदेव के मार्ग का अनुवर्तन करती हैं ।ज्ञानवती स्त्री के सदृश ये दिशाओं का विस्मरण नहीं करतीं ॥४॥

४३१७. एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५ ॥

स्नान करके ऊपर (जल से बाहर) निकलती हुई शुभ्रवर्णा स्त्री की भाँति ये उषादेवी अपने शरीर को प्रकाशित करती हुई हमारे सम्मुख पूर्व से उदित होती हैं । ये सूर्यपुत्री उषादेवी द्वेषरूपी तमिस्रा को विदीर्ण करती हुई प्रकाश के साथ आगमन करती हैं ॥५ ॥

४३१८. एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६ ॥

पश्चिम की ओर गमन करती ये सूर्य पुत्री उषादेवी कल्याणकारी रूप वाली स्त्री की भाँति अपने रूपों को प्रकट करती हैं । सर्वदा तरुणी ये उषादेवी अपने ज्योतिरूप को पूर्व की भाँति प्रकाशित करती हैं । ये हविदाता यजमान को वरणीय धन प्रदान करती हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ८१]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - सविता । **छन्द** - जगती ।]

४३१९. **युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।**
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१ ॥

अकेले ही यज्ञ को धारण करने वाले, सभी मार्गों के ज्ञाता सवितादेव महान् स्तुतियों के पात्र हैं । महान् बुद्धिमान् एवं ज्ञानी जन अपने मन एवं बुद्धि को उन प्रेरक सविता के साथ नियोजित करते हैं ॥१ ॥

४३२०. **विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।**
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥२ ॥

वे अत्यन्त मेधावी सवितादेव अपने सम्पूर्ण रूपों को प्रकट करते हैं । वे मनुष्यों और पशुओं के लिए कल्याणकारी हैं । वे सबके द्वारा वरणीय सवितादेव द्युलोक को प्रकाशित करते हैं । उषादेवी के प्रयाण के अनन्तर वे प्रकाशित होते हैं ॥२ ॥

४३२१. **यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।**
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥३ ॥

अग्नि आदि सम्पूर्ण देवगण, जिन सवितादेव के महिमायुक्त मार्गों का अनुगमन करके ओज (बल) को धारण करते हैं, जिन सवितादेव ने अपनी महत्ता से पृथ्वी आदि लोकों को परिव्याप्त किया, वे देव अत्यन्त शोभायमान हैं ॥३ ॥

४३२२. **उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।**
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४ ॥

हे सवितादेव ! आप तीनों प्रकाशित लोकों में गमन करते हैं और सूर्य रश्मियों से संयुक्त होते हैं । आप रात्रि के दोनों छोरों को प्रभावित करके परिगमन करते हैं । हे देव ! आप कल्याणकारी कर्मों से संसार के मित्र रूप होते हैं ॥४ ॥

४३२३. **उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।**
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥५ ॥

हे सवितादेव ! आप अकेले ही सम्पूर्ण उत्पन्न जगत् के अधीश्वर हैं । आप अपनी गमन-सामर्थ्य से जगत् के पोषक रूप हैं । आप सम्पूर्ण लोकों में विशिष्टरूप से देदीप्यमान हैं । तेजस्वी अश्वों-पराक्रमों से युक्त श्यावाश्व ऋषि आपके निमित्त स्तोत्रों को निवेदित करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ८२]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - सविता । **छन्द** - जगती; १ अनुष्टुप् ।]

४३२४. **तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।**
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥१ ॥

हम सवितादेव के उस प्रसिद्ध और उपभोग योग्य ऐश्वर्य की याचना करते हैं तथा उन भगदेव के श्रेष्ठ, सर्वधारक, शत्रुविनाशक ऐश्वर्य को भी धारण करें ॥१ ॥



४३२५. अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम्। न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥२ ॥

अपने यश को विस्तृत करने वाले इन सवितादेव के अत्यन्त प्रिय और प्रकाशित ऐश्वर्य को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ॥२ ॥

४३२६. स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥३ ॥

वे सविता और भगदेव हविदाता यजमान को उत्तम वरणीय रत्नादि प्रदान करते हैं । हम भी उन देवों से उस विलक्षण ऐश्वर्य के भाग की याचना करते हैं ॥३ ॥

४३२७. अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम्। परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥४ ॥

हे सवितादेव ! आप आज हमें पुत्र-पौत्रों सहित पवित्र ऐश्वर्य प्रदान करें । दुःखदायी स्वप्नों की तरह दरिद्रता को हमसे दूर करें ॥४ ॥

४३२८. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥५ ॥

हे सवितादेव ! आप हमारे सम्पूर्ण दुःखों (पाप मूलक दुर्गुणों) को दूर करें और जो हमारे निमित्त कल्याणकारी हो, उसे हमारे अभिमुख प्रेरित करें ॥५ ॥

४३२९. अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे। विश्वा वामानि धीमहि ॥६ ॥

हम सवितादेव की आज्ञा में रहकर माता अदिति (अखण्ड-भूमि) के लिए निरपराधी हों । हम सम्पूर्ण वाञ्छित धनों को धारण करें ॥६ ॥

४३३०. आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे। सत्यसवं सवितारम् ॥७ ॥

आज सबके देवस्वरूप, सत्यव्रतियों के पालक, सत्यव्रतों के रक्षक सवितादेव को यज्ञ में सूक्तों के माध्यम से बुलाते हैं ॥७ ॥

४३३१. य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन्। स्वाधीर्देवः सविता ॥८ ॥

जो सवितादेव उत्तम कर्म करते हुए दिन और रात्रि के सन्धि भाग में गमन करते हैं, हम उत्तम स्तोत्रों से उनका वरण करते हैं ॥८ ॥

४३३२. य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ॥९ ॥

जो सवितादेव इन सम्पूर्ण प्राणियों को उत्तम कर्मों में प्रेरित करते हैं और उन्हें अपना यश सुनाते हैं (हम उन्हें आवाहित करते है) ॥९ ॥

[सूक्त - ८३]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - पर्जन्य । **छन्द** - त्रिष्टुप्; २-४ जगती; ९ अनुष्टुप् ।]

४३३३. अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥१ ॥

हे यजमानो ! उन बलसम्पन्न पर्जन्यदेव के सम्मुख उनकी स्तुति करें । हव्यादिऔर उत्तम वाणियों द्वारा उनका स्तवन करें ।ये देव जलवर्षक, दानशील एवं गर्जनकारी हैं, जो ओषधिरूप वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करते हैं ॥१॥

४३३४. वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२ ॥



ये पर्जन्यदेव (अनुपयुक्त) वृक्षों का विनाश करते हैं । राक्षसों का हनन करते हैं । अपने भयंकर आघातों से सम्पूर्ण लोकों को भयाक्रान्त कर देते हैं । गर्जना करते हुए ये पापियों को विनष्ट करते हैं और जल वृष्टि करके निरपराधियों की रक्षा करते हैं ॥२ ॥

४३३५. रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥३ ॥

जिस प्रकार रथी अपने घोड़ों को चाबुक से उत्तेजित करता है, उसी प्रकार पर्जन्य, गर्जनकारी, शब्दों से मेघों को प्रेरित करते हैं ।जब मेघ जलराशिसे पूर्ण होते हैं, तब सिंह के सदृश गर्जना करते हैं, जो दूर तक सुनाई देता है॥३ ॥

४३३६. प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४ ॥

जब पर्जन्यदेव जलराशि से युक्त होकर पृथ्वी की ओर अवतीर्ण होते हैं, तब वायु विशेष प्रवाहयुक्त होती है, विद्युत् चमकती है और ओषधिरूप वनस्पतियाँ वृद्धि पाती हैं, आकाश स्रवित होता है तथा यह पृथ्वी सम्पूर्ण जगत् के हितार्थ पुष्ट होती है ॥४ ॥

४३३७. यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५ ॥

हे पर्जन्यदेव !आपके कर्मों के कारण पृथ्वी उत्पादनशील होती है तथा सभी प्राणी पोषण प्राप्त करते हैं ।आपके कर्मों से ओषधिरूप वनस्पतियाँ नाना रूप धारण करती हैं । हे देव ! आप हमें महान् सुख प्रदान करें ॥५ ॥

४३३८. दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाडेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आप हमारे निमित्त वृष्टि करें । वर्षणशील मेघ की जलधाराएँ हमें पोषण प्रदान करें । हे पर्जन्यदेव ! आप गर्जनशील मेघों के साथ जल का सिंचन करते हुए हमारी ओर आगमन करें । आप प्राणवर्षक रूप में हमारे पिता स्वरूप पोषणकर्त्ता हैं ॥६ ॥

४३३९. अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७ ॥

हे पर्जन्यदेव ! गड़गड़ाहट की गर्जना से युक्त होकर ओषधिरूप वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करें । उदक धारक रथ से गमन करें । उदकपूर्ण (जलपूर्ण) मेघों के मुख को नीचे करें और इसे खाली करें; ताकि उच्च और निम्न प्रदेश समतल हो सकें ॥७ ॥

[जब मेघ गरजते हैं, तब विद्युत् के प्रभाव से नाइट्रोजन के उर्वर यौगिक (कम्पाउण्ड) बनते हैं । उनसे वनस्पतियों को शक्ति मिलती है ।]

४३४०. महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८ ॥

हे पर्जन्यदेव ! अपने जलरूपी महान् कोश को विमुक्त करें और उसे नीचे बहायें, जिससे ये जल से परिपूर्ण नदियाँ अबाधित होकर पूर्व की ओर प्रवाहित हों । आप जल-राशि से द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण करें; ताकि हमारी गौओं को उत्तम पेय जल प्राप्त हो ॥८ ॥



४३४१. यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥९ ॥

हे पर्जन्यदेव ! गड़गड़ाहट युक्त गर्जना करते हुए जब आप पापियों (मेघों) को विदीर्ण करते हैं; तब सम्पूर्ण जगत् और इसमें अधिष्ठित प्राणी अत्यन्त प्रमुदित हो उठते हैं ॥९ ॥

४३४२. अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥१० ॥

हे पर्जन्यदेव ! आपने बहुत वृष्टि की है । अभी वृष्टि को थाम लें । आपने मरुभूमि को भी जल से पूर्ण कर दिया है । आपने सुखकर उपभोग के लिए ओषधिरूप वनस्पतियाँ उत्पन्न की हैं । आपने प्रजाओं द्वारा उत्तम स्तुतियाँ भी प्राप्त की हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ८४]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - पृथिवी । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

४३४३. बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥१ ॥

हे प्रकृष्ट गुणवती और महिमावती पृथिवीदेवि ! आप भूमिचर प्राणियों को अपनी सामर्थ्य से पुष्ट करती हैं और साथ ही अत्यन्त विस्तृत पर्वत-समूहों को भी धारण करती हैं ॥१ ॥

४३४४. स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥२ ॥

हे विविध- विध विचरणशीला और शुभ्र वर्ण वाली पृथिवीदेवि ! आप जब अश्वों के समान भयंकर शब्द करने वाले मेघों को वर्षण के निमित्त प्रेरित करती हैं, तब स्तोतागण आपके प्रति उत्तम स्तोत्रों से स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥२ ॥

४३४५. दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥३ ॥

हे पृथिवी माता ! जब अन्तरिक्ष में स्थित मेघों से विद्युत् द्वारा वृष्टि होती है, तब आप अपनी दृढ़ -सामर्थ्य से वनस्पतियों को धारण करती हैं ॥३ ॥

[सूक्त - ८५]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - वरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४३४६. प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥१ ॥

हे अत्रि वंशजो ! आप विशिष्ट प्रकाशमान, प्रसिद्ध वरुणदेव के लिए अत्यन्त विस्तृत, गंभीर और प्रीतिकर स्तुतियाँ करें । जैसे व्याध- पशुओं के चर्म को विस्तृत करता है, उसी तरह इन देव ने सूर्यदेव के परिभ्रमण के लिए आकाश को विस्तृत किया है ॥१ ॥



४३४७. वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥२ ॥

वरुणदेव ने वन में वृक्षों के ऊपरी भाग पर (मूर्त पदार्थों के अभाव में) अन्तरिक्ष को विस्तृत किया । अश्वों या मनुष्यों में वीर्य-पराक्रम की वृद्धि की । गौओं में दुग्ध को प्रतिष्ठित किया । हृदय में संकल्पशक्ति युक्त मन को, प्राणियों में (पाचन के लिए) जठराग्नि को, द्युलोक में सूर्यदेव को तथा पर्वत पर सोम (आदि ओषधियों) को उत्पन्न किया ॥२ ॥

४३४८. नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥३ ॥

वरुणदेव ने द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष लोकों के हितार्थ मेघों के मुख को नीचे करके विमुक्त किया । जैसे वृष्टि से यवादि अन्न पुष्ट होते हैं, वैसे उन देव ने वृष्टि से भूमि को उर्वर बनाया है ॥३ ॥

४३४९. उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥४ ॥

वरुणदेव जब वृष्टिरूप जल की इच्छा करते हैं; तब वे पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश में जल- सिंचन कर देते हैं, अनन्तर पर्वत शिखर मेघों से आच्छादित होते हैं और मरुद्गण अपनी सामर्थ्य से उत्साहित होकर मेघों को शिथिल करते हैं ॥४ ॥

४३५०. इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५ ॥

जिन वरुणदेव ने मान-दण्ड के समान सूर्यदेव के द्वारा अन्तरिक्ष-पृथिवी को प्रभावित किया, उन प्राण-प्रदाता और प्रसिद्ध वरुणदेव की इस महती क्षमता की हम प्रशंसा करते हैं ॥५ ॥

४३५१. इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥६ ॥

जिस प्रकार जल-सिंचन करने वाली प्रवहमान नदियाँ अपने जल से एक समुद्र को भी पूर्ण नहीं कर पातीं, उसी प्रकार उन ज्ञान-सम्पन्न वरुणदेव की इस महती क्षमता का अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता है ॥६ ॥

४३५२. अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७ ॥

हे सर्वदा वरणीय वरुणदेव ! यदि हमने कभी अपने दातापुरुष, मित्र, सखा, भ्राता, सर्वदा समीपस्थ पड़ोसी अथवा मूक के प्रति कोई अपराध किया हो, तो उस अपराध से हमें विमुक्त करें ॥७ ॥

४३५३. कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥८ ॥

हे वरुणदेव ! द्यूतक्रीड़ा में (जुआ खेलने में) यदि हमने कोई प्रवंचना की हो अथवा जानकर या अज्ञानतावश अपराध किया हो; तो हे वरुणदेव ! बन्धनों को शिथिल करने के समान हमें उन सम्पूर्ण अपराधों से विमुक्त करें; ताकि हम आपके प्रिय-पात्र हों ॥८ ॥



[सूक्त - ८६]

[ऋषि - अत्रि भौम । देवता - इन्द्राग्नी । छन्द - अनुष्टुप् ; ६ विराट्पूर्वा ।]

४३५४. इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥१ ॥

हे इन्द्राग्नि देवो ! आप दोनों युद्धों में जिस मनुष्य की रक्षा करते हैं, वह मनुष्य वेदों की तीनों वाणियों का मर्म समझ लेता है और सुदृढ़ तथा दीप्तिमान् होकर शत्रु सेना को छिन्न-विच्छिन्न कर देता है ॥१ ॥

४३५५. या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥२ ॥

जो युद्धों में अपराजेय हैं, जो यज्ञों में अत्यन्त पूज्य हैं, जो पंचजनों द्वारा स्तुत्य हैं, उन इन्द्राग्नि देवों का हम आवाहन करते हैं ॥२ ॥

४३५६. तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥३ ॥

इन इन्द्राग्नि देवों का बल शत्रु संहारक है । ये देवगण स्तुतियों को प्राप्त करने, शत्रुओं का संहार करने के निमित्त द्रुतगति से रथ में गमन करते हैं । वे ऐश्वर्यवान् इन्द्राग्नि, अपने दोनों हाथों में तीक्ष्ण वज्र धारण करते हैं ॥३ ॥

४३५७. ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥४ ॥

वेगवान् धनों के अधिपति, सर्वज्ञाता, अतिशय पूजनीय हे इन्द्राग्नि देवो ! हम युद्ध में रथों को प्रेरित करने के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

४३५८. ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ॥५ ॥

मनुष्यों के लिए प्रवर्धित हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप दोनों अहिंसनीय हैं । हम अश्वों की प्राप्ति के लिए आप दोनों की स्तुति करते हैं और सोमरस की भाँति आगे स्थापित करते हैं ॥ ५ ॥

४३५९. एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥६ ॥

हमने बलकारक, घृत के समान तेजस्वी, पाषाण द्वारा कूटकर निष्पन्न सोम से युक्त हवि को इन्द्र और अग्निदेवों के लिए निवेदित किया है । वे देवगण हम स्तोताओं को प्रभूत धन युक्त समृद्धि और विपुल अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ८७]

[ऋषि - एवयामरुत् आत्रेय । देवता - मरुद्गण । छन्द - अति जगती ।]

४३६०. प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥१ ॥



'एवया' नामक ऋषि द्वारा की गई स्तुतियाँ महान् इन्द्रदेव आपको तथा मरुत् सहित विष्णुदेव को प्राप्त हों। उत्तम आभूषणों से अलंकृत, कल्याणकारी याज्ञिक को उन्नतिशील मरुतों का बल प्राप्त हो ॥१ ॥

[एवया मरुत् का शाब्दिक अर्थ गतिशील या तीव्र तेज है। यह विष्णु अथवा मरुत् के वैशिष्ट्य ज्ञापन हेतु भी प्रयुक्त होता रहा है। अन्यत्र इसका अर्थ मरुतों द्वारा संरक्षित भी किया गया है।]

४३६१. **प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत्।**
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥२ ॥

जो मरुद्गण अपनी महत्ता से प्रकट हुए और अपनी विद्या से विख्यात हुए, उन मरुद्गणों का वर्णन एवया-मरुत् ऋषि करते हैं। हे मरुतो ! आपका बल अनेक विशिष्ट कर्तृत्वों, दान आदि से युक्त होने के कारण महान् है। आप शत्रु द्वारा अपराभूत तथा पर्वत के सदृश अटल हैं ॥२ ॥

४३६२. **प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्।**
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥३ ॥

अत्यन्त दीप्तिमान् और प्रभावान् ये मरुद्गण विस्तृत आकाश से गमन करते हुए भी प्रजाओं के आमन्त्रण को सुनें। एवयामरुत् ऋषि उन मरुतों का वर्णन अपनी वाणियों से करते हैं। इन्हें कोई अपने स्थान से विचलित नहीं कर सकता। वे अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशमान हैं और घोर शब्दवान् भयंकर शत्रुओं को भी स्पन्दित कर डालते हैं ॥३ ॥

४३६३. **स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत्।**
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥४ ॥

इन मरुद्गणों के स्वेच्छा से विचरणशील अश्व, जब इनके निवास के समीप रथ में नियोजित होते हैं, तब एवयामरुत् उनसे अपेक्षा रखते हैं। वे मरुत् अपने महान् संघ के साथ परस्पर स्पर्धारहित भाव से अपने समान निवास स्थान से बाहर आते हैं। वे विलक्षण तेजों से युक्त और सुखवर्द्धक हैं ॥४ ॥

४३६४. **स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत्।**
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥५ ॥

हे मरुद्गणो ! आपका वह बल-सम्पन्न जलवर्षक, तेजस्वी, गमनशील, प्रभावकारी शब्द एवयामरुत् ऋषि को भयभीत न करे; जिस शब्द से आप शत्रुओं को पराभूत कर, वश में कर लेते हैं। हे मरुतो ! आप स्वयं दीप्तिमान्, स्थिर रश्मियों वाले, स्वर्णमय अलंकृत, उत्तम आयुधों से सज्जित और अन्न प्रदाता हैं ॥५ ॥

४३६५. **अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत्।**
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥६ ॥

हे प्रवर्द्धमान शक्तिशाली मरुतो ! आपकी महिमा निश्चय ही अपार है। आपका तेजस्वी बल एवयामरुत् ऋषि की रक्षा करे। शत्रुओं के आक्रमणों में आप स्थिर स्थान में अविचलित हुए दीखते हैं। आप अग्निदेव के सदृश तेजस्वी हैं। हमें अपने निंदकों से रक्षित करें ॥६ ॥

४३६६. **ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत्।**
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥७ ॥

हे उत्तम पूजनीय, अग्निवत् अतिशय दीप्तिमान्, रुद्रपुत्र मरुद्गणो ! आप एवयामरुत् ऋषि को संरक्षित



करें । आप अपने अत्यन्त दीर्घ और विस्तीर्ण निवास स्थान के कारण विख्यात हुए हैं । आप पापरहित हैं । गमन करते हुए महान् तेजों के साथ प्रकाशित होते हैं ॥७ ॥

४३६७. अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३ न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥८ ॥

हे द्वेषरहित मरुद्गणो ! आपके निमित्त काव्य स्तोत्रों के गान के समय आप यहाँ आगमन करें । स्तुतिकर्त्ता एवयामरुत् ऋषि के स्तोत्रों का श्रवण करें । हे उत्कंठित मन वाले मरुतो ! आप रथ से योजित होने वाले अश्वों के समान व्यापक विष्णुदेव की शक्तियों से प्रयोजित होकर हमारे स्तोत्रों से प्रशंसित हों । हे मरुतो ! अपने पराक्रमों से हमारे गुप्त शत्रुओं को दूर हटायें ॥८ ॥

४३६८. गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥९ ॥

हे यजनीय मरुद्गणो ! हमारे यज्ञ की सिद्धि हेतु यज्ञ में आगमन करें । अरक्षित एवयामरुत् ऋषि की प्रार्थना सुनकर उन्हें संरक्षित करें । हमारे रक्षण कार्य में आप पर्वत की भाँति अडिग और महान् हैं । हे प्रकृष्ट ज्ञान-सम्पन्न मरुतो ! आप हमारे निन्दकों के मध्य अजेय होकर उनके शासक बनें ॥९ ॥

॥ इति पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥





॥ अथ षष्ठं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप् ; ११ शक्वरी ।]

४३६९. **त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।**
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवताओं में श्रेष्ठ हैं, उन्हें आप अपनी ओर आकर्षित करने वाले हैं । इस जगत् में आप ही दर्शन के योग्य हैं । होता द्वारा किये जा रहे इस बुद्धिपूर्ण कार्य (यज्ञ कार्य) को सम्पन्न करने में आप ही सहयोगी हैं । हे बलवान् देव ! हमें अपरिमित बल प्रदान करें, जिससे हम बलिष्ठ शत्रुओं को जीतने में समर्थ हों ॥१ ॥

४३७०. **अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।**
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप यजन करने योग्य, हवि ग्रहण करने वाले एवं स्तुति करने योग्य हैं । देवों में प्रथम पूज्य हे अग्निदेव ! दिव्य धन की इच्छा से यज्ञानुष्ठान करने वाले ऋत्विग्गण आपको ही सर्वप्रथम आहूत करते हैं । आप यज्ञ वेदी पर प्रतिष्ठित हों ॥२ ॥

४३७१. **वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै३ स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।**
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥३ ॥

तेजस्वी, दर्शनीय हे अग्निदेव ! आप सर्वदा ज्योतित रहते एवं आहुतियों को ग्रहण करते हैं । आप वसुओं के मार्ग से गमन करते हैं । ऐश्वर्य के इच्छुक साधक ही आपका अनुगमन करते हैं ॥३ ॥

४३७२. **पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।**
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ ॥४ ॥

यश-वैभव प्राप्ति की कामना करने वाले याजक, स्तोत्रों से अग्निदेव को प्रसन्न करते हुए यज्ञशाला में उनका आवाहन करते हैं । हे अग्निदेव ! वे आपका दर्शन पाकर, आनन्दित होकर, स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं और इच्छित पदार्थ प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

४३७३. **त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।**
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ वेदी पर प्रतिष्ठित करके यजमान आपको अच्छी तरह प्रज्वलित करते हैं । अध्वर्युगण भी दोनों (लौकिक एवं दैवी) सम्पदाओं को प्राप्त करने की इच्छा से आपको बढ़ाते (प्रज्वलित करते) हैं । हे दुःखनाशक अग्निदेव ! आप स्तुतियों से प्रसन्न होकर माता एवं पिता की तरह अनुदान एवं संरक्षण प्रदान करें ॥५ ॥

४३७४. **सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।**
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥६ ॥



प्रजाजनों के हित में यज्ञ कर्म सम्पन्न करने वाले, दान देने में समर्थ, पूज्य, यजनीय अग्निदेव को हम वेदी पर स्थापित करते हैं । हे अग्निदेव ! आप घर को देदीप्यमान करने वाले हैं । हम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हुए वन्दना करते हैं ॥६ ॥

४३७५. तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! हम सद्बुद्धि सम्पन्न सुख की कामना से आपकी स्तुति करते हैं । हे अग्निदेव ! आप तेज को धारण करने वाले हैं । आप सूर्यदेव के समान देदीप्यमान होकर हमें दिव्यलोक तक ले चलें ॥७ ॥

४३७६. विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥८ ॥

प्रजापालक, ज्ञानी, शत्रुहन्ता, परम बलशाली, कामनाओं की पूर्ति करने वाले, अन्न दान करने वाले तथा प्रजाजनों के पास जाने वाले हे तेजस्वी अग्निदेव ! हम आपकी स्तुति करते हैं । आप हमें अन्न, धन एवं तेजस्विता प्रदान करें ॥८ ॥

४३७७. सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! याजकगण स्तुति करते हुए आपके निमित्त हवि प्रदान करते हुए यजन करते हैं । वे आपकी कृपा के द्वारा इच्छानुसार धन प्राप्त करें ॥९ ॥

४३७८. अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप महान् हैं । हम आपको नमस्कार करते हैं, आपका स्तवन करते हैं और आपके निमित्त हवि प्रदान करते हैं । यज्ञ स्थल पर अपनी वाणियों तथा स्तोत्रों द्वारा हम आपका पूजन करते हैं । आपकी कृपा से हम सुमति को धारण करें, जिससे हमारी प्रगति हो ॥१० ॥

४३७९. आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१ स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आपने अपनी दीप्ति को द्यावा-पृथिवी में विशेष रूप से विस्तृत किया है । आप तारक हैं, हम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । आप समीपस्थ वेदी पर प्रदीप्त होकर हमारे लिए अन्न और धन के प्रदाता बनें ॥११ ॥

४३८०. नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! हमारा घर पुत्र-पौत्रों और परिजनों से परिपूर्ण रहे । आप ऐश्वर्यवान् से प्राप्त ऐश्वर्य द्वारा हमारे पुत्र-पौत्रों तथा परिजनों का पोषण एवं कल्याण करें तथा हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें, जिससे हम निष्पाप और कल्याण के मार्ग पर चलते हुए यशस्वी बनें ॥१२ ॥

४३८१. पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥१३ ॥



हे ज्योतिस्वरूप अग्निदेव ! हमें आप अश्व , गौ सहित धन प्रदान करें । हे अग्निदेव ! आप ऐश्वर्यवान् , रमणीय एवं वरणीय हैं । आप प्रचुर धन के स्वामी हैं ॥१३ ॥

[सूक्त - २]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - अग्नि । छन्द - अनुष्टुप् ; ११ - शक्वरी ।]

४३८२. त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे । त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप सभी के मित्र हैं, अन्न और तेज के अधिपति हैं । हे अग्निदेव ! आप सर्वद्रष्टा हैं, पोषक पदार्थों से हमें पुष्ट बनाएँ ॥१ ॥

४३८३. त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते ।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! हव्य और स्तोत्रों द्वारा याजकगण आपकी ही पूजा करते हैं । कुटिलता रहित, लोकों को तारने वाले, विश्व द्रष्टा (सूर्य) आपको ही प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

४३८४. सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते ।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ के शिरोमणि ध्वज की तरह हैं । मनु पुत्र सुख-समृद्धि की इच्छा से, बिना किसी पारस्परिक द्वेष के, यज्ञशाला में आपका आवाहन करते हैं । आप अपने दिव्य तेज सहित प्रदीप्त होने की कृपा करें ॥३ ॥

४३८५. ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते ।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥४ ॥

उदार मन वाले हे अग्निदेव ! जो मनुष्य बुद्धिपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं, वे सम्पन्न बनते हैं । हे तेजस्वी अग्निदेव ! आपके संरक्षण एवं साधनों को प्राप्त कर साधक पापों के समान द्वेष करने वालों को नष्ट करके, उन्नतिशील होता है ॥४ ॥

४३८६. समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! जो याजक समिधा सहित पवित्र आहुतियाँ आपके प्रति निवेदित करता है, वह सुसंतति से भरे-पूरे परिवार में आनन्दपूर्वक रहते हुए शतायु होता है ॥५ ॥

४३८७. त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥६ ॥

प्रदीप्त होने के पश्चात् अग्नि का धवल धूम्र अंतरिक्ष में फैलकर दृष्टिगोचर होता है । हे पावन अग्निदेव ! स्तुति के प्रभाव से आप प्रकाशित होते हैं ॥६ ॥

४३८८. अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः । रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप स्तुत्य हैं । आप अतिथि की तरह परम प्रिय हैं । नगरवासी, हितैषी, उपदेशक वृद्ध की तरह आश्रय योग्य हैं एवं पुत्रवत् पालनीय हैं ॥७ ॥



[अग्नि की देखभाल बच्चों की तरह करनी पड़ती है, किन्तु वे परम अनुभवी हितैषी के समान हितकारी हैं, इसलिए उन्हें एक साथ वृद्ध एवं बालक जैसा कहा गया है ।]

४३८९. क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपको अरणिमन्थन क्रिया द्वारा प्राप्त करते हैं । आप वायु के समान सर्वत्रगमनशील हैं । आप अश्वरूप होकर हवि को लक्ष्य तक पहुँचाते हैं । बालवत् पवित्र स्वभाव वाले हे अग्निदेव ! आप हमें अन्न और निवास प्रदान करें ॥८ ॥

४३९०. त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे । धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप कठिन काष्ठों को उसी प्रकार आत्मसात् कर लेते हैं, जैसे अश्व आदि पशु घास का भक्षण कर लेते हैं । हे तेजस्वी अग्निदेव ! आपकी तेजस्वी शिखाएँ वनों (समूहों) को भस्म करने में समर्थ हैं ॥९ ॥

[स्थूल अग्नि काष्ठ समूहों को, ज्ञानाग्नि अज्ञान समूहों को, तप की अग्नि पाप समूहों को नष्ट करने में समर्थ है ।]

४३९१. वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् । समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ करने के इच्छुक याजक के घर होता रूप में प्रवेश करते हैं । हे अग्निदेव ! आप हमारी आहुतियों को ग्रहण करें । आप पालक हैं, हमें समृद्धिशाली बनाएँ ॥१० ॥

४३९२. अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः । वीहि स्वस्तिं
सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११ ॥

हे दिव्यगुण सम्पन्न अग्निदेव ! शांत और विकराल दोनों गुणों वाले आप, द्यावा-पृथिवी में संव्याप्त हैं । आप हमारी वाणी (स्तुतियों) और आहुतियों को देवताओं तक पहुँचाएँ । हम स्तुतिकर्त्ताओं को सुव्यवस्थित आवास तथा सौभाग्य प्रदान करें । हमें शत्रुओं, संकटों और पापों से बचाएँ । हे अग्निदेव ! आप द्वारा रक्षित हम निर्विघ्न जीवनयापन करें ॥११ ॥

[सूक्त - ३]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४३९३. अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप उनको दीर्घायुष्य प्रदान करें, जो यज्ञ से उत्पन्न और यज्ञपालक याजक हैं । आप मित्र और वरुण जैसी प्रीति करने वाले हैं । देवत्व प्राप्ति की कामना वाले याजक को, आप अपने तेज के द्वारा पापों से बचाते हैं और उनकी सब प्रकार रक्षा करते हैं ॥१ ॥

४३९४. ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥२ ॥

श्रेष्ठ, वैभवशाली अग्निदेव के निमित्त आहुति देने वाले याजक को पुत्रादि प्राप्त होते हैं । वह पापरहित और निरभिमानी होकर श्रेष्ठ जीवनयापन करता है ॥२ ॥

४३९५. सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥३ ॥

जिन (अग्निदेव) का दर्शन सूर्यदेव की तरह दोष मुक्त करने वाला है, उनकी प्रज्वलित (प्रखर) धी (मेधा अथवा ऊर्जा) सब ओर (दोषों- पापों के लिए) भयानक होकर फैलती है । रात्रि में शोक (अथवा अंधकार) रोधक गंभीर शब्द करते हुए वे सबको आवास देने वाले अग्निदेव वनों में अथवा कहीं भी शोभा पाते हैं ॥३ ॥

४३९६. तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४ ॥

इन (अग्निदेव) का मार्ग (कार्य करने का ढंग) तीक्ष्ण है और स्वरूप तेजस्वी है । वे कुठार की तरह अपनी जिह्वा (ज्वालाओं) को दारु (कठोर वस्तुओं) पर प्रयुक्त करते हैं । गलाई करने वाले (धातु कर्मी) की तरह (पदार्थों को) गला देती हैं ॥४ ॥

[वैल्डिंग के समय अग्नि ज्वाला जीभ की तरह निकलकर कठोर पदार्थों को काट डालती है और धमन भट्ठियों में धातु आदि को गला देती है । अग्नि के कुछ इसी प्रकार के प्रयोग का संकेत इस ऋचा में भासित होता है ।]

४३९७. स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥५ ॥

बाण चलाने वाला जैसे प्रतिघात करता है, वैसे ही अग्निदेव भी, परशु की तरह तीक्ष्ण ज्वालाओं द्वारा लक्ष्य वेधन करते हैं । तीव्रगामी पक्षी जैसे शीघ्रता से वृक्ष की शाखा पर बैठ जाता है, वैसे ही शीघ्रता से अग्नि भी लकड़ी (समिधा) पर बैठ, लकड़ी को जलाती है और प्रदीप्त होकर रात्रि के अन्धकार का नाश करती है ॥५ ॥

४३९८. स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नृनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नृन् ॥६ ॥

स्तुति करने योग्य अग्निदेव भी सूर्यदेव के समान अपनी ज्वालाओं की दीप्ति फैलाते हैं । मित्रवत् प्रकाश को फैलाते हुए शब्द भी करते हैं । वे अमर अग्निदेव प्रदीप्त ज्वालाओं सहित प्रज्वलित रहें ॥६ ॥

४३९९. दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥७ ॥

सूर्य के समान तेजस्वी, बलवान् अग्निदेव, प्रदीप्त होकर ओषधियुक्त काष्ठादि को जलाते समय विशेष शब्द करते हैं । जो धधकते हुए तेज के साथ इधर-उधर तथा ऊर्ध्वगमन करते हैं, वे हमारे शत्रुओं को पराजित करते हुए द्यावा-पृथिवी को धन से समृद्ध करें ॥७ ॥

४४००. धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥८ ॥

जो अग्निदेव, हविवाहक एवं रथ-नियोजित अश्व के समान कान्तियुक्त (शक्तियुक्त) हैं, वे स्वयं के तेज से विद्युत् के समान देदीप्यमान होने वाले तथा मरुद्गणों से भी अधिक बलशाली हैं । ऐसे सूर्यदेव के समान कान्ति युक्त अग्निदेव वेग से प्रदीप्त होते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ४]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४४०१. यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१ ॥



हे अग्निदेव ! आप देवगणों को आहूत करने में समर्थ, बल के पुत्र हैं । इस यज्ञ में अपने समान बलशाली इन्द्रादि देवगणों का हवि द्वारा वैसे ही यजन करें, जैसे कि विज्ञजनों के यज्ञ में करते हैं ॥१ ॥

४४०२. स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥२ ॥

वे अग्निदेव हमें यशस्वी एवं धन-सम्पन्न बनाएँ, जो सूर्यदेव के समान तेजस्वी, प्रकाशक, अमर, बुद्धि से जानने योग्य, अतिथिरूप एवं उषा के समय प्रदीप्त होते हैं ॥२ ॥

४४०३. द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥३ ॥

जो सूर्यदेव के समान उज्ज्वल प्रकाश के विस्तार करने वाले, पावन बनाने वाले, अपने अजर (सदैव प्रखर) प्रकाश के द्वारा समस्त पदार्थों को दृष्टिगोचर करने वाले, शत्रु को पराजित करने वाले एवं शत्रु नगरों को ध्वस्त करने वाले हैं, उन्हीं अग्निदेव के महान् कर्मों का यशोगान स्तोतागण करते हैं ॥३ ॥

४४०४. वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥४ ॥

सर्वप्रेरक हे अग्निदेव ! आप स्तुति करने योग्य हैं । आप याजक द्वारा प्रदत्त आहुतियों से प्रसन्न होकर उन्हें अन्न और आवास प्रदान करते हैं । हे अन्नदाता अग्निदेव ! आप यज्ञ वेदी पर प्रतिष्ठित होकर हमें अन्न प्रदान करें और शत्रुओं का संहार करें ॥४ ॥

४४०५. नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न हुतः पततः परिह्रुत् ॥५ ॥

जो अग्निदेव अपने तमोनाशक तेजस्वी प्रकाश को और प्रखर करते हैं, वे अग्निदेव रात्रि को भी पार करते हैं । वे हवि ग्रहण करने वाले हैं । वायुदेव प्राणरूप हो, जैसे सब पर शासन करते हैं, वैसे ही अग्निदेव सभी पर शासन करें । यज्ञीय अनुशासन को न मानने वालों पर हम विजय प्राप्त करें (अर्थात् प्रेरणा देकर यज्ञीय अनुशासन में चलाएँ) । हे अग्निदेव ! आप तीव्रगामी अश्व के समान आक्रामकों का संहार करें ॥५ ॥

४४०६. आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप द्यावा-पृथिवी में अपनी कान्ति से उसी तरह व्याप्त होते हैं, जिस प्रकार सूर्यदेव अपनी तेजस्वी किरणों से व्याप्त हैं । आकाश मार्गगामी सूर्यदेव जैसे अन्धकार को नष्ट करते हैं; वैसे ही तेजस्वी अद्भुत अग्निदेव अन्धकार को दूर करते हैं ॥६ ॥

४४०७. त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥७ ॥

हे आनन्ददायक, पूजनीय अग्निदेव ! हम आपकी स्तुति करते हैं । आप हमारे श्रेष्ठ स्तोत्रों को सुनें । नेतृत्व करने में समर्थ आपको (याजक) हव्य द्वारा वायु एवं इन्द्रदेवों की भाँति ही तुष्ट करते हैं ॥७ ॥

४४०८. नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८ ॥



हे अग्निदेव ! हम आपकी कृपा से अहिंसापूर्वक उत्तम मार्गों से सुख एवं धन-सम्पदा प्राप्त करें । हमें पाप कर्मों से बचाएँ । आप विज्ञजनों को जो सुख देते हैं, वही सुख हम स्तोताओं को प्रदान करें । हम सौ वर्षों तक सुसन्तति सहित आनन्दपूर्वक रहें ॥८ ॥

[सूक्त - ५]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४४०९. हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप बल के पुत्र, द्रोह शून्य, चिरयुवा, मेधावी एवं स्तुति करने योग्य हैं । ऐसे गुण-सम्पन्न अग्निदेव का स्तोत्रों द्वारा हम आवाहन करते हैं । वे अग्निदेव स्तुति करने वाले मनु पुत्रों को इच्छित धन और यश प्रदान करते हैं ॥१ ॥

४४१०. त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप बहुत सी ज्वालाओं वाले और देवताओं को आहूत करने में समर्थ हैं । यज्ञकर्त्ता यजमान रात और दिन आपके लिए ही हविष्यान्न प्रदान करते रहते हैं । जिस तरह पृथ्वी पर सभी प्राणी स्थित हैं, उसी तरह अग्निदेव समस्त धन-ऐश्वर्य धारण करते हैं ॥२ ॥

४४११. त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से श्रेष्ठ इच्छाओं की पूर्ति करते हैं । आप उत्तम सम्पत्तिवानों में प्रमुख हैं । हे ज्ञान स्वरूप देव ! आप अपने याजकों को सदैव ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

४४१२. यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप उन दोनों प्रकार के शत्रुओं का संहार करें, जो छिपकर अथवा अन्दर प्रविष्ट होकर हमारा नाश करना चाहते हैं । आपका तेज चिरयुवा एवं पर्जन्य का कारण रूप है ॥४ ॥

४४१३. यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! जो याजक हव्य पदार्थों द्वारा यज्ञ करके आपकी सेवा करता है एवं स्तोत्रों से स्तवन करता है, वह यजमान श्रेष्ठ ज्ञान, अन्न एवं धन प्राप्त कर मनु पुत्रों में सुशोभित होता है ॥५ ॥

४४१४. स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रकाशमान तेज से युक्त एवं शक्तिशाली हैं । अतएव अपनी उस शक्ति के द्वारा हमारे शत्रुओं का नाश करें । श्रेष्ठ वाणियों द्वारा की जा रही स्तुति को स्वीकार करें । आप कृपा करके, उस कार्य को पूर्ण करें, जिसके निमित्त आप नियुक्त किये गये हैं ॥६ ॥



४४१५. अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम्।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमंजराजरं ते ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी कृपा से हमारी कामनाएँ पूर्ण हों। ऐश्वर्यों के स्वामी हे अग्निदेव ! हम सुसंतति से युक्त एवं ऐश्वर्यवान् हों। हे अन्नदाता ! हमें अन्न प्रदान करें। हे अग्निदेव ! आप अजर हैं, अपने तेजस्वी अमर यश से हमें यशस्वी बनायें ॥७ ॥

[सूक्त - ६]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य। देवता - अग्नि। छन्द - त्रिष्टुप्।]

४४१६. प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥१ ॥

सुरक्षा की कामना करने वाले याजक, यज्ञीय जीवनयापन करते हुए, स्तुति के योग्य एवं बल-पुत्र अग्निदेव के निकट जाते हैं। वे अग्निदेव, कृष्ण (धूम्र) मार्ग वाले, तेजस्वी, वनों को भस्म करने में समर्थ तथा दिव्य होता हैं॥१ ॥

४४१७. स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः।
यः पावक : पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥२ ॥

वे अग्निदेव, श्वेत (उज्ज्वल) वर्ण वाले, अनेक किरणों वाले तेजस्वी, प्रकाश फैलाने वाले तथा, चिरयुवा हैं। बहुत शब्द करते हुए वे पवित्र अग्निदेव बड़ी समिधाओं का भक्षण करते हुए गमन करते हैं ॥२ ॥

४४१८. वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी ज्वालाएँ वायु से और अधिक प्रखर होकर काष्ठों को जलाती हैं। वे वनों को भी भस्म करने में समर्थ होती हैं। प्रज्वलित अग्नि शिखाएँ गति करती हुईं सर्वत्र व्याप्त होती हैं ॥३ ॥

४४१९. ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी ज्वालाएँ छोड़े गये अश्वों जैसी सर्वत्र गति करती हुईं पृथ्वी पर क्रीड़ा करती हैं। वे वनों को भी जलाने में समर्थ हैं ॥४ ॥

४४२०. अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥५ ॥

बलशाली अग्निदेव की लपलपाती अग्नि शिखाएँ ऐसे प्रतीत होती हैं, जैसे कि इन्द्रदेव अपने वज्र को बार-बार उठा रहे हों। शूरवीर के द्वारा फेंके गये पाश के समान निर्बाध गति करती हुई अग्नि की ज्वालाएँ वनों को जला डालती हैं ॥५ ॥

४४२१. आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने प्रकाश की प्रेरक किरणों द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी को आच्छादित करें और हमसे (अर्थात् यज्ञकर्त्ता देव वृत्तिवालों से) द्वेष करने वाले शत्रुओं को अपनी शक्ति से नष्ट करें ॥६ ॥



४४२२. **स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्।**
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७॥

हे अग्निदेव ! हम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । आप अद्‌भुत रूप वाले, यशदाता तथा अन्न को देने वाले हैं । आप हमें पुत्र -पौत्रादि एवं ऐश्वर्य प्रदान करें ॥७॥

[सूक्त - ७]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - वैश्वानर अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्; ६-७ जगती ।]

४४२३. **मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।**
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥

सर्वोपरि द्युलोकवासी, भूलोक के स्वामी, वैश्वानर अग्निदेव सभी प्राणियों में स्थित हैं । वे ज्ञानी अतिथि तुल्य एवं पूज्य देवों के मुख रूप अग्निदेव, देवों द्वारा प्रकट किये गये हैं ॥१॥

४४२४. **नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त।**
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥२॥

यज्ञ के केन्द्रस्थल, धन के भण्डार, महान् आहुतियों से युक्त, समस्त विश्व के नेता, अहिंसक यज्ञ के संचालक, यज्ञ की पताकारूपी अग्नि को याज्ञिकों ने मन्थन द्वारा उत्पन्न किया । उसकी हम सभी वन्दना करते हैं ॥२॥

४४२५. **त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः।**
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्त्स्पृहयाय्याणि ॥३॥

हे तेजस्वी वैश्वानर अग्निदेव ! आप हमें पर्याप्त धन दें । हे देव ! हविष्यान्न से यजन करने वाले को आप दिव्य ज्ञान देते हैं और योद्धा आपकी कृपा से ही प्राप्त सामर्थ्य द्वारा शत्रुओं को पराजित करते हैं ॥३॥

४४२६. **त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते।**
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥४॥

हे अमृतस्वरूप अग्निदेव ! समस्त देवमानव उत्पन्न होते हुए आपको, बालक के समान आदरणीय मानते हैं । हे विश्व के नायक ! जब द्युलोक और भूलोक के मध्य आप दीप्तिमान् हुए, तब यजमानों ने आपके द्वारा सम्पादित यज्ञ से देवत्व (अमरत्व) को प्राप्त किया ॥४॥

४४२७. **वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष।**
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥५॥

हे वैश्वानर (विश्व के नेता) अग्निदेव ! आपने जब पितरों (द्यावा-पृथिवी अथवा दो अरणियों) के मध्य जन्म लिया, तब यज्ञकर्म में प्रतिष्ठित होकर दिन के केतु (सूर्य अथवा ज्वालाओं) को प्राप्त किया । आपके इन महान् कर्मों में कोई बाधा नहीं डाल सकता ॥५॥

[द्यावा-पृथिवी के बीच प्रकृति ने अग्नि का यज्ञीय प्रयोग किया तो, सूर्य की सृष्टि हुई । अरणियों से यज्ञीय प्रयोग द्वारा यज्ञकुण्ड की ज्वालाएँ प्रकट होती हैं । ऋषि की दृष्टि में दोनों के प्रयोग स्पष्ट रूप से आते हैं ।]

४४२८. **वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना।**
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥६॥



सर्वहितकारी अथवा प्रकाशक वैश्वानर के अमृत केतु से द्युलोक के शिखर प्रकाशित होते हैं । उसके मूर्धा भाग से ही शाखाओं की भाँति सप्त धाराएँ प्रवाहित होती हैं ॥६ ॥

[वैश्वानर का अर्थ होता है विश्व का नेतृत्व-संचालन करने वाले । प्राणियों के शरीर में अग्निदेव वैश्वानर रूप में रहते हैं, यह सर्वविदित है । उनके तेज से ही प्राणियों में सप्तधाराओं के रूप में सप्तधातुओं का प्रवाह बनता है । विराट् यज्ञ पुरुष के मूर्धा भाग से सप्तलोकों को पोषण देने वाली सप्तधाराएँ प्रवाहित होती हैं ।]

४४२९. वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥७ ॥

श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादक ये अग्निदेव समस्त भुवनों के निर्माता हैं । द्युलोक से भी परे नक्षत्रों को भी उन्होंने ही प्रकाशित किया है । समस्त भुवनों के विस्तारकर्त्ता, अजेय और अमृत के संरक्षक ये अग्निदेव ही हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ८]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - वैश्वानर अग्नि । **छन्द** - जगती ; ७ त्रिष्टुप् ।]

४४३०. पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोमइव पवते चारुरग्नये ॥१ ॥

दीप्तिमान् , तेजस्वी, सर्वव्यापी अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं । याज्ञिक कृत्यों में अग्नि के लिए बोले जाने वाले ये पवित्र और सुन्दर स्तोत्र, सभी होताओं के हितकारक अग्निदेव के समीप उसी प्रकार जाते हैं , जैसे यज्ञ के समीप सोम पहुँचता है ॥१ ॥

४४३१. स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२ ॥

वे सर्वव्यापी, जगत्-हितकारी, व्रत-पालक अग्निदेव दिव्य आकाश में प्रकाशित होकर दैवी और लौकिक दोनों प्रकार के सत्कर्मों (यज्ञ कर्मों) के रक्षक एवं पालक हैं । अन्तरिक्ष के पदार्थों को बनाने वाले ये देव ही हैं । वे अपनी महिमा से स्वर्ग का स्पर्श करते हैं ॥२ ॥

४४३२. व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३ ॥

इन अद्भुत मित्ररूप वैश्वानरदेव ने द्युलोक एवं पृथ्वी को यथा स्थान स्थापित किया तथा अपने तेज से अन्धकार को नष्ट किया । उन्होंने पृथ्वी की त्वचा के रूप में अन्तरिक्ष को फैलाया । उन वैश्वानरदेव ने ही विश्व के समस्त बलों (अथवा वर्षण क्षमताओं) को धारण कर रखा है ॥३ ॥

[त्वचा के माध्यम से शरीर पूरी तरह सुरक्षित रहता है । अन्दर के विकार बाहर निकल जाते हैं; किन्तु बाहर के विकार अन्दर नहीं आने पाते । वायु-प्रकाश, ताप आदि के रूप में उपयोगी प्रवाह अन्दर प्रवेश करते रहते हैं । त्वचा कहीं कट जाए, तो जरा से विकार से इन्फैक्सन- टिटनेस जैसे संकट पैदा हो सकते हैं । इसी प्रकार पृथ्वी की रक्षा के लिए अन्तरिक्ष में त्वचारूप अयन मण्डल (आयनोस्फियर) वैश्वानर ने स्थापित किया है ।]

४४३३. अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥४ ॥

दूत के रूप में मातरिश्वा (वायु) दूरस्थ आदित्य मण्डल से वैश्वानर अग्निदेव को इस लोक में ले आयें ।महान् कर्मवाले मरुद्गणों ने उन्हें अन्तरिक्ष में जल के बीच धारण किया । विज्ञमनुष्यों ने उन श्रेष्ठ स्वामी की स्तुति की॥४ ॥

४४३४. युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप उन्हें यशस्वी सन्तान एवं धन-ऐश्वर्य प्रदान करें, जो यज्ञ करते समय नवीन स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । हे अजर (सदैव-प्रखर) तेजस्वी अग्निदेव ! आप हमारे शत्रु को उसी प्रकार नष्ट करें, जैसे वज्र वृक्ष को नष्ट कर देता है ॥५ ॥

४४३५. अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥६ ॥

हे अग्निदेव !आप हविष्यान्न एवं धन-ऐश्वर्य से समृद्ध जनों में कभी न झुकने वाला, चिर-युवा श्रेष्ठ बल, वीर्ययुक्त क्षात्रबल स्थापित करें । हे वैश्वानर अग्निदेव ! आपके संरक्षण में हम हजार गुना अधिक सामर्थ्य- ऐश्वर्य आदि प्राप्त करें ॥६ ॥

४४३६. अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥७ ॥

हे त्रिलोक में स्थित अग्निदेव ! आप अविनाशी हैं । हे वैश्वानर अग्निदेव ! आप स्तोताओं और याजकों की, अपने संरक्षक बल द्वारा रक्षा करें और कृपा कर हमारे दुःखों को दूर करें ॥७ ॥

[सूक्त - ९]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - वैश्वानर अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४४३७. अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥१ ॥

कृष्ण वर्ण रात्रि एवं शुक्ल वर्ण दिवस अपने वर्णों से संसार को नियमित रूप से रंगते रहते हैं । हे वैश्वानर अग्निदेव ! आप तेजस्वी स्वामी के तुल्य प्रकट होकर अन्धकार को नष्ट करते हैं ॥१ ॥

४४३८. नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥२ ॥

हम सीधे अथवा तिरछे (तिर्यक) तन्तुओं (ताने-बाने) को नहीं जानते हैं । सतत प्रयत्नशीलों द्वारा बुने गए वस्त्रों के सम्बन्ध में भी अज्ञानी हैं । इस लोक में किसका पुत्र श्रेष्ठ होकर, अपने पिता से मिलकर इस अव्यक्त (विश्व एवं जीवन के ताने-बाने) के सम्बन्ध में सुनिश्चित ढंग से कह सकता है ? ॥२ ॥

[सीधे एवं तिरछे से जीवन के लिए प्राप्त प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रवाहों की ओर संकेत किया गया प्रतीत होता है ।]

४४३९. स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥३ ॥

वे वैश्वानर अग्निदेव सीधा (ताना) और तिरछा (बाना) दोनों को जानते हैं । ऋतु के अनुसार कर्मों का उपदेश वही करते हैं । जो अग्निदेव अमरता के रक्षक होकर भूलोक में विचरण करते हैं, वे ही दूर आकाश में रहकर आदित्यरूप से सबके द्रष्टा हैं ॥३ ॥

[यहाँ स्पष्ट कर दिया गया है कि वैश्वानर केवल शरीरों तक ही सीमित नहीं है । वह भिन्न रूप में पृथ्वी से द्युलोक तक ऋतु-चक्र एवं जीवन के ताने-बाने बुनते रहते हैं ।]



४४४०. अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः ॥४ ॥

ये वैश्वानर अग्निदेव ही प्रथम होता हैं । हे मनु पुत्रो ! इन्हें भली-भाँति जानो । वे अग्निदेव अविनाशी, स्थिर, सर्वत्र व्याप्त एवं शरीर से नित्य बढ़ने वाले हैं । वे ही मरणधर्मा प्राणियों के बीच अमर-ज्योति स्वरूप हैं ॥४ ॥

४४४१. ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५ ॥

स्थिर रहते हुए भी मन की अपेक्षा तीव्रगामी वैश्वानर अग्निदेव, समस्त प्राणियों में आनन्ददायक मार्गों को दिखाने के निमित्त निवास करते हैं । समस्त देवगण, एक मन एवं समान प्रज्ञा वाले होकर, श्रेष्ठ कर्म करने वाले वैश्वानरदेव के सम्मुख आते हैं ॥५ ॥

४४४२. वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥६ ॥

हे वैश्वानर अग्निदेव ! हमारे कान आपके गुणों को सुनने के लिए एवं हमारे नेत्र आपके दिव्य दर्शन के निमित्त लालायित हैं । अन्तः स्थित ज्योति, बुद्धि आपके स्वरूप को जानने की कामना करती है । दूरस्थ ज्योति का विचार करने वाला यह मन इधर-उधर फिरता है । हम और अधिक क्या सोचें और क्या कहें ? ॥६ ॥

४४४३. विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥७ ॥

हे वैश्वानर अग्निदेव ! अन्धकार में (ज्योति की तरह) निवास करने वाले आपको समस्त देवगण प्रणाम करते हैं । अन्धकार से डरे हुए हम सबकी रक्षा ये अमर वैश्वानर अग्निदेव करें ॥७ ॥

[सूक्त - १०]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप्, ७- द्विपदा विराट् ।]

४४४४. पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥१ ॥

हे विज्ञजनो ! आप लोग इस यज्ञ को निर्दोष एवं निर्विघ्न सम्पन्न करने के लिए स्तोत्रों का गान करते हुए कल्याणकारी अग्निदेव को अपने सम्मुख स्थापित करें । वे देदीप्यमान अग्निदेव हमारे यज्ञों को सफल बनाते हैं ॥१ ॥

४४४५. तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥२ ॥

अनेक देदीप्यमान ज्वालाओं वाले हे अग्निदेव ! आप देवगणों का आवाहन करने वाले हैं । हे अग्निदेव ! आप अन्य अग्नियों के सहित प्रज्वलित होकर, सुखकर, पवित्र एवं घी की भाँति बल बढ़ाने में समर्थ, परम श्रेष्ठ स्तोत्रोंको सुनें । इन स्तोत्रों का बुद्धिमान् स्तोताओं द्वारा आत्मीयतापूर्वक उच्चारण किया जाता है ॥२ ॥

४४४६. पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥३ ॥

अग्निदेव के निमित्त स्तोत्रगान सहित हवि अर्पित करने वाले मनुष्यों को अग्निदेव समृद्धि प्रदान करते हैं ।

वे अद्‌भुत रक्षा साधनों सहित गौओं (पोषक प्रवाहों अथवा इन्द्रियों) के समूह हेतु सहायक बनते हैं ॥३ ॥

४४४७. आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥४ ॥

कृष्णमार्ग (धुएँ के साथ उत्पन्न होने) वाले अग्निदेव प्रकट होकर दूर से दिखाई देने वाली कान्ति के द्वारा द्यावा-पृथिवी को आच्छादित करते हैं । वे अग्निदेव रात्रि के गहन अन्धकार को अपने प्रकाश से दूर करते दिखाई देते हैं ॥४ ॥

४४४८. नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हम हविष्यान्न सम्पदा वालों के लिए आप प्रचुर धन एवं संरक्षण प्रदान करें । अन्न, धन, यश एवं पराक्रमी पुत्र प्रदान करें, जो अन्य मनुष्यों से श्रेष्ठ हो ॥५ ॥

४४४९. इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! हविष्यान्न आपको प्रिय है । आपके लिए याजक जो हविष्यान्न युक्त हवि अर्पित करते हैं, आप उसे ग्रहण करें । उन यजमानों पर कृपा करके उन्हें अनेकानेक अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

४४५०. वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमसे द्वेष करने वाले हमारे शत्रुओं को दूर करें । हमारे अन्न को बढ़ायें । हम उत्तम पराक्रमी पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर सौ हेमन्त तक आनन्द से रहें ॥७ ॥

[सूक्त - ११]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४४५१. यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥१ ॥

हे देवगणों को बुलाने वाले तेजस्वी अग्निदेव ! आप हमारे द्वारा पूजित होकर मरुद्‌गणों को संगठित करें तथा मित्र, वरुण, ऋतदेवों, अश्विनीकुमारों तथा द्यावा-पृथिवी को हमारे यज्ञ में आहूत करें ॥१ ॥

४४५२. त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।
पावकया जुह्वा३ वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप पूजनीय हैं, हम मनुष्यों के प्रति द्रोहरहित हैं । आप आहुतियों को ले जाने वाले एवं आनन्ददाता हैं । देवगणों के मुखरूपी हे अग्निदेव ! आप हविग्रहण करके अपने शरीर का भी पोषण करें ॥२ ॥

४४५३. धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै ।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधुच्छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! धन की इच्छुक बुद्धि आपकी भक्ति करती है । इन्द्रादि देवों की प्रसन्नता के लिए किए जाने वाले यज्ञ आपके प्रसन्न (प्रज्वलित) होने पर ही सफल होते हैं । अङ्गिरा ऋषि, सर्वोत्तम प्रकार से आपकी स्तुति करते हैं एवं विद्वान् भारद्वाज मधुर छन्दों का गान करते हैं ॥३ ॥



४४५४. अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥४ ॥

बुद्धिमान् और आभायुक्त अग्निदेव अति विशिष्ट प्रकार से शोभायुक्त हो रहे हैं । आप विस्तृत द्युलोक एवं भूलोक का आहुतियों द्वारा पोषण करते हैं । पाँचों वर्ण के लोग अतिथि जैसे सत्कार सहित, श्रेष्ठ हवि ग्रहण करने वाले अग्निदेव को हविष्यान्न द्वारा तृप्त करें ॥४ ॥

[यज्ञ में सभी वर्ण के व्यक्तियों द्वारा आहुतियाँ देने की परम्परा ऋषिकाल से रही है ।]

४४५५. वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः ।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥५ ॥

जब पृथ्वी पर यज्ञशाला में यज्ञवेदी की रचना करके श्रेष्ठ निर्दोष घृत से युक्त स्रुचा आदि साधन तैयार किये जाते हैं, तब अन्न की आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं । जैसे सूर्य से नेत्र आश्रय पाते हैं (सूर्य प्रकाश में देखते हैं) वैसे ही याजक द्वारा किये गये यजन से यज्ञदेव वृद्धि प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

४४५६. दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥६ ॥

अनेकानेक अग्नि शिखाओं वाले एवं देवताओं का आवाहन करने वाले हे अग्निदेव ! आप विविध दिव्य अग्नियों सहित प्रसन्न होकर हमें धन प्रदान करें । हे बल उत्पादक अग्निदेव ! आप हम हवि प्रदानकर्त्ताओं को शत्रुवत् पाप से भी बचाएँ ॥६ ॥

[सूक्त - १२]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४४५७. मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥१ ॥

देवताओं के आवाहनकर्त्ता एवं यज्ञपालक अग्निदेव द्यावा-पृथिवी को पुष्ट करने के लिए याजक के घर में प्रतिष्ठित होते हैं । वे बलोत्पादक यज्ञकर्त्ता अग्निदेव अपने तेज से सम्पूर्ण जगत को उसी तरह प्रकाशित करते हैं जिस तरह सूर्यदेव दूर से ही सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हैं ॥१ ॥

४४५८. आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥२ ॥

हे तेजस्वी पूज्य यज्ञशील अग्निदेव ! आप मनुष्यों द्वारा दिये गये हव्य पदार्थों को तीनों लोकों में तारक सूर्यदेव की तरह व्याप्त होकर देवताओं तक पहुँचाते हैं । (अतएव) हम सभी याजक श्रद्धा सहित हवि अर्पित करते हैं ॥२ ॥

४४५९. तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥३ ॥

वे अग्निदेव दीप्ति के बढ़ने से सूर्यदेव के समान ही अपने मार्ग को प्रकाशित करते हैं । जो सर्वव्यापी अति-दीप्त ज्वालाओं के द्वारा वन में प्रज्वलित होते हैं, वे अमर, द्रोह रहित, न रोके जा सकें, ऐसे अग्निदेव सभी का कल्याण करते हुए समस्त जगत् को प्रकाशित करें ॥३ ॥



४४६०. **साऽस्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।**
द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥४ ॥

ये ज्ञानी अग्निदेव यज्ञकर्त्ताओं के द्वारा गाये गये गायन (स्तोत्रों) से जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं , उसी प्रकार हमारे द्वारा गाये जा रहे उत्तम स्तोत्रों से प्रसन्न होते हैं । बल में वृषभ के समान, गति में अश्व के समान तथा वृक्षों को भस्म करने वाले अग्निदेव की यजनकर्त्ता मनुष्य स्तुति करते हैं ॥४ ॥

४४६१. **अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।**
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥५ ॥

जब अग्निदेव सहज ही जङ्गलों को जलाकर पृथ्वी पर विचरते हैं, पृथ्वी पर प्रकाशित होने वाले अति वेग से व बिना प्रतिबन्ध के भ्रमण करते हैं, तब उन अग्निदेव की आभा की स्तुति इस लोक के स्तोता मनुष्य करते हैं ॥५ ॥

४४६२. **स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।**
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६ ॥

हे शत्रुनाशक अग्निदेव ! आप अपनी विविध अग्नियों सहित प्रकट होते हैं । आप निन्दाओं से हमारी रक्षा करें तथा हमें सम्पत्ति प्रदान करें । हम श्रेष्ठ योद्धा पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न होकर शत्रुओं की सेना का नाश कर, सौ हेमन्त ऋतुओं तक आनन्द सहित जीवन यापन करें ॥६ ॥

[सूक्त - १३]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४४६३. **त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।**
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥१ ॥

हे श्रेष्ठ भाग्यवान् अग्निदेव ! आप समस्त ऐश्वर्यों के उत्पादक हैं । जैसे वृक्ष से विभिन्न शाखाएँ उत्पन्न होती हैं, वैसे ही शत्रु को जीतने वाला बल, धन एवं पर्जन्य की वर्षा आप से उत्पन्न होती है । आकाश से वर्षा के लिए पानी लाने वाले आप स्तुति करने योग्य हैं ॥१ ॥

४४६४. **त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।**
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥२ ॥

हे भाग्यवान् अग्निदेव ! आप हमें सुन्दर धन प्रदान करें । आप वायु के समान सर्वव्यापी और मित्र के समान सन्मार्ग पर ले जाने वाले हैं । हे तेजस्वी ! आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२ ॥

४४६५. **स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।**
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥३ ॥

श्रेष्ठ ज्ञान सम्पन्न, सत्पुरुषों के पालक हे अग्ने ! आप जिस ऋतजात (यज्ञ से उत्पन्न) ऐश्वर्य को जल न गिरने देने वाले मेघों से संयुक्त होने की प्रेरणा प्रदान करते हैं, वही पणि (वर्षा में बाधक असुर तत्व) को नष्ट करता है ॥३ ॥

[यज्ञ से उत्पन्न प्राण-पर्जन्य मेघों से सार्थक वृष्टि का माध्यम बनता है ।]

४४६६. **यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।**
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं१ पत्यते वसव्यैः ॥४ ॥



हे बल के के पुत्र, तेजस्वी अग्निदेव ! जो यज्ञ क्रिया एवं स्तुतियों द्वारा आप (यज्ञ भगवान्) की उपासना करते हुए आपके तेज (दर्शन एवं विज्ञान) को धारण करता है, वह अन्न, धन तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥४ ॥

४४६७. ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥५ ॥

हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आपने जो पशु और अन्न क्रूर, द्वेषकर्त्ता शत्रुओं (यज्ञ के विरोधी) को प्रदान किया है । हे अग्निदेव ! वह सब हम श्रेष्ठ शौर्यवानों के निमित्त प्रदान करें ॥५ ॥

४४६८. वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६ ॥

हे बल के पुत्र एवं ज्ञानी अग्निदेव ! आप हमें हितकारी उपदेश करें । हमारी उत्तम कामनाओं की पूर्ति होती रहे । हम धन, अन्न, तथा ऐश्वर्य युक्त पुत्र-पौत्रादि सहित सौ हेमन्त पर्यन्त जीवनयापन करें ॥६ ॥

[सूक्त - १४]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** अनुष्टुप्; ६ शक्वरी ।]

४४६९. अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः । भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥

जो मनुष्य स्तुति सहित यज्ञ करता है एवं सद्‌बुद्धि प्रेरित कर्म करता है, वह अग्रणी-यशस्वी होता है और सुरक्षा के निमित्त पर्याप्त धन-धान्य प्राप्त करता है ॥१ ॥

४४७०. अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः । अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः

अग्निदेव ही श्रेष्ठ ज्ञानी एवं सत्कर्म प्रेरक सर्वद्रष्टा हैं । मनुष्य पुत्रादि सहित यज्ञ में इन्हीं की स्तुति करते हैं

४४७१.नाना ह्य१ग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः । तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम्

हे अग्निदेव ! जो आपका यजन करता है, वह यज्ञ न करने वालों को पराजित करता है एवं शत्रुओं का धन, ऐश्वर्य उनसे पृथक् होकर (याजक) स्तुतिकर्त्ता को प्राप्त होता है ॥३ ॥

४४७२. अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः सञ्चक्षि शत्रवो भिया ॥४ ॥

अग्निदेव स्तुति करने वाले स्तोताओं के लिए सन्मार्गगामी, सत्कर्म रक्षक (यज्ञ की रक्षा करने वाले), शत्रुजयी, श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करते हैं, जिससे शत्रु भी भयभीत रहते हैं ॥४ ॥

४४७३. अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति । सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥

अग्निदेव ही अपने तेजस्वी ज्ञान, बल के द्वारा निन्दा से याजक की रक्षा करते हैं एवं युद्धकाल में धन को सुरक्षित करते हैं ॥५ ॥

४४७४. अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः । वीहि स्वस्तिं
सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥६ ॥

हे मित्र के समान रक्षा करने वाले, तेजस्वी, गुण-सम्पन्न अग्निदेव ! आप द्यावा-पृथिवी में संव्याप्त होकर स्तोताओं द्वारा की जाने वाली स्तुति को देवगणों तक पहुँचाते हैं । आप ही अपने रक्षा साधनों से, पापों से, कष्टों से एवं शत्रुओं से हमारी रक्षा करते हैं । हमें उत्तम आवासादि प्रदान करें ॥६ ॥



[सूक्त - १५]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य अथवा वीतहव्य आङ्गिरस । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - जगती; ३,१५; ६-अतिशक्वरी; १०, १४, १६, १९ त्रिष्टुप्; १६ अनुष्टुप्; १८ - बृहती ।]

४४७५. **इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।**
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥१ ॥

जो अग्निदेव अतिथि जैसे पूज्य, प्रजापालक स्वभावतः पवित्र एवं उषाकाल में प्रज्वलित होने वाले हैं, वे - द्युलोक से उत्पन्न होकर द्यावा-पृथिवी के मध्य विचरते हुए निवेदित हवि को ग्रहण करते हैं । हे विज्ञजन ! ऐसे अग्निदेव की स्तुति कर आप उन्हें प्रसन्न करें ॥१ ॥

४४७६. **मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।**
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥२ ॥

हे अरणियों में व्याप्त, स्तुति योग्य, मित्रवत् अग्निदेव ! आपको भृगु आदि ऋषियों ने भी स्थापित किया है । हे अद्भुत अग्निदेव ! आप ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं वाले हैं । विज्ञजन प्रतिदिन उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं । हे अग्निदेव ! आप कृपा करने वाले हैं ॥२ ॥

४४७७. **स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।**
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप दयालु होकर चतुर मनुष्यों की सुरक्षा करते हैं । हे अग्निदेव ! आप महान् हैं । हे बल पुत्र ! आप भारद्वाज वंशीय को धन, अन्न एवं निवास प्रदान करें ॥३ ॥

४४७८. **द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।**
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥४ ॥

हे विज्ञजनो ! आप देदीप्यमान, दिव्य-गुणयुक्त, हविवाहक, अतिथि के समान पूज्य, मनुष्य यज्ञ में देवगणों को बुलाने वाले, स्वर्ग तक पहुँचाने वाले, उत्तम यज्ञ करने वाले, विद्वानों जैसे कान्तिवान् अग्निदेव को श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करें ॥४ ॥

४४७९. **पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना ।**
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥५ ॥

उषा के प्रकाश की भाँति अग्निदेव पृथिवी को पवित्रता एवं चेतना से युक्त करते हुए अपनी तेजस्विता से शोभायमान होते हैं । हे वीतहव्य ! आप उन अग्निदेव की अर्चना करें जो ऐतश ऋषि के रक्षार्थ रणभूमि में शीघ्र चैतन्य होने वाले, सर्वभक्षी तथा अजर हैं ॥५ ॥

४४८०. **अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि । उप वो**
गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥६ ॥

हे स्तोताओ ! आप अतिथि के समान पूज्य एवं अत्यन्त प्रिय अग्निदेव की समिधाओं द्वारा सेवा करें । वे अमर अग्निदेव, देवों में वरणीय सम्पत्ति धारण करते हैं और हमारी अर्चना स्वीकार करते हैं । अस्तु उन अविनाशी अग्निदेव की सेवा वाणी (स्तोत्रों) द्वारा करें ॥६ ॥



४४८१. समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥७॥

समिधाओं द्वारा प्रकट अग्निदेव की हम वाणी (स्तुतियों) से अर्चना करते हैं । शुद्ध स्थिर और पावन बनाने वाले अग्निदेव को यज्ञ में अग्रिम स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं । (विप्र) विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न तथा हविदाता सभी द्वारा धारण करने योग्य, द्रोह मुक्त, ज्ञानवान् और सर्वज्ञाता अग्निदेव की ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए हम स्तुति करते हैं ॥७॥

४४८२. त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥८॥

हे अग्निदेव ! अमर देवता और मनुष्य प्रत्येक शुभ यज्ञ में, हविदाता, रक्षक और स्तुति योग्य आपको दूतरूप में नियुक्त करते हैं तथा जागृति प्रधान, विस्तारशील और प्रजाजनों की रक्षा में सहायक मानकर मनुष्यगण आप को प्रणाम करते हुए उपासना करते हैं ॥८॥

४४८३. विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥९॥

देव एवं मनुष्य दोनों को महिमा-मण्डित करते हुए अनुशासन प्रिय व्रतशील देवों के दूत बनकर दिव्यलोक एवं इस लोक में हवि ले जाने वाले हे अग्निदेव ! हम आपकी स्तुतियाँ करते हैं । तीनों स्थानों (पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक) में विचरणशील आप हमें सुख प्रदान करें ॥९॥

४४८४. तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥१०॥

मनोहर रूप वाले, गमनशील, सर्वज्ञ एवं शोभनाङ्ग अग्निदेव का हम अल्पज्ञ मानव यजन करें । वे सर्वकर्म ज्ञाता हमारी हवियों का वर्णन देवताओं से करें एवं देवगणों के निमित्त यज्ञ सम्पन्न करें ॥१०॥

४४८५. तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥११॥

हे शौर्यवान् अग्निदेव ! जो बुद्धिमान मनुष्य आपके निमित्त कर्म करते हैं, आप उनकी रक्षा करते हुए उनकी श्रेष्ठ कामनाओं की पूर्ति करें । जो याजक संस्कारवान् रहकर प्रगति करते हुए यज्ञ करते हैं, उन्हें आप प्रचुर बल प्रदान करें ॥११॥

४४८६. त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥१२॥

हे पराक्रमी अग्निदेव ! आप हमारी शत्रुओं एवं पापों से रक्षा करें, हमारे द्वारा अर्पित हवि को ग्रहण करें एवं स्तुति करने वालों को स्पृहा करने योग्य सहस्र प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१२॥

४४८७. अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥१३॥

तेजस्वी, सर्वज्ञ, देवगणों का आवाहन करने वाले, सब प्राणियों के ज्ञाता अग्निदेव हमारे घरों के स्वामी हैं । जो अग्निदेव मनुष्यों और देवताओं में श्रेष्ठ याजक हैं, वे सत्यवान् अग्निदेव सविधि यज्ञ करें ॥१३॥



४४८८. अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥१४ ॥

हे पावन ज्वालाओं वाले यज्ञकर्त्ता अग्निदेव ! आप देवताओं के निमित्त यज्ञ करने वाले हैं । आप इस यज्ञ में देवताओं का यज्ञ करें एवं इस समय याजक जिस इच्छा से यज्ञ करता है उसकी इच्छा पूर्ण करें । हे चिरयुवा अग्निदेव ! आप स्वयं की महानता के कारण ही महान् हैं । आप हमारी हवियों को ग्रहण करें ॥१४ ॥

४४८९. अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै । अवा नो
मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! याजक ने द्यावा-पृथिवी के निमित्त यज्ञ करने के लिए आपको प्रतिष्ठित किया है । आप वेदी पर अच्छी तरह से रखे गये हवि को देखें । हे अग्निदेव ! संग्राम में आप हमारी रक्षा करें ताकि समस्त दु:खों से हम बच जायें ॥१५ ॥

४४९०. अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥१६ ॥

ये अग्निदेव समस्त देवगणों में अग्रणी हैं । हे सुन्दर ज्वालाओं वाले अग्निदेव ! आप ऊन के आसन एवं घृतयुक्त यज्ञ वेदी पर विराजमान होकर हवि देने वाले यजमान के यज्ञ को उत्तम प्रकार से देवताओं तक पहुँचाएँ ॥१६ ॥

४४९१. इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥१७ ॥

कर्म (यज्ञ) कर्त्ता, ज्ञानी, ऋत्विग्गण अथर्वा ऋषि के जैसा मंथन करके अग्नि को उत्पन्न करते हैं । इधर-उधर भ्रमणशील ज्ञानी अग्निदेव को उस अंधेरे स्थान से लाकर, यहाँ (यज्ञवेदी) पर स्थापित करते हैं ॥१७ ॥

४४९२. जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान् वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥१८ ॥

हे अग्निदेव ! आप अरणिमंथन द्वारा प्रकट होकर देवताओं की कामना वाले यजमान के कल्याण को सुस्थिर करें । आप यज्ञवर्धक अमर देवगणों का यज्ञ में आवाहन करें और हमारे यज्ञ को देवताओं तक पहुँचाएँ ॥१८ ॥

४४९३. वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि ॥१९ ॥

हे यज्ञरक्षक अग्निदेव ! हम समिधाओं द्वारा प्राणियों के मध्य आपको प्रदीप्त करते हैं । गार्हपत्य अग्निदेव हमें पुत्र, पशु और अनेक ऐश्वर्य प्रदान करें । आप हमें तेजस्विता प्रदान करें ॥१९ ॥

[सूक्त - १६]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री; १, ६ वर्धमाना; २७, ४७-४८ अनुष्टुप्; ४६ त्रिष्टुप् ।]

४४९४. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप होता और देवगणों के आवाहनकर्त्ता हैं । आप मनुष्यों के यज्ञ में देवताओं द्वारा होता निर्धारित किये गये हैं ॥१ ॥



४४९५. स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी महान् ज्वालाओं सहित इस यज्ञ में देवगणों की स्तुति करें एवं इन्द्रादि देवताओं का आवाहन करके उन्हें हवि प्रदान करें ॥२ ॥

४४९६. वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३ ॥

हे नियन्ता, श्रेष्ठकर्मा अग्निदेव ! आप यज्ञ के निकटस्थ एवं दूरस्थ (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष) सभी मार्गों के ज्ञाता हैं । आप याजकों का उचित मार्गदर्शन करें ॥३ ॥

४४९७. त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् । ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥४ ॥

हे तेजरूप अग्निदेव ! भरत अनेक ऋत्विजों के साथ मिलकर लौकिक एवं अलौकिक दोनों प्रकार के सुख प्राप्त करने के लिए आपकी स्तुति करते हैं । हे यजनीय ! आपके द्वारा ही अनिष्टों का शमन एवं इच्छाओं की पूर्ति होती है । हम आपकी स्तुति और यज्ञ करते हैं ॥४ ॥

४४९८. त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते । भरद्वाजाय दाशुषे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपने सोम सिद्धकर्त्ता 'दिवोदास' को बहुत सा ऐश्वर्य प्रदान किया था; उसी प्रकार 'भरद्वाज' (हवि देने वाले को) भी धन-ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५ ॥

४४९९. त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् । शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप अमर हैं, आप दूत हैं ; (अतः) विद्वान् भरद्वाज द्वारा की जा रही स्तुति को सुनने के लिए देवगणों का हमारे यज्ञ में आवाहन करें ॥६ ॥

४५००. त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये । यज्ञेषु देवमीळते ॥७ ॥

बल अर्थात् घर्षण से प्रकट होने वाले सौन्दर्यवान् हे अग्निदेव ! हम याजकगण धन-धान्य एवं आपका सान्निध्य प्राप्त करने की कामना से वन्दना करते हैं ॥७ ॥

४५०१. तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः ॥८ ॥

स्वर्ण सदृश जाज्वल्यमान हे अग्निदेव ! छाया में मिलने वाली शीतलता की तरह हम आपके संरक्षण में रहकर सुख प्राप्त करें ॥८ ॥

४५०२. त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः । अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥९ ॥

बैल के सींग की भाँति तेजस्वी ज्वालाओं वाले, वीर धनुर्धर के समान पराक्रमी हे अग्निदेव ! आपने दुष्टों के आश्रय-स्थलों को नष्ट किया है ॥९ ॥

४५०३. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! हे प्रकाशक एवं सर्वव्यापक देव ! हवि को गति देने (वीति) के लिए आप पधारें । सब आपकी स्तुति करते हैं । यज्ञ में हम आपका आवाहन करते हैं; क्योंकि आप सब पदार्थों को प्रदान करने वाले हैं ॥१० ॥

४५०४. तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥११ ॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! हम आपको समिधाओं तथा घृत द्वारा प्रदीप्त करते हैं । अतः हे सामर्थ्यवान् ! आप अधिक प्रखर हों ॥११ ॥

४५०५. स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप ऐसी कृपा करें कि हम महान् पराक्रम और श्रेष्ठ यशस्वी सामर्थ्य प्राप्त हो ॥१२ ॥



४५०६. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥१३॥

परम श्रेष्ठ, अखिल विश्व के धारणकर्त्ता हे अग्निदेव ! अथर्वा (विज्ञानवेत्ता अथवा प्रधान पुरोहित) ने आपको विश्व के महानतम आधार के रूप में अरणि मन्थन द्वारा प्रकट किया ॥१३॥

४५०७. तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥१४॥

हे अग्निदेव ! 'अथर्वा' के पुत्र 'दध्यङ्' ऋषि ने आपको प्रथम प्रदीप्त किया। आप शत्रुसंहारक एवं उनके नगरों को नष्ट करने वाले हैं ॥१४॥

४५०८. तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम्। धनञ्जयं रणेरणे ॥१५॥

हे अग्निदेव ! "पाथ्य वृषा" (इस नाम के ऋषि अथवा सन्मार्गगामी बलवान्) ने आपको प्रदीप्त किया। आप असुर संहारक तथा युद्ध में जीतने वाले हैं ॥१५॥

४५०९. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥१६॥

हम आपके लिए ही स्तुति करते हैं। आप इन्हें सुनकर प्रकट हों और इस सोमरस से अपनी महानता का विस्तार करें ॥१६॥

४५१०. यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्। तत्रा सदः कृणवसे ॥१७॥

हे अग्निदेव ! आप जिस क्षेत्र एवं याजक से प्रसन्न होते हैं, वहाँ अधिकाधिक बल धारण कराते हैं और वहीं आवास भी बनाते हैं ॥१७॥

४५११. नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो। अथा दुवो वनवसे ॥१८॥

हे अग्निदेव ! आपका तेज चक्षुओं के लिए हानिकारक नहीं है। हे व्रतपालक मानवों के स्वामी ! आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें ॥१८॥

[सामान्य मान्यता यह है कि गर्मी से आँखों को हानि पहुँचती है; किन्तु यज्ञीय ऊर्जा नेत्रों के लिए भी हितकारी है।]

४५१२. आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः। दिवोदासस्य सत्पतिः ॥१९॥

वे अग्निदेव आहुतियों के अधिपति और वे ही दिवोदास के शत्रुओं के संहारक हैं। हे याजको ! वे अग्निदेव रक्षक एवं सर्वज्ञ हैं। हम स्तुतियों द्वारा अग्निदेव का आवाहन करते हैं ॥१९॥

४५१३. स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना।वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥२०॥

जो अग्निदेव अपराजित, शत्रुनाशक और अहिंसित हैं। वे अग्निदेव ही अपनी सामर्थ्य से हमें पृथ्वी पर श्रेष्ठ धन-ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥२०॥

४५१४. स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता। बृहत्ततन्थ भानुना ॥२१॥

हे अग्निदेव ! आप इस विस्तार वाले अन्तरिक्ष को अपने संयमित एवं नवीन तेज से वैसे ही प्रकाशित कर रहे हैं, जैसे कि पहले प्रकाशित करते थे ॥२१॥

४५१५. प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया। अर्च गाय च वेधसे ॥२२॥

हे ऋत्विजो ! आप ईश्वर के समान शक्तिमान् और शत्रुविनाशक अग्निदेव को आहुतियों एवं उत्तम स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करें ॥२२॥

४५१६. स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः। दूतश्च हव्यवाहनः ॥२३॥



जो अग्निदेव मेधावी, हविवाहक एवं यज्ञकर्म में देवदूत और देवों का आवाहन करते हैं, वे अग्निदेव हमारे इस यज्ञ में कुशाओं पर प्रतिष्ठित हों ॥२३ ॥

४५१७. ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम् । वसो यक्षीह रोदसी ॥२४ ॥

हे अग्निदेव ! आप इस यज्ञ में आएँ और प्रसिद्ध, शुभकर्म करने वाले मित्रावरुण, मरुत् एवं द्यावा-पृथिवी के लिए यजन करें । आप श्रेष्ठ निवास प्रदान करते हैं ॥२४ ॥

४५१८. वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय । ऊर्जो नपादमृतस्य ॥२५ ॥

हे अग्निदेव ! आप अमर एवं बलशाली हैं । आप की सतेज दृष्टि (कृपा) अन्न की इच्छा वाले याजकों को अन्न-धन प्रदान कराती है ॥२५ ॥

४५१९. क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः । मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥२६ ॥

हे अग्निदेव ! आज याजक आपकी सेवा (यज्ञ) करने वाले एवं श्रेष्ठकर्म करने वाले बनें । वे सदैव ही उत्तम सम्भाषण करें ॥२६ ॥

४५२०. ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥२७ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी स्तुति करने वाले आपकी सुरक्षा में रहकर, शत्रुओं की सेना को जीतकर, शत्रुओं का नाश करते हैं एवं पूर्ण आयु तक अन्नादि सहित सुखों से पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं ॥२७ ॥

४५२१. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्य१त्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥२८ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी प्रज्वलित, तीक्ष्ण ज्वालाओं से विघ्नकारक तत्त्वों (शत्रुओं) को नष्ट करें और जो आपकी उपासना तथा स्तुति करते हैं, उनको बल एवं ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२८ ॥

४५२२. सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२९ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप दुष्टों का संहारकर, हमें श्रेष्ठ सन्तानयुक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२९ ॥

४५२३. त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः । रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥३० ॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! आप ज्ञान के द्रष्टा हैं । आप पाप और पापी शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥३० ॥

४५२४. यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति । तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥३१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें उस मनुष्य से बचाएँ, जो दुर्भावनापूर्वक हमें मारने के लिए प्रयत्न करता है । पापों से भी हमारी रक्षा करें ॥३१ ॥

४५२५. त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् । मर्तो यो नो जिघांसति ॥३२ ॥

हे अग्निदेव !आप अपनी तेजस्विता बढ़ाकर उनका संहार करें, जो दुष्ट हमें मारने का अभिप्राय रखते हैं ॥३२

४५२६. भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य । अग्ने वरेण्यं वसु ॥३३ ॥

हे अग्निदेव !आप तेजस्वी हैं, आप भरद्वाज को सब प्रकार का यशस्वी निवास प्रदान करें तथा श्रेष्ठ धन दें ॥३३ ॥

४५२७. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥३४ ॥

सत्प्रयासों से प्रसन्न होकर याजकों को प्रसन्नता प्रदान करने वाले हे प्रदीप्त अग्निदेव ! हमें बन्धन में रखने वाली दुष्ट वृत्तियों का विनाश करें ॥३४ ॥



४५२८. गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे। सीदन्नृतस्य योनिमा ॥३५॥

पृथ्वी माता के गर्भ में विशेष रूप से देदीप्यमान एवं अन्तरिक्ष में संरक्षक की भूमिका में नियुक्त अग्निदेव यज्ञवेदी पर विराजमान हैं ॥३५॥

४५२९. ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे। अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३६॥

सब जानने वाले दिव्य-द्रष्टा, हे अग्निदेव ! अन्तरिक्षलोक में देवों को प्राप्त सुख , ऐश्वर्य एवं सन्तान आदि से हमें भी सम्पन्न करें ॥३६॥

४५३०. उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत। अग्ने ससृज्महे गिरः ॥३७॥

हे बल-पुत्र अग्निदेव !आप रमणीय दिखाई देते हैं। हम हविष्यान्न अर्पित करते हुए आपकी स्तुति करते हैं॥३७॥

४५३१. उपच्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम्। अग्ने हिरण्यऽसन्दृशः ॥३८॥

हे अग्निदेव ! आप स्वर्णमयी आभा वाले हैं। आपके सामीप्य से हमें वैसा ही सुख मिलता है, जैसा कि थके हुए प्राणियों को छाया में मिलता है ॥३८॥

४५३२. य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः। अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३९॥

हे अग्निदेव ! आप महान योद्धा के बाणों एवं बैल के तीक्ष्ण सींगों के समान शत्रुओं का संहार करते हैं। हे देव ! आपने ही असुरों के तीन नगरों को नष्ट किया है ॥३९॥

४५३३. आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति। विशामग्निं स्वध्वरम् ॥४०॥

(अरणि मन्थन से उत्पन्न) अग्नि को अध्वर्युगण नवजात शिशु की तरह (प्रेमभाव से) हाथ में धारण करते हैं। हे ऋत्विजो ! आप हिंसक पशु की भाँति सावधानी से अग्नि की परिचर्या करें ॥४०॥

४५३४. प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम्। आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥४१॥

हे अध्वर्यो ! आप देवगणों के निमित्त, इन तेजस्वी एवं ऐश्वर्यवान् अग्निदेव को यज्ञवेदी पर स्थापित करते हुए हव्य अर्पित करें ॥४१॥

४५३५. आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम्। स्योन आ गृहपतिम् ॥४२॥

हे अध्वर्यो ! आप अतिथि जैसे पूज्य , गृहपति अग्निदेव को यज्ञवेदी पर स्थापित कर , ज्ञानी , सुखकर अग्निदेव को उत्तम हवि अर्पित करें ॥४२॥

४५३६. अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। अरं वहन्ति मन्यवे ॥४३॥

हे ज्योतिर्मान् अग्निदेव ! आप उन समस्त श्रेष्ठ एवं कुशल अश्वों (ऊर्जा धाराओं) को नियोजित करें, जो आपको यज्ञ हेतु वहन करते हैं ॥४३॥

४५३७. अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये। आ देवान्त्सोमपीतये ॥४४॥

हे अग्निदेव ! हवि ग्रहण करने और सोमपान करने के निमित्त आप हमारी ओर उन्मुख हों और देवों को भी प्रकट करें ॥४४॥

४५३८. उदग्ने भारत द्युमदजस्त्रेण दविद्युतत्। शोचा वि भाह्यजर ॥४५॥

संसार का भरण-पोषण करने वाले हे अग्निदेव ! आप प्रज्वलित होकर उन्नत हों, कभी क्षीण न होने वाले अपने तेज से प्रकाशित हों और जगत् में प्रकाश फैलाएँ ॥४५॥



४५३९. वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥४६ ॥

हव्य पदार्थ से युक्त इन अग्निदेव को हवि अर्पित कर इष्ट (किसी भी) देव का यजन करते हैं, जो अग्निदेव सत्य रूप हवि से यजन करने योग्य , द्युलोक एवं भूलोक के देवगणों का आवाहन करने वाले हैं, याजक उन अग्निदेव की हाथ उठाकर नमस्कारपूर्वक सेवा करें ॥४६ ॥

४५४०. आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि। ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत॥४७ ॥

हे अग्निदेव ! हम मन्त्रों सहित संस्कारित हवि को आपके निमित्त हृदय से अर्पित करते हैं । यह (हवि) समर्थ बैल, गौ के रूप में प्राप्त हो ॥४७ ॥

४५४१. अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम्।
येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥४८ ॥

जो अग्निदेव, यज्ञ में बाधक राक्षसों को मारने वाले, दुष्टों के धन का हरण करने वाले हैं, उन वृत्रासुर संहारक अग्निदेव को मेधावीजन प्रदीप्त करें ॥४८ ॥

[**मन्त्रयुक्त हवि प्रकृति के घटकों को बैल की तरह पुष्ट तथा गाय की तरह पोषण प्रदायक सामर्थ्य दे, ऐसा भाव है ।**]

[सूक्त - १७]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप्; १५ द्विपदा त्रिष्टुप् ।]

४५४२. पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥१ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आपने पराक्रम द्वारा शत्रुओं का संहार किया । हे वज्रिन् ! आपने चोरी गई गौओं को खोज लिया । अंगिरा ने आपकी स्तुति की एवं सोम प्रेषित किया । हे इन्द्रदेव ! आप सोमपान करें ॥१ ॥

४५४३. स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम्।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पहाड़ों को तोड़ने वाले तथा अश्वों के संयोजक हैं । आप शत्रुओं से रक्षा करने वाले हैं । हे सोमपान करने वाले देव ! आप सोमपान करें एवं स्तुति करने वालों को श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥२ ॥

४५४४. एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तुति सुनकर हमारी वृद्धि करें आपने जैसे पहले सोमपान किया था, वैसे ही सोमरस का पान करें । यह आपको पुष्ट करे । आप सूर्यदेव को प्रकट करके हमें अन्न प्रदान करें । पणियों द्वारा चुराई गई गौओं को खोजें एवं शत्रुओं का नाश करें ॥३ ॥

४५४५. ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हषन्त प्रसाहम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप तेजस्वी एवं अन्न से युक्त हैं; सोमरस पान कर आप आनन्दित हों । आप अत्यन्त गुणवान् एवं महान् हैं । आप हमारे शत्रुओं का नाश करें ॥४ ॥

४५४६. येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत्।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ।।५ ।।

हे सोमरस से तृप्त हुए हे इन्द्रदेव ! आपने सूर्य और उषा के द्वारा अन्धकार का नाश किया । आपने अति स्थिर रक्षक गिरि को तोड़कर पणियों द्वारा चुराई गई गौएँ पायीं ।।५ ।।

४५४७. तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान् ।।६ ।।

हे इन्द्रदेव ! आपने बुद्धि-कौशल, कर्म-कौशल एवं पराक्रम से गौओं को निकलने के लिए मार्ग बनाया है । आपने ही उन्हें दुग्धवती बनाया । अंगिराओं के सहयोग से आपने ही गौओं को छुड़ाया ।।६ ।।

४५४८. पप्राथ क्षां महि दंसो व्यु१र्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ।।७ ।।

हे इन्द्रदेव !आप महान् हैं ।आपने कर्म करके पृथ्वी के विस्तृत क्षेत्र को और विस्तृत किया । आपने दिव्यलोक को गिरने से बचाने के लिए स्तब्ध किया ।देवता जिनके पुत्र हैं, उन द्यावा-पृथिवी को आपने धारण किया ।।७ ।।

४५४९. अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ।।८ ।।

हे इन्द्रदेव ! आपने मरुद्गणों की युद्ध के समय सहायता की थी । वृत्रासुर से जब युद्ध हुआ था, तब आप ही देवगणों में नायक थे । आप महान् पराक्रमी हैं ।।८ ।।

४५५०. अध द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद्द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ।।९ ।।

जब इन्द्रदेव ने सब शक्तियों से सम्पन्न होकर, वृत्रासुर को सोई अवस्था में ही पूर्णतः नष्ट कर दिया, तब इन्द्रदेव के क्रोध, वज्रयुक्त पराक्रम को देखकर द्युलोक भी भय से स्तब्ध रह गया ।।९ ।।

४५५१. अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ।।१० ।।

हे सोमपायी पराक्रमी इन्द्रदेव ! त्वष्टादेव द्वारा निर्मित शत सन्धि एवं सहस्रधारयुक्त वज्र से ही आपने वृत्रासुर का संहार किया ।।१० ।।

४५५२. वर्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ।।११ ।।

हे इन्द्रदेव ! आपकी वृद्धि के लिए, मरुद्गण श्रेष्ठ स्तुति करते हैं । पूषादेव आपके लिए बलवर्धक अन्न पकाते हैं एवं विष्णुदेव तीन पात्रों में वृत्रासुर के मारने की शक्ति बढ़ाने वाला सोमरस भरते हैं ।।११ ।।

४५५३. आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ।।१२ ।।

हे इन्द्रदेव ! आपने उन नदियों के जल को प्रवाहित किया, जिनको वृत्रासुर अवरुद्ध किये था । समुद्र की ओर जाकर मिलने वाली नदियों के वेगवान् जल की तरङ्गों को स्वतन्त्र किया ।।१२ ।।



४५५४. **एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम्।**
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप चिर युवा, बलशाली, ऐश्वर्यवान् , ओजस्वी, श्रेष्ठ कर्म के सम्पादक एवं वज्रधारी हैं । हमारे नवीन स्तोत्र से प्रसन्न होकर प्रवर्धमान हों और हमारी रक्षा करें ॥१३ ॥

४५५५. **स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान्।**
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निमित्त अन्न, बल एवं धन को धारण करें; ताकि हमें अन्न, बल एवं धन प्राप्त हो । हमें सेवकों से युक्त करें । हम ज्ञानी हैं; हमें भविष्य में भी पुत्र-पौत्रादि सहित सुख-सम्पन्न बनायें ॥१४ ॥

४५५६. **अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आप हम स्तोताओं को अन्नादि से युक्त करें । हम वीर पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर शतायु हों तथा सुखमय जीवनयापन करें ॥१५ ॥

[सूक्त - १८]

[**ऋषि**- भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप्; १५ द्विपदा त्रिष्टुप् ।]

४५५७. **तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।**
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥१ ॥

हे भरद्वाज ! आप शत्रुनाशक, तेजस्वी एवं आहूत इन्द्रदेव की श्रेष्ठ स्तुति करें । आप उन इन्द्रदेव को बढ़ायें, जो स्तुति से प्रसन्न होकर मनुष्यों की इच्छा को पूर्ण करते हैं ॥१ ॥

४५५८. **स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।**
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥२ ॥

बलशाली, दानी, सोमरस पान करने वाले, सहयोगी एवं सदैव युद्ध कर्म करने वाले इन्द्रदेव मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥२ ॥

४५५९. **त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।**
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप याजकों को पुत्र एवं सेवक प्रदान करते हैं । जो यज्ञ नहीं करते उन्हें जीत लें । हे इन्द्रदेव ! अपने बल का परिचय देने के लिए कभी-कभी अपना पराक्रम प्रकट करें ॥३ ॥

४५६०. **सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।**
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पराक्रमी, ओजस्वी, बली, अजेय तथा शत्रुहन्ता हैं । आप अनेक यज्ञों में उपस्थित हुए हैं । आप हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥४ ॥

४५६१. **तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।**
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५ ॥



हे इन्द्रदेव ! आपने स्तुतिकर्त्ता अंगिराओं के शत्रु 'वल' नामक असुर का संहार किया और नगरों के द्वारों को खोल दिया था । हे इन्द्रदेव ! हमारा सखा भाव सुदृढ़ बने ॥५ ॥

४५६२. **स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।**
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥६ ॥

स्तुति करने वालों ने, सामर्थ्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव का स्तुति द्वारा आवाहन किया । उनका आवाहन पुत्र प्राप्ति के लिए किया जाता है, वे वज्रधारी इन्द्रदेव रणभूमि में नमस्कार के योग्य हैं ॥६ ॥

४५६३. **स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।**
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥७ ॥

वे इन्द्रदेव शत्रुओं को बल से झुकाने वाले, यश, धन, बल और वीर्य में सर्वश्रेष्ठ हैं । वे मनुष्यों में श्रेष्ठ और सर्वोत्तम पद तथा स्थान को प्राप्त करें ॥७ ॥

४५६४. **स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च ।**
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥८ ॥

जो व्यर्थ की वस्तुओं को पैदा नहीं करते, वे सुमन्त नाम वाले वीर इन्द्रदेव युद्ध क्षेत्र में कुशल योद्धा के रूप में प्रसिद्ध हैं । वे इन्द्रदेव, उन राक्षसों का संहार करने को सदैव तत्पर रह कर क्रियाशील होते हैं, जो राक्षस सर्वभक्षी, सबके धन का हरण करने वाले, जल को रोकने वाले तथा शोषण करने वाले हैं ॥८ ॥

४५६५. **उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।**
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ऊर्ध्वगति वाले हैं । रक्षक एवं शत्रुओं का संहार करने वाले हैं । आप शत्रु के संहार के लिए प्रशंसनीय बलयुक्त अपने रथ पर आरूढ़ होते हैं ॥९ ॥

४५६६. **अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।**
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का वैसे ही संहार करें, जैसे कि अग्नि शुष्क वनों को भस्म करती है । गर्जन करने वाले, दुष्टों को छिन्न-भिन्न करने वाले, हे इन्द्रदेव ! आप वज्र से, बिजली की तरह राक्षसों को जलायें (नष्ट करें) ॥१०॥

४५६७. **आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।**
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको असुर बलहीन नहीं कर सकते हैं । आपका, अनेकों द्वारा आवाहन किया जाता है । आप सहस्रों प्रकार के मार्गों से ऐश्वर्ययुक्त होकर हमारे समक्ष आएँ ॥११ ॥

४५६८. **प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।**
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥१२ ॥

इन्द्रदेव की महिमा द्युलोक और भूलोक से भी बड़ी है । वे इन्द्रदेव अति तेजोमय, धनवान्, श्रेष्ठ एवं शत्रु का नाश करने वाले हैं । प्रज्ञावान् एवं शान्ति, सुखदायक, पराक्रमी इन्द्रदेव का कोई शत्रु नहीं है । इनकी बराबरी का भी अन्य कोई नहीं है ॥१२ ॥



४५६९. प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने वज्र के द्वारा 'शम्बर' का वध करके, 'शम्बर' का बहुत-सा धन "अतिथिग्व" को प्रदान किया । 'कुत्स' की 'शुष्ण' से रक्षा की तथा शत्रुओं से 'आयु' और 'दिवोदास' की रक्षा की । भूमि पर तीव्रगामी 'दिवोदास' को कष्टों से सुरक्षित किया ॥१३ ॥

४५७०. अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥१४ ॥

हे प्रकाशमान इन्द्रदेव !'अहि' असुर को मारने वाले सभी देवगण आज आपके अनुकूल हैं एवं प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं । आप सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं । आप स्तोताओं से प्रसन्न होकर तेजस्वी यजमानों एवं पुत्रों को धन आदि देकर सुखी बनाएँ ॥१४ ॥

४५७१. अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके बल का अमर देवगण तथा द्यावा-पृथिवी अनुसरण करते हैं । हे कर्मवीर इन्द्रदेव ! आप नवीन यज्ञ कर्म करें तथा अभिनव स्तोत्रों को प्रकट करें ॥१५ ॥

[सूक्त - १९]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४५७२. महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१ ॥

स्तोताओं एवं प्रजाओं का पालन करने वाले हे महान् इन्द्रदेव ! आप हमारे पास आएँ । दोनों लोकों में अनेक शक्तियों के कारण अहिंसित पराक्रमी, वीरता के कार्य करके बड़ी सामर्थ्य वाले इन्द्रदेव हमारे सामने आएँ । विशाल शरीर एवं उत्तम गुण-सम्पन्न इन्द्रदेव कर्म करने की अपनी सामर्थ्य के कारण ही पूजनीय हैं ॥१ ॥

४५७३. इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद्बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥२ ॥

जो प्रगतिशील, महान् दाता, अजर, चिरयुवा तथा अपरिमित बलशाली हैं एवं जो इन्द्रदेव तत्काल प्रवर्धमान होने वाले (सामर्थ्य को शीघ्र बढ़ाने वाले) हैं; ऐसे इन्द्रदेव को हमारी बुद्धि धारण करती है ॥२ ॥

४५७४. पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शान्त मन वाले हैं । आप उत्तम कर्म में कुशल एवं बहुत दान देने वाले अपने हाथों को, हमारे कल्याण के लिए (अभय मुद्रा में) , हमारे सामने लाएँ । जिस प्रकार पशु पालन करने वाला पशुओं को प्रेरित करता है, वैसे ही संग्राम में आप हमें प्रेरित करें ॥३ ॥

४५७५. तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥४ ॥



अन्न के इच्छुक हम स्तोता, शत्रुहन्ता इन्द्रदेव का इस यज्ञ में सहायक मरुद्गणों सहित आवाहन करते हैं। हे इन्द्रदेव ! जैसे पुरातन काल में स्तोतागण, पापमुक्त, अनिन्द्य और अहिंसित स्थिति में थे, वैसे ही हम भी बनें ॥४ ॥

४५७६. **धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।**
सं जग्मिरे पथ्या३ रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५ ॥

स्तुतिकर्त्ताओं का अन्न एवं धन इन्द्रदेव के निमित वैसे ही पहुँचता है, जैसे नदियों का जल समुद्र में गिरता है। वे इन्द्रदेव सोमपायी, ऐश्वर्यवान् एवं कर्म कुशल हैं ॥५ ॥

४५७७. **शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।**
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं। आप हमें उत्तम बल एवं तेजस्विता प्रदान करें। हमें शक्ति, तेज एवं मनुष्योपयोगी ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६ ॥

४५७८. **यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।**
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को जीतने वाला बल हमें प्रदान करें, ताकि आपके द्वारा प्रदत्त रक्षा साधनों से हम शत्रु को जीतें। जीतने पर हमें वही सुख प्राप्त हो, जो पुत्र-प्राप्ति पर मिलता है ॥७ ॥

४५७९. **आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।**
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें बल बढ़ाने वाला, धन देने वाला कुशल पराक्रम प्रदान करें। आपकी सुरक्षा से सुरक्षित हम युद्ध स्थल में उसी बल से शत्रुओं का नाश करें ॥८ ॥

४५८०. **आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।**
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाडिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें सामर्थ्य बढ़ाने वाला बल, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर से प्रदान करें। हे इन्द्रदेव ! आप हमें सुखयुक्त धन प्रदान करें ॥९ ॥

४५८१. **नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।**
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! यशस्वी, प्रशंसनीय वीरों से युक्त धन का आपके आश्रय में हम उपयोग करें। दोनों (लौकिक एवं पारलौकिक) धनों के स्वामी हे इन्द्रदेव ! आप हमें प्रचुर धन प्रदान करें ॥१० ॥

४५८२. **मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।**
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥११ ॥

इस यज्ञ में हम याजक अभिनव रक्षा के निमित्त इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। वे इन्द्रदेव मरुद्गणों के सहयोग से अतिबलशाली, तेजस्वी, वर्धमान, शत्रुजयी और दिव्य शासक हैं ॥११ ॥

४५८३. **जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।**
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥१२ ॥



हे वज्रिन् ! हम मनुष्यों में से मिथ्याभिमानी (अपने को सर्वश्रेष्ठ मानने वाले मनुष्य) को आप वश में करें । हम संग्राम काल में तथा पशु , पुत्र एवं जल प्राप्ति के निमित्त आपका आवाहन करते हैं ॥१२ ॥

४५८४. **वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोः शत्रोरुत्तर इत्स्याम ।**
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥१३ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आपके आश्रय में रहकर हम धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न एवं सुखी हों । हे इन्द्रदेव ! आप अनेकों द्वारा आहूत हैं । हम स्तुति जैसे मित्रतापूर्ण कार्य सम्पादित करके आपकी सहायता से शत्रुओं का नाश करें । हम शत्रुओं से अधिक बल-सम्पन्न बनें ॥१३ ॥

[सूक्त - २०]

[**ऋषि**- भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ; ७ विराट् ।]

४५८५. **द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।**
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥१ ॥

हे संघर्ष के लिए विख्यात इन्द्रदेव ! आप हमें सूर्यदेव की तरह कान्तियुक्त , शत्रुओं पर आक्रमण करने वाला, डटकर मुकाबला करने वाला, सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्य (धन) वाला एवं भूमि को उर्वरक बनाने वाला पुत्र प्रदान करें ॥१ ॥

४५८६. **दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।**
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥२ ॥

हे सोमपायी ! आपने विष्णुदेव के साथ मिलकर जल अवरोधक असुर 'वृत्र' का नाश किया था । हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं ने प्राणशक्ति एवं बल बढ़ाने वाले स्तोत्रों को आपके निमित्त भेंट किया ॥२ ॥

४५८७. **तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।**
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥३ ॥

जब इन्द्रदेव ने समस्त पुरों को नष्ट करने वाला वज्र पाया, तभी उन्होंने मधुर सोमरस भी प्राप्त किया था । वे इन्द्रदेव हिंसकों के हिंसक, पराक्रमी, अन्नदाता, ओजस्वी एवं तेजस्वी हैं ॥३ ॥

४५८८. **शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।**
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके सहायक, अन्नदाता 'कुत्स' से युद्ध में भयभीत होकर 'पणि' सेनाओं सहित भाग गया । आपने शुष्ण की (आसुरी) माया को नष्ट कर उसके अन्न का हरण किया ॥४ ॥

४५८९. **महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।**
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥५ ॥

जब 'शुष्ण' वज्र गिरने से मर गया, तब द्रोही 'शुष्ण' के समस्त बलों को नष्ट करने वाले इन्द्रदेव ने सूर्योपासना के निमित्त सारथिरूप कुत्स को रथारूढ़ होने के लिए कहा ॥५ ॥

४५९०. **प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।**
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥६ ॥



श्येन पक्षी द्वारा लाये गये, सोम को पीकर तृप्त हुए इन्द्रदेव ने दुष्ट नमुचि के सिर को काट डाला। उन्होंनें सोये हुए साप्य (सप के पुत्र अथवा संधि-सहमतिपूर्वक रहने वालों) की रक्षा करके उन्हें पशु, धन एवं अन्न प्रदान किया ॥६ ॥

४५९१. वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥७ ॥

हे वज्रिन् ! आपने मायावी 'पिप्रु' के किले को ध्वस्त किया। हे उत्तम दानदाता ! 'ऋजिश्वा' को आपने धन प्रदान किया। उन्होंने हविरन्न अर्पित किया था ॥७ ॥

४५९२. स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥८ ॥

इष्ट सुखदाता इन्द्रदेव ने वेतसु आदि असुरों को 'द्योतमान' के पास जाने के लिए एवं सदा उन्हीं के अधीन रहने के लिए उसी तरह विवश किया, जिस तरह माता पुत्र को वश में करती है ॥८ ॥

४५९३. स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥९ ॥

शत्रु-विनाशक, वज्र को हाथ में धारण करने वाले इन्द्रदेव स्पर्धा करने वाले शत्रुओं का संहार करते हैं। वे शूरवीर रथ पर चढ़ते हैं। उनके अश्व वचन मात्र से जुत जाने वाले एवं संकेत मात्र से इन्द्रदेव को गन्तव्य तक ले जाने वाले हैं ॥९ ॥

४५९४. सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! हम उपासक आपके द्वारा सुरक्षित होकर नवीन धन पाने के लिए उपासना करते हैं। यज्ञ करते समय याजक आपकी स्तुतियाँ करते हैं ॥१० ॥

४५९५. त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! धन के इच्छुक 'उशना' का आप कल्याण करें। आपने 'नववास्त्व' नामक असुर का संहार किया था और शक्ति-सम्पन्न 'उशना' के समक्ष देयपुत्र को उपस्थित किया था ॥११ ॥

४५९६. त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को भयभीत करते हैं। रुके जल को प्रवाहित करते हैं। हे पराक्रमी ! जब आप समुद्र को पार करते हैं, तब 'तुर्वश' तथा 'यदु' को कल्याणपूर्वक पार कर दें ॥१२ ॥

४५९७. तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप्।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१ र्कैः ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने 'धुनी' और 'चुमुरी' नाम के असुरों को युद्ध में मार गिराया। यह सब युद्ध में करना आपकी ही सामर्थ्य से सम्भव है। आपके निमित्त अन्न को पकाने वाले, सोमरस बनाने वाले एवं समिधावान् 'दभीति' ने हवि प्रदान कर आपका सत्कार किया था ॥१३ ॥



[सूक्त - २१]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र; ९, ११ विश्वेदेवा । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४५९८. इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥१ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप रथारूढ़, अजर और नूतन स्वरूप वाले हैं । हवियाँ आपको प्राप्त होती हैं । बहुत कार्य करने की इच्छा वाले भरद्वाज की उत्तम स्तुतियाँ आपका आवाहन करती हैं ॥१ ॥

४५९९. तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२ ॥

प्रज्ञावान् इन्द्रदेव की महिमा द्युलोक एवं पृथ्वी से भी महान् है । वे सर्वज्ञ और यज्ञ से विवर्धमान हैं, ऐसे स्तुति द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव की हम वन्दना करते हैं ॥२ ॥

४६००. स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥३ ॥

इन्द्रदेव ने सघन अन्धकार को सूर्यदेव के प्रकाश से दूर किया । हे स्वधारक शक्तियुक्त इन्द्रदेव ! आपके अमर स्थान की कामना करने वाले मनुष्य अवध्य (सुरक्षित) रहते हैं ॥३ ॥

४६०१. यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥४ ॥

जिन्होंने वृत्रादि असुरों का संहार किया, वे इन्द्रदेव अभी कहाँ हैं ? किस लोक और किन प्रजाओं के बीच वे विचरण करते हैं ? आपके लिए सुखदायी यज्ञ कौन सा है ? आपको वरण करने हेतु समर्थ मन्त्र कौन सा है ? कौन सा होता आपको बुलाने में समर्थ है ? ॥४ ॥

४६०२. इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५ ॥

बहुकर्मा एवं अनेकों द्वारा प्रार्थित हे इन्द्रदेव !प्राचीन काल तथा वर्तमान काल में उत्पन्न साधक आपके मित्र बनकर रहें ।मध्यकाल में भी आपके स्तोता उत्पन्न हुए परन्तु हे इन्द्रदेव ! आप हमारी इस समय की स्तुति को सुनें ॥५ ॥

४६०३. तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥६ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आज के मनुष्य आपसे ही पूछते हैं । आपके पूर्व के श्रेष्ठ कार्यों को सुनकर उनका वर्णन करते हैं । जितना हमें विदित है, उसी आधार पर ही हम आपका सत्कार करते हैं ॥६ ॥

४६०४. अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥७ ॥

हे शत्रुओं के उत्पीड़क इन्द्रदेव ! आप अपने पुराने, सुयोग्य, सदा सहायक वज्र से शत्रु सेना को दूर करें । हे इन्द्रदेव ! असुरों का बल चारों ओर बढ़ता हुआ आपके समक्ष है, आप भी शत्रु के बल का अनुमान करके उससे अधिक बल से प्रतिरोध करें ॥७ ॥



४६०५. **स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्या३ पिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद्‌बभूथ सुहव एष्टौ ॥८ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन, श्रेष्ठ आवाहनकर्त्ता अंगिराओं के मित्र हैं । आप स्तोताओं के पालक हैं । हम आज के स्तोतागण नवीन स्तोत्र के इच्छुक हैं । आप हम लोगों की प्रार्थना सुनें ॥८ ॥

४६०६. **प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥९ ॥**

हे भरद्वाज ! आप हम सबकी रक्षा एवं इच्छापूर्ति के लिए वरुण, मित्र, इन्द्र, मरुत् , पूषा, विष्णु, अग्नि, सविता, ओषधियों और पर्वतादि देवों की स्तुति करें ॥९ ॥

४६०७. **इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥१० ॥**

हे अति पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप जैसा अन्य कोई देव नहीं है, अतः हम स्तोता श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । आप हमारी स्तुति को सुनें ॥१० ॥

४६०८. **नू म आ वाचमुप याहि विद्वान् विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥११ ॥**

हे बल पुत्र इन्द्रदेव ! आप सर्वज्ञ हैं । जो देवगण अग्निरूपी जिह्वा वाले सत्य के उपासक हैं, और जो यज्ञाहुति ग्रहण करते हैं, शत्रुओं का नाश करने के निमित्त राजर्षि मनु ने, जिन्हें सर्वोपरि स्थापित किया था, आप उन्हीं के साथ यहाँ पधारें ॥११ ॥

४६०९. **स नो बोधि पुरएता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः ।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥१२ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आप मेधावी हैं । आप मार्ग नियन्ता हैं । अतः सुगम एवं दुर्गम मार्गों में हमारे मार्गदर्शक बनें । आप अपने न थकने वाले एवं तीव्रगामी घोड़ों के द्वारा हमारे लिए बल बढ़ाने वाला अन्न लाएँ ॥१२ ॥

[सूक्त- २२]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

४६१०. **य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१ ॥**

इन्द्रदेव संकट काल में मनुष्यों द्वारा आवाहन करने योग्य हैं । वे स्तुतियाँ करने पर आते हैं । इच्छा पूर्ति करने वाले पराक्रमी, ज्ञानी, सत्यवादी एवं शत्रुओं को पीड़ा देने वाले इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१ ॥

४६११. **तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२ ॥**

अङ्गिरा आदि प्राचीन ऋषियों ने इन्द्रदेव को पराक्रमी और प्रवर्द्धमान बनाने के लिए नौ मासीय यज्ञानुष्ठान किया तथा स्तुति की । वे इन्द्रदेव सभी के शासक, तीव्रगामी एवं शत्रुओं के संहारकर्त्ता हैं ॥२ ॥



४६१२. **तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।**
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३ ॥

हे अश्वपति इन्द्रदेव ! हम पुत्र-पौत्रादि स्वजनों, सेवकों, पशुओं एवं प्रसन्नतादायक धन की आप से याचना करते हैं । आप हमें सुखकारी ऐश्वर्य प्रदान करने यहाँ आएँ ॥३ ॥

४६१३. **तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।**
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४ ॥

हे शत्रुजयी, पराक्रमी अनेकों द्वारा आहूत ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप दुष्ट असुरों का नाश करने की सामर्थ्य वाले हैं । आपको यज्ञ में कौन सा भाग मिला है ? हे इन्द्रदेव ! आप हमें वही सुख प्रदान करें, जो आपने पहले भी स्तोताओं को दिया है ॥४ ॥

४६१४. **तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।**
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५ ॥

हाथ में वज्र धारण करने वाले, रथारूढ़, बहुकर्मा, अनेक शत्रुओं को एक साथ पकड़ने वाले इन्द्रदेव की गुण-गाथा का गान करते हुए, जो यजमान् यज्ञकर्म और स्तुति करता है, वह शत्रुओं को हराने वाला एवं सुख प्राप्त करने वाला होता है ॥५ ॥

४६१५. **अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।**
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्वयं के बल से युक्त हैं । आपने अपने मनोवेगी वज्र से उस बढ़ते हुए मायावी वृत्रासुर का संहार किया है । हे तेजस्वी इन्द्रदेव ! आपने अचल, सुदृढ़ एवं शक्तिशाली पुरियों को नष्ट किया है ॥६ ॥

४६१६. **तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।**
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन एवं पराक्रमी हैं । प्राचीनकालीन ऋषियों के समान हम भी नवीन स्तोत्रों से आपको प्रवर्धमान करते हैं - ऐसे शोभनीय इन्द्रदेव हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

४६१७. **आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।**
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभीष्ट की वर्षा करने वाले हैं । द्युलोक, पृथ्वी एवं अंतरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त होकर अपने तीव्र तेज से तृप्त करके सज्जनों के शत्रुओं (दुष्टों) को भस्म करें ॥८ ॥

४६१८. **भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक् ।**
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९ ॥

हे तेजस्वी, अजर इन्द्रदेव ! आप देवलोकवासी एवं पृथ्वीवासी सभी लोगों के राजा हैं । आप दाहिने हाथ में वज्र को धारण करके विश्व के मायावियों का नाश करें ॥९ ॥

४६१९. **आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।**
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१० ॥



हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का संहार करने के लिए अक्षुण्ण, संयमित एवं कल्याणकारी धन प्रचुर मात्रा में हमें प्रदान करें । जिससे दासों (इन्द्रियों के दास, कुमार्गगामियों) को आर्य (श्रेष्ठ मार्गगामी) बनाया जा सके और मनुष्य के शत्रुओं का नाश हो सके ॥१० ॥

४६२०. स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पूजनीय एवं अनेकों द्वारा आहूत हैं । आप सभी लोगों द्वारा प्रशंसा किये गये घोड़ों से हमारे पास आएँ । जिन अश्वों की गति को देवता एवं असुर भी नहीं रोक सकते हैं, उन अश्वों के साथ आप हमारे पास आएँ ॥११ ॥

[सूक्त - २३]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६२१. सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमरस निकालने पर, उत्तम स्तोत्रों का ज्ञान होने पर, स्तुतियाँ सुनकर आप अश्वों को (रथ में) नियोजित करते हैं । आप हाथ में वज्र धारण करके आगमन करते हैं ॥१ ॥

४६२२. यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप भयभीत यजमानों के कर्म (यज्ञ) विरोधी असुरों को जीतकर एवं युद्ध क्षेत्र में स्तोता-याजक के सहयोगी होकर, उनकी रक्षा करके उन्हें धैर्यवान् बनाएँ ॥२ ॥

४६२३. पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥३ ॥

वे इन्द्रदेव सोमरस पीकर, सोमरस तैयार करने वाले को अच्छा निवास (गृह प्रदान) करते हैं । वे ही इन्द्रदेव स्तोताओं से प्रसन्न होकर, उन्हें सहज मार्ग एवं धन प्रदान करते हैं ॥३ ॥

४६२४. गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥४ ॥

वे इन्द्रदेव वज्र को धारण करते हैं । वे अभिषुत सोमरस का पान करते हैं । वे इन्द्रदेव दोनों अश्वों के साथ तीनों सवनों में पहुँचते हैं । वे गोदानकर्त्ता को पुत्र प्रदान करते हैं तथा स्तोताओं की स्तुति का श्रवण करते हैं ॥४ ॥

४६२५. अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥५ ॥

हम उन प्राचीन इन्द्रदेव को प्रिय लगने वाले स्तोत्रों का गायन करते हैं, वे हमारी रक्षा करें । सोमरस अभिषवण के पश्चात् हम इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं । स्तुति करते हुए याजक इन्द्रदेव को प्रवृद्ध करने के लिए हवि प्रदान करें ॥१॥

४६२६. ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि राण्ड्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥६ ॥



हे सोमपायी इन्द्रदेव ! आपके लिए सोम तैयार करने के पश्चात् अब हम हवियों सहित स्तुति करते हैं । आपके निमित्त हम उन स्तोत्रों को मनोयोगपूर्वक अर्पित करते हैं । ये स्तोत्र इन्द्रदेव के उत्कर्ष के कारक हैं ॥६ ॥

४६२७. **स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।**
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप आनन्दित होकर हमारे द्वारा प्रेषित पुरोडाश को ग्रहण करें । गौ के दूध-दही मिले सोमरस का पान करें । यजमान द्वारा बिछाये गए आसन पर आप विराजें एवं आपके अनुगामी हम लोगों के स्थान का विस्तार करें ॥७ ॥

४६२८. **स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।**
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥८ ॥

हे उग्र बल-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप निज इच्छानुसार प्रसन्न होकर सोमरस का पान करें । आप बहुतों द्वारा बुलाये गये हैं । हमारे द्वारा की जाने वाली स्तुति आप तक पहुँचे । इससे प्रसन्न होकर आप हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

४६२९. **तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।**
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥९ ॥

हे मित्रो ! सोमरस अभिषुत करके, अन्नदाता इन्द्रदेव को सोमरस से तृप्त करें । उन इन्द्रदेव को अपनी सहायता के लिए प्रसन्न करने का यह अच्छा साधन है । वे इन्द्रदेव हमारा पोषण करें एवं हमारी सुरक्षा करें ॥९ ॥

४६३०. **एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।**
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥१० ॥

हविरन्नयुक्त यजमान के स्वामी इन्द्रदेव सोमरस के तैयार होने से (प्रसन्न होकर) सर्वाधिक प्रशंसा के योग्य धन प्रदान करते हैं । जो स्तोताओं को ज्ञानी बनाते हैं, ऐसे इन्द्रदेव की भरद्वाजों द्वारा स्तुति की गई है ॥१० ॥

[सूक्त- २४]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६३१. **वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।**
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥१ ॥

सोमपान के पश्चात् हर्षित होने से इन्द्रदेव का बल बढ़ता है । सोमपान के समय सामगान से वे इन्द्रदेव प्रसन्न होते हैं । सोमपायी, धनवान् एवं तीव्रगामी इन्द्रदेव मनुष्यों द्वारा स्तुतिपूर्वक अर्चना करने योग्य हैं । ये द्युलोक निवासी स्तुतियों के स्वामी इन्द्रदेव सदैव (याजकों की) रक्षा करते हैं ॥१ ॥

४६३२. **ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।**
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥२ ॥

वे ज्ञानी, बलशाली, शत्रु-संहारक, भक्त की प्रार्थना सुनने वाले, अच्छे निवास देने वाले, स्तोताओं के संरक्षक, शिल्पकलाविदों के पोषक एवं यशस्वी अन्नदाता इन्द्रदेव हमें प्रसन्न होकर अन्न प्रदान करें ॥२ ॥

४६३३. **अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः**
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यू३ तयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥३ ॥



हे इन्द्रदेव ! आप बहुतों द्वारा आहूत हैं । चक्कों (पहियों, चक्रों) की धुरी जिस प्रकार चक्कों को सुस्थिर किये रहती है, उसी प्रकार आपकी महिमा से द्युलोक एवं भूलोक स्थिर हैं । वृक्ष की अनेक शाखाओं की तरह आपकी रक्षक शक्तियाँ फैलती हैं ॥३ ॥

४६३४. शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! सर्व संचारी गो-मार्ग की तरह आपकी शक्तियाँ भी सर्वत्र कर्म करने में समर्थ हैं । हे उत्तम दानदाता इन्द्रदेव ! आपकी शक्तियाँ बछड़ों की (बाँधने वाली) डोरियों की भाँति अनेक शत्रुओं को बाँध लेती हैं ॥४ ॥

४६३५. अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥५ ॥

इन्द्रदेव प्रतिदिन, उत्तरोत्तर नवीन अद्‌भुत कार्य करते हैं । वे सत् एवं असत् (स्थायी और अस्थायी कर्मों) को बार-बार करते हैं । इन्द्र, वरुण, मित्र, पूषा एवं सवितादेव हमारे मनोरथों को पूर्ण करें ॥५ ॥

४६३६. वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! पर्वत के पृष्ठभाग से जिस प्रकार जल प्रवाहित होता है, वैसे ही यज्ञ कर्म एवं स्तुति करने से मनुष्यों को आपके द्वारा मनोवांछित फल प्राप्त होता है । हे स्तुतियों से पूजनीय इन्द्रदेव ! जिस प्रकार युद्ध क्षेत्र में अश्व तीव्र वेग से जाते हैं, उसी प्रकार अन्न प्राप्ति की इच्छा वाले भरद्वाज आदि आपके पास पहुँचते हैं ॥६ ॥

४६३७. न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७ ॥

जो इन्द्रदेव संवत्सर, महीनों एवं दिनों के द्वारा क्षीण नहीं होते । ऐसे इन्द्रदेव की काया स्तुतियों द्वारा पूजित होकर विकसित हो ॥७ ॥

४६३८. न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥८ ॥

स्तुति किये जाने पर भी इन्द्रदेव दस्युओं (क्रूर पुरुषों) के वशीभूत नहीं होते । सुदृढ़ शरीर वाले इन्द्रदेव जब गमन करते हैं, तो ऊँचे-ऊँचे पहाड़ भी सुगम हो जाते हैं । अगाध (गहरे) स्थान भी सहज हो जाते हैं ॥८ ॥

४६३९. गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥९ ॥

हे सोमपायी एवं पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप गम्भीर और महान् हृदय से बल एवं अन्न प्रदान करें । हे इन्द्रदेव ! आप दिन-रात तत्पर रहकर हमारी सुरक्षा करें ॥९ ॥

४६४०. सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पास रहें या दूर रहें । यहाँ या वहाँ, जहाँ भी रहें, वहाँ से स्तुति करने वालों की रक्षा रण क्षेत्र में, घर में, जंगल में सब जगह करें । हमें वीर पुत्रादि प्रदान करके शतायु बनायें ॥१० ॥



[सूक्त- २५]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६४१. **या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।**
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥१ ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव !आपके पास जो भी सुरक्षा के उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ साधन हैं, उन सभी रक्षा साधनों से संग्राम में हमारी अच्छी प्रकार रक्षा करें । आप स्वयं महान् होकर हमें भी महान् बनाएँ एवं अन्न प्रदान करें ॥१॥

४६४२. **आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।**
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इनसे (उत्तम, मध्यम एवं कनिष्ठ रक्षा साधनों के द्वारा) शत्रु सेना का संहार करने वाली हमारी सेना की रक्षा करते हुए शत्रु की सेना के मन्यु को नष्ट करें एवं यज्ञ जैसे श्रेष्ठ कर्म करने वाले मनुष्यों के शत्रुओं को भी नष्ट करें ॥२ ॥

४६४३. **इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।**
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे उन शत्रुओं का संहार करें, जो सन्मुख प्रकट होकर, निकट या दूर रहकर हमें मारना चाहते हैं । अपने बल से इनके बल को पराजित करके, इन्हें हमसे दूर हटा दें ॥३ ॥

४६४४. **शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।**
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥४ ॥

जब पुत्र, पौत्र, गौ, जल एवं उर्वर भूमि के लिए परस्पर विवाद हो जाता है और युद्ध होते हैं, तब युद्धरत उन योद्धाओं में से आपके कृपा पात्र की विजय होती है ॥४ ॥

४६४५. **नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।**
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥५ ॥

आज तक जो भी, जितने भी सामर्थ्यशाली पैदा हुए हैं, उन्हें युद्ध में इन्द्रदेव ने जीता है; अत: कोई भी धर्षक एवं घमण्डी, शूरवीर जिसने भले ही शत्रुओं का नाश किया हो, आपसे युद्ध नहीं करता । आप सर्वश्रेष्ठ योद्धा हैं ॥५ ॥

४६४६. **स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।**
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥६ ॥

शत्रुओं को रोकने वाले, युद्ध या दास युक्त उत्तम घर के लिए युद्ध में परस्पर दो योद्धाओं में वही विजयी होगा, जिसके लिए ऋत्विग्गणों ने यज्ञ में इन्द्रदेव के निमित्त आहुति प्रदान की हो ॥६ ॥

४६४७. **अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।**
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी भयभीत प्रजा की आप रक्षा करें । हे इन्द्रदेव ! आप उन उत्तम व्यक्तियों की दु:खों से रक्षा करें, जो आपको प्राप्त करते हैं । हे देव ! जिन स्तोताओं ने हमें अग्रिम स्थान प्रदान किया है; आप उन सबकी भी रक्षा करें ॥७ ॥

४६४८. अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् वीर हैं । शत्रुनाशक समस्त सामर्थ्य आप में स्थित है । हे इन्द्रदेव ! देवगणों ने आपको उत्तम बल प्रदान किया है, जिसके द्वारा आप संसार में शत्रुओं को पराजित कर सकें ॥८ ॥

४६४९. एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस प्रकार आप शत्रु-सेना का नाश करने की प्रेरणा हमारी सेना को प्रदान करें एवं हमारे हित साधन के निमित्त दुष्ट हिंसक आसुरी सेना का नाश करें । हे इन्द्रदेव !हम (भरद्वाज) स्तोता अन्न सहित आवास प्राप्त करें ॥९ ॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

४६५०. श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! (सोम से) सिंचन करते हुए बहुत अन्न की कामना वाले हम आपका आवाहन करते हैं; आप हम सबकी इस प्रार्थना को सुनें । जब वीर योद्धा संग्राम क्षेत्रों में जाते हैं, तब उन निर्णायक दिनों में उन्हें संरक्षण एवं शक्ति प्रदान करें, जिससे शत्रु भयभीत हो जाएँ ॥१ ॥

४६५१.त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप दुर्जनों के नाशक एवं सज्जनों के पोषक हैं । हे देव ! श्रेष्ठ अन्न प्राप्ति के निमित्त, अन्नवान् भरद्वाज, स्तुतियों द्वारा आपका आवाहन करते हैं । गौओं के लिए युद्ध करते समय आपकी कृपा (शक्ति) से वे मुष्टिका से ही शत्रु का विनाश कर देते हैं ॥२ ॥

४६५२.त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! अन्न की कामना के लिये 'भार्गव ऋषि' को आप प्रेरणा दें । आपने हविदाता 'कुत्स' के लिए 'शुष्ण' असुर का संहार किया तथा 'अतिथिग्व' को सुख देने हेतु इस 'शम्बरासुर' का शिरच्छेद किया, जो अपने को अमर मानता था ॥३ ॥

४६५३ .त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने राजा 'वृषभ' को युद्ध-सिद्धि में परम उपयोगी रथ देकर, दस दिन तक होने वाले युद्ध में शत्रुओं से उनकी रक्षा की । 'वेतस' की सहायता करते हुए 'तुग्रासुर' को मार डाला । तुजि' नामक राजा को स्तुति करने पर प्रवृद्ध किया ॥४ ॥



४६५४. त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुनाशक हैं। हे वीर इन्द्रदेव ! आपने 'शम्बर' असुर की सौ-सौ एवं सहस्रों सेनाओं को नष्ट किया। यज्ञ के दुश्मन 'शम्बरासुर' को मार करके तथा 'दिवोदास' की रक्षा करके आपने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया ॥५ ॥

४६५५. त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप्।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! श्रद्धा सहित यज्ञानुष्ठान करके प्राप्त सोमपान से प्रसन्न होकर, आपने राजा 'दभीति' की सुरक्षा के लिए 'चुमुरि' का नाश किया। हे इन्द्रदेव ! आपने वीर 'पिठीनस' को राज्य देकर शत्रु के साठ हजार वीरों को युद्ध- कौशल से मार डाला ॥६ ॥

४६५६.अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥७ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप शत्रुजयी एवं त्रिलोक के रक्षक हैं। स्तोतागण सुख एवं सामर्थ्य के निमित्त आपसे प्रार्थना करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त सुख-सामर्थ्य को स्तोताओं के साथ हम (भरद्वाज) भी प्राप्त करें ॥७ ॥

४६५७.वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥८ ॥

हे पूजनीय इन्द्रदेव ! हम सखा भाव से आपकी स्तुति करते हैं। धन-प्राप्ति के निमित्त की जा रही इन स्तुतियों के कारण हम आपके प्रिय पात्र बनें। "प्रातर्दन" के पुत्र 'क्षत्रश्री' को सर्वाधिक ऐश्वर्य प्रदान करें। वे शत्रुओं को मारकर धन प्राप्त करें ॥८ ॥

[सूक्त - २७]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य। **देवता-** इन्द्र, ८ अभ्यावर्ती चायमान (दान स्तुति)। **छन्द-** त्रिष्टुप्।]

४६५८.किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥१ ॥

सोम से हर्षित इन्द्रदेव ने क्या किया ? सोमरस पीकर क्या किया ? सोमरस से मित्रता करके क्या किया ? प्राचीन एवं नये स्तुति करने वालों ने आपसे क्या प्राप्त किया ? ॥१ ॥

४६५९.सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥२ ॥

सोमपान से हर्षित हुए इन्द्रदेव ने श्रेष्ठ कर्म किए। सोमपान के बाद सत्कार्य। इसके साथ मित्रता करने पर भी सत्कार्य ही किए।जो प्राचीन और नवीन स्तुति करने वाले हैं, उन्होंने आपके द्वारा सत्कार्य ही प्राप्त किया॥२ ॥

४६६०.नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन् मघवत्त्वस्य विद्म।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥३ ॥



हे धनवान् इन्द्रदेव ! हम यह नहीं जानते कि आपसे बड़ा अन्य कोई महिमा वाला या ऐश्वर्यशाली होगा। आपकी सम्पूर्ण प्रशंसनीय सिद्धि और सामर्थ्य को भी हम नहीं जानते हैं ॥३॥

४६६१. एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आपके उस पराक्रम को क्या हम नहीं जानते, जिसके द्वारा आपने 'वरशिख' नामक असुर के पुत्रों का संहार किया था ? हे इन्द्रदेव ! उसी पराक्रम से प्रहार के निमित्त उद्यत वज्र की घोर ध्वनि से ही शत्रु ('वरशिख' के पुत्र) विदीर्ण हो गये थे ॥४॥

[ध्वनि तरंगों का उपयोग कठोर पदार्थों को तोड़ने तथा रोगों को नष्ट करने के लिए वर्तमान विज्ञानवेत्ता भी करने लगे हैं। वज्र की ध्वनि से असुर पुत्रों के विदीर्ण होने के पीछे ध्वनि के ऐसे ही विशिष्ट प्रयोग का संकेत मिलता है।]

४६६२. वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन्।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥५॥

इन्द्रदेव ने चायमान (चय की क्रिया में संलग्न रहने वाले के सहयोगी) के पुत्र अभ्यावर्ती (सतत आवर्तनशील) को उपयुक्त शिक्षा (परामर्श-कौशल) प्रदान करके 'वरशिख' (तेजस्वी) असुर के पुत्रों का वध किया। जब उन्होंने हरियूपिया (नगर या क्षेत्र) के पूर्व भाग में वृचीवान् (अवरोध उत्पन्न करने वाले) को मारा, तो दूसरा (असुर पुत्र) भय से विदीर्ण हो गया ॥५॥

[शरीर में जीव कोषों के निर्माण की प्रक्रिया को चय (एनाबॉलिज्म) तथा कोषों के विकारों को नष्ट करके बाहर निकालने की क्रिया को अपचय (कैटाबॉलिज्म) कहते हैं। चय की प्रक्रिया में लगे हुए (प्राणों) के पुत्र शरीर में सतत घूमने वाले प्रवाहों को इन्द्रदेव ने शक्ति दी, तो 'वरशिख' (श्रेष्ठ असुर रूप विषाणुओं) के पुत्रों (रोगों) का नाश हुआ। जब हरियूपिया (हरि-अश्व जैसे शक्तिशाली कण जहाँ से सम्बद्ध हैं, ऐसे) क्षेत्र (शरीर के अन्दर के हृदय, यकृत्, फेफड़े जैसे अंतरंग अवयवों) में रुकावट डालने वाले (वृचीवान्) का वध हुआ, तो अन्य भागों में सक्रिय विकार स्वतः ही विदीर्ण हो गये। यह शोध का विषय है कि शरीर में वरशिख (तुर्रेवाले) असुर कण या विषाणु कौन से हैं ? उनसे कौन से वृचीवान् (अवरोधक विकार) पैदा होते हैं ? दूसरी दृष्टि से यह मंत्र प्रकृति में सक्रिय चय-अपचय क्रिया के ऊपर भी घटित हो सकता है। अभ्यावर्ती (सतत आवर्तनशील-इलैक्ट्रॉन्स) को विशेष गति देकर प्रकृति में व्याप्तचय की क्रिया में अवरोधक-हानिकारक पदार्थों को नष्ट करने का भाव भी प्रकट होता है। इस आशय का संकेत अगले मंत्र क्र० ७ में मिलता है।]

४६६३. त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दानान्यर्थान्यायन् ॥६॥

हे बहुतों द्वारा आहूत इन्द्रदेव ! यश एवं अन्न प्राप्त करने के लिए आपसे युद्ध करने वाले, यज्ञ के पात्रों को नष्ट करने वाले एवं कवचधारी 'वरशिख' के एक सौ तीस पुत्रों को आपने युद्ध में एक समय ही मार डाला ॥६॥

४६६४. यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥७॥

घास खोजती गौओं की तरह जिन इन्द्रदेव के दो कान्तिवान् अश्व अन्तरिक्ष में विचरते हैं। उन्हीं इन्द्रदेव ने 'वृचीवान' के पुत्र 'दैववात' को प्रसन्न करते हुए 'तुर्वश' को 'सृञ्जय' के अधीन कर दिया ॥७॥

[इन्द्रदेव के दो कान्तिवान् अश्व (धन एवं ऋण विद्युत् प्रभार युक्त शक्तिशाली उपकण सब एटॉमिक पार्टिकल्स) अंतरिक्ष में भ्रमणशील हैं। उन्हीं के माध्यम से इन्द्रदेव ने दैववात (देवों के अनुकूल वात-प्रवाहों) को हर्षित कर तुर्वश (हिंसाशील कणों) को सृञ्जय (सृजनशील कणों) के अधीन (अनुकूल) कर दिया।]



४६६५.द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! राजसूय यज्ञ करने वाले, बहुत दान देने वाले, 'चायमान' के पुत्र 'अभ्यावर्ती' ने हमें बीस गौएँ एवं रथ के साथ अनेक सेविकायें प्रदान की थीं । पृथु वंश के राजा 'अभ्यावर्ती ' की यह दक्षिणा अनश्वर है ॥८ ॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता -** गौएँ; २, ८ इन्द्र अथवा गौएँ ।**छन्द-** त्रिष्टुप्; २-४ जगती; ८ अनुष्टुप् ।]

४६६६. आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१ ॥

गौएँ हमारे घर आकर हमारा कल्याण करें । वे (गौएँ) गोशाला में रहकर हमें आनन्दित करें । इन गौओं में अनेक रंग-रूप वाली गौएँ बछड़ों से युक्त होकर, उषाकाल में इन्द्रदेव के निमित्त दुग्ध प्रदान करें ॥१ ॥

४६६७.इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप याजक एवं स्तोताओं के लिए अभिलषित अन्न-धन प्रदान करते हैं । उनके धन का कभी हरण नहीं करते; वरन् उसे निरन्तर बढ़ाते हैं । देवत्व को प्राप्त करने की इच्छा वालों को अखण्डित एवं सुरक्षित निवास देते हैं ॥२ ॥

आगे की कुछ ऋचाएँ गौओं को लक्ष्य करके कही गयी हैं । इनके अर्थ लौकिक गौओं के साथ ही इन्द्र या यज्ञ के पोषक प्रवाहों के ऊपर भी घटित होते हैं । ऋचा क्र० ५ में तो स्पष्ट गौओं को इन्द्ररूप कहा है, शक्ति प्रवाहों (किरणों) को ही यह संज्ञा दी जा सकती है -

४६६८. न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३ ॥

वे गौएँ नष्ट नहीं होतीं, तस्कर उन्हें हानि नहीं पहुँचा पाते । शत्रु के अस्त्र उन गौओं को क्षति नहीं पहुँचा पाते । गौओं के पालक जिन गौओं से देवों का यजन करते हैं, उन्हीं गौओं के साथ चिरकाल तक सुखी रहें ॥३ ॥

४६६९.न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४ ॥

रेणुका (धूल) उड़ाने वाले द्रुतगामी अश्व भी उन गौओं को नहीं पा सकेंगे । इन गौओं पर वध करने के लिए आघात न करें । याजक की वे गौएँ विस्तृत क्षेत्र में निर्भय होकर विचरण करें ॥ ४ ॥

४६७०.गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५ ॥

गौएँ हमें धन देने वाली हों । हे इन्द्रदेव ! आप हमें गौएँ प्रदान करें । गोदुग्ध प्रथम सोमरस में मिलाया जाता है । हे मनुष्यो ! ये गौएँ ही इन्द्र रूप हैं । उन्हीं इन्द्रदेव को हम श्रद्धा के साथ पाना चाहते हैं ॥५ ॥

['ये गौएँ ही इन्द्र हैं' - रहस्यात्मक वचन है । इन्द्रदेव संगठक शक्ति वाले देवता हैं । परमाणुओं में घूमने वाले इलेक्ट्रॉन्स को न्यूक्लियस से बाँधे रहना उन्हीं का कार्य है । यह बन्धन शक्ति किरणों का ही है । ये गौएँ-शक्ति किरणें ही इन्द्रदेव का वास्तविक रूप हैं ।]



४६७१.यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥६ ॥

हे गौओ !आप हमें बलवान् बनाएँ । आप हमारे रुग्ण एवं कृश शरीरों को सुन्दर-स्वस्थ बनाएँ ।आप अपनी कल्याणकारी ध्वनि से हमारे घरों को पवित्र करें । यज्ञ मण्डप में आपके द्वारा प्राप्त अन्न का ही यशोगान होता है ॥६ ॥

४६७२.प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥७ ॥

हे गौओ ! आप बछड़ों से युक्त हों । उत्तम घास एवं सुखकारक स्वच्छ जल का पान करें । आपका पालक चोरी करने वाला न हो । हिंसक पशु आपको कष्ट न दें । परमेश्वर का कालरूप अस्त्र आपके पास ही न आए ॥७ ॥

४६७३.उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम्। उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके वीर्य (पराक्रम) में बलशाली का ओज संयुक्त हो । इन गौओं के उत्पादक (किरणों के प्रवाहों) के साथ उत्प्रेरक (केटेलैटिक एजैन्ट या शक्तिवर्धक तत्त्व) संयुक्त हों ॥८ ॥

[इन्द्रदेव का पराक्रम उनकी शक्ति किरणों-गौओं के माध्यम से ही प्रकट होता है । जिस प्रकार पदार्थजनित किरणों (एक्सरे, लेजर आदि) को उपकरणों के द्वारा प्रभावशाली बनाया जाता है, उसी प्रकार ऋषिगण प्रकृतिगत किरण-प्रवाहों को मंत्रों एवं यज्ञीय प्रयोगों द्वारा प्रभावशाली बनाते रहे हैं ।]

[सूक्त - २९]

[**ऋषि**- भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

४६७४. इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! आपके नेता (यज्ञ के ऋत्विक् अथवा समाज के अग्रणी) श्रेष्ठ बुद्धि वाले एवं उदार हैं । वे स्तोत्रों का गायन करते हुए, सखा भाव से इन्द्रदेव की सेवा करते हैं । वज्रधारी इन्द्रदेव बहुत धन देते हैं; अतएव रमणीय एवं महान् इन्द्रदेव का, अपनी रक्षा के लिए पूजन करें ॥१ ॥

४६७५. आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥२ ॥

जिन इन्द्रदेव के पास मनुष्यों का हितकारी धन है, जो स्वर्ण-रथ पर चढ़ते हैं एवं जिनके पुष्ट हाथों में घोड़ों की (नियंत्रक) लगाम है, जिन्हें रथ में जुते हुए अश्व मार्ग पर ले जाते हैं; ऐसे इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥२ ॥

४६७६. श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्व१र्ण नृतविषिरो बभूथ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वज्रधारण करके शत्रुओं को परास्त करते हैं । ऐश्वर्य की कामना से हम (भरद्वाज) आपके चरणों में सेवा समर्पित करते हैं । हे सर्वप्रधान इन्द्रदेव ! आप सुरभित आवरण धारण करते हैं । सबके लिए दर्शनीय आप सूर्यदेव की तरह सबका उत्साह बढ़ाते हैं ॥३ ॥

४६७७. स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः ।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥४ ॥



इस समय पकाने योग्य पुरोडाश पकाये जाते हैं । लाजा तैयार किया जाता है । ऋत्विग्गण इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं । सोमरस निकालकर उसमें दुग्धादि श्रेष्ठ पदार्थ मिलाये जाते हैं । वे स्तुति करते हुए इन्द्रदेव का सामीप्य प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

४६७८. न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका बल अनन्त है । द्यावा-पृथिवी आपके बल से भयभीत हो काँपते हैं । जिस तरह गो पालक गौओं को तृप्त करता है, वैसे ही हम, स्तुति करते हुए इस यज्ञ में, आपको तृप्त करने के लिए उत्तम आहुतियाँ समर्पित करते हैं ॥५ ॥

४६७९. एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६ ॥

श्रेष्ठ नासिका अथवा सुन्दर मुकुट धारण करने वाले महान् इन्द्रदेव सुखपूर्वक आहूत किये जा सकते हैं । वे स्वयं आयें अथवा न आयें, स्तोताओं को धन प्रदान करते ही हैं । इस प्रकार पराक्रमी महावीर इन्द्रदेव अनुपम तेज एवं बल से बहुत से वृत्रासुर जैसे असुरों तथा शत्रुओं का नाश करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ३०]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

४६८०. भूय इद्वावृधे वीर्यायँ एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१ ॥

पराक्रम करने के लिए पुनः वे महावीर (इन्द्रदेव) तत्पर हैं । वे श्रेष्ठ एवं अजर इन्द्रदेव धन देते हैं । वे द्यावा-पृथिवी से भी बड़े हैं । द्यावा-पृथिवी इन्द्रदेव के आधे भाग के तुल्य हैं ॥१ ॥

४६८१. अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥२ ॥

इन इन्द्रदेव के बल के महत्त्व को हम मानते हैं । जो कार्य इन्द्रदेव करते हैं, उनको नष्ट करने में कोई समर्थ नहीं है । उत्तम कर्म करने वाले इन्द्रदेव ने भुवनों का विस्तार किया है । इन्द्रदेव के प्रभाव से ही सूर्यदेव प्रतिदिन उदित होते हैं ॥२ ॥

४६८२.अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने ही आज भी और पहले भी नदियों के जल को प्रवाहित होने के लिए मार्गों का निर्माण किया । जिस तरह भोजन के निमित्त बैठा मनुष्य स्थिर होकर बैठता है, वैसे ही ये पर्वत आपने स्थिर किये हैं । हे श्रेष्ठ कर्म करने वाले इन्द्रदेव ! आपने सब लोक सुदृढ़ किए हैं ॥३ ॥

४६८३.सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके समान अन्य कोई देव नहीं है, यह सत्य ही है । आपके समान मनुष्य भी नहीं है । मनुष्यों

में तथा देवगणों में आपसे बढ़कर कोई नहीं है । जल को ढँककर सोने वाले वृत्रासुर का आपने ही नाश किया था और समुद्र की ओर जल प्रवाहित किया था ॥४ ॥

४६८४.त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळहमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जलराशि के मार्ग चारों ओर खोलकर जल प्रवाहित किया । आपने मेघ के बन्धन खोल दिए । सूर्य , उषा एवं स्वर्ग को प्रकाशित करने वाले आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी बनें ॥५ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि-** सुहोत्र भारद्वाज । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप्; ४ शक्वरी ।]

४६८५.अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥१ ॥

हे धनपति इन्द्रदेव ! आप ही सम्पूर्ण धनों के स्वामी हैं । आप ही स्वयं अपने बाहुबल से प्रजाओं को धारण करते हैं । मनुष्यगण शत्रुओं को परास्त करने तथा पुत्र-पौत्रादि एवं वर्षा के निमित्त आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

४६८६.त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळहं भयते अज्मन्ना ते ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ, गिराने योग्य जल न होने पर भी आपके भय से जल बरसाने लगते हैं । अन्तरिक्ष, भूलोक, पर्वत, वन तथा समस्त चराचर जगत् आपके आगमन से भयभीत हो जाते हैं ॥२ ॥

४६८७.त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने उस अति बलवान् , उग्रवीर असुर "शुष्ण" को पराजित किया । गौओं को बचाने के लिए संग्राम में कुयव का संहार किया । आपने सूर्यदेव के रथ का चक्र हर लिया और पापी राक्षसों का नाश किया ॥३ ॥

४६८८.त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः । अशिक्षो यत्र शच्या
शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४ ॥

हे बुद्धिमान इन्द्रदेव ! आपने सोमरस अर्पित करने वाले 'दिवोदास' को एवं स्तोता 'भरद्वाज' को प्रज्ञा सहित धन प्रदान किया । आपने 'शम्बर' असुर की सौ पुरियों को ध्वस्त किया ॥४ ॥

४६८९.स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥५ ॥

हे अक्षुण्ण सत्य-बल के धनी इन्द्रदेव ! आप महायुद्ध के लिए अपने भयंकर रथ पर चढ़ें । हे सन्मार्गगामी इन्द्रदेव ! आप अपने रक्षा-साधनों सहित हमारे पास आकर, हमें यशस्वी बनायें ॥५ ॥



[सूक्त - ३२]

[ऋषि- सुहोत्र भारद्वाज । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६९०. अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥१ ॥

शत्रुनाशक, तीव्रगामी, वज्रधारी, स्तुति के योग्य, महान् इन्द्रदेव के लिए हमने अपने सुख से अपूर्व, सुखदायी एवं विस्तृत स्तोत्रों का उच्चारण किया ॥१ ॥

४६९१. स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः ।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव, ज्ञानवानों अथवा माता-पिता (द्यावा-पृथिवी) के हित के लिए मेघों को छिन्न-भिन्न करके द्यावा-पृथिवी को सूर्यदेव से प्रकाशित करते हैं। स्तुति किए जाने पर वे गौओं (किरणों) को मेघों से मुक्त करते हैं ॥२ ॥

४६९२. स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळहा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥३ ॥

उन बहुकर्मा इन्द्रदेव ने, यज्ञकर्ता एवं स्तुति करने वाले ऋषिगणों (अंगिराओं) के सहयोग से गौओं की प्राप्ति के निमित्त राक्षसों को पराजित किया। कवियों (दूरदर्शियों) के साथ मिलकर शत्रुओं के नगरों को ध्वस्त किया ॥३ ॥

४६९३. स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥४ ॥

स्तुति द्वारा उपासना के योग्य हे बलवान् इन्द्रदेव ! आप महान् अन्नों और बलों से युक्त होकर, नवीन बल बढ़ाने वाले सखाओं के साथ, सुख प्राप्ति के निमित्त आयें ॥४ ॥

४६९४. स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥५ ॥

हिंसकों को वश में करने वाले इन्द्रदेव सदा ही अपने स्वयं के बलों से निरन्तर गमनशील तेजस्वी घोड़ों से युक्त होकर, जल-राशि को क्षोभरहित समुद्र की ओर प्रवाहित होने के लिए प्रेरित करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ३३]

[ऋषि- शुनहोत्र भारद्वाज । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६९५. य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥१ ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव ! आप हमें अति बलशाली, स्तुति करने वाला, यज्ञ करने वाला एवं हव्यदाता पुत्र दें। वह पुत्र घोड़े पर बैठकर युद्ध में सुन्दर अश्वों वाले विरुद्धाचारी शत्रुओं को पराजित करे ॥१ ॥

४६९६. त्वां ही३ न्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पर्णीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! विभिन्न प्रकार से स्तुति करने वाले मनुष्य, संग्राम में रक्षा के लिए आपको आहूत करते हैं । आपने अङ्गिराओं के साथ मिलकर पणियों को मारा था । आपकी उपासना करने वाला आपकी सुरक्षा में रहता हुआ अन्न प्राप्त करता है ॥२ ॥

४६९७. त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! दस्युओं एवं आर्यों दोनों में जो शत्रु थे, उनका आपने वृत्रासुर की तरह वध किया । जिस प्रकार कुल्हाड़ी वृक्षों को काटती है, उसी प्रकार संग्राम में तीक्ष्ण आयुधों से आपने शत्रुओं को काटा ॥३ ॥

४६९८. स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सर्वत्र गमन करने वाले हैं । हम, धन पाने की अभिलाषा से आपका आवाहन करते हैं । आप मित्ररूप होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान करें । वीरपुरुषों सहित संग्राम करने वाले हम रक्षा साधनों के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

४६९९. नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आज और अन्य किसी समय भी आप हम सबके ही रहें । हमारे पास आकर हर समय आप हमें सुख देने वाले हों । गोसेवा की इच्छा वाले, स्तुति करने वाले, हमारा (याजक का), सुख और दुःख दोनों स्थितियों में आपसे सम्बन्ध बना रहे ॥५ ॥

[सूक्त - ३४]

[ऋषि- शुनहोत्र भारद्वाज । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४७००. सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी प्राचीन काल में भी अगणित स्तोत्रों से स्तुति की जा चुकी है । आपके स्तोताओं की प्रशंसा होती है । (प्राचीन एवं नूतन) ऋषियों की स्तुतियाँ परस्पर मानो स्पर्धा सी करती हैं ॥१ ॥

४७०१. पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानो३ स्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव बहुतों द्वारा आवाहित किये गये, अद्वितीय, बहुतों से प्रशंसित, महान् एवं यजमानों द्वारा पूजित हैं । रथ (इच्छित वस्तुएँ लाने वाले) की तरह बल लाभ के निमित्त इन्द्रदेव हम सबके लिए स्तुत्य हैं ॥२ ॥

४७०२. न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥३ ॥

जिन इन्द्रदेव के कार्यों में, यज्ञ कर्म एवं स्तोत्रादि बाधक नहीं हैं, वे इन्द्रदेव (की सामर्थ्य व कर्मों) को बढ़ाते



हैं । स्तुति द्वारा सेवा के योग्य इन्द्रदेव की सैकड़ों एवं हजारों लोग वन्दना करते हैं । ये स्तोत्र इन्द्रदेव के लिए सुखकर होते हैं ॥३ ॥

४७०३. अस्मा एतद्दिव्य१ र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥४ ॥

इस यज्ञ के दिन, अर्चना सहित, स्तोत्रों के समान (प्रिय) यह मिश्रित सोमरस इन्द्रदेव के लिए प्रस्तुत किया जाता है । जैसे मरुस्थल में प्रवाहित जल मनुष्यों को आनन्दित करता है, वैसे ही हवियों के साथ अर्पित स्तोत्र भी इन्द्रदेव को आनन्दित करते हैं ॥४ ॥

४७०४. अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥५ ॥

सब जगह जाने वाले इन्द्रदेव बड़े युद्ध में हम सबके रक्षक एवं हमें बढ़ाने वाले हैं, इसीलिए स्तोतागण इन्द्रदेव के लिए ही आग्रहपूर्वक स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ३५]

[ऋषि- नर भारद्वाज । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४७०५. कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१ ॥

हे रथारूढ़ इन्द्रदेव ! हमारे स्तोत्र कब आप तक पहुँचने योग्य होंगे ? कब आप कृपा करके सैकड़ों लोगों का पोषण करने वाला पुत्र एवं धन हमें देंगे ? हमारे यज्ञ कर्मों को अन्न से रमणीय कब बनायेंगे ? ॥१ ॥

४७०६. कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नृन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे वीर पुरुषों से शत्रुओं के वीर पुरुषों को एवं हमारे वीर पुत्रों से शत्रुओं के वीर पुत्रों को (संग्राम-क्षेत्र में) कब मिलायेंगे ? आप भगोड़े शत्रुओं से दूध-दही और घी देने वाली गौएँ कब जीतेंगे ? हे इन्द्रदेव ! हमें धन की प्राप्ति कब करायेंगे ? ॥२ ॥

४७०७. कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तोताओं को कब अनेकों प्रकार के अन्न प्रदान करेंगे ? आप स्तोताओं को गौएँ कब प्रदान करेंगे ? और आप कब हमारे कर्मों (यज्ञों) और स्तुतियों को अपने से संयुक्त करेंगे ? ॥३ ॥

४७०८. स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तुति करने वालों को गौएँ, घोड़े एवं बल देने वाला प्रसिद्ध अन्न प्रदान करें । आप अन्न और सुन्दर दुग्ध देने वाली गौओं को पुष्टि प्रदान करें । वे गौएँ और अन्न कान्तियुक्त हों, आप ऐसी कृपा करें ॥४ ॥

४७०९. तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५ ॥



हे इन्द्रदेव !आप अत्यन्त पराक्रमी हैं । आप विभिन्न योजनाएँ बनाकर शत्रु का संहार करें । हे इन्द्रदेव ! आप श्रेष्ठ पदार्थों के देने वाले हैं ।हम स्तोता उत्तम स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । हे देव !अङ्गिराओं को अन्न प्रदान करें ॥ ५ ॥

[सूक्त - ३६]

[**ऋषि-** नर भारद्वाज । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

४७१०. **सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।**
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोम पीकर आपका हर्षित होना हम लोगों का हित करने वाला होता है । देवों के मध्य आप सर्वाधिक बलसम्पन्न हैं । आप अन्नदाता हैं । हे इन्द्रदेव ! पृथ्वी आदि में आपके समस्त धन वास्तव में सबके हित करने वाले हैं ॥१ ॥

४७११.**अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।**
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥२ ॥

इन्द्रदेव के बल के कारण यजमान हमेशा इन्द्रदेव को पहले पूजते हैं । वे इन्द्रदेव शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले, उन्हें पकड़ने वाले और उनको मारने वाले हैं । शुभकर्मकर्ता इन्द्रदेव वृत्र का वध करने वाले हैं; इसी कारण याजक इन्द्रदेव की सेवा करते हैं ॥२ ॥

४७१२.**तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।**
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥३ ॥

बल एवं शौर्य-पराक्रमयुक्त संरक्षक मरुद्गण और रथ में जुतने वाले घोड़े आदि इन्द्रदेव की सेवा करते हैं । जैसे समस्त नदियाँ अन्ततः सहज ही समुद्र में पहुँचती (गिरती) हैं, वैसे समस्त बलयुक्त स्तुतियाँ इन्द्रदेव तक पहुँचती हैं ॥३ ॥

४७१३.**स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।**
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तुति से प्रसन्न होकर, आप बहुतों को अन्न सहित घर देने वाले हैं । हमें भी अन्न प्रदान करें । आप समस्त श्रेष्ठ प्राणियों के स्वामी हैं, सभी भुवनों के आप अधिपति हैं ॥४ ॥

४७१४.**स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।**
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे श्रेष्ठ प्रशंसनीय स्तोत्रों को सुनें । हमारे द्वारा पूजा कराने के इच्छुक आप सूर्यदेव के समान शत्रुओं को जीतकर, हमारे लिए पहले के समान ही (हितकारी) रहें ॥५ ॥

[सूक्त - ३७]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

४७१५.**अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।**
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥१ ॥



हे इन्द्रदेव ! आपके रथ में जुते हुए घोड़े हमारे पास आएँ । वे विश्ववन्द्य रथ साथ लाएँ । आत्मज्ञानी ऋषि आपकी स्तुति करते हैं । वे आपकी कृपा से आनन्द प्राप्त करते हुए सिद्धि प्राप्त करें ॥१ ॥

४७१६.प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद्द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥२ ॥

हमारे यज्ञ में प्रवाहित होने वाला सोमरस, द्रोण कलशों में भरा जाता है । आनन्द के स्वामी इन्द्रदेव इस सोम का पान करें ॥२ ॥

४७१७.आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥३ ॥

सर्वत्रगामी रथ में जुते घोड़े ऋजुमार्गगामी हैं । वे सुन्दर रथ में बलशाली इन्द्रदेव को यज्ञ में लाएँ । इस अमृत रस (सोम) को वायु विकृत न करे ॥३ ॥

४७१८.वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥४ ॥

अति शीघ्र श्रेष्ठ कर्म करने वाले इन्द्रदेव, हविदाता यजमान को धनवानों में श्रेष्ठ धनवान् बनाते हैं । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप पापनाशक एवं पापियों को दण्डित करने वाले हैं । यह धन ज्ञानियों के लिए विशेषतः कल्याणकारी होता है ॥४ ॥

४७१९.इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥५ ॥

इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों के द्वारा प्रवृद्ध होकर हमें उत्तम बल और अन्न प्रदान करें । शत्रु संहारक इन्द्रदेव शत्रुओं का नाश करके हमें जल्दी ही उन धनों को दें ॥५ ॥

[सूक्त - ३८]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

४७२०.अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद्द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥१ ॥

आश्चर्यजनक इन्द्रदेव इस पात्र से सोमरस का पान करें । महान् तेजस्वी इन्द्रदेव इस आवाहन का श्रवण करें । सुबुद्धिपूर्वक की गई याजक की दिव्य स्तुतियों और आहुतियों को ग्रहण करें ॥१ ॥

४७२१. दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्य१ गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥२ ॥

इन इन्द्रदेव के श्रोत्र, अति दूर से भी किये जाने वाले स्तोत्रों को सुनने में समर्थ हैं । स्तोता उच्च स्वर से स्तुति करते हैं । ये स्तुतियाँ इन्द्रदेव को आकर्षित करके हमारे समीप लाएँ ॥२ । ।

४७२२. तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥३ ॥



हे इन्द्रदेव ! आप अजर, पुरातन हैं । हम आपकी उपासना करते हैं । इन्द्रदेव में ही स्तुतियाँ और आहुतियाँ लीन होती हैं । यह महान् यज्ञ भी इनके द्वारा ही बढ़ता है ॥३ ॥

४७२३. **वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद्ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।**
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥४ ॥

जिन इन्द्रदेव को यज्ञ, सोम वर्धित करते हैं, (उन्हें ही) ज्ञान, स्तोत्र, प्रहर, उषा, रात्रि, दिवस, मास एवं संवत्सर आदि भी बढ़ाते हैं ॥४ ॥

४७२४. **एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।**
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥५ ॥

हे अति महान् बलशाली इन्द्रदेव ! धन, यश, सुरक्षा (की प्राप्ति) एवं शत्रुओं को पराजित करने के लिए हम आपकी सेवा करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ३९]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् । **]**

४७२५. **मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।**
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस, फलदायक, हर्षित करने वाला, दिव्य ज्ञान बढ़ाने वाला और मधुर है, आप इसका पान करें । हे देव ! स्तोताओं को आप गो दुग्धादि एवं अन्न प्रदान करें ॥१ ॥

४७२६. **अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः ।**
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणींर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥२ ॥

इन्द्रदेव ने गौओं को मुक्त कराने के निमित्त अङ्गिराओं के सहयोग से पणियों को पराजित किया ॥२ ॥

४७२७. **अयं द्योतयदद्युतो व्य१क्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।**
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस दिन-रात और वर्ष को प्रकाशित करता है । देवगणों ने इसी सोमरस को दिवसों के ध्वज रूप में स्थापित किया है । सोम ने ही उषाओं को तेजस्वी बनाया है ॥३ ॥

४७२८. **अयं रोचयदरुचो रुचानो३यं वासयद्व्यृ१ तेन पूर्वीः ।**
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥४ ॥

ये इन्द्रदेव याजकों को वाञ्छित फल प्रदान करते हैं ।इन्हीं इन्द्रदेव ने अश्वों वाले रथ पर धनयुक्त होकर गमन किया ।सूर्यदेव के समान तेजस्वी इन्द्रदेव ने अपने प्रकाश से अन्धकार युक्त लोकों और उषा को प्रकाशित किया ॥४ ॥

४७२९. **नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।**
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तोताओं से स्तुत्य होकर उन्हें उत्तम धन एवं अन्न दें । उपासकों को आप जल, अन्न, बिना विष वाले वृक्ष, गौएँ, अश्व, बल एवं जनशक्ति प्रदान करें ॥५ ॥



[सूक्त - ४०]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४७३०. इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस आपके आनन्द के निमित्त है । आप अपने मित्रवत् अश्वों कों रथ से खोलकर छोड़ दें और हम सबको स्तुति गान की प्रेरणा दें । स्तोताओं को अन्न प्रदान करें ॥१ ॥

४७३१. अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन्।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने उत्पन्न होते ही हर्षित होकर वीरता के कार्य करने के लिए जिस सोमरस का पान किया था, उसी प्रकार अब भी इसका पान करें । गौएँ (दुग्ध के लिए) , ऋत्विज (कूटने वाले) , पहाड़ के पत्थर (कूटने-पीसने के उपरकण) , जल (मिलाने के लिए) की सहायता से यह सोमरस बनाया गया है ॥२ ॥

४७३२. समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! अग्नि प्रदीप्त है एवं सोमरस तैयार है । अब आपके रथ में युक्त घोड़े आपको यज्ञशाला में लाएँ । हम मनोयोगपूर्वक आपका आवाहन करते हैं । आप आएँ और हमारा कल्याण करें ॥३ ॥

४७३३. आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम्।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात्॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमरस पीने के लिए बार-बार आये हैं । आप हमारी स्तुति को सुनकर यज्ञ में पधारें । याजक आपको पुष्ट करने के लिए यह सोम अर्पित करता है । आप सोम ग्रहण करें ॥४ ॥

४७३४. यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपका आवाहन करते हैं । आप दूरस्थ द्युलोक में हों अथवा घर में या जहाँ कहीं भी हों, वहीं से हमारी स्तुति को सुनकर मरुद्‌गणों सहित पधारकर हमारी रक्षा करें ॥५ ॥

[सूक्त - ४१]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४७३५. अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम्॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! शान्त होकर हमारे यज्ञ में पधारें । यह सोमरस आपके निमित्त है । जैसे गौएँ गोष्ठों में जाती हैं, वैसे ही यह सोमरस कलशों में जाता है । यजनीय देवगणों में प्रमुख हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निकट आएँ ॥१ ॥

४७३६. या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम्।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥२ ॥



हे इन्द्रदेव ! आप उत्तम जिह्वा से मधुर रस की तरंगों को सदैव ग्रहण करते हैं । उसी से इस सोमरस का पान कर हमारी रक्षा करें । अध्वर्यु आपके निकट उपस्थित हो रहे हैं । गौओं के रक्षक हे इन्द्रदेव ! आप वज्र से शत्रुओं का संहार करें ॥२ ॥

४७३७. **एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णो समकारि सोमः ।**
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥३ ॥

इन्द्रदेव के निमित्त यह द्रवरूप, बलवर्धक तथा सभी प्रकार से अभीष्ट-वर्षक सोमरस तैयार है । हे पराक्रमी, युद्धजयी इन्द्रदेव ! जिसके आप स्वामी हैं, जो आपका अन्न है, उस सोमरस का आप पान करें ॥३ ॥

४७३८. **सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।**
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! शोधित सोम अशोधित सोम से श्रेष्ठ है । यह आपको आनन्द देने वाला है । आप सोमरस के समीप पधारें । हे **शत्रु** का संहार करने वाले इन्द्रदेव ! आप इसका पान कर समस्त बलों का विकास करें ॥४ ॥

४७३९. **ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।**
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपका आवाहन करते हैं, यह सोमरस आपके लिए पुष्टिकारक है । आप यहाँ पधारें । आप इस सोमरस का पान कर आनन्दित हों तथा संग्राम में हमारी एवं प्रजाओं की रक्षा करें ॥५ ॥

[सूक्त - ४२]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** अनुष्टुप्, ४ - बृहती ।]

४७४०. **प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दध्वने नरे ॥१ ॥**

हे ऋत्विजो ! इन्द्रदेव के लिए सोमरस प्रेषित करें । वे इन्द्रदेव सर्वत्र गमन करने वाले, सर्वज्ञ एवं यज्ञ के प्रधान हैं ॥१ ॥

४७४१. **एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् । अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥**

हे ऋत्विजो ! आप सोम के पात्रों सहित संस्कारित, रसयुक्त, दीप्तिमान् सोमरस को रुचिपूर्वक पीने वाले इन इन्द्रदेव के पास जाकर प्रार्थना करें ॥२ ॥

४७४२. **यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ । वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥३ ॥**

हे ऋत्विजो ! रसयुक्त, दीप्तिमान् सोम को लेकर मनोरथों को जानने वाले इन्द्रदेव की शरण में जाने पर, वे विघ्नों को दूर करते हुए आपकी सभी इच्छाओं को पूर्ण कर देंगे ॥३ ॥

४७४३. **अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।**
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥४ ॥

हे अध्वर्यो ! इन इन्द्रदेव के लिए प्राणरूप सोमरस भरपूर मात्रा में प्रदान करें । वे इन्द्रदेव स्पर्धा योग्य तथा जीतने योग्य शत्रुओं को विनष्ट करके आपकी रक्षा करेंगे ॥४ ॥



[सूक्त - ४३]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- उष्णिक् ।]

४७४४. **यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥१ ॥**

हे इन्द्रदेव ! जिस सोमरस को पी करके मदोन्मत्त आपने दिवोदास के कल्याण के लिए शम्बरासुर का हनन किया, उस शोधित सोमरस का आप पुन: सेवन करें ॥१ ॥

४७४५. **यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥२ ॥**

हे इन्द्रदेव ! अति उत्साहवर्धक सोमरस , प्रात:, मध्याह्न और सायं-तीनों कालों में तैयार होता है, उसे आप ही ग्रहण करते हैं । इस अभिषुत सोमरस का आप पान करें ॥२ ॥

४७४६. **यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळहा अवासृजः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥३ ॥**

हे इन्द्रदेव ! जिस सोमरस का पान करके आपने गौओं को मुक्त कराया था । तैयार किये गये उसी प्रकार के इस सोमरस का आप पान करें ॥३ ॥

४७४७. **यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥४ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आप अन्नरूप से जिस सोमरस को पीकर हर्षित होते हैं एवं विशिष्ट बल युक्त होते हैं, वैसा ही सोमरस आपके लिए तैयार है । आप इसे ग्रहण करें ॥४ ॥

[सूक्त - ४४]

[ऋषि- शंयु बार्हस्पत्य । देवता - इन्द्र, छन्द- त्रिष्टुप्, १-६ अनुष्टुप्; ७-९ विराट्; ८ त्रिष्टुप् अथवा विराट् ।

४७४८. **यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।**
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१ ॥

हे शक्ति - सम्पन्न इन्द्रदेव ! शोभायमान, अति देदीप्यमान उपासकों को धन देने वाला यह सोमरस आपको आनन्द देने वाला है ॥१ ॥

४७४९. **यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।**
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बल को बढ़ाने वाले सोम के रक्षक हैं । आपको हर्ष प्रदान करने वाला यह सोम, स्तुति करने वालों को वैभव प्रदान करता है ॥२ ॥

४७५०. **येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।**
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अन्नरूप सोम की रक्षा करते हैं । उसी सोमरस का पान करके आप मरुद्‌गणों के सहयोग से शत्रुओं का संहार करते हैं । वह सोमरस आपको आनन्दित करता है ॥३ ॥

४७५१. **त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् । इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥४ ॥**

यजमानों के हित के लिए कल्याणकारी बल एवं अन्न के अधिपति, शत्रुओं को पराजित करने वाले, यज्ञ के नायक, श्रेष्ठ दाता, सर्वज्ञ इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥४ ॥



४७५२. यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः। तमिन्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥५॥

हमारे द्वारा की जा रही स्तुतियों से इन्द्रदेव का वह बल विवर्धमान होता है, जिसके द्वारा वे शत्रुओं को पराजित करके धन प्राप्त करते हैं। इन्द्रदेव के उस बल की सराहना द्यावा-पृथिवी भी करते हैं ॥५॥

४७५३. तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि। विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥६॥

हे स्तोताओ ! आप इन्द्रदेव की स्तुति के लिए स्तोत्रों को प्रसारित करें। बुद्धिमानों के समान सामर्थ्ययुक्त इन्द्रदेव हमारे रक्षक हैं ॥६॥

४७५४. अविदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत्।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥७॥

यज्ञकर्म करने में कुशल याजकों को वे इन्द्रदेव जानते हैं। सोमरसपायी इन्द्रदेव स्तुति करने वालों को उत्तम धन प्रदान करते हैं। द्यावा-पृथिवी को कम्पित करने वाले अश्वों के साथ इन्द्रदेव सखा भाव वालों की रक्षा करते हैं ॥७॥

४७५५. ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन्।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥८॥

ऋत्विग्गण इन्द्रदेव का आवाहन उसी सोमरस के लिए करते हैं, जो यज्ञ में पिया जाता है। वे विशाल शरीर वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले इन्द्रदेव हम स्तोताओं के स्तोत्रों को सुनकर हमारे पास आएँ ॥८॥

४७५६. द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें तेज, बल एवं प्रचुर अन्न प्रदान करें। अपने शत्रुओं को भगाएँ एवं हमारी रक्षा करें; ताकि हम सब धन और अन्न के सहित सुख से रह सकें ॥९॥

४७५७. इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमसे अप्रसन्न न हों, इसीलिए हम आपको आहुति प्रदान करते हैं। आपसे श्रेष्ठ अन्य कोई हमारा मित्र नहीं है। यदि आपकी ऐसी महिमा न होती, तो आप रत्नों (श्रेष्ठ सम्पदाओं) के प्रेरक न कहलाते ॥१०॥

[देवशक्तियों द्वारा श्रेष्ठ विभूतियाँ किन्हीं श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए दी जाती हैं। उन्हें हीन उद्देश्यों से लगाना देवशक्तियों को कष्ट देकर, उनको क्रोधित करने जैसा ही है।]

४७५८. मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥११॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् बलवान् हैं, हमें हिंसक असुरों से बचाएँ। आप धनवान् हैं। हम आपके मित्र बनकर रहें एवं दुःख न पायें। आपके निमित्त जो सोमरस तैयार नहीं करते एवं हवि प्रदान नहीं करते तथा आपके कार्यों में उत्पात मचाने वाले शत्रु हैं, आप उनका विनाश करें ॥११॥

४७५९. उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥१२॥



मेघ जिस तरह गर्जना (ध्वनि) उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार इन्द्रदेव स्तुतिकर्त्ताओं के लिए घोड़े, गौएँ उत्पन्न करते हैं। धनवान् (धन का दुरुपयोग करके) आपको कष्ट न पहुँचाएँ ॥१२॥

४७६०. अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥१३॥

हे ऋत्विजो ! आप महत्त्वपूर्ण कर्म करने वाले इन्द्रदेव के लिए सोमरस तैयार करें। वे इन्द्रदेव ही सोमाधिपति हैं। ये इन्द्रदेव पुरातन एवं नवीन स्तोत्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

४७६१. अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥१४॥

सोमरस पान कर उत्साहित ज्ञानी इन्द्रदेव ने विपरीत योजना बनाने वाले शत्रुओं का संहार किया था। इन वीर इन्द्रदेव के लिए सोमरस प्रस्तुत करें। सोमपान करके वे इन्द्रदेव, कपटपूर्ण ढंग से घेरकर कष्ट देने वाले शत्रुओं का संहार करें ॥१४॥

४७६२. पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥१५॥

इस तैयार सोमरस का पान करके वे रक्षक, निवास दाता इन्द्रदेव वज्र द्वारा वृत्रासुर का वध करें। वे इन्द्रदेव दूर हों, तो भी इस यज्ञ में आएँ ॥१५॥

४७६३. इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद्द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥१६॥

यह सोमरस इन्द्रदेव का अति प्रिय पेय पदार्थ है। वे योग्य पात्र से इसका पान कर प्रसन्न और हर्षित हों। उनकी कृपा से शत्रु और पाप हमसे दूर हों ॥१६॥

४७६४. एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान्।
अभिषेणाँ अभ्या३ देदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥१७॥

हे शूरवीर, धनवान् इन्द्रदेव ! सोमरस का पान कर आप हमारे विरोधी शत्रुओं का आयुधों सहित विनाश करें तथा उन्हें पराजित करके हमसे दूर भगायें ॥१७॥

४७६५. आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८॥

हे इन्द्रदेव ! आप धनवान् हैं। इन संग्रामों में हमें सुखदायी बहुत सा धन प्राप्त कराएँ। आप हमें विजय प्राप्ति के योग्य सामर्थ्य प्रदान करें तथा पुत्र-पौत्रों एवं जल-वृष्टि से हमें समृद्ध बनाएँ ॥१८॥

४७६६. आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९॥

हे इन्द्रदेव ! आपके अश्व बलवान्, कामनाओं की पूर्ति में सहायक, रथ में स्वयं युक्त होने वाले, वेगवान्, तथा प्रचुर वज्र जैसे तीक्ष्ण भार वहन करने वाले हैं। वे सोमपान करके आनन्दित होने के लिए आपको इस यज्ञ में लाएँ ॥१९॥

४७६७. **आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥२० ॥**

हे इन्द्रदेव ! आप कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं । समुद्र की लहरों के समान आनन्दित करने वाला यह सोमरस आपके पात्र में है । ऋत्विग्गण आपके लिए अभिषुत सोमरस प्रेषित करते हैं ॥२० ॥

४७६८. **वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥२१ ॥**

हे इन्द्रदेव ! यह मधुर, सरस सोम आपके लिए प्रस्तुत है । आप ही नदियों के जल को प्रवाहित करने वाले एवं प्राणियों को अभीष्ट प्राप्ति हेतु बलवान् बनाने वाले हैं ॥२१ ॥

४७६९. **अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥२२ ॥**

इस तेजस्वी सोम ने इन्द्रदेव से युक्त होकर 'पणि' असुर को बल से रोका । इसी सोम ने धनों के पालक के अशिव (अकल्याणकारी) आयुधों एवं माया (प्रपंचों) को नष्ट किया ॥२२ ॥

४७७०. **अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळहम् ॥२३ ॥**

इसी (तेजस्वी सोम) ने उषाकाल को सूर्य से युक्त किया । इसी ने सूर्यदेव को तेजस्वी बनाया । तीन प्रकार (तीनों सवनों) वाले इसी (सोम) ने तीसरे स्थान पर छिपे अमृत को प्राप्त किया ॥२३ ॥

४७७१. **अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥२४ ॥**

इसी (सोम) ने द्यावा-पृथिवी को सुस्थिर किया है । इसी ने सूर्यदेव के रथ में सात किरणों को युक्त किया है । इसी ने गौओं में परिपक्व दुग्ध को स्थापित किया है । इसी सोम ने दुग्ध को शक्ति से भरपूर किया है, जो इस दस इन्द्रियों वाले शरीर को पुष्ट करता है ॥२४ ॥

[सूक्त - ४५]

[**ऋषि-** शंयु बार्हस्पत्य । **देवता -** इन्द्र; ३१- ३३ बृबुतक्षा । **छन्द-** गायत्री , २९ अतिनिचृत् , ३१ पाद निचृत् (गायत्री), ३३ अनुष्टुप् ।]

४७७२. **य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥१ ॥**

शत्रुओं के द्वारा तुर्वश और यदु (पराक्रमी राजाओं) को बहुत दूर फेंका गया था । वहाँ से इन्द्रदेव ही उन्हें उत्तम नीति से सरलतापूर्वक लौटाकर लाए थे । वे युवा (स्फूर्तिवान्) इन्द्रदेव हमारे मित्र हैं ॥१ ॥

४७७३. **अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥२ ॥**

इन्द्रदेव अज्ञानी को अन्न प्रदान करते हैं । धीरे-धीरे चलने वाले अश्वों से भी शत्रुओं को परास्त कर उनका धन हर लेते हैं ॥२ ॥

४७७४. **महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥३ ॥**



इन्द्रदेव की संचालक शक्तियाँ अनेक हैं। इन्द्रदेव की स्तुतियाँ भी अनेक प्रकार की हैं। उनकी रक्षा करने वाली शक्ति भी कमजोर नहीं पड़ती ॥३ ॥

४७७५. सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत। स हि नः प्रमतिर्मही ॥४ ॥

हे मित्रो ! आप सब इन्द्रदेव की प्रार्थना करें। आप उन्हीं का पूजन करें, वे इन्द्रदेव ही हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं ॥४ ॥

४७७६. त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि। उतेदृशे यथा वयम् ॥५ ॥

हे वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्रदेव ! आप स्तुति करने वालों के रक्षक हैं। आप हम सबकी रक्षा करें ॥५ ॥

४७७७. नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः। नृभिः सुवीर उच्यसे ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे शत्रुओं को हमसे दूर भगाते हैं। हम आपकी प्रशंसा करते हैं। आप श्रेष्ठ वीर कहलाते हैं ॥६ ॥

४७७८. ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम्। गां न दोहसे हुवे ॥७ ॥

इन्द्रदेव ज्ञानी हैं, अतः ज्ञानपूर्वक स्तुत्य हैं। वे मित्र हैं; प्रशंसा के योग्य हैं, ऐसे इन्द्रदेव को हम स्तुति करके वैसे ही बुलाते हैं, जैसे दोहन के लिए गौओं को बुलाया जाता है ॥७ ॥

४७७९. यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता। वीरस्य पृतनाषहः ॥८ ॥

शत्रुओं को पराजित करने वाले इन्द्रदेव के दोनों हाथों में दोनों प्रकार की (दिव्य एवं पार्थिव सम्पत्तियाँ) हैं, ऐसा ऋषियों ने कहा है ॥८ ॥

४७८०. वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते। वृह माया अनानत ॥९ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप सर्वशक्तिमान् हैं। आप शत्रुओं के किलों, नगरों एवं बलों को ध्वस्त करने वाले हैं। हे अनानत् (न झुकने वाले) इन्द्रदेव ! आप उनकी माया को नष्ट करें ॥९ ॥

४७८१. तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते। अहूमहि श्रवस्यवः ॥१० ॥

हे सोमरस पीकर आनन्दित हुए इन्द्रदेव ! हम अन्न प्राप्ति की इच्छा से आपका आवाहन करते हैं ॥१० ॥

४७८२. तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने। हव्यः स श्रुधी हवम् ॥११ ॥

युद्ध में सहायता के लिए प्राचीनकाल में आपको ही बुलाया गया था, भविष्य में भी आपको ही बुलाया जायेगा। जो संग्राम के समय बुलाए जाते हैं। जिनकी सहायता से शत्रु द्वारा धन प्राप्त होता है। उन इन्द्रदेव को हम बुलाते हैं। वे हमारे आवाहन को सुनें ॥११ ॥

४७८३. धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान्। त्वया जेष्म हितं धनम् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव !आप हमारी स्तुति से प्रसन्न हों। हम आपके अनुकूल होकर, शत्रु को जीतकर धन प्राप्त करें ॥१२॥

४७८४. अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते। भरे वितन्तसाय्यः ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव !आप वीर एवं स्तुति के योग्य हैं। आपने शत्रुओं के धन को प्राप्त करने के लिए उन्हें जीता ॥१३ ॥

४७८५. या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति। तया नो हिनुही रथम् ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव !आप तीव्रगामी हैं। शत्रु को जीतने के लिए आप उसी वेग से हमारे रथ को चलने की प्रेरणा दें ॥१४ ।

४७८६. स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना। जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महारथी हैं । आप अपने शत्रुओं को जीतने वाले रथ से शत्रुओं की सम्पत्ति को जीतें ॥१५ ॥

४७८७. **य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥१६ ॥**

जो इन्द्रदेव प्रजाओं के स्वामी हैं, बल से होने वाले कार्यों को करने वाले एवं सबको विशेष दृष्टि से देखन वाले हैं, उन इन्द्रदेव की स्तुति करें ॥१६ ॥

४७८८. **यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥१७ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आप सबकी रक्षा करने वाले मित्र रूप हैं । आप सुखदाता एवं स्तोताओं के बन्धु सदृश हैं । आप हमें सुख प्रदान करें ॥१७ ॥

४७८९. **धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः । सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥१८ ॥**

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप असुरों का संहार करने के लिए वज्र को धारण करें और स्पर्धा करने वाले शत्रुओं को पराजित करें ॥१८ ॥

४७९०. **प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥१९ ॥**

जो इन्द्रदेव मित्ररूप, स्तुति करने वालों के प्रेरक, धन देने वाले एवं आवाहन करने योग्य हैं । हम उन इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥१९ ॥

४७९१. **स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते । गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥२० ॥**

जो इन्द्रदेव अतिशय स्तुत्य एवं तीव्रगामी हैं, वे इन्द्रदेव समस्त पार्थिव धनों के एक मात्र स्वामी हैं ॥२० ॥

४७९२. **स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः । गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥२१ ॥**

हे गोपते इन्द्रदेव ! आप बहुत सी गौएँ एवं घोड़े प्रदान करके हमारी इच्छाओं की पूर्ति करें ॥२१ ॥

४७९३. **तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥२२ ॥**

हे स्तुतिरत स्तोताओ ! आप शत्रु को जीतने वाले इन्द्रदेव का यशोगान करें । जैसे गाय उत्तम घास से प्रसन्न होती है, वैसे ही तैयार सोम सहित स्तुति से इन्द्रदेव सुख पाते हैं ॥२२ ॥

४७९४. **न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुप श्रवद्गिरः ॥२३ ॥**

सभी के आश्रयदाता वे इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को सुनने के बाद हमें धन-धान्य के रूप में अपार वैभव देने से नहीं रुकते हैं ॥२३ ॥

४७९५. **कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥२४ ॥**

हे इन्द्रदेव ! हिंसा करने वालों, गोशाला से गौएँ चुराने और उन्हें छिपा देने वालों को आप शीघ्रता से ढूँढ़ कर दण्डित करें और गौओं को मुक्त कराएँ ॥२४ ॥

४७९६. **इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः । इन्द्र वत्सं न मातरः ॥२५ ॥**

हे इन्द्रदेव ! गौएँ जिस तरह बछड़ों की पुकार पर उनकी ओर भागती हैं, वैसे ही वे स्तुतियाँ आपकी ओर ही गमन करती हैं ॥२५ ॥

४७९७. **दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥२६ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आप गाय एवं घोड़ों की इच्छा करने वालों की इच्छा को पूर्ण करते हैं । आपकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती है ॥२६ ॥



४७९८. स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे। न स्तोतारं निदे करः ॥२७॥

हे इन्द्रदेव !आप अपने लिए प्रदत्त अन्नरूप सोम से हृष्ट-पुष्ट हों। स्तोताओं को निन्दक के अधीन न होने दें॥२७॥

४७९९. इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः। वत्सं गावो न धेनवः ॥२८॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! जिस प्रकार दुधारू गौएँ बछड़ों के पास स्वयं ही जा पहुँचती हैं, उसी प्रकार सोम निष्पादन के समय स्तुतियाँ आपके पास स्वतः पहुँचती हैं ॥२८॥

४८००. पुरूतमं पुरूणां स्तोतृणां विवाचि। वाजेभिर्वाजयताम् ॥२९॥

हमारी श्रेष्ठतम स्तुतियाँ आपको प्राप्त होती हैं। हविष्यान्न के साथ (संयुक्त होकर) वे आपको बलवान् बनायें ॥२९॥

४८०१. अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः। अस्मान्राये महे हिनु ॥३०॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे स्तोत्र आप तक पहुँचें, उनसे प्रसन्न होकर आप हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥३०॥

४८०२. अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात्। उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥३१॥

'बृबु' ने पणियों (व्यापारियों अथवा असुरों) के बीच ऊँचा स्थान प्राप्त किया। गंगा के ऊँचे तटों के समान वे महान् हुए ॥३१॥

४८०३. यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी। सद्यो दानाय मंहते ॥३२॥

वायु की तरह शीघ्रगामी बृबु की हजारों दान देने की कल्याणकारिणी प्रवृत्ति, धन की कामना से स्तुति करने वाले मुझ स्तोता को अपेक्षित धन प्रदान करती हैं ॥३२॥

४८०४. तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥३३॥

सहस्रों गौओं के दान करने वाले दानी बृबु की प्रशंसा के लिए हम उनकी स्तुति करते हैं ॥३३॥

[हीनकर्मा व्यक्तियों के बीच से उभरकर यदि कोई व्यक्ति श्रेष्ठ कर्म करता है, तो वन्दनीय होता है।]

[सूक्त - ४६]

[**ऋषि-** शंयु बार्हस्पत्य । **देवता** - इन्द्र । **छन्द-** बार्हत प्रगाथ- (विषमा बृहती, समासतो बृहती)।]

४८०५. त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! हम स्तोतागण आपका आवाहन अन्न प्राप्ति की इच्छा से करते हैं। आप सज्जनों के रक्षक हैं। शत्रु को जीतने के निमित्त आपका आवाहन करते हैं ॥१॥

४८०६. स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥

विपुल पराक्रमी, वज्रधारी, बलधारक, हे इन्द्रदेव ! अपनी असुरजयी शक्ति से महान् हुए आप हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर, हम साधकों को पशुधन तथा ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२॥

४८०७. यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम्।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥३॥



जो इन्द्रदेव एक साथ शत्रुनाशक तथा सर्वद्रष्टा हैं, उन इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं। मन्यु से युक्त, धन-सम्पन्न, सज्जनों के प्रतिपालक हे इन्द्रदेव ! आप रणक्षेत्र (जीवन-संग्राम) में तथा ऐश्वर्य की वृद्धि में हमारे सहायक बनें ॥३ ॥

४८०८. **बाधसे जनान् वृषभेव मन्युना घृषौ मीळह ऋचीषम ।**
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ऋचा में कहे अनुसार कर्म करने वाले हैं। आप संग्राम में शत्रुओं पर वृषभ की तरह आक्रमण करें। महान् धन प्राप्ति के संग्राम में आप हमारी रक्षा करें। ताकि हम शरीर उदक और सूर्य का भोग करते रहें अर्थात् दीर्घायु: हों ॥४ ॥

४८०९. **इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।**
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥५ ॥

हे वज्रपाणि देवेन्द्र ! हमें ओज एवं बल प्रदान करने वाले अन्न (पोषक तत्व) प्रदान करें। जो पोषक अन्न द्युलोक एवं पृथ्वी दोनों को पोषण देते हैं, उन्हें हम अपने पास रखने की कामना करते हैं ॥५ ॥

४८१०. **त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।**
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान्कृधि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम अपनी रक्षा के लिए आपका आवाहन करते हैं। आप महाबलशाली और शत्रुओं के विजेता हैं। आप सभी असुरों से हमारी रक्षा करें। संग्राम में हम जीत सकें, आप ऐसी कृपा करें ॥६ ॥

४८११. **यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।**
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! संगठित प्रजा में जो पराक्रम है, पाँच जनों (समाज के पाँच वर्गों, पंचतत्वों अथवा पंचवर्गों) में जो धन है वैसा ही ऐश्वर्य आप हमेंप्रदान करें। एकता से उत्पन्न होने वाली शक्ति हमें प्राप्त हो ॥७ ॥

४८१२. **यद्वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।**
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें तक्षु (समर्थों) द्राह्य (द्रोह करने वालों) एवं पुरु (पालन करने वालों) का समग्र बल प्रदान करें। बलवान् होकर युद्ध में शत्रुओं पर हम विजय प्राप्त करें ॥८ ॥

४८१३. **इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।**
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऐश्वर्य सम्पन्नों जैसा त्रिधातुयुक्त तीनों ऋतुओं में हितकारी आश्रय (घर या शरीर) हमें भी प्रदान करें। इससे चमक (भ्रामक, चकाचौंध) दूर करें ॥९ ॥

४८१४. **ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।**
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! जो शत्रु गौओं को छीनने के लिए आते है उन पर आप घर्षण शक्ति से प्रहार करते हैं। हे धनवान् प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! आप समीपवर्ती शत्रुओं से हमारी रक्षा करें। हमारे शरीर की रक्षा करें ॥१० ॥



४८१५. अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥११॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे सम्वर्धन करने वाले हैं। युद्ध में शत्रुओं द्वारा छोड़े गये पंख वाले पैने और तेजस्वी वाण अन्तरिक्ष मार्ग से जब हमारे ऊपर बरसते हैं, तब उनसे आप हमारी रक्षा करते हैं ॥११॥

४८१६. यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितॄणाम्।
अध स्मा यच्छ तन्वे३ तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥१२॥

जिस समय अनीति प्रतिरोध के लिए शूरवीर अपना शरीर अर्पित करते हैं, तब पितरों को परमप्रिय सुख (सन्तोष) होता है। ऐसे समय में हे इन्द्रदेव ! आप हमारे शरीर और पुत्रों की रक्षा के लिए सुरक्षित निवास दें तथा शत्रुओं को मार भगायें ॥१२॥

४८१७. यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥१३॥

हे इन्द्रदेव ! जब युद्ध हो, तब आप हमारे घोड़ों को तीव्रगामी श्येन पक्षी की तरह, विषम मार्गों से भी होते हुए रणक्षेत्र में ले जाने की प्रेरणा प्रदान करें ॥१३॥

४८१८. सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥१४॥

युद्ध के समय घोड़े भय से हिनहिनाते हैं, किन्तु वीरों के घोड़े ऊपर से नीचे की ओर तीव्र गति से बहने वाली नदियों की तरह एवं बाज पक्षी के झपट्टे की तरह अति वेगपूर्वक दौड़ते हैं और विजय प्राप्त करते हैं ॥१४॥

[सूक्त - ४७]

[**ऋषि** - गर्ग भारद्वाज। **देवता** - इन्द्र, १ - ५ सोम, २० देवभूमि, बृहस्पति - इन्द्र, २२ - २५ सार्ञ्जय प्रस्तोक (दान स्तुति) २६ - २८ रथ, २९ - ३० दुंदुभि, ३१ दुंदुभि और इन्द्र। **छन्द** - त्रिष्टुप् १९ बृहती, २३ अनुष्टुप्, २४ गायत्री, २५ द्विपदा त्रिष्टुप्, २७ - जगती।]

४८१९. स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥

सोमरस तीक्ष्ण, मधुर एवं रुचिकर स्वाद वाला होता है। इस सोम के पीने वाले इन्द्रदेव को युद्ध में कोई जीत नहीं सकता ॥१॥

४८२०. अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥२॥

यह सोम हर्षित करने वाला है, अतः इसको पीकर इन्द्रदेव ने 'वृत्रासुर' का नाश किया तथा शम्बर के अनेक किलों को ध्वस्त किया ॥२॥

४८२१. अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥३॥



सोमरस बुद्धि और वाणी को तेजस्वी और गम्भीर बनाता है । इसी सोम ने स्वर्ग, पृथ्वी, जल, ओषधि, दिन एवं रात्रि बनाये हैं ॥३ ॥

४८२२. **अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।**
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ॥४ ॥

इस सोम ने ही अन्तरिक्ष, पृथ्वी, और द्युलोक को सुविस्तृत एवं सुदृढ़ किया है । इसी ने जल, ओषधियों एवं गो- दुग्ध में अमृत स्थापित किया है ॥४ ॥

४८२३. **अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।**
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥५ ॥

अन्तरिक्ष में स्थित विभिन्न उषाएँ सोम की विचित्र ज्योति से ज्योतित हैं । यह सोम बहुत बलशाली, महान् और उत्साहयुक्त द्युलोक में स्थित है ॥५ ॥

४८२४. **धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।**
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥६ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! आप धन प्राप्ति हेतु हो रहे संग्रामों में, सोमरस पीकर शत्रुओं का संहार करें । हे धन के स्वामी ! आप हमें धन प्रदान करें ॥६ ॥

४८२५. **इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।**
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप नीति - निपुण हैं । आप हमारे मार्गदर्शक बनें, श्रेष्ठ धनवान् आप हमें सुगमतापूर्वक धन प्राप्त कराकर दुःखों एवं शत्रुओं से बचाएँ ॥७ ॥

४८२६. **उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।**
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ज्ञानवान् हैं, सर्वज्ञ हैं, अतः आप हमें इस बड़े क्षेत्र की बाधाओं से निकाल कर सरलता-पूर्वक लक्ष्य तक ले चलें । आपका अभय, सुखद, कल्याणकारी तेज, हमें आपके वरदहस्त के आश्रय में मिले ॥८ ॥

४८२७. **वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।**
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें उत्तम, तीव्रगामी अश्वों से युक्त विशाल रथ पर बिठाएँ । आप हमें अन्नों में श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें । आपकी कृपा से शत्रु हमारा धन क्षीण न कर सकें ॥९ ॥

४८२८. **इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।**
यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें श्रेष्ठ कर्म करने वाली तीक्ष्ण बुद्धि एवं सुखमय दीर्घजीवन प्रदान करें । इस प्रार्थना को सुनकर आपकी कृपा से देवगण हमारी रक्षा करें ॥१० ॥

४८२९. **त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।**
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११ ॥



हम कल्याणकारी कामना से संरक्षक , सहायक, युद्ध में आवाहन योग्य, पराक्रमी, सक्षम तथा अनेक स्तोताओं द्वारा स्तुत्य इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । ऐश्वर्यवान् वे इन्द्रदेव हमारा कल्याण करें ॥११ ॥

४८३०. इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१२ ॥

वे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव स्वयं की रक्षणशक्ति के द्वारा हमारी रक्षा कर, हमें सुखी बनाएँ । वे इन्द्रदेव ही हमारे शत्रुओं का संहार कर, हमें अभय करते हैं । वे देव हमसे प्रसन्न हों , हमें बलवान् बनाएँ ॥१२ ॥

४८३१. तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥१३ ॥

वे इन्द्रदेव पूज्य हैं, वे हमें बुद्धि और पालन करने वाला धन देकर हमारा कल्याण करें । वे दूरस्थ छिपे हुए (अप्रकट) शत्रुओं को हमसे दूर ले जाएँ ॥१३ ॥

४८३२. अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥१४ ॥

जैसे जल-प्रवाह नीचे की ओर तीव्रगति से प्रवाहित होता है, वैसे ही ये स्तोत्र एवं सोम वज्रधारी इन्द्रदेव की ओर गमन करते हैं । वे इन्द्रदेव (सोम में) जल, गाय का दूध, दही आदि मिश्रित करते हैं ॥१४ ॥

४८३३. क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥१५ ॥

इन्द्रदेव को यजन एवं स्तुति द्वारा प्रसन्न करने में कौन मनुष्य समर्थ है ? वे इन्द्रदेव सदा अपनी शक्ति को जानते हैं । वे सदैव हमारी रक्षा एवं उन्नति करें । वे उसी प्रकार एक के बाद दूसरी उन्नति प्रदान करते हैं, जैसे राहगीर एक के बाद दूसरा कदम बढ़ाता चलता है ॥१५ ॥

४८३४. शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद् विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥१६ ॥

इन्द्रदेव शत्रुओं का दमन करते और स्तोताओं का स्थान बदलते हुए उन्हें आगे बढ़ाते हैं । इन्द्रदेव का पराक्रम सर्वविदित है । ये सबके राजा इन्द्रदेव याजकों का सब प्रकार से संरक्षण करते हैं ॥१६ ॥

४८३५. परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥१७ ॥

जो पहले मित्रवत् रहकर अनुभवी एवं पुराने हो गये हैं, उनकी अपेक्षा इन्द्रदेव नवीन याजकों का अधिक ध्यान रखते हैं । इन्द्रदेव उपासना न करने वालों का त्याग कर, उपासकों का कल्याण करते हैं ॥१७ ॥

४८३६. रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥१८ ॥

इन्द्रदेव विभिन्न शक्तियों द्वारा अनेक रूप बनाकर यजमान के पास प्रकट होते हैं । इन्द्रदेव के रथ में उनकी अनेक शक्तियों के रूप में सहस्रों घोड़े जुते हैं ॥१८ ॥

४८३७. **युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।**
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९ ॥

इन्द्रदेव स्वर्णिम आभायुक्त अश्वों को अपने रथ में जोड़कर त्रिलोक में प्रकाशित होते हैं । स्तोताओं के बीच पहुँचकर अन्य कौन उनकी रक्षा करता है ? ॥१९ ॥

४८३८. **अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।**
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! गौओं से हीन इस क्षेत्र में हम आ गये हैं । इस विस्तृत भूमण्डल में दस्यु भी निवास करते हैं । हे बृहस्पते !आप हमें गौएँ खोजने की प्रेरणा दें । हे इन्द्रदेव ! पथ से भटके मनुष्यों को आप श्रेष्ठ मार्ग पर लाएँ ॥२

४८३९. **दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।**
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥२१ ॥

इन्द्रदेव सूर्यरूप से प्रकट होकर अन्धकार को समाप्त करते हैं । इन्द्रदेव ने ही शम्बर (शक्तिनाशक) तथा वर्ची (तेजस्वी) असुरों का अपने तेज से नाश किया था ॥२१ ॥

४८४०. **प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।**
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२ ॥

हे इन्द्रदेव ! प्रस्तोक ने स्तोताओं को सोने के खजाने एवं दस घोड़े प्रदान किए । शम्बर के धन को 'अतिथिग्व' ने जीता था और उसी धन को 'दिवोदास' द्वारा हमने प्राप्त किया ॥२२ ॥

४८४१. **दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।**
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥२३ ॥

दिवोदास ने दस अश्व, दस खजाने, वस्त्र, भोजन एवं सोने के दस पिण्ड हमें प्रदान किये ॥२३ ॥

४८४२. **दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः । अश्वथः पायवेऽदात् ॥२४ ॥**

अश्वत्थ ने पायु के लिए घोड़ों सहित दस रथ एवं सौ गौएँ अथर्वाओं को प्रदान कीं ॥२४ ॥

४८४३. **महि राधो विश्वजन्यं दधानान् भरद्वाजान्त्साञ्जयो अभ्ययष्ट ॥२५ ॥**

भरद्वाज के पुत्र ने मनुष्यों के हितकारी धन को ग्रहण किया ।सृञ्जय के पुत्र ने धन प्रदान कर सबका सत्कार किया ॥२५ ॥

४८४४. **वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।**
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥२६ ॥

वनस्पति-काष्ठ निर्मित हे रथ ! आप हमारे मित्र होकर मजबूत अंग तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से सम्पन्न होकर संकटों से हमें पार लगाएँ । आप श्रेष्ठकर्म द्वारा बँधे हुए हैं, इसलिए वीरतापूर्ण कार्य करें । हे रथ ! आपका सवार जीतने योग्य समस्त वैभव को जीतने में समर्थ हो ॥२६ ॥

४८४५. **दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।**
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥२७ ॥

हे अध्वर्यो ! आप पृथ्वी और सूर्यलोक से ग्रहण किये गये तेज को , वनस्पतियों से प्राप्त बल को, जल



से प्राप्त पराक्रम वाले रस को सब तरफ से नियोजित करें । सूर्य किरणों से आलोकित वज्र के समान सुदृढ़ रथ को यजन कार्य में समर्पित करें ॥२७ ॥

४८४६. इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥२८ ॥

हे दिव्य रथ ! आप इन्द्रदेव के वज्र तथा मरुतों की सैन्य शक्ति के समान सुदृढ़ एवं मित्रदेव के गर्भरूप आत्मा तथा वरुणदेव की नाभि के समान हैं । हमारे द्वारा समर्पित हविष्यान्न को प्राप्त कर तृप्त हों ॥२८ ॥

४८४७. उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥२९ ॥

हे दुंदुभे !आप अपनी ध्वनि से भू तथा द्युलोक को गुंजायमान करें, जिससे जंगम तथा स्थावर जगत् के प्राणी आपको जानें ।आप इन्द्र तथा दूसरे देवगणों से प्रेम करने वाले हैं, अतः हमारे रिपुओं को हमसे दूर हटाएँ ॥२९

४८४८. आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥३० ॥

हे दुंदुभे ! आपकी आवाज को सुनकर शत्रु-सैनिक रोने लगें । आप हमें तेज प्रदान करके हमारे पापों को नष्ट करें । आप इन्द्रदेव की मुष्टि के समान सुदृढ़ होकर हमें मजबूत करें तथा हमारी सेना के समीप स्थित दुष्ट शत्रुओं का पूर्णरूपेण विनाश करें ॥३० ॥

४८४९. आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३१ ॥

हे इन्द्रदेव ! उद्‌घोष करके आप दुष्टों की सेनाओं को भली प्रकार दूर भगाएँ । हमारी सेना विजय उद्‌घोष करती हुई लौटे । हमारे द्रुतगामी अश्वों के साथ वीर रथारोही घूमते हैं , वे सब विजयश्री का वरण करें ॥३१ ॥

[सूक्त - ४८]

[**ऋषि** - शंयु बार्हस्पत्य । **देवता** - १ - १० अग्नि, ११ - १५, २० - २१ मरुद्‌गण अथवा (१३-१५ लिंगोक्त देवता, १६-१९ पूषा देवता) २२ पृश्नि, द्यावाभूमि अथवा मरुद्‌गण । **छन्द** - प्रगाथ - १, ३, ५, ९, १४, १९, २० बृहती; २, ४, १०, १२ , १७ सतोबृहती; ६, ८ महासतो बृहती, ७, २१ महाबृहती, ११ , १६ ककुप् , १३ , १८ पुरउष्णिक् , १५ अतिजगती, २२ अनुष्टुप् ।]

४८५०. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१ ॥

हम सर्वज्ञ, अमर, हितकारी, मित्रवत् अग्निदेव की प्रशंसा करते हैं । हे उद्‌गाताओ ! आप भी प्रत्येक स्तुति एवं यज्ञायोजन में उन बलशाली अग्निदेव की स्तुति करें ॥१ ॥

४८५१. ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद् वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२ ॥

ऊर्जा को सतत बनाये रखने वाले अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं । वे निश्चय ही हमारे लिए हितकारी हैं । उन हव्यवाहक को हम हव्य प्रदान करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, हमारे पुत्रों की रक्षा करें ॥२ ॥



४८५२. वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप तेजस्वी हैं, महान् हैं । आप हमारी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं । आप अतिदीप्तिमान् हैं, हमें भी श्रेष्ठ कान्ति से कान्तिमान् बनायें ॥३ ॥

४८५३. महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप महान् देवगणों का यजन करते हैं । आप हमारे यज्ञ में भी देवों के निमित्त यजन करें । आप हमारे द्वारा अर्पित आहुतियों को ग्रहण करें और हमें अन्न प्रदान करें । अपनी बुद्धि और कर्म से रक्षक देवताओं को हमारे अनुकूल करें ॥४ ॥

४८५४. यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५ ॥

हे अग्निदेव !अरणि, अभिषवण प्रस्तर एवं जल मिलाया हुआ सोमरस आपको पुष्ट करता है ।ऋत्विजों ने अरणि मन्थन से आपको उत्पन्न किया ।पृथ्वी के स्थल यज्ञ में आप प्रतिष्ठित होते हैं ।यज्ञ के गर्भरूप आप ही हैं॥ ५ ॥

४८५५. आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६ ॥

जो अग्निदेव, अपनी कान्ति से सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवी को एवं अन्तरिक्ष को धूम्र से परिपूर्ण कर देते हैं; वे तेजस्वी अग्निदेव, काली रात्रि के घोर अन्धकार को दूर करते हैं । वे कामनानुसार वर्षा करने वाले हैं ॥६ ॥

४८५६. बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥७ ॥

हे बड़ी ज्वालाओं से युक्त तरुण अग्ने ! सम्पन्नता एवं पवित्रता प्रदान करने वाले आप महान् हैं ।आप अपने प्रखर तेज से भरद्वाज (पूर्ण ज्ञानी ऋषि) के लिये अत्यन्त तेजस्वीरूप में प्रज्वलित हों और ऐश्वर्य प्रदान करें ॥७ ॥

४८५७. विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप सभी मानवी प्रजाओं के घर के स्वामीरूप हैं, हम आपको सौ वर्षों के लिए प्रदीप्त करेंगे । आप सैकड़ों उपायों द्वारा पापों एवं शत्रुओं से हमारी रक्षा करें तथा उस यजमान की भी रक्षा करें, जो आपके स्तोता को अन्न प्रदान करता है ॥८ ॥

४८५८. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥९ ॥

हे सबके आश्रयदाता अग्निदेव ! आपकी शक्ति अद्भुत है, अपार है । आप अपनी क्षमता से वैभव लाने में समर्थ हैं । आप समृद्धि को हमारे पास आने दें तथा हमारी सन्तानों को भी प्रतिष्ठा प्रदान करें ॥९ ॥

४८५९. पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१० ॥



हे अग्निदेव ! विरोधमुक्त, सहयोगयुक्त, पराभूत न होने वाले आप अपने संरक्षण-साधनों से हमारे पुत्र-पौत्रों का पालन करें । दैवी प्रकोपों से हमें बचायें, मानुषी-राक्षसी वृत्तियों से भी हमारी रक्षा करें ॥१० ॥

४८६०. आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः । सृजध्वमनपस्फुराम् ॥११ ॥

हे मित्रो !नवीन स्तुति द्वारा पोषक दुग्ध देने वाली गौ को ले आएँ ।बिना हानि पहुँचाए, उसे बन्धन-मुक्त करें ॥११ ॥

४८६१. या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥१२ ॥

जिस गौ ने बलयुक्त स्वप्रकाशित मरुद्गणों को अमर अन्नरूपी दुग्ध प्रदान किया; जो द्रुतगामी मरुतों को सुख प्रदान करती है, वह (दिव्य गौ) श्रेष्ठ कार्यों द्वारा ही प्राप्त होती है ॥१२ ॥

४८६२. भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता । धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥१३ ॥

हे मरुद्गणो ! भरद्वाजों को आपने दो वस्तुएँ प्रदान कीं, विश्वदोहस (सबके निमित्त दुही जाने वाली) गौ, तथा विश्वभोजस (सबको भोजन देने वाला) अन्न ॥१३ ॥

[उक्त तीन मंत्रों में गौ को लक्ष्य करके जो बातें कही गई हैं, वे किसी पशुरूप गौ पर नहीं, पृथ्वी के पर्यावरणरूपी विराट् गौ पर ही घटित होती हैं । विश्वदोहस एवं विश्वभोजस संज्ञाएँ उसी के लिए सटीक बैठती हैं ।]

४८६३. तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥१४ ॥

हे मरुद्गण ! आप वरुण के समान स्तुति-योग्य हैं । इन्द्रदेव के कार्यों में सहयोग करने वाले हैं । विष्णुदेव की तरह सुखदायी, उत्तम भोजन देने वाले हैं । धन के लिए हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१४ ॥

४८६४. त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता ।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत्सुवेदा नो वसू करत् ॥१५ ॥

तेजस्वी, बहुशः प्रशंसित, पोषण करने वाले, बलवान् मरुद्गण गुप्त धन प्रकट करके हमें सुखपूर्वक उपलब्ध कराएँ ॥१५ ॥

४८६५. आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे । अघा अर्यो अरातयः ॥१६ ॥

हे पूषन्देव ! हम आपका यशोगान करते हैं । हम गुप्तरूप से यह प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी रक्षा के लिए हमारे पास आयें, ताकि कंजूस, पापी शत्रु हमसे दूर रहें ॥१६ ॥

४८६६. मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥१७ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमारी निन्दा करने वालों को मारें । जैसे व्याध और शिकारी पक्षियों को पकड़ कर उनका हरण करते हैं, वैसे शत्रु हमारा हरण न कर सकें । हे देव ! आप "काकम्बीर" वनस्पति को नष्ट न होने दें ॥१७ ॥

४८६७. दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥१८ ॥

हे पूषन्देव ! आप से हमारी मित्रता छिद्ररहति दधि पात्र के समान निर्बाध एवं अविच्छिन्न बनी रहे ॥१८ ॥

४८६८. परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥१९ ॥



हे पूषादेव ! आप मानवों से श्रेष्ठ एवं अन्य देवों के समान धनवान् हैं । आप हमारी प्राचीनकाल की तरह ही रक्षा करें ॥१९ ॥

४८६९. वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥२० ॥

हे शत्रु को कम्पित करने वाले, पूजनीय मरुद्‌गणो ! आपकी तरह वाणी की सत्यता, हमें भी प्राप्त हो । यज्ञ करने वाले देव अथवा मनुष्यों की वाणी प्रशंसनीय एवं इच्छित धन देने वाली हो ॥२० ॥

४८७०. सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥ २१ ॥

मरुद्‌गण शत्रुओं को नष्ट करने की सामर्थ्य वाले हैं । वे पूजनीय हैं । वे अपने कर्म-कौशल से सूर्यदेव की तरह अन्तरिक्ष में एवं सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं ॥२१ ॥

४८७१. सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत । पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥२२ ॥

द्युलोक एक ही उत्पन्न हुआ, पृथ्वी भी एक ही उत्पन्न हुई है, गो-दुग्ध भी एक ही उत्पन्न हुआ है । अन्य कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं हुए ॥२२ ॥

[सूक्त - ४९]

[**ऋषि** - ऋजिश्वा भारद्वाज । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १५ शक्वरी ।]

४८७२. स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१ ॥

श्रेष्ठ कर्म करने वाले मित्रावरुणदेव की हम नये स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं । वे हमारा सुख बढ़ायें । श्रेष्ठ, पराक्रमी मित्रावरुणदेव और अग्निदेव यहाँ आकर हमारी रक्षा करें ॥१ ॥

४८७३. विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥२ ॥

ये तेजस्वी अग्निदेव सभी यज्ञों में प्रजाओं द्वारा स्तुति करने योग्य हैं । ये निरहंकारी कर्म करने वाले हैं । स्वर्ग और पृथ्वी में गमन करने वाले, बल के पुत्र अग्निदेव यज्ञ की ध्वजारूप हैं । ऐसे तेजस्वी अग्निदेव की हम यज्ञ करने के लिए स्तुति करते हैं ॥२ ॥

४८७४. अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३ ॥

एक दूसरे से विपरीत रूप वाली सूर्य की दो पुत्रियाँ, कृष्ण रात्रि और शुक्ल दिवसरूपा हैं । नक्षत्रों के साथ रात्रि एवं सूर्य के साथ दिवस रूपा रहती है । सतत गतिशील, पवित्र बनाने वाली ये दोनों हमारे स्तोत्रों को सुनें ॥३ ॥

४८७५. प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४ ॥

हे अध्वर्यो ! आप व्यापक बुद्धि से सम्पन्न यज्ञादि कार्यों में नियुक्त हों । महान् ऐश्वर्य - सम्पन्न, क्रान्तदर्शी, सबमें व्याप्त, रथों से सम्पन्न, तेजस्वी अग्नि को आप प्रज्वलित करें तथा उत्तम बुद्धि द्वारा वायुदेव की स्तुति करें ॥४ ॥



४८७६. **स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।**
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥५ ॥

दोनों अश्विनीकुमारों का रथ उत्तम दीप्ति वाला है, उसमें मन के इशारे से ही अश्व नियोजित होते हैं, (हे अश्विनीकुमारो !) आप, ऐसे रथ पर चढ़कर, पर्याप्त धन भरकर स्तोताओं और उनके पुत्रों की इच्छाओं की पूर्ति हेतु पधारें ॥५ ॥

४८७७. **पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।**
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥६ ॥

हे पर्जन्य और वायुदेव ! आप पृथ्वी के अन्न की वृद्धि के लिए अन्तरिक्ष से जल वृष्टि करें । हे मरुद्गणो ! हम सब आपकी स्तुति करते हैं । आपकी कृपा से समस्त प्रजा समृद्ध होती है ॥६ ॥

४८७८. **पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।**
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥७ ॥

जो सरस्वती देवी, सुन्दर, उत्तम अन्न देने वाली, वीरों का पालन करने वाली, पवित्र करने वाली हैं, वे हमारे यज्ञ अनुष्ठान को धारण करें । देवांगनाओं सहित प्रसन्न होकर वे स्तोताओं को छिद्ररहित निवास प्रदान करें तथा उनका कल्याण करें ॥७ ॥

४८७९. **पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।**
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥८ ॥

उत्तम स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जो पूषा देवता हमें सत्यमार्ग की प्रेरणा प्रदान करते हैं, वही हमें आह्लादप्रद और संतापनाशक साधनों को प्रदान करें ।वे हमारी बुद्धियों को सिद्धि प्रदान करें-सत्प्रयोजनों में लगायें॥८

४८८०. **प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।**
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥९ ॥

तेजस्वी अग्निदेव उन त्वष्टादेव का यजन करें, जो त्वष्टादेव देवताओं में प्रथम भजनीय, यशस्वी, सुन्दर हाथ एवं भुजाओं वाले, महान् और आवाहन करने योग्य हैं ॥९ ॥

४८८१. **भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।**
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥१० ॥

इन उत्तम स्तुतियों से दिन एवं रात्रि में भुवन के पिता रुद्रदेव का यशोगान करें । हम दर्शनीय, जरारहित, सुखदाता, प्रभु की सदैव स्तुति करते हैं ॥१० ॥

४८८२. **आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।**
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥११ ॥

हे युवा, ज्ञानी, यजनीय, मरुद्गणो ! आप स्तोताओं के पास आयें । आप अग्नि के सहयोग से अन्तरिक्ष में वृद्धि को प्राप्त होकर जल वृष्टि करते हैं । आप ओषधियों से रहित देशों को भी तृप्त करते हैं ॥११ ॥

४८८३. **प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।**
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२ ॥

पालक जिस प्रकार गौओं के झुण्ड को घर की ओर तीव्र गति से चलने को प्रेरित करता है, वैसे ही स्तोतागण मरुद्गण की ओर जाने के लिए अपने स्तोत्रों को प्रेरित करें। स्तोताओं की स्तुतियाँ मरुद्गणों के मन एवं शरीर को स्पर्श करती हैं और उनकी वैसे ही शोभा बढ़ाती हैं, जैसे नक्षत्रों से अन्तरिक्ष सुशोभित होता है ॥१२ ॥

४८८४. **यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय।**
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥१३ ॥

विष्णुदेव ने मनुदेव के दुःख को दूर करने के लिए तीन चरणों में पराक्रम किया। हे देव ! आपके द्वारा दिये गये घर, धन, शरीर और पुत्रों सहित हम आनन्द से रहें ॥१३ ॥

[विष्णु पोषणकर्ता हैं। उनका पराक्रम तीन चरणों में होता है। वे द्युलोक, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी तीनों में पोषणचक्र का संचालन करते हैं।]

४८८५. **तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात्।**
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४ ॥

हमारे अनेक प्रकार के स्तोत्रों द्वारा स्तुत अहिर्बुध्न्य (मेघ) , पर्वत और सवितादेव हमें अन्न तथा जल दें, भगदेव हमें धन दें तथा विश्वदेवा हमें अन्न प्रदान करें ॥१४ ॥

४८८६. **नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम्। क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश आदेवीरभ्य१ श्नवाम ॥१५ ॥**

हे विश्वदेवा ! आप हमें न टूटने वाला रथ एवं घर, मानवों को तृप्ति देने वाला अन्न, पुत्र तथा अनुचर प्रदान करें, ताकि हम शत्रुओं को आक्रमण करके जीत सकें। आप देवताओं के उपासकों को संरक्षण दें ॥१५ ॥

[सूक्त - ५०]

[**ऋषि** - ऋजिश्वा भारद्वाज । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४८८७. **हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम्।**
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन्देवान्त्सवितारं भगं च ॥१ ॥

हे देवगणो ! सुख की कामना से हम देवमाता अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, शत्रु संहारक एवं सेवनीय अर्यमा, सविता, भग तथा रक्षा करने वाले समस्त देवगणों के प्रति नमन करते हुए इन सबकी उपासना करते हैं ॥१ ॥

४८८८. **सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान्।**
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥२ ॥

हे सर्वप्रेरक सूर्यदेव ! श्रेष्ठ कान्ति वाले देवों को आप हमारे अनुकूल बनाएँ। जो द्विज सदाचारी, सत्यवादी, आत्मवान् तथा पूजनीय हैं, ऐसे अग्नि रूपी जिह्वा वाले देवों को हमारे अनुकूल करें ॥२ ॥

४८८९. **उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने।**
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥३ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप हमें व्यापक क्षेत्र वाला विशाल निवास दें। हम बलवान् एवं ऐश्वर्यवान् हों। हमें निष्पाप घर मिले ॥३ ॥



४८९०. आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥ ४ ॥

सबको निवास देने वाले, रुद्र के पुत्र, हे अहिंसक मरुद्‌गण ! हम आपका आवाहन करते हैं । आप छोटे या बड़े संग्राम में हमारा कल्याण करें ॥४ ॥

४८९१. मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५ ॥

तेजस्वी द्यावा-पृथिवी जिनके साथ हैं, उपासकों को समृद्ध करने वाले पूषन्‌देव जिनकी सेवा करते हैं, उन मरुद्‌गणों का हम आवाहन करते हैं । उनके आगमन पर उनके वेग से सभी प्राणी काँपने लगते हैं ॥५ ॥

४८९२. अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥६ ॥

हे स्तोतागण ! आप उन पराक्रमी प्रशंसनीय इन्द्रदेव की अभिनव स्तोत्रों द्वारा स्तुति करें । हमारी स्तुति सुनकर प्रसन्न हुए वे इन्द्रदेव हमें बल और अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

४८९३. ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥७ ॥

हे जल देवता ! आप समस्त स्थावर-जंगम को उत्पन्न करने वाले हैं । आप मनुष्यों के हितैषी हैं । आप हमारे पुत्र - पौत्रादि की रक्षा के निमित्त अन्न प्रदान करें । आप माताओं से भी श्रेष्ठ चिकित्सक हैं , अतएव आप हमारे समस्त विकारों को नष्ट करें ॥७ ॥

४८९४. आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥८ ॥

जो सवितादेव, रक्षक, स्वर्णिमरश्मियों वाले, उषा के समान प्रकाशमान , पूजनीय, धनवान् एवं मनुष्यों को अभीष्ट धन देते हैं, वे सवितादेव हमारे पास आएँ ॥८ ॥

४८९५. उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद्रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ॥९ ॥

हे बल पुत्र अग्निदेव ! आज आप हमारे इस यज्ञ में देवगणों को लाएँ । हम आपकी अनुकूलता को सदैव याद रखें और पुत्र-पौत्रादि सहित आपकी कृपा से सुरक्षित रहकर आनन्द से रहें ॥९ ॥

४८९६. उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥१० ॥

हे दोनों अश्विनीकुमारो ! आप बुद्धिमान् हैं । आप अपने श्रेष्ठ कर्मों सहित हमारे पास आएँ । जिस प्रकार आपने अत्रि ऋषि को अन्धकार से छुड़ाया था, वैसे ही हमें भी इस (जीवन) संग्राम में पापों से बचाएँ ॥१० ॥

४८९७. ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥११ ॥



हे देवगणो ! आप पुत्रादि से युक्त धन देने वाले हैं । आदित्य, वसु, मरुद्गण आदि देव हमारी इच्छाओं की पूर्ति करें एवं हमें सुखी बनाएँ ॥११ ॥

४८९८. ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥१२ ॥

रुद्र, सरस्वती, विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, दिव्य अन्न और विधाता हमें सुखी बनायें । पर्जन्य एवं वायुदेव हमें अन्न प्रदान करें ॥१२ ॥

४८९९. उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥१३ ॥

वे प्रसिद्ध सवितादेव, भगदेव एवं पर्याप्त धन दान करने वाले अग्निदेव हमारी रक्षा करें । सबसे प्रेम करने वाले त्वष्टा देव, द्युलोक और समुद्र सहित पृथ्वी आदि हमारी रक्षा करें ॥१३ ॥

४९००. उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥१४ ॥

अहिर्बुध्न्य, अज, एकपाद, पृथ्वी एवं समुद्र आदि देव हमारी प्रार्थना सुनें । यज्ञ को बढ़ाने वाले स्तोत्रों एवं ऋषियों द्वारा स्तुत देवता हमारी रक्षा करें ॥१४ ॥

४९०१. एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५ ॥

हे देवगणो ! आप शत्रुओं द्वारा अहिंसित हैं, आप सबको निवास देने वाले हैं । आप अपनी शक्तियों (देव-पत्नियों) सहित सर्वत्र पूजनीय हैं । हम भरद्वाज वंशीय ऋषि आप सब देवगणों की स्तुति करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - ५१]

[**ऋषि** - ऋजिश्वा भारद्वाज । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् , १३-१५ उष्णिक् , १६ अनुष्टुप् ।]

४९०२. उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१ ॥

महान् मित्रावरुण की प्रिय, निर्मल, दर्शनीय, अदम्य, तेजयुक्त ऋत की सेना (प्रकाश किरणें) प्रकट होकर दृष्टिगोचर हो रही हैं । प्रकाशित होकर यह तेज द्युलोक के अलंकार की तरह शोभा पाता है ॥१ ॥

४९०३. वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥२ ॥

ज्ञानवान् , तीनों भुवनों के ज्ञाता, दुर्जय देवों के जन्म के भी जानकार सूर्यदेव मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों को देखते हैं । वे स्वामी (मनुष्यों के) अर्थों (सार्थक प्रयोजनों) की पूर्ति करते हैं ॥२ ॥

४९०४. स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥३ ॥

अदिति, मित्र, वरुण, भग एवं अर्यमा आदि यज्ञ की रक्षा करने वाले देवों की हम स्तुति करते हैं । देवगणों के कर्म से यह सब पवित्र होता है ॥३ ॥



४९०५. रिशादसः सत्पतीँरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन्।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु ॥४ ॥

हे अदिति पुत्र देवगणो ! आप दयालु, चिरयुवा, महाराजा एवं महाबली हैं । आप दुष्टों का नाश करने वाले हैं ।आप ऐश्वर्यवान् एवं श्रेष्ठ निवास देने वाले हैं । (हे अदिति पुत्रो !) हम माता अदिति के आश्रय में जाते हैं ॥४ ॥

४९०६. द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥५ ॥

हे वसुगण ! द्यावा-पृथिवी एवं अग्निदेव सहित आप हमारा कल्याण करें । हे अदिति एवं समस्त आदित्यो ! आप सब परस्पर प्रीतिपूर्वक रहकर हमें और अधिक सुख प्रदान करें ॥५ ॥

४९०७. मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥६ ॥

हे पूजनीय देवताओ ! आप हमें वृक (भेड़िया या क्रूरकर्मी) तथा वृक्य (क्रूरता-कुटिलता) से बचाएँ । आप हमारे शरीर, बल एवं वाक् को श्रेष्ठता की ओर बढ़ने की प्रेरणा दें ॥६ ॥

४९०८. मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७ ॥

हे देवताओ ! दूसरों के द्वारा किए गये पाप-कर्मों का दुष्परिणाम हमें भोगना न पड़े । हम दण्डनीय पाप कर्म न करें । हे विश्व के स्वामी देव ! आपकी कृपा से शत्रु अपने शरीर को स्वयं ही नष्ट कर लें ॥७ ॥

४९०९. नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥८ ॥

नमन वास्तव में ही महान् है, इसलिए हम उसका सेवन करते (उसे व्यवहार में लाते) हैं । नमन ही द्युलोक एवं पृथ्वी का धारणकर्त्ता है । हम देवगणों को नमन करते हैं, नमन ही उन्हें प्रभावित करने वाला है । किये गये (कर्मों के भोगों) को नष्ट करने के लिए हम नमन करते हैं ॥८ ॥

[नमन-स्रष्टा के अनुशासन को स्वीकार करने का प्रतीक है । उसके अनुशासन को स्वीकार करके ही द्यावा-पृथिवी का अस्तित्व बना है । इसी क्रम से देवगण प्रभावित होते हैं । उनकी शक्तियाँ नमनशीलों-अनुशासन स्वीकार करने वालों को ही प्राप्त होती हैं । कुकर्मजनित पापों तथा श्रेष्ठ कर्मजनित अहंकार के नाश के लिए भी नमन उपयोगी है ।]

४९१०. ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान्।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥९ ॥

हे देवगण ! आप यज्ञ के नेतृत्व करने वाले, बलवान् यज्ञशाला में निवास करने वाले, अपराजित एवं महिमावान् हैं । हम नमस्कारों द्वारा आपको नमन करते हैं ॥९ ॥

४९११. ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥१० ॥

वे देवता हमारे पापों को दूर करने वाले तथा तेजस्वी हैं । सत्यवादी, सदाचारी एवं सत्यबल वाले (साधक), वरुण, मित्र एवं अग्नि आदि सभी देवों के आश्रय में रहते हैं ॥१०॥



४९१२. **ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन् पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।**
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११ ॥

बढ़ने वाले इन्द्रदेव, पूषा, भग, अदिति और पञ्चजन हमारे उत्तम घरों की रक्षा करें । वे अन्न प्रदान करने वाले, सुखदायक, आश्रय प्रदान करने वाले देव हमारी रक्षा करें ॥११ ॥

४९१३. **नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।**
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥१२ ॥

आहुति अर्पित करने वाले ऋषि एवं यजमान धन प्राप्ति की इच्छा से देवताओं की स्तुति करते हैं । वे देवता प्रसन्न होकर हम भारद्वाजों को भव्य निवास प्रदान करें ॥१२ ॥

४९१४. **अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् । दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥१३ ॥**

हे अग्निदेव ! आप उन दुष्ट शत्रुओं को दूर भगायें, जो चोर एवं पापी हैं । इनके स्वभाव को बदलें । इनसे हमारी रक्षा करें एवं हमारा सर्वतोभावेन मंगल करें ॥१३ ॥

४९१५. **ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।**
जही न्य१त्रिणं पणिं वृको हि षः ॥१४ ॥

हे सोम ! आप भेड़िये की तरह स्वभाव वाले दण्डनीय 'पणि' का संहार करें । आपकी मित्रता की इच्छा से हम इस ग्राव (सोमवल्ली कूटने के पत्थर अथवा दमन की सामर्थ्य) सहित प्रस्तुत हैं ॥१४ ॥

४९१६. **यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।**
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥१५ ॥

हें देवगणो ! आप उत्तम दानवीरों में श्रेष्ठ, तेजस्वी इन्द्रदेव सहित हमारे मार्ग को सुगम करें एवं हमारी रक्षा करें ॥१५ ॥

४९१७. **अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।**
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१६ ॥

जिस मार्ग पर गमन करने से शत्रु दूर रहते हैं एवं पर्याप्त धन लाभ होता है, हम उसी निष्पाप-सुखद मार्ग से गमन करें ॥१६ ॥

[सूक्त - ५२]

[**ऋषि** - ऋजिश्वा भारद्वाज । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ; ७-१२ गायत्री; १४ जगती ।]

४९१८. **न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।**
उब्जन्तु तं सुभ्व१: पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१ ॥

(ऋषि कहते हैं) हमारी सुनिश्चित मान्यता है कि वह अतियाज (यज्ञीय मर्यादाओं के अनुशासन का अतिक्रमण करने वाला यजनपरक कर्मकाण्ड) न तो द्युलोक के अनुकूल है और न पृथ्वी के । न (कर्मकाण्ड परक) यज्ञीय परिपाटी के अनुरूप है और न शान्तिपूर्ण कर्मानुष्ठानों के अनुकूल है । अस्तु , महान् पर्वत उसे प्रताड़ित करें और उसके ऋत्विग्गण हीनता को प्राप्त हों ॥१ ॥



४९१९. अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२ ॥

हे मरुद्‌गणो ! जो हमारे मन्त्रपाठ का अतिक्रमण अथवा अनादर करे, उसको अग्नि की ज्वालाएँ जलाने वाली हों । स्वर्ग लोक भी उस ज्ञान से द्वेष करने वाले को संतप्त करे ॥२ ॥

४९२०. किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आपको मन्त्र की रक्षा करने वाला क्यों कहते हैं ? हे प्रिय सोमदेव ! आपको निन्दा से बचाने वाला क्यों कहा जाता है ? आप निन्दा करने वाले को देखते हैं । ज्ञान से द्वेष करने वाले को आप अपने आयुध द्वारा व्यथित करें ॥३ ॥

४९२१. अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥४ ॥

जल से भरी नदियाँ, उषाएँ, दृढ़ पर्वत, पितर, यज्ञ में आहूत-उपस्थित देवशक्तियाँ हमारी रक्षा करें ॥४ ॥

४९२२. विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५ ॥

हम सदैव उत्तम विचार करें । हम सदैव सूर्यदेव का दर्शन करें । देवताओं के निमित्त आहुति को वहन करने वाले एवं धनों के अधिपति अग्निदेव हमें सुरक्षा प्रदान करें ॥५ ॥

४९२३. इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६ ॥

इन्द्रदेव अपने रक्षण साधनों सहित हमारी रक्षा करें । जल से उमड़ती सरस्वती हमारी रक्षा करें । पर्जन्य से उत्पन्न ओषधियों एवं पिता के समान अग्निदेव को हम रक्षा के लिए आवाहित करते हैं ॥६ ॥

४९२४. विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥७ ॥

हे विश्वेदेव ! आप हमारी प्रार्थना सुनकर आएँ और बिछाये हुए कुशाओं पर विराजमान हों ॥७ ॥

४९२५. यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥८ ॥

हे देवगणो ! जो याजक घृत सहित आपके निमित्त आहुतियाँ अर्पित करते हैं । आप उनका कल्याण करने के निमित्त उनके पास आएँ ॥८ ॥

४९२६. उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः ॥९ ॥

जो अमरपुत्र देव हैं, वे हमारी इस प्रार्थना को सुनकर हमारे पास आएँ एवं हमें सुख प्रदान करें ॥९ ॥

४९२७. विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥१० ॥

आप समस्त देवगण सत्य (यज्ञीय) मार्ग को बढ़ाते हैं । आप ऋतुओं के अनुसार हवन करने के लिए सर्वविदित हैं । आप योग्य दुग्ध को स्वीकार करें ॥१० ॥

४९२८. स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान् मित्रो अर्यमा । इमा हव्या जुषन्त नः ॥११ ॥

मरुद्गण के साथ इन्द्रदेव त्वष्टादेव, मित्र, अर्यमा आदि सब देव हमारी आहुतियों को एवं स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥११ ॥

४९२९. इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज । चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥१२ ॥

हे होता अग्निदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में प्रमुख देवताओं के लिए उनके अनुरूप यजन करें ॥१२ ॥

४९३०. विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३ ॥

हे विश्वेदेवगणो ! आप अन्तरिक्ष में अथवा द्युलोक में (जहाँ भी) हैं, हमारी प्रार्थना सुनकर आएँ और इन कुशाओं पर बैठकर सोम का पान करके आनन्दित हों ॥१३ ॥

४९३१. विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं अग्नि सहित समस्त देवशक्तियाँ हमारे द्वारा प्रस्तुत, श्रेष्ठ स्तोत्रों का श्रवण करें । हम कभी भी देवों को अप्रिय लगने वाले वचन न बोलें एवं देवों द्वारा प्रदत्त अनुदानों से ही प्रमुदित हों ॥१४ ॥

४९३२. ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥१५ ॥

द्युलोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्ष में अपने महान् कर्मकौशल से युक्त देव प्रकट हों और हमारे पुत्रादि को अन्न एवं पूर्ण आयुष्य प्रदान करें ॥१५ ॥

४९३३. अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद् गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥ १६ ॥

हे अग्निदेव और पर्जन्य ! आप हमारी बुद्धि की सुरक्षा करें । हे आवाहन करने योग्य ! आप स्तुति सहित हमारा आवाहन सुनें । आप में से एक अन्नदाता और दूसरे सन्तानदाता हैं । आप प्रसन्न होकर हमें अन्न सहित सन्तान प्रदान करें ॥१६ ॥

४९३४. स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥१७ ॥

हे देवताओ ! हम कुश के आसन बिछाते हैं और अग्नि प्रदीप्त करते हैं । जब हम मनोयोगपूर्वक मंत्र पाठ करें , तब आप सब देव हमारी आहुतियों एवं नमस्कारों से तृप्त हों ॥१७ ॥

[सूक्त - ५३]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता -पूषा । छन्द - गायत्री; ८ - अनुष्टुप् ।]

४९३५. वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमें मार्ग में सुरक्षित करें । जैसे अन्न के लिए रथ नियोजित करते हैं, वैसे ही हम बुद्धि-पूर्वक कर्म करने के लिए आपके सम्मुख उपस्थित होते हैं ॥१ ॥

४९३६. अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥२ ॥



हे पूषन्देव ! आप हमें मनुष्यों के हितैषी, पर्याप्त धन दान करने वाले दानवीर और प्रशंसनीय गृहस्थ के समीप ले चलें ॥२ ॥

४९३७. अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय। पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥३ ॥

हे प्रकाशमान पूषन्देव ! आप कंजूस को दान देने की प्रेरणा दें। (कृपण) व्यापारी के कठोर हृदय को कोमल बनाएँ ॥३ ॥

४९३८. वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि। साधन्तामुग्र नो धियः ॥४ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमारे घातक शत्रुओं का नाश करें। हमें धन प्राप्त करने का मार्ग बताएँ ॥४ ॥

४९३९. परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५ ॥

हे पूषन्देव ! आप ज्ञानी हैं। आप (ज्ञानरूपी) शस्त्र से इन प्राणियों के कठोर हृदयों को चीर कर (परिवर्तित कर) हमारे अनुकूल कर दें ॥५ ॥

४९४०. वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥६ ॥

हे पूषन्देव ! आप आरे से प्राणियों के हृदय को चीरकर (परिवर्तित कर) उनके हृदय में प्रिय भाव भरें और हमारे वशीभूत कर दें ॥६ ॥

४९४१. आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥७ ॥

हे पूषन्देव ! आप प्राणियों के हृदयों की कठोरता को खाली करें और उन्हें हमारे अधीन करें ॥७ ॥

४९४२. यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे। तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८ ॥

हे पूषन्देव ! आप ज्ञान से प्रेरित आरे से कृपणों के हृदयों को अच्छी तरह खाली कर समभाव से भरें ॥८ ॥

४९४३. या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी। तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥९ ॥

हे तेजस्वी वीर पूषन्देव ! आप अपने जिस अस्त्र से पशुओं को प्रेरित कर सही मार्ग में चलाते हैं; उसी से हम भी अपने कल्याण की कामना करते हैं ॥९ ॥

४९४४. उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत। नृवत् कृणुहि वीतये ॥१० ॥

हे पूषन् देव ! आप हमारे यज्ञादि कार्य की सफलता के लिए गौ, अश्व, सेवक एवं अन्न प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - ५४]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य। **देवता** -पूषा। **छन्द** - गायत्री।]

४९४५. सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति। य एवेदमिति ब्रवत् ॥१ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमें ऐसे श्रेष्ठ मार्गदर्शक के पास पहुँचाएँ, जो हमें उत्तम मार्ग एवं धन प्राप्त करने का मार्ग बताएँ ॥१ ॥

४९४६. समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति। इम एवेति च ब्रवत् ॥२ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमें ऐसे पुरुष से मिलाएँ, जो घर को अनुशासित रखने का मार्गदर्शन दे ॥२ ॥

४९४७. पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते। नो अस्य व्यथते पविः ॥३ ॥

पूषन्देव का चक्र कभी भी दूषित नहीं होता है। इसकी धार सदैव तीक्ष्ण रहती है ॥३ ॥

४९४८. यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥४ ॥

जो याजक ऐसे पूषन्देव के लिए आहुति प्रदान करता है । उसे कोई कष्ट नहीं होता है एवं उसे पूषादेव कृपा करके प्रथम (श्रेष्ठ) धन प्रदान करते हैं ॥४ ॥

४९४९. पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥५ ॥

पूषन्देव हमारी गौओं की, घोड़ों की रक्षा करें एवं हमें अन्न एवं धन प्रदान करें ॥५ ॥

४९५०. पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥६ ॥

हे पूषन्देव ! यज्ञ कर्म करने वालों को तथा हम स्तोताओं को अनुकूल गौएँ प्राप्त हों ॥६ ॥

४९५१. माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे । अथारिष्टाभिरा गहि ॥७ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमारी गौओं को नष्ट न करें, कुएँ में गिरकर या अन्य प्रकार से नष्ट न होने दें । आपसे सुरक्षित गौएँ सायंकाल हमारे पास लौट आएँ ॥७ ॥

४९५२. शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥८ ॥

जिनका धन अविनाशी है, ऐसे पूषन्देव से हम धन की याचना करते हैं । वे प्रार्थना सुनकर हमारी दरिद्रता को दूर कर दें ॥८ ॥

४९५३. पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥९ ॥

हे पूषन्देव ! आपका यजन करते हुए, आपकी स्तुति करने वाले हम सब कभी नष्ट न हों, प्रत्युत पहले की तरह ही सुरक्षित रहें ॥९ ॥

४९५४. परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥१० ॥

हे पूषन्देव ! आप हमारे गो-धन को कुमार्गगामी होकर नष्ट होने से बचाएँ और अपहृत हुए गो-धन को पुनः प्राप्त कराएँ ॥१० ॥

[सूक्त - ५५]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** -पूषा । **छन्द** - गायत्री ।]

४९५५. एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव ॥१ ॥

हे पूषन्देव ! आपकी स्तुति करने वाले स्तोता और आपका यजन करने वाले हम, दोनों मिलकर रहेंगे । आप हमारे पास आएँ और यज्ञ कर्म का नेतृत्व करें ॥१ ॥

४९५६. रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥२ ॥

मस्तक पर केश हैं जिनके, ऐसे महारथी योद्धा, धन के स्वामी, जो हमारे सखा हैं, उन पूषन्देव से हम धन की याचना करते हैं ॥२ ॥

४९५७. रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ॥३ ॥

हे अजरूपी अश्व वाले देव ! आप धन के प्रवाह एवं ऐश्वर्य की राशि हैं । आप स्तुति करने वाले स्तोताओं के मित्र हैं ॥३ ॥

४९५८. पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥४ ॥



अश्व एवं छाग (बकरी) जिनके वाहन हैं, उन पूषादेव की हम स्तुति करते हैं । वे पूषादेव उषा के स्वामी कहलाते हैं ॥४ ॥

४९५९. मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥५ ॥

वे पूषादेव, जो उषा के पति सूर्यदेव एवं इन्द्रदेव के भाई और हमारे सखा हैं, उन रात्रि माता के सहचर की हम स्तुति करते हैं ॥५ ॥

४९६०. आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् । देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥६ ॥

लोगों को वैभवशाली बनाने वाले पूषादेव को, रथ में जुते छाग, रथ को खींचकर यहाँ (यज्ञशाला में) लाएँ ॥६ ॥

[सूक्त - ५६]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** -पूषा । **छन्द** - गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।]

४९६१. य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे ॥१ ॥

जो करम्भ (दही, घृतयुक्त अन्न विशेष अथवा करों-किरणों से जल) का सेवन करने वाले पूषादेव की स्तुति करता है, उसे अन्य देवताओं की स्तुति करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है ॥१ ॥

४९६२. उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२ ॥

वास्तव में जो श्रेष्ठ रथी हैं, उन पूषादेव की मित्रवत् सहायता से सज्जनों के रक्षक इन्द्रदेव शत्रुओं का संहार करते हैं ॥२ ॥

४९६३. उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद्रथीतमः ॥३ ॥

वे श्रेष्ठ रथी पूषादेव सूर्यदेव के हिरण्यमय रथ चक्र को उत्तम रीति से घुमाते हैं ॥३ ॥

४९६४. यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥४ ॥

हे पूषादेव ! आप बहुतों द्वारा प्रशंसित, दर्शनीय और माननीय हैं । हम जिस धन की इच्छा से आपकी स्तुति करते हैं, वह आप हमें दिलाएँ ॥४ ॥

४९६५. इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः ॥५ ॥

हे पूषन्देव ! आप समीप से और दूर से भी प्रसिद्ध हैं, अर्थात् आप सर्वव्यापक हैं । आप गौओं के खोजने वालों को धन प्रदान करें ॥५ ॥

४९६६. आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपावसुम् । अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥६॥

हे पूषन्देव ! हम आपकी स्तुति करते हैं, जिससे हमारा आज और कल (सर्वदा) कल्याणकारी हो । आप हमें धन प्रदान करें और पाप से बचाएँ ॥६ ॥

[सूक्त - ५७]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - इन्द्र पूषा । **छन्द** -त्रिष्टुप्, २ जगती ।]

४९६७. इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥१ ॥

हम अन्न प्राप्ति की कामना से, अपने कल्याण के लिए मित्रस्वरूप इन्द्र और पूषा देवताओं को स्तुतियों के द्वारा बुलाते हैं ॥१ ॥

४९६८. सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम् । करम्भमन्य इच्छति ॥२ ॥

आसन पर बैठे देवों में इन्द्रदेव अभिषुत सोमरस को पीने की इच्छा करते हैं एवं पूषादेव करम्भ (सत्तू युक्त खाद्य पदार्थ) की इच्छा करते हैं ॥२ ॥

४९६९. अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता । ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥३ ॥

इन्द्रदेव के रथ में घोड़े एवं पूषादेव के रथ में छाग (बकरी) युक्त (जुते) हैं । ये दोनों मिलकर वृत्रों (शत्रुओं) का नाश करते हैं ॥३ ॥

४९७०. यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत्सचा ॥४ ॥

जब महाबली इन्द्रदेव घनघोर जलवृष्टि के रूप में जल को प्रवाहित करते हैं, तब पोषण करने में समर्थ (पूषा) भी उनके सहयोगी होते हैं ॥४ ॥

[**वर्षा के जल में पोषक तत्त्व संयुक्त हो जाते हैं ।**]

४९७१. तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे ॥५ ॥

हम सुदृढ़ वृक्ष की शाखा की तरह इन्द्रदेव और पूषन्देव के आश्रय में सुरक्षित रह सकते हैं ॥५ ॥

४९७२. उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥६ ॥

जैसे लगाम को सारथी पकड़कर (रथ को बिना क्षति के) ले चलता है, वैसे अपने महान् कल्याण के लिए हम पूषन्देव और इन्द्रदेव को पकड़कर (जीवन पथ पर) आगे बढ़ते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ५८]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - पूषा । **छन्द** -त्रिष्टुप् , २ जगती ।]

४९७३. शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥१ ॥

हे पूषादेव ! आपका एक शुभ्ररूप , दिन है तथा अन्यरूप रात्रि है । यह दोनों आपकी महिमा से ही भासित होते हैं । हे पोषणकर्त्ता पूषन्देवता ! द्युलोक के समान आभामय आप सम्पूर्ण जीव-जगत् की रक्षा करने वाले हैं । आपका कल्याणकारी अनुदान हमें प्राप्त हो ॥१ ॥

४९७४. अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् सञ्चक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२ ॥

जो छाग वाहन वाले पूषन्देव पशुओं के पोषक हैं एवं अन्नदाता, बुद्धि को प्रखर बनाने वाले, ज्ञानी, समस्त भुवनों में स्थित हैं; वे पूषादेव सूर्यरूप से समस्त प्राणियों को प्राण-प्रकाश देते हुए अन्तरिक्ष में गमन करते हैं ॥२ ॥

४९७५. यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥३ ॥

हे पूषन्देव ! अन्तरिक्षरूपी समुद्र में (सूर्य रश्मिरूपी) आपकी सुनहरी नौकाएँ चल रहीं हैं । आप स्वेच्छा से यशस्वी कर्म करते हैं । आप सूर्यदेव के दूत हैं । हम आपकी प्रसन्नता के लिए स्तुति करते हैं ॥३ ॥

४९७६. पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥४ ॥



द्युलोक से पृथ्वीलोक तक के समस्त प्राणियों के उत्तम बन्धुरूप पूषादेव अन्न-धन के स्वामी हैं। वे पूषादेव, ऐश्वर्यवान् हैं। वे ही उषा को प्रकट करने वाले हैं। वे समस्त विश्व को प्रकाशित करते हुए गमन करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - ५९]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य। **देवता** - इन्द्राग्नी । **छन्द** - बृहती, ७-१० अनुष्टुप् ।]

४९७७. प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥१ ॥

हे इन्द्राग्निदेव ! आप अमर हैं। आप रक्षक हैं; आपने देवों से द्वेष करने वाले असुरों को अपने पराक्रम से नष्ट किया है। सोम तैयार करके हम आपके पराक्रम का गान करते हैं ॥१ ॥

४९७८. बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥२ ॥

हे इन्द्राग्निदेव ! आपकी महिमा वास्तव में सत्य है। आप दोनों के एक ही पिता हैं, आप दोनों जुड़वा भाई हैं और यही आपकी एक माता (अदिति) हैं ॥२ ॥

४९७९. ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रान्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥३ ॥

हे इन्द्राग्ने ! घोड़ा जिस प्रकार घास मिलने पर हर्षित होता है, उसी प्रकार तैयार सोमरस से युक्त होकर आप आनन्दित होते हैं। इस यज्ञ में हम अपनी रक्षा के निमित्त आपका आवाहन करते हैं ॥३ ॥

४९८०. य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥४ ॥

हे ऋत वृध (सत्य के उन्नायक) इन्द्राग्ने ! सोम तैयार होने पर जो लोग कुत्सित भावों या स्नेहरहित स्तोत्रों का प्रयोग करते हैं, आप उनका सोम नहीं पीते हैं ॥४ ॥

४९८१. इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥५ ॥

हे इन्द्राग्निदेव ! जब आप एक ही रथ पर आरूढ़ हो, घोड़ों को जोतकर, विभिन्न दिशाओं को जाते हैं, तब कौन ऐसा मानव है, जो आपके इस कार्य के रहस्य को पूर्णतया समझ सके ? ॥५ ॥

४९८२. इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! बिना पैर की उषा, पैर वाली प्रजा से पूर्व ही आती है और शिर न होते हुए भी जीभ से (जाग्रत् जीवों की वाणी से) प्रेरणा देती हुई, एक दिन में तीस कदम (मुहूर्त) चलती है ॥६ ॥

[कदम = मुहूर्त = ४८ मिनट; २४ घण्टे = ३० मुहूर्त]

४९८३. इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥७ ॥



हे इन्द्राग्ने ! वीर पुरुष अपने हाथ धनुष पर रखते हैं अर्थात् युद्ध के लिए सदा ही तत्पर रहते हैं । ऐसे वीर गौओं को खोजने में हमारा सहयोग करें ॥७ ॥

४९८४. इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः । अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥८ ॥

हे इन्द्राग्ने ! जो शत्रु हमें दुःख दे रहे हैं; उन्हें आप हमसे दूर रखें । उन दुष्टों को सूर्य के प्रकाश से वंचित करके दण्डित करें ॥८ ॥

४९८५. इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! जो भी धन स्वर्ग और पृथ्वी पर है, वह सब आपके अधीन है । जिस धन से सबका पोषण हो, ऐसा धन आप हमें प्रदान करें ॥९ ॥

४९८६. इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! आप सामगान एवं स्तोत्रों को सुनकर प्रसन्न होने वाले हैं । आप हमारी स्तुतियों को सुनकर इस सोमरस का पान करने के लिए आएँ ॥१० ॥

[सूक्त - ६०]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - इन्द्राग्नी । **छन्द** -गायत्री, १-३, १३ त्रिष्टुप्; १४बृहती,१५ अनुष्टुप् ।]

४९८७. श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥१ ॥

सूर्योदय के समय जो साधक इन्द्र और अग्निदेवों की उपासना करते हैं, वे इन दोनों सामर्थ्यवान् देवों की कृपा से शत्रु का नाश करके अन्न और धन प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

४९८८. ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥२ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप गौओं, जल प्रवाह, प्रकाश एवं उषा को उठाकर दूर ले जाने वालों से संग्राम करके उन्हें नष्ट करें । आप अपने भक्तों को, श्रेष्ठ प्रकाश, गौएँ एवं उत्तम प्रकार का जल प्रदान करें ॥२ ॥

४९८९. आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥३ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्र और अग्निदेवो ! शत्रु को नष्ट करने वाले सामर्थ्य के साथ अन्न लेकर आप हमारे निकट आएँ । आप दोनों अनिन्द्य एवं श्रेष्ठ धन सहित हमारे पास पधारें ॥३ ॥

४९९०. ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥४ ॥

इन्द्रदेव और अग्निदेव का विश्व निर्माण में पहले से सहयोग रहा है । इस कारण उनकी प्रशंसा करते हुए हम उनका आवाहन करते हैं । वे इन्द्र और अग्निदेव स्तोता और याजकों की रक्षा करते हैं ॥४ ॥

४९९१. उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥५ ॥



उग्र शत्रु को संग्राम में विदीर्ण करने वाले, जो इन्द्र और अग्निदेव हैं, उनका हम आवाहन करते हैं । वे दोनों देव हमें सफल और सुखी बनाएँ ॥५ ॥

४९९२. **हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ॥६ ॥**

जो इन्द्रदेव और अग्निदेव दुष्ट असुरों की दुष्टता का संहार करते हैं एवं सज्जनों की रक्षा करते हैं, उन्हीं देवों ने सब शत्रुओं का विनाश किया है ॥६ ॥

४९९३. **इन्द्राग्नी युवामिमे३भि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥७ ॥**

हे सुखप्रदाता इन्द्रदेव और अग्निदेव ! ये स्तोतागण आप दोनों की वन्दना करते हैं । आप दोनों सोमरस का पान करें ॥७ ॥

४९९४. **या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥८ ॥**

जगत् के नायक हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! याजकों द्वारा प्रशंसा किये जाते हुए, आप दोनों उनसे प्रदत्त हविष्यान्न के लिए यज्ञशाला में अपने द्रुतगामी वाहन (अश्व) की सहायता से पधारें तथा दानदाताओं की सहायता करें ॥८ ॥

४९९५. **ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥९ ॥**

हे सृष्टि के नायक इन्द्रदेव और अग्निदेव ! विधिपूर्वक पवित्रता को प्राप्त, इस सोमरस के पास, इसका पान करने के लिए अपने वाहनों के साथ पधारें ॥९ ॥

४९९६. **तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१० ॥**

जिन अग्निदेव की प्रचण्ड ज्वालाएँ सब वनों को अपनी चपेट में लेकर ज्वालारूप जिह्वा से काला कर देती हैं; उन शक्तिशाली अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१० ॥

४९९७. **य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११ ॥**

जो मनुष्य प्रज्वलित अग्नि में इन्द्रदेव के लिए आनन्दप्रद आहुति अर्पित करते हैं, उनकी तेजस्विता एवं अन्न वृद्धि के लिए इन्द्रदेव जल - वर्षा करते हैं ॥११ ॥

४९९८. **ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥१२ ॥**

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप दोनों (यजमान की) उन्नति के लिए शक्तिवर्धक अन्न और शीघ्र गतिशील अश्व प्रदान करें ॥१२ ॥

४९९९. **उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।**
उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३ ॥

हे इन्द्राग्ने ! हम, आप दोनों का (यज्ञ में) आवाहन करते हैं । आपको (हविष्यान्नरूपी) धन प्रदान करके प्रसन्न करते हैं । अन्न एवं धन प्राप्ति के लिए हम आप दोनों को यज्ञ में आवाहित करते हैं ॥१३ ॥

५०००. **आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै३ रुप गच्छतम् ।**
सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥१४ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! हम मित्रता के लिए आपका आवाहन करते हैं । आप दोनों मित्ररूप में हमारे पास गौएँ, घोड़े और धन सहित आएँ ॥१४ ॥

५००१. **इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः । वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥१५ ॥**

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप सोमरस तैयार करने वाले एवं यज्ञकर्त्ता की स्तुति सुनकर हवि की इच्छा से आएँ और सोमरस का पान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ६१]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - सरस्वती । **छन्द** -गायत्री; १-३, १३ जगती, १४ त्रिष्टुप् ।]

५००२. **इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।**
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१ ॥

सरस्वती देवी ने आहुति देने वाले 'वध्र्यश्व' को, धैर्यवान्, ऋणमुक्त होने वाला पुत्र 'दिवोदास' प्रदान किया, जिसने 'पणि' नामक कष्ट देने वाले कंजूस का नाश किया । हे सरस्वती देवि ! आपके दान महान् हैं ॥१ ॥

५००३. **इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।**
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥२ ॥

जो सरस्वती देवी अपने बलवान् वेग से कमलनाल की तरह पर्वत के तटों को तोड़ देती हैं, हम उन सरस्वती देवी की भक्ति और सेवा करते हैं, वे हमारी रक्षा करें ॥२ ॥

५००४. **सरस्वति देवनिदो निबर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।**
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३ ॥

हे सरस्वती देवि ! आपने देवताओं की निन्दा करने वाले को नष्ट किया । आप उसी तरह कपटी-दुष्टों का नाश करें । मानवों के लाभ के लिए आपने संरक्षित भू-भाग प्रदान किए हैं । हे वाजिनीवति ! आपने ही मनुष्यों के लिए जल प्रवाहित किया है ॥३ ॥

५००५. **प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ॥४ ॥**

सरस्वती देवी अनेक प्रकार के अन्न देने से अन्नवाली कहलाती हैं । वे रक्षा करती हैं । वे देवि हमें उत्तम प्रकार से तृप्त करें ॥४ ॥

५००६. **यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥५ ॥**

जिस प्रकार इन्द्रदेव को युद्ध में शत्रुओं से रक्षा करने के निमित्त बुलाते हैं, उसी प्रकार युद्ध के प्रारम्भ के समय जो आपका आवाहन करता है, आप उसकी रक्षा करती हैं ॥५ ॥

५००७. **त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥६ ॥**

हे सरस्वती देवि ! आप बल से युक्त हैं । आप संग्राम के समय हमारी रक्षा करें एवं पूषन्देव की तरह हमें धन प्रदान करें ॥६ ॥

५००८. **उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनि: । वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥७ ॥**

स्वर्णिम रथ पर आरूढ़, प्रचण्ड वीरता धारण करने वाली देवी सरस्वती शत्रुओं का नाश करती हैं और स्तोताओं की रक्षा करती हैं ॥७ ॥

५००९. **यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णव: । अमश्चरति रोरुवत् ॥८ ॥**

उन (सरस्वती) का निरन्तर प्रवाहित जल, वेग से गमन करता हुआ, गर्जन (शब्द) करता है ॥८ ॥

५०१०. **सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ॥९ ॥**



जिस प्रकार सूर्यदेव प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही देवी सरस्वती शत्रुओं को परास्त करती हुई बहिनों सहित आती हैं ॥९ ॥

५०११. उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१० ॥

प्रियजनों में अतिप्रिय, सप्त बहिनों (सात छन्दों अथवा सहायक धाराओं) से युक्त देवी सरस्वती हमारे लिए स्तुत्य हैं ॥१० ॥

५०१२. आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥११ ॥

जिन देवी सरस्वती ने स्वर्ग और पृथ्वी को अपने तेज से भर दिया है, वे हमें निन्दा करने वालों से बचाएँ ॥११ ॥

५०१३. त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥१२ ॥

जो देवी सरस्वती तीन स्थानों (प्रदेशों) में रहने वाली (बहने वाली), सप्त धारक शक्तियों से युक्त, पाँचों वर्ण के मनुष्यों को बढ़ाने वाली हैं, वे संग्राम के समय आवाहन करने योग्य हैं ॥१२ ॥

५०१४. प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥१३ ॥

जो देवी सरस्वती अपने महत्त्व और तेज के प्रभाव के कारण अन्य नदियों में श्रेष्ठ हैं । अन्य नदियों के प्रवाहों की अपेक्षा इनका प्रवाह अधिक तीव्र गति वाले रथ के वेग के समान है; वे गुणवती देवी सरस्वती विद्वान् स्तोताओं द्वारा स्तुत्य हैं ॥१३ ॥

५०१५. सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४ ॥

हे सरस्वती देवि ! आप हमें उत्तम धन प्रदान करें । हमें आपके प्रवाह कष्ट न दें । आप हमारे बन्धुत्व को स्वीकार करें । हम निकृष्ट स्थान को न जाएँ ॥१४ ॥

[सूक्त - ६२]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** -अश्विनीकुमार । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

५०१६. स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥१ ॥

हम उन दोनों अश्विनीकुमारों की उत्तम स्तोत्रों से स्तुति करते हैं, जो अश्विनीकुमार इस दृश्य जगत् को प्रकाशित करते हैं । वे बलवान् शत्रुओं का नाश करते हैं ॥१ ॥

५०१७. ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥२ ॥

जब दोनों अश्विनीकुमार अपने तेज को बढ़ाते हुए यज्ञशाला में आते हैं, उस समय उनके तेज से रथ भी प्रदीप्त हो उठता है । वे मरुभूमि को छोड़कर अपने अश्वों को जल के निकट ले जाते हैं ॥२ ॥

५०१८. ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धिय ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप मन जैसे तीव्रगामी, इशारे पर चलने वाले अश्वों के द्वारा अपने स्तोताओं को स्वर्ग तक पहुँचाते हैं । आहुति देने वाले याजक को कष्ट पहुँचाने वाले को चिर निद्रा (मृत्यु) में सुला देते हैं ॥३ ॥

५०१९. ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग् युवाना ॥४ ॥

अद्रोही होकर प्राचीन होता अग्निदेव तथा दोनों अश्विनीकुमारों के लिए हवि अर्पित करते हैं । वे दोनों अश्विनीकुमार स्तोताओं के नवीन, मनन करने योग्य स्तोत्रों को सुनकर पुष्टिकारक एवं बलवर्धक उत्तम अन्न को, अश्वों के द्वारा लेकर स्तोताओं के समीप पहुँचें ॥४ ॥

५०२०. ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥५ ॥

विस्तृत स्तुति करने वाले स्तोताओं को जो धन एवं सुख देते हैं, ऐसे सुन्दर, शत्रुनाशक, सामर्थ्यवान् पुरातन अश्विनीकुमारों की हम नवीन स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥५ ॥

५०२१. ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥६ ॥

रक्षा करने वाले वे (दोनों अश्विनीकुमार) तुग्र (इस नाम के राजा अथवा लेन-देन करने वाले) के पुत्र भुज्यु (नामक व्यक्ति अथवा भोज्य-उपयोगी) को पक्षी के समान वेगवान् रथ (यान) द्वारा जल की गोद से उठाकर धूल रहित मार्ग से समुद्र (सागर अथवा आकाश) के पार लाने में समर्थ हुए ॥६ ॥

[सामान्य रूप से यह ऋचा तुग्र के पुत्र भुज्यु के उद्धार पर घटित होती है । तत्वदृष्टि से (तुग्र) लेने-देन वाले समुद्र के पुत्र (भुज्यु) . उपयोगी जल को उठाकर उसे उपयोग के स्थान तक पहुँचाने की प्रक्रिया का भी संकेत इससे मिलता है । तुग्र (लेन-देन वाले) आकाश से उपयोगी (भुज्यु) पोषक कणों को प्राणियों तक पहुँचाने का भाव भी इससे प्रकट होता है ।]

५०२२. वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥७ ॥

बलवान् दोनों अश्विनीकुमार विजय रथ पर आरूढ़ होकर, पर्वतों (या मेघों) को भी लाँघ जाते हैं । आप उत्तम मति वाले की प्रार्थना को सुनें एवं शयु के लिए गौ को पयस्विनी बनाएँ ॥७ ॥

[शयु नामक राजा के अतिरिक्त इसका अर्थ सोया हुआ भी होता है । प्रकृति की सुप्त क्षमताओं को जाग्रत् करने के लिए गौओं का पयस्विनी अर्थात् किरणों को प्रभावोत्पादक बनाने की प्रार्थना, इस मंत्र में समाविष्ट है ।]

५०२३. यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥८ ॥

द्यावा-पृथिवी, आदित्यगण, मरुद्‌गण, दोनों अश्विनीकुमारों, वसुओं आदि देवगणों एवं मनुष्यों में जो भीषण रोष है, वह असुरों का संहार करने में प्रयुक्त हो ॥८ ॥

[रोष को अनीति प्रतिरोध के लिये ही प्रयुक्त किया जाना चाहिए ।]

५०२४. य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥९ ॥

जो याजक इन अश्विनीकुमारों की स्तुति करते हैं, उनके ऐसे पावन यज्ञ कर्म को मित्रावरुणदेव जानते हैं । ऐसे याजक असुरों का , अपने अस्त्रों द्वारा संहार करने में समर्थ होते हैं ॥९ ॥



५०२५. अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥१० ॥

हे देव अश्विनीकुमारो ! आप रथ पर चढ़ कर सन्तान को सुख देने के लिए घर आएँ । मानवों को कष्ट पहुँचाने वाले दुष्टों का सिर, अपने उग्र क्रोध के द्वारा तिरस्कार करते हुए काट डालें ॥१० ॥

५०२६. आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
दृळ्हस्य चिद् गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥११ ॥

हे देव अश्विनीकुमारो ! हम आपकी स्तुति करते हैं । आप स्तुति सुनकर हमारे पास आएँ । हमें गौओं से भरा गोष्ठ एवं दिव्य धन प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त - ६३]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** -अश्विनीकुमार । **छन्द** - त्रिष्टुप्; ११ एकपदा त्रिष्टुप् ।]

५०२७. क्व१त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ् नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥१ ॥

दोनों अश्विनीकुमार देव जहाँ भी हों, वहीं यह आहुति सहित हमारे आकर्षक स्तोत्र, उन्हें दूत की तरह बुलाने के लिए पहुँचें । वे दोनों स्तुत्यदेव हमारी ओर आएँ एवं स्तुति से आनन्दित हों ॥ १ ॥

५०२८. अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारदेवो ! आप हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमारे घर आएँ एवं सोमपान करें । समीपस्थ एवं दूरस्थ शत्रुओं से हमारे इस घर की रक्षा करें ॥२ ॥

५०२९. अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥३ ॥

हे अश्विद्वय !सोमरस तैयार है ।कुश के आसन बिछे हुए हैं । हम स्तोतागण आपको स्तुति करके बुलाते हैं ॥ ३ ॥

५०३०. ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारदेवो ! यज्ञशाला में अग्नि आपके निमित्त प्रदीप्त है । घृत से भरा पात्र आगे स्थित है । अनेकों विशेष कार्य करने में समर्थ, दानी होता मनोयोगपूर्वक आपके लिए आहुति अर्पित करते हैं ॥४ ॥

५०३१. अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन्यज्ञियानाम् ॥५ ॥

हे आजानुबाहु अश्विद्वय ! सूर्यपुत्री अर्थात् उषा आपके अनेक प्रकार से सुरक्षित रथ पर आरूढ़ होती हैं । आप देवों की प्रजाओं का नेतृत्व करें ॥५ ॥

५०३२. युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों सूर्या (उषा) की शोभा के लिए पुष्ट हों। आप अपनी एवं उनकी शोभा और कल्याण के लिए रथ पर पुष्टिकारक अन्न रखते हैं। आप तक हमारी उत्तम स्तुतियाँ पहुँचें ॥६ ॥

५०३३. आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपका तीव्रगामी रथ अन्न के लिए गमन करता है। मन की गति वाले आपके अश्व आप दोनों को अन्न के साथ हमारे निकट लाएँ ॥७ ॥

५०३४. पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं नइषं पिन्वतमसक्राम्।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥८ ॥

हे दोनों अश्विनीकुमारो ! आप बड़ी भुजाओं वाले हैं। आपके पास अपरिमित धन है। आप हमें स्थिर मन वाली गौएँ एवं अन्न दें। आपके लिए मधुर सोमरस तैयार है। स्तोतागण आपकी स्तुति करते हैं ॥८ ॥

५०३५. उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥९ ॥

'पुरय' (नगर के नियन्ता) की दो द्रुतगामी अश्वाएँ, 'सुमीळ्ह' (धन-धान्य युक्त अथवा सेचनकर्त्ता) की सौ गौएँ तथा 'पेरुक' (आदित्य) द्वारा पकाये गये फल (पदार्थ) हमें प्राप्त हैं। 'शाण्ड' (शान्ति या कल्याणप्रद) द्वारा प्रदत्त स्वर्णालंकृत, दर्शनीय, शत्रुजयी दस रथ हमारे पास हैं ॥९ ॥

[पौराणिक सन्दर्भ में पुरय, सुमीळ्ह आदि नाम वाले दाताओं के अनुदान प्राप्त होने की बात के अतिरिक्त इस ऋचा से काया में अवस्थित दिव्य विभूतियों का अर्थ भी सिद्ध होता है। काया को 'पुरी' कहा ही जाता है। पुरी का नियन्ता जीवात्मा है। उसकी दो अश्वाएँ चय-अपचय-(एनाबॉलिज्म एवं कैटाबॉलिज्म) संचालित करने वाली शक्ति धाराएँ अश्वाएँ कही जा सकती हैं। सुमीळ्ह की गौएँ शरीरस्थ पोषक प्रवाह हैं तथा आदित्य द्वारा परिपक्व पदार्थ या जीवनरस भी हमें उपलब्ध हैं। दस इन्द्रियों को दस रथों की संज्ञा सदैव से दी जाती है। ये शाण्ड के दर्शनीय शत्रुजयी रथ हैं।]

५०३६. सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१० ॥

हे दोनों अश्विनीकुमारदेवो ! आपके स्तोता को 'पुरूपन्था' राजा ने सैकड़ों-हजारों घोड़े दिये। हे देवो ! यह सब आप भरद्वाज को भी प्रदान करें और असुरों का नाश करें ॥१० ॥

[अश्विनीकुमार आरोग्य के देवता हैं। 'पुरूपन्था' का अर्थ होता है - प्रगति पथ पर बढ़ाने वाले। आरोग्य के साधक को 'पुरूपन्था' - प्राणों ने हजारों अश्व अर्थात् शक्ति प्रवाह दिये; यह कथन युक्तिसंगत सिद्ध होता है।]

५०३७. आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥११ ॥

हे दोनों अश्विनीकुमारो ! आपकी कृपा से हम श्रेष्ठ विद्वानों के साथ सुखपूर्वक रहें ॥११ ॥

[सूक्त - ६४]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य। देवता -उषा। छन्द - त्रिष्टुप्।]

५०३८. उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१ ॥



उषाएँ धवल वर्ण वाली हैं, ये जल की लहरों के समान चमक के साथ ऊपर को आ रही हैं । ये उषाएँ धन-ऐश्वर्यवान् हैं । वे सभी मार्गों को प्रकाशित करके सरलता से गमन करने योग्य बनाती हैं ॥१ ॥

५०३९. **भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।**
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥२ ॥

हे उषा देवि ! आप कल्याणकारी दीखती हैं । आपकी किरणें आभामय होती हैं । हे दिव्य उषा देवि ! आप चमकती किरणों से सुशोभित अपने अन्तः स्थल को प्रकट कर, प्रकाश प्रदान कर सबका कल्याण करती हैं ॥२ ॥

५०४०. **वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।**
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो न वोळहा ॥३ ॥

हे उषादेवि ! लाल आभायुक्त तेजस्वी रश्मियाँ आपको वहन कर ऊपर लाती हैं । जैसे घोड़े पर सवार अचूक बाण चलाने वाला शूरवीर, शत्रु को दूर भगाता है, वैसे ही आप भी अन्धकार को दूर कर देती हैं ॥३ ॥

५०४१. **सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।**
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥४ ॥

हे उषादेवि ! आप स्वयं प्रकाशित होकर अन्तरिक्ष में विचरण करती हैं, तब आपके लिए मार्ग विहीन पर्वतीय प्रदेश भी सुगम हो जाते हैं । हे स्वर्गलोक की कन्या ! आप बड़े रथ में हमारे लिए धन लाएँ ॥४ ॥

५०४२. **सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।**
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥५ ॥

हे स्वर्ग की कन्या उषादेवि ! आप प्रथम हवन के समय दर्शनीय एवं पूजनीय हैं । आप तीव्रगामी, इच्छानुसार चलने वाले बैलों द्वारा खींचने वाले रथ में हमारे लिए श्रेष्ठ धन लाएँ ॥५ ॥

५०४३. **उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।**
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६ ॥

हे उषादेवि ! आपके प्रकाशित होने पर पक्षी ·ने निवास से बाहर आते हैं एवं अन्नोपार्जन करने वाले भी जाग कर कर्म में उद्यत होते हैं । हे उषादेवि ! जो मनुष्य आपके प्राकट्य के साथ रहता है । (कर्म को उद्यत होता है) उसे पर्याप्त धन प्राप्त होता है ॥६ ॥

[सूक्त - ६५]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता -उषा । । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

५०४४. **एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।**
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥१ ॥

यह स्वर्ग में उत्पन्न हुई दिव्य कन्या अर्थात् देवी उषा अपनी तेजस्वी- प्रकाशित रश्मियों के द्वारा अन्धकार को दूर करतीं एवं मानवों की प्रजा को जगाती हैं ॥१ ॥

५०४५. **वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।**
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥२ ॥

अरुण वर्ण के अश्वों वाले विशाल चन्द्ररथ पर बैठी देवी उषा यज्ञ के पहले ही विशेष गति से अन्तरिक्ष में विचरण करती हैं। वे अपने विलक्षण प्रकाश से अन्धकार को नष्ट कर रही हैं ॥२ ॥

५०४६. श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥३ ॥

धनवान् एवं उत्तम प्रकार से गमन करने वाली उषाएँ, हव्य दान करने वाले को अन्न, बल, यश और रस प्रदान करती हैं। हे उषाओ ! आप हमें भी अन्न और सेवा करने वाले वीर पुत्रों से युक्त रत्न आज ही प्रदान करें ॥३ ॥

५०४७. इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४ ॥

हे उषाओ ! जैसे आपने अपने स्तोताओं को पहले धन प्रदान किया है, वैसे ही इस समय भी आप हविदाता एवं स्तोताओं को वे रत्न प्रदान करें, जो आपके पास हैं ॥४ ॥

५०४८. इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥५ ॥

हे पर्वत शिखरों पर दर्शनीय उषादेवि ! आपकी कृपा से ही अंगिराओं ने गौओं के समूह को खोला है। मनुष्यों की ईश - प्रार्थना अब फलवती हुई है ॥५ ॥

५०४९. उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥६ ॥

हे सूर्य पुत्री उषा ! आप पूर्व की तरह अब भी अन्धकार को मिटाएँ। जैसे आपने भरद्वाज को धन दिया है, वैसे ही हम स्तोताओं को भी सुपुत्र सहित अन्न एवं धन प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ६६]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य। देवता - मरुद्गण । छन्द - त्रिष्टुप्।]

५०५०. वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम्।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१ ॥

ज्ञानी जन उसे (भिन्न होते हुए भी) समान धेनु (धारण करने वाले) नाम से जानते हैं। एक को मनुष्यों के लिए दुहा जाता है तथा दूसरा तेजस्वी रूप अन्तरिक्ष से दूध की भाँति ही क्षरित होता है ॥ १ ॥

[इस ऋचा में पोषक प्रकृति प्रवाह को स्पष्ट शब्दों में गौ के समान कहा गया है। अनेक वेद मन्त्रों के अर्थ गौ या धेनु शब्द के इसी भाव से स्पष्ट होते हैं।]

५०५१. ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥२ ॥

जो इच्छा से बढ़ने वाले, अग्निदेव जैसे तेजस्वी एवं स्वर्णाभूषणों से अलंकृत मरुद्गण हैं, वे धन एवं बल के साथ प्रकट होते हैं ॥२ ॥

५०५२. रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै।
विदेहि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात् ॥३ ॥



अन्तरिक्ष में रहने वाले मरुद्‌गणों के पिता रुद्र और माता महामहिमामयी पृथ्वी हैं । ये पृथ्वी ही सबके कल्याण के लिए जल, अन्न को अपने गर्भ में धारण करती हैं ॥३ ॥

५०५३. न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥४ ॥

जो लोगों से दूर न जाकर उनके अन्तःकरण में निवास करते हैं और दोष को दूर कर पवित्र बनाते हैं, जो अपने तेज से इच्छानुसार शरीर को बलवान् बनाते हैं, वे पवित्र, वीर मरुत् इच्छानुकूल जल - वृष्टि करते हैं ॥४ ॥

५०५४. मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥५ ॥

जिन शूरवीरों का नाम मरुद्‌गण है, वे स्तोताओं के पोषण के लिए उत्तम धन प्रदान करते हैं । वे अपने उग्र क्रोध से चोरों और दस्युओं को परास्त कर नष्ट करते हैं ॥५ ॥

५०५५. त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥६ ॥

वे मरुद्‌गण महान् वीर हैं । द्यावा-पृथिवी में उनकी साहसी सेना सुसज्जित रहती है । ये स्वदीप्ति से तेजस्वी हैं । इनके मार्ग में कोई बाधा नहीं डाल सकता ॥६ ॥

५०५६. अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥७ ॥

हे मरुद्‌गणो ! अश्वरहित , बिना सारथी वाला, बिना लगाम (रास) वाला (होकर भी), दोषरहित जल प्रदान करने वाला, आपका रथ द्यावा-पृथिवी एवं अन्तरिक्ष में विचरता है ॥७ ॥

५०५७. नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥८ ॥

हे मरुद्‌गणो ! संग्राम में जिनके आप रक्षक हैं, उन्हें कोई नहीं मार सकता । पुत्रों सहित जिसके आप रक्षक हैं, वह शत्रुओं की गौओं को भी जीत सकता है ॥८ ॥

५०५८. प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! जो मरुद्‌गण अपने बल-पराक्रम से शत्रुओं को परास्त करते हैं; उनकी हलचल से पृथ्वी भी काँपने लगती है । उन्हीं तीव्रगामी, बलवान्, वीर मरुद्‌गणों के लिए ही स्तोता अद्‌भुत स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥९ ॥

५०५९. त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥१० ॥

अग्नि सदृश प्रदीप्त रहने वाले, शत्रुओं को कँपाने वाले एवं यज्ञ के समान तेजस्वी ये मरुद्‌गण कभी पराभूत नहीं होते ॥१० ॥



५०६०. तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥११ ॥

हम शस्त्रधारी, पराक्रमी, रुद्र पुत्र मरुद्‌गणों की स्तुति करते हैं । ये स्तुतियाँ बलवान् होकर मरुद्‌गणों को और अधिक बल प्रदान करती हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ६७]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - मित्रावरुण । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

५०६१. विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥१ ॥

हे अतिश्रेष्ठ मित्रावरुणदेवो ! आपकी हम स्तुति करते हैं । आप अपने बाहुबल से सभी मनुष्यों को अनुशासित करते हैं ॥१ ॥

५०६२. इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥२ ॥

हे मित्रावरुणदेवो ! हम स्तोताओं द्वारा की जाने वाली ये स्तुतियाँ आपको प्रवृद्ध करती हैं । आपके लिए हमने कुश का आसन बिछाया है । आप प्रसन्न होकर हमें ऐसा निवास दें, जिससे हमारी रक्षा हो सके ॥२ ॥

५०६३. आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नः स्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥३ ॥

हे मित्रावरुणदेवो ! आपका हम नमस्कारपूर्वक आवाहन करते हैं एवं आपकी स्तुति करते हैं । आप आएँ और जिस तरह आप सत्कर्मों में प्रवृत्त हैं, उसी तरह हमें भी धन एवं अन्न प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील करें और हमें सन्तुष्ट करें ॥३ ॥

५०६४. अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥४ ॥

माता अदिति ने गर्भ में धारण करके सत्य स्वरूप, बलवान्, पवित्र भाइयों के रूप में आपको पोषित किया है । इसलिए आप उत्पन्न होते ही शत्रुओं का संहार करने वाले एवं श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ बन गए ॥४ ॥

५०६५. विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥५ ॥

जब आपकी महानता के कारण आनन्दित होकर सभी देवगण प्रीतिपूर्वक क्षात्रबल धारण करते हैं, तब आप सब ओर से आकाश एवं पृथ्वी को घेर लेते हैं । आप किसी के द्वारा दमित नहीं होते हैं ॥५ ॥

५०६६. ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥६ ॥

वे (दोनों मित्रावरुण देव) अन्तरिक्ष को, सूर्य को एवं नक्षत्रों को दृढ़ता से धारण किये हैं । वे देव प्रतिदिन क्षात्र तेज को बढ़ाते हैं । मानवों को पर्याप्त अन्न मिले, इसलिए द्यावा-पृथिवी का विस्तार करते हैं ॥६ ॥



५०६७. ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७॥

हे मित्रावरुण देवो ! जब याजक यज्ञशाला (की तैयारी) पूर्ण कर लेते हैं, तब आप उदर पूर्ति के लिए ही आदरपूर्वक प्रेषित अन्न रूप सोम को धारण (ग्रहण) करते हैं। प्रसन्न होकर आप स्वभावतः ही नदियों को जल से भर देते हैं, जिससे धूल नहीं उड़ती है ॥७॥

५०६८. ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत्।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥८॥

मेधावी जन वाणी द्वारा (स्तुति द्वारा) आपसे जल की कामना करते हैं, जैसे आपके यजनकर्त्ता सत्य मार्ग पर आरूढ़ होते हैं, वैसे ही आप महिमावान् हवि देने वालों के पापों का नाश करें ॥८॥

५०६९. प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥९॥

जो आपके प्रिय धाम एवं नियम में बाधा उत्पन्न करते हैं एवं यज्ञ न करके द्वेष करते हैं; ऐसे स्तुति न करने वाले एवं यज्ञ न करने वाले लोग न तो मानव हैं, न देव हैं; उनका आप संहार करें ॥९॥

५०७०. वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥१०॥

कोई स्तोता वाणी द्वारा, कोई विद्वान् मन द्वारा आपको प्रसन्न करते हैं। वास्तव में हम यह सत्य ही कहते हैं कि आप की महिमा अतुलनीय है ॥१०॥

५०७१. अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ॥११॥

हे मित्रावरुण देवो ! जब हम स्तोतागण आपकी स्तुति करके आपके लिए सोमरस प्रस्तुत करते हैं, तब आप अपने आश्रय में रहने वाले भक्तों को गौओं से भरा गोष्ठ एवं सुरक्षित निवास प्रदान करते हैं ॥११॥

[सूक्त - ६८]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य। देवता - इन्द्रावरुण। । छन्द - त्रिष्टुप्, ९-१० जगती।]

५०७२. श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥१॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! जो यज्ञ उद्यमी मानवों द्वारा, बहुत से आसन बिछाकर महान् सुख की पूर्ति के लिये किया जाता है; उसी तरह की इच्छापूर्ति के लिए आज यह यज्ञ उत्साहपूर्वक आपके निमित्त किया जा रहा है ॥१॥

५०७३. ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम्।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥२॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! आप यज्ञ करने वाले देवों में श्रेष्ठ हैं। आप बल और महान् धन से युक्त हैं। आप सेनाओं एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। आप दाताओं में श्रेष्ठ एवं शत्रु का संहार करने वाले हैं ॥२॥



५०७४. **ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना।**
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥३ ॥

हे स्तोताओ ! आप इन्द्र और वरुण दोनों देवों की नमस्कारपूर्वक, बल-वर्धक स्तोत्रों से स्तुति करें । इन्द्रदेव वज्र फेंककर वृत्रासुर को मारने वाले हैं एवं वरुणदेव संकट के समय बल के द्वारा रक्षा करते हैं ॥३ ॥

५०७५. **ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः।**
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥४ ॥

समस्त स्त्रियाँ, पुरुष, देवगण एवं द्यावा-पृथिवी अपने उद्यम से कितने भी बढ़ गये हों, परन्तु इन्द्र और वरुण दोनों देव इन सबसे श्रेष्ठ हैं ॥४ ॥

५०७६. **स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन्।**
इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद् रयिं रयिवतश्च जनान् ॥५ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! आपको हविप्रदान करने वाला याजक, दानदाता और धनवान् होता है । वह यज्ञकर्म करने वाला आपकी कृपा से सुरक्षित रहकर, धन एवं ऐश्वर्ययुक्त पुत्र प्राप्त करता है ॥५ ॥

५०७७. **यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्।**
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥६ ॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! जैसा धन आप हविदाता को देते हैं; जो धन आपसे सुरक्षित है; वैसा ही धन सुरक्षा के लिए हमें प्रदान करें, जिससे हम अपने निन्दकों को दूर कर सकें ॥६ ॥

५०७८. **उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात्।**
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥७ ॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! हम आपकी स्तुति करने वाले स्तोतागण हैं । आपका देवों द्वारा रक्षित धन हमें भी प्राप्त हो । हम उस सुरक्षित धन-बल से शत्रुओं को तिरस्कृत करके उन्हें जीत लें ॥७ ॥

५०७९. **नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा।**
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥८ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! आप दोनों महान् बलवान् हैं । हम आपकी स्तुति करते हैं । आप हमें यश प्राप्त कराने वाला धन प्रदान करें । जैसे नौका द्वारा जल राशि को पार किया जाता है, वैसे ही हम आपकी कृपा से पापों से तर जायें ॥८ ॥

५०८०. **प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः।**
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥९ ॥

हे मनुष्यो ! वरुणदेव महान्, तेजस्वी, अजर और बड़े कार्य करने वाले हैं ; जो वरुणदेव इस पृथ्वी को अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हैं, उनकी मननीय स्तोत्रों द्वारा स्तुति करो ॥९ ॥

५०८१. **इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता।**
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥१० ॥



सोमपायी हे इन्द्र और वरुणदेवो ! आप दोनों इस हर्षित करने वाले सोमरस का पान करें । आपका रथ सोमपान एवं देवों की तुष्टि के लिए प्रत्येक यज्ञ में जाता है ॥१० ॥

५०८२. इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम् ॥११ ॥

हे बलवान् इन्द्र और वरुणदेवो ! आप इस बलयुक्त अति मधुर आनन्दवर्धक सोमरस का पान करें । आप दोनों इस कुश के आसन पर बैठकर अपने लिए तैयार सोमरस को ग्रहण कर हर्षित हों ॥११ ॥

[सूक्त - ६९]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - इन्द्र-विष्णु । । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

५०८३. सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! हम आपके निमित्त हवि और उत्तम स्तोत्र प्रेषित करते हैं । आप प्रसन्न होकर यज्ञ में आएँ एवं हमें धन प्रदान करें ॥१ ॥

५०८४. या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप समस्त विश्व में सुमति के प्रेरक हैं । आपके लिए यह सोमरस से भरे पात्र रखे हैं । आपके लिए की गई स्तुतियाँ आपको प्रसन्न करें । आप हमारी र॰॰ करें ॥२ ॥

५०८५. इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप दोनों सोम के स्वामी हैं । आप हमारे लिए धन लेकर इस यज्ञ में आएँ । उक्थों (उच्चारित वचनों) सहित स्तोत्र आपको बढ़ाने वाले हों ॥३ ॥

५०८६. आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! हिंसकों को परास्त करने वाले घोड़े आपको ले आएँ । आप हमारी स्तुति को सुनकर, हमारी प्रार्थना पर ध्यान दें ॥४ ॥

५०८७. इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! सोमपान से हर्षित होकर आपने इस विस्तृत विश्व को आवृत किया और हमारे जीवन के लिए लोकों को प्रकाशित किया है ॥५ ॥

५०८८. इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप सोम पान से बढ़ते हैं । यजमान आपके लिए नमस्कार सहित हवि प्रदान



करते हैं । आप हमें धन प्रदान करें । आप समुद्रवत् गंभीर हैं । जैसे यह कलश सोम से परिपूर्ण है, वैसे ही आप भी परिपूर्ण हों ॥६ ॥

५०८९. इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम् ।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप दोनों तृप्त होने तक इस सोमरस को उदरस्थ करें । यह हर्षित करने वाला सोम आपके पास तक पहुँचे । आप हमारी प्रार्थना एवं स्तोत्रों को ध्यानपूर्वक सुनें ॥७ ॥

५०९०. उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप दोनों कभी पराजित न होने वाले अजेय हैं; परन्तु जब आप आपस में ही स्पर्धा करते हैं, तो सारे भुवन भय से काँपने लगते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ७०]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - द्यावा-पृथिवी । । **छन्द** - जगती ।]

५०९१. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥१ ॥

हे द्युलोक और पृथ्वीलोक ! आप जलयुक्त सुन्दर रूप वाले और भुवनों को आश्रय देने वाले, मधुर अन्न-रस देने वाले, अमर एवं बलवान् हैं । आप दोनों वरुणदेव द्वारा धारण किये गये हैं ॥१ ॥

५०९२. असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥२ ॥

ये द्यावा-पृथिवी बहुत से जल प्रवाहों से युक्त हैं । ये दोनों उत्तम कर्म करने वालों को तेजस्वी जल प्रदान करते हैं । हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों इन भुवनों की अधिष्ठाता हैं । आप प्रसन्न होकर हमें हितकारी जल प्रदान करें ॥२ ॥

५०९३. यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥३ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आपके निमित्त यजन कर्म करने वालों के सभी कार्य सफल-सिद्ध होते हैं । आपकी कृपा से धर्मारूढ़ मानवों को श्रेष्ठ सन्तान प्राप्त होती है ॥३ ॥

५०९४. घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा ।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥४ ॥

द्यावा और पृथिवी दोनों जल से युक्त हैं । वे जल से सुशोभित एवं जल वृष्टि करने वाले हैं । यज्ञ में यजमान उनकी स्तुति करते हुए सुख प्राप्ति की कामना करते हैं ॥४ ॥

५०९५. मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥५ ॥



हे मधुरता की वृष्टि करने वाले द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों हमें मधुरता प्रदान करें । मधुरता आपका स्वभाव है । यज्ञ, धन एवं देवत्व धारण करने वाले आप हमें यश, बल और धन प्रदान करें ॥५ ॥

५०९६. ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा ।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥६ ॥

हे सबका कल्याण करने वाले द्यावा-पृथिवि ! आप हमारे माता-पिता हैं । आप सर्वज्ञ, तेजस्वी, ज्ञानी एवं सत्कर्म करने वाले हैं । आप हमें पुत्र-पौत्र युक्त, अन्न, बल, यश और धन प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ७१]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - सविता । **छन्द** - जगती, ४-६ त्रिष्टुप् ।]

५०९७. उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१ ॥

श्रेष्ठ कर्म करने वाले सवितादेव सुदक्ष, तरुण, पवित्र और यज्ञरूप हैं । वे देव अपनी स्वर्णिम बाहुओं को ऊपर उठाकर जगत् का सब प्रकार से कल्याण करते हैं ॥१ ॥

५०९८. देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥२ ॥

सवितादेव द्वारा सत्प्रेरणा और धन दान के समय हम उपस्थित हों । हे सवितादेव ! आप समस्त पशुओं और मनुष्यों को विश्राम तथा कर्म में नियोजित करने वाले हैं ॥२ ॥

५०९९. अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥३ ॥

हे सवितादेव ! आप न दबने वाले कल्याणकारी तेज से हमारे घरों की रक्षा करें । स्वर्ण जिह्वा वाले देव आप हमें नये-नये सुख देते हुए, हमारी रक्षा करें । हम पापियों के अधीन न हों ॥३ ॥

५१००. उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥४ ॥

जो सवितादेव शान्त मन वाले, स्वर्णमयी बाहुओं वाले और यशस्वी हैं, वे रात्रि के समाप्त होने पर विधिपूर्वक आहुति प्रदान करने वाले को उत्तम अन्न-धन प्रदान करते हैं ॥४ ॥

५१०१. उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत् कच्चिदभ्वम् ॥५ ॥

जैसे वक्ता हाथ ऊपर उठाकर भाषण करता है, वैसे ही सविता देवता अपनी स्वर्णिम किरणों रूपी हाथों को ऊपर की ओर फैलाकर उदित होते हैं । उदित होकर पृथ्वी से उठकर स्वर्ग के शिखर पर स्थित होकर, सभी को पुष्ट और आनन्दित करते हैं ॥५ ॥

५१०२. वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६ ॥

हे सर्व उत्पादक सवितादेव ! आज हमारे लिए श्रेष्ठ सुखों को प्रदान करें । अगला दिवस भी श्रेष्ठ सुख प्रदायक हो, इस प्रकार आप प्रतिदिन हमें उत्तम सुखों को प्रदान करें । आप विपुल धन एवं आश्रयों के अधिपति हैं । इस भावना के अनुसार हम श्रेष्ठ धनादि प्राप्त करें ॥६ ॥

[सूक्त - ७२]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - इन्द्र-सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

५१०३. **इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।**
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व१र्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव और सोमदेव ! आप अत्यन्त महिमावान् हैं । आप दोनों ने श्रेष्ठ कर्म किये हैं । आपने सूर्य तथा जल को प्राप्त किया है । आपने अन्धकार और निन्दकों को दूर किया है ॥१ ॥

५१०४. **इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।**
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव और सोमदेव ! आपने उषा को बसाया एवं प्रकाशित सूर्य को ऊपर उठाया है । आपने आधार प्रदान कर द्युलोक को स्थिर किया एवं पृथ्वी माता को विस्तृत किया है ॥२ ॥

५१०५. **इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।**
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव और सोमदेव ! आपने जल प्रवाह को रोकने वाले वृत्र को नष्ट किया । द्युलोक ने आपको प्रवृद्ध किया । आपने नदियों की जल राशि को प्रवाहित कर समुद्र को भर दिया है ॥३ ॥

५१०६. **इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु ।**
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव और सोमदेव ! आपने कम आयु वाली गौओं के (थनों) दुग्धाशय में परिपक्व दूध को स्थापित किया है । उसी तरह विचित्र वर्ण वाली गौओं में आपने श्वेत वर्ण का दुग्ध धारण कराया है ॥४ ॥

५१०७. **इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।**
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव और सोमदेव ! आप दोनों हमें ऐसा धन प्रदान करें; जिससे हमारा कल्याण हो । आप हमें शत्रु सेना का पराभव करने वाला उग्र बल प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - ७३]

[**ऋषि**- भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - बृहस्पति । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

५१०८. **यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।**
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१ ॥

जो बृहस्पति देव सबसे प्रथम उत्पन्न हुए, उन्होंने पर्वत को ध्वस्त किया । जो अङ्गिरसों में हविष्यान्न से युक्त हैं, जो स्वयं के तेज से तेजस्वी हैं, वे उत्तम गुणों से भूमि की सुरक्षा करने वाले, बलवान् , हमारे पालक बृहस्पति



देव द्युलोक और भूलोक में गर्जना करते हैं ॥१॥

५१०९. **जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार।**
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥२॥

जो बृहस्पतिदेव स्तोताओं को स्थान देते हैं, वे बृहस्पतिदेव शत्रुओं को मारने वाले और शत्रुजयी हैं। वे शत्रुओं को परास्त करके उनके नगरों को ध्वस्त करते हैं ॥२॥

५११०. **बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः।**
अपः सिषासन्त्स्व१ रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३॥

बृहस्पतिदेव ने असुरों को परास्त करके गोधन जीता है। वे बृहस्पतिदेव स्वर्ग के शत्रुओं का मन्त्र द्वारा विनाश करते हैं ॥३॥

[सूक्त - ७४]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य। **देवता** - सोम-रुद्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

५१११. **सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं१ प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु।**
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

हे सोमदेव और रुद्रदेव ! आप दोनों सामर्थ्यवान् हैं। हमारे समस्त यज्ञ आप तक पूर्णता से पहुँचें। प्रत्येक घर में सात रत्न (प्रत्येक शरीर में सप्त धातु) स्थापित कर, आप हमारा मंगल करें। हमारे द्विपादों (मानवों) एवं चतुष्पादों (पशुओं) को सुख प्रदान करें ॥१॥

५११२. **सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश।**
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥२॥

हे सोमदेव और रुद्रदेव ! आप दोनों हमारे घरों में प्रविष्ट रोगों का विनाश करें। दरिद्रता हमसे दूर रहे। हम अन्नसहित सुख से रहें ॥२॥

५११३. **सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।**
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥३॥

हे सोमदेव और रुद्रदेव ! आप दोनों हमारे शरीर में सभी ओषधियाँ धारण करा दें। हमारे बन्धन खोलें और हमें मुक्त कर दें ॥३॥

५११४. **तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः।**
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥४॥

तीक्ष्ण आयुधधारी, उत्तम विचारवान्, सुसेव्य, हे सोमदेव और रुद्रदेव ! आप हमें वरुण पाश से मुक्त करके, उत्तम प्रकार का सुख प्रदान करें ॥४॥

[सूक्त - ७५]

[**ऋषि** - पायु भारद्वाज। **देवता** - (संग्राम के अंग) १ वर्म, २ धनु, ३ ज्या, ४ आर्त्नी, ५ इषुधि, ६ पूर्वा० सारथी, उत्त० रश्मियाँ, ७ अनेक अश्व, ८ रथ, ९ रथ गोप, १० ब्राह्मण, पितृ, सोम, द्यावा-पृथिवी, पूषा, ११-१२,



१५-१६ इषु समूह, १३ प्रतोद, १४ हस्तघ्न, १७ युद्धभूमि, ब्रह्मणस्पति और अदिति, १८ वर्म-सोम -वरुण, १९ देव-ब्रह्म । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ६, १० जगती; १२, १३, १५, १६, १९ अनुष्टुप् ; १७ पंक्ति ।]

इस सूक्त के अन्तर्गत युद्ध में प्रयुक्त संसाधनों को लक्ष्य करके ये ऋचाएँ कही गई हैं, जो स्थूल दृष्टि से लौकिक युद्ध पर घटित की जाती हैं; किन्तु वस्तुतः ये जीवन समर के लिए कही गयी प्रतीत होती हैं । जीवन एक समर है, जीवात्मा उसका रथी है, शरीर रथ है, यह उपमाएँ आर्ष एवं लौकिक साहित्य में अनेक स्थानों पर मिलती हैं । कठोपनिषद् में "आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु" आदि कहकर तथा रामचरितमानस में विजय-रथ प्रसंग में "सौरज-धीरज तेहि रथ चाका" आदि कहकर इसी जीवन-समर में विजेता बनने के लिए सूत्र प्रकट किये गये हैं । यहाँ मंत्रों के भावों से भी यही तथ्य प्रकट होता है । जैसे :- रथ द्वारा ढोया जाने वाला धन, रथ को प्रवृद्ध करे (मंत्र ८) अथवा बाण हमें संवर्धित करे (मंत्र १२) आदि भाव यह स्पष्ट करते हैं कि रथ एवं बाण मात्र निर्जीव उपकरण नहीं हैं । मंत्र ११ में बाण को 'गोभिः सन्नद्ध' कहा है, अर्थात् गौओं से जिसका संधान किया जाता है । गौ का अर्थ-गौ चर्म अथवा ताँत करना उतना युक्ति संगत नहीं लगता । गौ-'इन्द्रियों से संधान किया गया कर्म' इस रथ में अधिक सटीक बैठता है । अन्त में (मंत्र १९) तो स्पष्ट कहा भी है कि ब्रह्म (मंत्र) ही हमारा कवच है । अस्तु, सुधी पाठक इसी दृष्टि से मन्त्रार्थों का अध्ययन करें; तो अच्छा होगा -

५११५. जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१ ॥

कवच को धारण करके जब शूरवीर योद्धा संग्राम-स्थल के लिए जाते हैं, तब सेना का स्वरूप बादल के सदृश होता है । हे वीर पुरुष ! आप बिना आहत हुए विजय को प्राप्त करें; उस कवच की महान् शक्ति आपकी रक्षा करे ॥१ ॥

[कवच शत्रु के आघातों से आत्मरक्षा के लिए होता है । जीवन-समर में गुरुजनों द्वारा निर्दिष्ट अनुशासन कवच का कार्य करता है ।]

५११६. धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥२ ॥

धनुष की शक्ति से युद्ध जीतकर गौएँ प्राप्त करेंगे । भीषण संग्राम में धनुष से शत्रु की कामनाएँ ध्वस्त करेंगे । हमारा धनुष शत्रु को पराजित करता है, ऐसे धनुष की महिमा से सभी दिशाओं को विजित करेंगे ॥२ ॥

[धनुष दूरस्थ शत्रुओं पर भी आघात कर सकता है । 'विज्ञान' जीवन-समर का धनुष कहलाने योग्य है ।]

५११७. वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥३ ॥

संग्राम में विजय दिलाने वाली, धनुष पर चढ़कर अव्यक्त ध्वनि करती हुई, (प्रत्यंचा) प्रिय बाणरूप मित्र से मिलती है । वह योद्धा के कानों तक खिंचती हुई ऐसी प्रतीत होती है, मानो कुछ कहना चाहती है । यह प्रत्यंचा संकटों से पार करने वाली है ॥३ ॥

[ज्या-प्रत्यंचा मजबूत सूत्र-डोरी को कहते हैं, जो धनुष के दोनों सिरों (कोटियों) को खींचती है । विज्ञान के सूत्र, (फार्मूले) प्रत्यंचा कहे जा सकते हैं ।]

५११८. ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४ ॥

ये दोनों (कोटियाँ) समान मन वाली स्त्रियों की तरह (एक ही प्रयोजन के लिए) आचरण करती हैं । माता की भाँति पुत्र (बाण) को गोद में लेकर एक साथ रहने वाली ये, शत्रुओं का वेधन करतीं तथा अमित्रों को बिखेर देती हैं ॥४ ॥



[धनु कोटियाँ - धनुष के दोनों छोर । यह विज्ञान रूप धनुष के दो किनारे (१) सैद्धान्तिक (थ्योरेटिकल) तथा प्रायोगिक (प्रैक्टिकल) कहे जा सकते हैं । प्रत्यञ्चा रूप सूत्र (फार्मूले) इन्हें खींचकर प्रयुक्त करते हैं ।]

५११९. बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥५ ॥

यह बहुतों का पिता है, इसके पुत्र बहुत हैं । समर में पहुँचकर यह चीं-चीं ध्वनि करता है । योद्धा के पृष्ठ भाग में आबद्ध यह अपने द्वारा प्रसूत (बाणों) से सभी संगठित शत्रुओं को जीत लेता है ॥५ ॥

[तूणीर में बाण रखे रहते हैं; किन्तु मंत्र में उसे बाणों का पिता एवं प्रसव करने वाला (जन्म देने वाला) कहा है । संकल्प अथवा कर्मरूप बाणों का प्रसवकर्त्ता तूणीर 'मन' कहा जा सकता है ।]

५१२०. रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥६ ॥

उत्तम सारथी रथ पर स्थित होकर अश्वों को यहाँ-वहाँ इच्छानुसार आगे ले जाता है । हे स्तोताओ ! आप लगामों की महिमा का बखान करें । वे मन के अनुकूल (अश्वों को गति देने के लिए) प्रवृत्त होती हैं ॥६ ॥

[जीवन-समर में सारथी बुद्धि को तथा चित्त-वृत्तियों को लगाम कहा जाना समीचीन है ।]

५१२१. तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥७ ॥

रथ के साथ गतिमान् , वृषभों से भी अधिक शक्तिशाली अश्व अमित्रों (शत्रुओं) को अपने पदों (चरणों) से आक्रान्त करते हैं । अपव्यय से बचकर शत्रुओं को नष्ट करते हैं ॥७ ॥

[अश्व - शरीर (रथ) से जुड़ा पुरुषार्थ-पराक्रम को अश्व कहा जा सकता है ।]

५१२२. रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥८ ॥

जहाँ इस रथ को बढ़ाने वाले हव्य, (रथी के) अस्त्र-शस्त्र एवं कवच आदि रखे होते हैं, हम प्रसन्न मन से उस रथ पर सदैव स्थित रहेंगे ॥८ ॥

[वेद ने वहन करने वाले (कैरियर) को रथ कहा है । प्रकृति में देवों के रथों के अनेक रूप बनते हैं । जीवन-संग्राम का यह रथ इन्द्रिययुक्त शरीर ही कहा गया है ।]

५१२३. स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥९ ॥

(यह रक्षक) वयोधा (अवस्थाओं अथवा बल को धारण करने वाले), शत्रु के अन्नों को नष्ट करने वाले तथा स्वपक्ष को अन्न देने वाले हैं । संकट के समय आश्रय देने वाले, गंभीर , विचित्र सेना से युक्त यह महान् वीर स्वयं अहिंसित रहकर शत्रुसेना को नष्ट करने में समर्थ है ॥९ ॥

[रथगोपा - रथ रक्षक शरीरस्थ विभिन्न प्राण एवं उप प्राण हैं ।]

५१२४. ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरिताद् ऋतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥१० ॥

ब्राह्मण, पितर, ऋत (सत्य या यज्ञ) संवर्धक तथा सोम सिद्ध करने वाले-यह सब हमारी रक्षा करें । कल्याणप्रद द्यावा-पृथिवी एवं पूषादेव हमें पापों से बचाएँ । पापी-दुराचारी व्यक्ति हम पर शासन न करने पाएँ ॥१० ॥



[इस मंत्र में देवों, भूसुरों, सोम आदि से रक्षा की प्रार्थना की गई है। ये भाव भी जीवन-संग्राम पर घटित होते हैं।]

५१२५. **सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता।**
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥११॥

यह सुपर्णयुक्त (पक्षी की तरह) गतिशील, तीक्ष्ण दाँत (नोंक) वाले मन की तरह यह बाण गो (इन्द्रियों) द्वारा संधान किया गया, प्रसूत होते (प्रकट होते-छूटते) ही प्रहार करता है। जहाँ मनुष्य एकत्रित होकर या बिखर कर गतिशील होते हैं, वहाँ ये बाण हमारे शरणदाता या सुख प्रदायक हों ॥११॥

[इस ग्यारहवें मन्त्र के अतिरिक्त मंत्र क्र० १२, १५ एवं १६ बाणों को लक्ष्य करके कहे गये हैं। उन्हें विभिन्न सम्बोधन दिये गये हैं। मन रूप तूणीर से उत्पन्न यह बाण ' संकल्प-अथवा कर्म ' ही कहे जा सकते हैं।]

५१२६. **ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः।**
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२॥

हे ऋजुगामी (बाण) आप सब ओर से हमें संवर्धित करें। हमारे शरीर पत्थर जैसे (मजबूत) हों। सोमदेव हमें उत्साहित करें तथा माता अदिति हमें सुख प्रदान करें ॥१२॥

[यहाँ बाण को 'ऋजीते' - ऋजु (सीधे या सरल) मार्गगामी कहा गया है।]

५१२७. **आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उपजिघ्नते। अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥१३॥**

हे अश्व चलाने वाली कशा ! आप संग्राम में जागरूक अश्वों को प्रेरित-उत्तेजित करें। इनके उभरे हुए भागों पर अथवा निचले अंगों पर समीप से प्रहार करें ॥१३॥

[कशा-अश्व प्रेरक चाबुक को लक्ष्य करके यह मंत्र है। वेद ने शब्द शक्ति को अश्व प्रेरक कशा की संज्ञा दी है।]

५१२८. **अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।**
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥१४॥

सर्प की तरह लिपट कर प्रत्यंचा के आघात से यह (हस्तबन्ध) हाथ की रक्षा करता है। यह सभी कुशलताओं के ज्ञाता पुरुषों का सब ओर से संरक्षण करे ॥१४॥

[हस्तबन्ध - हाथ को प्रत्यंचा के आघात से बचाने वाले आवरण को लक्ष्य करके यह मंत्र है। हस्त कौशल से इसकी संगति बैठती है।]

५१२९. **आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम्।**
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥१५॥

जो विषयुक्त, लोहे के फल लगा, हिंसक अग्रभाग वाला यह बाण है, पर्जन्य से जिनका पराक्रम बढ़ता है, उन बाण देवता को हमारा नमस्कार है ॥१५॥

५१३०. **अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।**
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥१६॥

हे बाण रूपी अस्त्र ! मन्त्रों के प्रयोग से तीक्ष्ण किये हुए आप हमारे द्वारा छोड़े जाते हुए शत्रु सेना पर एक साथ प्रहार करें और उन्हें संतप्त करें। उनके शरीरों में प्रविष्ट होकर सभी का विनाश करें तथा किसी भी दुष्ट को जीवित न बचने दें ॥१६॥

५१३१. **यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाइव।**
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥



जहाँ शिखारहित-बालकों (चंचल बालकों) के समान बाण गिरते हों, वहाँ ब्रह्मणस्पति और अदिति हमें सुख प्रदान करें और हमारा सदा कल्याण करें ॥१७ ॥

५१३२. **मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।**
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१८ ॥

हे रथी ! आपके मर्मस्थलों को हम कवच से युक्त करते हैं । सोमदेव आपको अमृत से युक्त करें । वरुणदेव आपको सुख प्रदान करें । आपकी विजय से देवगण आनन्दित हों ॥१८ ॥

५१३३. **यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।**
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९ ॥

जो हमारे बन्धु होकर द्वेष करते हैं, गुप्त रूप से हमारे संहार की इच्छा रखते हैं, उन्हें सब देवगण नष्ट कर दें । वेदमन्त्र ही हमारे कवचरूप हैं; वे हमारा कल्याण करें ॥१९ ॥

॥ इति षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥







परिशिष्ट - १

ऋग्वेद भाग - २ के ऋषियों का संक्षिप्त परिचय

१. **अत्रि भौम (५.२७,३७-४३) *** - सप्त ऋषियों में अत्रि ऋषि का नाम प्रसिद्ध है। अत्रि और उनके वंशजों को ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल के द्रष्टा के रूप में ख्याति प्राप्त है। अत्रि भौम का ऋषित्व ऋग्वेद एवं सामवेद में अनेक स्थानों में दृष्टिगोचर होता है। आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को निम्न शब्दों में प्रमाणित किया है - **'सं भानुना' इति पञ्चर्चं सूक्तमत्रेरार्षं त्रैष्टुभमैन्द्रम्** (ऋ० ५.३७ सा० भा०)।

२. **अदिति (४.१८.७)** - अदिति का उल्लेख प्राय: देवों की माता और आदित्यों की माता के रूप में हुआ है - **अष्टयोनीमष्टपुत्राम्**। --- **अष्टौ पुत्रासो अदिते:** (तैत्ति० आ० १.१३.१-२)। अदिति को पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ आदि सार्वभौम सत्ता के रूप में भी उल्लिखित किया गया है - **"अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्र:"** (ऋ० १.८९.१०)। वेदों में देव शक्तियों का ऋषित्व भी यदा-कदा दृष्टिगोचर होता है। अदिति का ऋषित्व केवल ४.१८.७ में ही मिलता है। अनुक्रमणी आख्यायिका में ऋषि विषयक उल्लेख में इस सम्पूर्ण सूक्त ४.१८ की ऋषिका अदिति को माना गया है - **' इन्द्रोऽदितिर्ऋषिष्ठ्यास्मिन्मिथ: सूक्ते समूचिरे** (अनु० भा० ४.१८)। बृहद्देवताकार ने इन्हें वैश्वदेव सूक्तों की द्रष्ट्री और दक्ष पुत्री के रूप में उल्लिखित किया है - **पार्थो दक्षसुतादिति:** (बृह० ३.५७)।

३. **अर्चनाना आत्रेय (५.६३-६४)** -- अर्चनाना ऋषि को अत्रिवंशज होने से आत्रेय कहा गया है। इनका नामोल्लेख ऋग्वेद ५.६४.७ में हुआ है, जहाँ मित्र एवं वरुण देवों से "अर्चनाना" की रक्षा के लिए प्रार्थना की गयी है - **नरा बिभ्रतावर्चनानसम्** (ऋ० ५.६४.७)। इनका ऋषित्व ऋग्वेद के दो सूक्तों ५,६३-६४ एवं तीन ऋचाओं ८.४२.४-६ में ही विवेचित है। आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है - **आत्रेयोऽर्चनाना नाम ऋषि:** (ऋ० ५.६३ सा० भा०)

४. **अवत्सार काश्यप (५.४४)** -- अवत्सार ऋषि का ऋषित्व ऋक्, यजु, साम तीनों वेदों में अनेक स्थानों पर मिलता है। ऋग्वेद में कुल ९ सूक्तों ५.४४ और ९.५३-६० का ऋषित्व इन्हें प्राप्त है। ऋग्वेद ५.४४.१० में इनका नामोल्लेख हुआ है, जिसमें यजत, सध्रि अवत्सार आदि ऋषियों द्वारा सूर्य स्तुति करने का उल्लेख है। आचार्य सायण ने ऋषि विषयक उल्लेख में इनके ऋषित्व को 'कश्यप-गोत्रीय' कहकर उपन्यस्त किया है - **अवत्सारो नाम ऋषि: स च कश्यपगोत्र:** (ऋ० ५.४४ सा० भा०)। बृहद्देवताकार ने इन्हें वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टा के रूप में स्वीकार किया है- **ऋषिर् अवत्सारश्च नाम यु:** (बृह० ३.५७)।

५. **अवस्यु आत्रेय (५.३१,७५)** -- अवस्यु आत्रेय का ऋषित्व ऋग्वेद ५.३१, ७५ एवं सामवेद ४१८;१७४३-४५ में ही मिलता है। अत्रि वंशज होने से इनके नाम के साथ अपत्यार्थक पद "आत्रेय" संयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में अवस्यु ऋषि का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। इनके द्वारा दृष्ट सूक्त ५.३१ की दसवीं ऋचा में कवि (क्रान्तदर्शी) रूप में इनके द्वारा उत्तम घोड़ों की प्राप्ति का उल्लेख है। ऋग्वेद ४.१६.११ में इनके द्वारा कुत्स ऋषि के साथ इनका उल्लेख हुआ है। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है - **अवस्युर्नाम आत्रेय ऋषि:** (ऋ० ५.३१ सा० भा०)।

६. **अश्वमेध भारत (५.२७)** -- अश्वमेध भारत का ऋषित्व, त्र्यरुण, त्रैवृष्ण और त्रसदस्यु पौरुकुत्स के साथ सम्मिलित रूप से मिलता है। इस सम्पूर्ण सूक्त में इन तीनों ऋषियों के नाम भी उल्लिखित हुए हैं। इस सूक्त की अन्तिम तीन ऋचाओं में 'अश्वमेध' ऋषि का उल्लेख हुआ है। बृहद्देवता ५.१३ में भी इन ऋषियों को सम्मिलित रूप से उल्लिखित किया गया है- **त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च अश्वमेध ऋणंचय:** (बृह० ५.१३)। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में त्र्यरुण को त्रिवृष्ण का पुत्र, त्रसदस्यु को पुरुकुत्स का पुत्र और अश्वमेध को भरत का पुत्र कहकर इनके ऋषित्व को उपन्यस्त किया है **त्रिवृष्णस्य पुत्रस्त्र्यरुण: पुरुकुत्सस्य पुत्रस्त्रसदस्युर्भरतस्य पुत्रोऽश्वमेध एते त्रयोऽपि राजान: संभूयास्य सूक्तस्य ऋषय:** (ऋ० ५.२७. सा० भा०)।

७. **आत्मा (३.२६.७)** -- आत्मा को ऋग्वेद में एक ऋचा ३.२६.७ और सामवेद में एक मंत्र ५९४ का ऋषित्व प्राप्त है, अन्यत्र इनका ऋषित्व दृष्टिगोचर नहीं होता है। 'परमतत्त्व' के रूप में आत्मा शब्द, संहिताओं और परवर्ती साहित्य में अनेक बार उल्लिखित हुआ है। कई बार कुछ ऋचाओं में जिस ऋषि ने अपने ही विषय में वर्णन किया है, वह उस ऋचा का ऋषि और देवता भी कहा जाता है। ऐसे अवसरों पर उस ऋषि को आत्मा की संज्ञा प्रदान की जाती है। बृहद्देवता में इस तथ्य की पुष्टि इन शब्दों में की गई है - **आत्मनो भाववृत्तानि .... । उत्तमस्य तु वर्गस्य य ऋषि: सैव देवता,** (बृह० २.८६)। ऋग्वेद ३.२६.७ में अग्नि द्वारा अपना ही वर्णन किया गया है - **अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्** (ऋ० ३.२६.७)। अत: उपरोक्त ऋचा के ऋषि एवं देवता भी अग्निदेव अथवा आत्मा ही हैं।

*** ऋग्वेद के मण्डल, सूक्त एवं मन्त्र की संख्या**



८. **इन्द्र (४.१८, ४.२६.१-३)** -- वैदिक संहिताओं में अनेक स्थानों पर देवों का भी ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है। सम्भव है ऋषि ने जिस देव की स्तुति अथवा दर्शन से प्रसिद्धि प्राप्त की, उसी देवनाम से वे विख्यात हुए हों। 'इन्द्र' का ऋषित्व ऋग्वेद और यजुर्वेद के अनेक स्थानों पर मिलता है। अनुक्रमणीकार ने 'इन्द्र' के ऋषित्व को प्रमाणित किया है - **'शिष्टा इन्द्रस्यैकादशी च मरुत्वांस्त्विन्द्रो देवता,** (ऋ० १.१६५ सा० भा०)। आचार्य सायण ने भी ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को इस प्रकार प्रमाणित **किया है - 'अयं पन्थाः' इति त्रयोदशर्चमष्टमं सूक्तं त्रैष्टुभम्....इन्द्रोऽदितिर्ऋषिश्चास्मिन्मिथः सूक्ते समूचिरे** (ऋ० ४.१८ सा० भा०)।

९. **इष आत्रेय (५.७-८)** -- इष आत्रेय का ऋषित्व ऋग्वेद के दो सूक्तों तथा यजुर्वेद में भी दृष्टिगोचर होता है। इनके विषय में अधिक विवरण तो नहीं मिलता है; परन्तु इनके नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि ये अत्रि ऋषि के वंशज रहे होंगे, इसीलिए इन्हें **'आत्रेय'** कहा गया है। आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व की चर्चा इन शब्दों में की है - **'सखायः सं वः' इति दशर्चं सप्तमं सूक्तम्। आत्रेय इष ऋषिः** (ऋ० ५.७ सा० भा०)।

१०. **उत्कील कात्य (३.१५-१६)** -- उत्कील कात्य ऋग्वैदिक ऋषियों में अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं। इन्हें ऋग्वेद में मात्र दो सूक्तों का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। यजुर्वेद में भी इनके द्वारा दृष्ट कुछ कण्डिकाएँ हैं। इनका प्रमुख नाम उत्कील है। कत गोत्र में **उत्पन्न होने** के कारण इन्हें कात्य कहा जाता है। आचार्य सायण इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं - **'वि पाजसा पृथुना' इति सप्तर्चं तृतीयं सूक्तं कतगोत्रोत्पन्नोत्कीलस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयम्। कत गोत्रोत्पन्न उत्कीलो नाम ऋषिः** (ऋ० ३.१५)।

११. **उरुचक्रि आत्रेय (५.६९-७०)** -- वैदिक ऋषियों में उरुचक्रि आत्रेय भी प्रख्यात हैं। इनके द्वारा दृष्ट ऋग्वेद में पाँचवें मण्डल का उनहत्तरवाँ एवं सत्तरवाँ सूक्त है। सप्त ऋषि मण्डल के ऋषि अत्रि के वंशज होने से इन्हें आत्रेय कहा जाता है। उपरोक्त सूक्तों में उरुचक्रि आत्रेय द्वारा मित्रावरुण की स्तुति की गई है। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व का उल्लेख किया है- **'त्रीरोचना' इति चतुर्ऋचं त्रयोदशं सूक्तम्। उरुचक्रिर्नामात्रेय ऋषिः** (ऋ० ५.६९ सा० भा०)।

१२. **ऋजिश्वा भारद्वाज (६.४९-५२)** - ऋजिश्वा भारद्वाज का ऋषित्व ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद में भी दृष्टिगोचर होता है। ऋजिश्वा को भरद्वाज गोत्रीय भी कहा जाता है। इसीलिए इनके नाम के साथ भारद्वाज पद संयुक्त किया जाता है। लुडविग के अनुसार ये 'औशिज' के पुत्र हैं, जबकि ऋ० ४.१६.१३, ५.२९.११ में इन्हें विदथिन् का पुत्र 'वैदथिन' माना गया है। ऋजिश्वा को कृष्णगर्भा तथा पिप्रु आदि दैत्यों के विरुद्ध इन्द्र की सहायता करने वाला बताया गया है। आचार्य सायण इनके ऋषित्व को प्रतिपादित करते हुए उल्लेख करते हैं - **'स्तुषे जनम्' इति पञ्चदशर्चं षष्ठं सूक्तं भारद्वाजस्य ऋजिश्वन आर्षं वैश्वदेवम्** (ऋ. ६.४९ सा० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनका ऋषित्व विवेचित है - **प्र वायुं पञ्चदशर्चः पुरोकग्गणो द्वे च प्रतीकोक्ते, प्र वायुमृजिश्वा** (यजु० सर्वा० ३.२१)। बृहद्देवता में भी दो स्थानों पर इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया गया है- **लुशे दुवस्यौ शार्याते गोतमेऽथ ऋजिश्वनि** (बृह० २.१२९) तथा बृहद्देवता में ही दूसरे स्थान (३.५५) पर भी इनका उल्लेख मिलता है - **ऋजिश्वा वसुकर्णश्च शार्यातो गोतमो लुशः।**

१३. **ऋषभ वैश्वामित्र (३.१३-१४)** -- ऋग्वेद में प्राप्त दो सूक्तों (३.१३-१४) में ऋषभ वैश्वामित्र का ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है। इन सूक्तों में अग्निदेव की स्तुति की गई है। ऋषभ वैश्वामित्र गायत्री के द्रष्टा सप्तर्षिमण्डल के गणमान्य ऋषि विश्वामित्र के पुत्र थे, इसी कारण इनके नाम ऋषभ के साथ वैश्वामित्र विशेषण लगाया जाता है। आचार्य सायण ने इस तथ्य को प्रमाणित करते हुए लिखा है - **तथा चानुक्रान्तम्-प्र वः सप्त ऋषभस्त्वानुष्टुभम्' इति। विश्वामित्रपुत्र ऋषभ ऋषिः** (ऋ० ३.१३ सा० भा०)। ऐतरेय ब्राह्मण में भी ऋषभ के विश्वामित्र पुत्र होने का उल्लेख मिलता है - **ततो विश्वामित्र इतरान् पुत्रानाहूय गाथयैवमाज्ञापितवान् - यो मधुच्छन्दानाम यश्चर्षभः योऽपि रेणुः ------ मदीयामाज्ञांशृणुत** (ऐत० ब्रा० ७.१७)।

१४. **ऋषिगण (५.४४)** -- ऋग्वेद (५.४४) के प्रमुख ऋषि तो अवत्सार काश्यप हैं; किन्तु दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवीं ऋचा में अन्य ऋषियों को भी इनके साथ ऋषित्व प्राप्त हुआ है। ये ऋषि क्षत्र, मनस, एवावद, यजत, सध्रि , विश्ववार, मायी, सदापृण, बाहुवृक्त, श्रुतवित् , तर्य एवं सुतंभर। आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को संक्षेप में विवेचित किया है- **यासु ऋक्षु सदापृणबाहुवृक्तादयः श्रुतास्तासु तेऽपि समुच्चीयन्ते।.....अनुक्रान्तं च-तं प्रत्नथा पञ्चोना काश्यपोऽवत्सारोऽन्ये च ऋषयोऽत्र दृष्ट लिङ्गा** (ऋ० ५.४४ सा० भा०)। उपरोक्त ऋषियों के संकेत ऋचाओं में मिलने के कारण उन्हें दृष्ट लिङ्ग कहा जाता है। इनका ऋषित्व यजुर्वेद में भी यदा-कदा दृष्टिगोचर होता है।

१५. **एवया मरुत् आत्रेय (५.८७)** -- एवया मरुत् आत्रेय ऋग्वेद ५.८७ के ऋषि माने जाते हैं। एवया शब्द का अर्थ "तीव्र गति वाला" तथा दूसरा अर्थ 'रक्षक' है। अतः एवया शब्द मरुतों के लिए विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद ५.८७ के प्रत्येक मंत्र में एवया मरुत् शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ 'मरुतों द्वारा संरक्षित' किया गया है। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि ये शब्द (एवया मरुत्) किसी ऋषि का व्यक्तिगत नाम होगा। चूँकि पाँचवें मण्डल के प्रमुख ऋषि अत्रि हैं और यह सूक्त पाँचवें मण्डल

का ही है। अतः अत्रि के साथ सम्बन्ध स्थापित करके इसके साथ 'आत्रेय' विशेषण संयुक्त कर दिया है। आचार्य सायण अपने ऋग्वेद भाष्य में लिखते हैं - **'प्र वो महे' इति नवर्चं पञ्चदशं सूक्तम् एवयामरुदाख्यस्य आत्रेयस्य मुनेरार्षं** (ऋ० ५.८७ सा० भा०)।

१६. कत वैश्वामित्र (३.१७-१८) -- ऋग्वेद में तृतीय मण्डल के सत्रहवें व अठारहवें सूक्त कत वैश्वामित्र ऋषि द्वारा दृष्ट हैं। इनमें उनके द्वारा अग्निदेव की स्तुति की गई है। कत वैश्वामित्र के बारे में अधिक विवरण तो प्राप्त नहीं होता; पर उनके नाम कत के साथ जुड़े वैश्वामित्र विशेषण से प्रतीत होता है कि ये विश्वामित्र के वंशज रहे होंगे। इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं - **'समिध्यमानः' इति पञ्चर्चं पञ्चमं सूक्तमाग्नेयं त्रैष्टुभं वैश्वामित्रस्य कतस्यार्षम्। तदुक्तं - 'समिध्यमानः पञ्चकतो वैश्वामित्रस्तु' इति** (ऋ० ३.१७ सा० भा०)।

१७. कुमार आत्रेय (५.२.१, ३-८, १०-१२) -- ऋग्वेद ५.२.१, ३-८, १०-१२ के ऋषि अत्रि पुत्र कुमार (कुमार आत्रेय) अथवा जन के पुत्र वृश, दोनों माने जाते हैं। आचार्य सायण भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखते हैं - **अत्रेः पुत्रः कुमार ऋषिः जननाम्नः पुत्रो वृशो वोभौ वात्र ऋषी। अत्रानुक्रमणिका - 'कुमारं कुमारो वृशो वा जान उभौ वा** (ऋ० ५.२ सा० भा०) उपरोक्त ऋचाओं के ऋषि के विषय में तीन विकल्प मानने का कोई स्पष्ट कारण विदित नहीं होता। आचार्य सायण ने ऋग्वेद ५.२.१ की टिप्पणी में शाट्यायन ब्राह्मण की एक कथा का उल्लेख किया है, जिसका सारांश है "इक्ष्वाकुवंशीय राजा त्र्यरुण के पुरोहित वृश थे। एक बार राजा के रथ का संचालन वृश कर रहे थे, मार्ग में खेलता एक कुमार रथ के पहिए के नीचे आकर मर गया। इसके दोषी वृश ठहराये गये। वृश ने वार्श नामक सोम से बालक को पुनर्जीवित कर दिया; चूँकि राजा द्वारा वृश पर यह झूठा दोषारोपण किया गया था, अतः उनके (राजा के) घर में अग्नि का तेज (ताप) समाप्त हो गया। पुनः प्रार्थना करने पर वृश ने अग्नि का तेज पुनः प्रकट किया।" इसी तरह की कथा बृहद्देवता ५.१४-२२ में भी है। आचार्य सायण द्वारा - **'अत्रेः' अत्रिगोत्रस्य वृशस्य 'ब्रह्माणि' मन्त्राः स्तोत्राणि वा तं कुमारम् अग्निं वा अव सृजन्तु। अथवा अत्रेः अत्रिगोत्रस्य कुमारं ब्रह्माणि (अवसृजन्तु)** (ऋ० ५.२.६ सा० भा०)। मन्त्र के इस अंश के कारण ही कुमार के साथ सम्भवतः आत्रेयः विशेषण लगा दिया गया। बृहद्देवता में भी अग्नि के ताप को कुमार रूप बताया गया है - **हरः कुमाररूपेण ---- भाषत** (बृह० ५.२१)। इस प्रकार उपरोक्त ऋचाओं में कुमार आत्रेय अथवा (अग्नि) अथवा वृश अथवा दोनों का वैकल्पिक ऋषित्व प्रतिभासित होता है।

१८. कुशिक ऐषीरथि (३.३१) -- कुशिक ऐषीरथि का ऋषित्व यजुर्वेद में तथा ऋग्वेद ३.३१ में भी दृष्टिगोचर होता है। कुशिक सुप्रसिद्ध ऋषि विश्वामित्र के पिता थे। कुशिक इषीरथ के पुत्र थे, इसीकारण इन्हें ऐषीरथि विशेषण से विभूषित किया गया है। इनके वंशजों को कौशिक कहा जाता है। आचार्य सायण ने ऋग्वेद ३.३१ का ऋषि स्पष्टतः कुशिक ऐषीरथि को स्वीकार नहीं किया है; अपितु कुशिक अथवा विश्वामित्र ही इसके ऋषि हैं, ऐसा माना है - **'शासत् कुशिको विश्वामित्र एव वा श्रुतेः' इति। इषीरथस्य पुत्रः कुशिको विश्वामित्र एव वा ऋषिः** (ऋ० ३.३१ सा० भा०)।

१९. गय आत्रेय (५.९-१०) -- गय आत्रेय ऋषि का ऋषित्व ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के नवें व दसवें सूक्त में दृष्टिगोचर होता है। गय नाम के ऋषि सम्भवतः अत्रि ऋषि के पुत्र अथवा उनके वंशज रहे होंगे, इसीलिए उनके नाम के साथ 'आत्रेय' विशेषण लगा है। उपरोक्त सूक्तों में ऋषि ने अग्निदेव की स्तुति की है। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को स्वीकार करते हुए लिखा है - **'त्वामग्ने हविष्मन्तः' इति सप्तर्चं नवमं सूक्तम् आत्रेयस्य गयस्यार्षम्** (ऋ० ५.९ सा० भा०)।

२०. गर्ग भारद्वाज (६.४७) - गर्ग भारद्वाज का ऋषित्व ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में उपन्यस्त है। ऋषि भरद्वाज के पुत्र होने के कारण इनके नाम के साथ 'भारद्वाज' पद संयुक्त होता है। यजुर्वेद भाष्य में आचार्य महीधर द्वारा इन्हें केवल गर्ग कहा गया है - **गर्ग दृष्टा। त्रातारं रक्षितारमिन्द्रम्** (यजु० २०.५० मही० भा०)। जबकि आचार्य सायण ने इन्हें भरद्वाज ऋषि का पुत्र प्रमाणित करते हुए लिखा है - **चतुर्थं सूक्तं भरद्वाजपुत्रस्य गर्गस्यार्षम्** (ऋ० ६.४७ सा० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्र में भी गर्ग भारद्वाज का ऋषित्व निर्दिष्ट है - **त्रातारं गर्गः** (यजु० सर्वा० २.३८)। बृहद्देवता में इनके ऋषित्व का विवेचन इन शब्दों में मिलता है - **भरद्वाजश्च गर्गश्च दृष्टाविन्द्रेण वै पथि** (बृह० ५.१४०)। श्रीमद्भागवत १०.८.१-२० में गर्ग नामक एक ज्योतिर्वेत्ता का वर्णन मिलता है, जिनने श्रीकृष्ण और बलराम का नामकरण संस्कार किया था। श्रीमद्भागवत ४५.२६.२९ के अनुसार गर्ग के द्वारा ही इन दोनों का उपनयन संस्कार व गायत्री मन्त्र की दीक्षा भी सम्पन्न हुई थी।

२१. गातु आत्रेय (५.३२) -- ऋग्वैदिक ऋषियों में गातु आत्रेय का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके द्वारा ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल का बत्तीसवाँ सूक्त दृष्ट है। इनके ऋषित्व के सम्बन्ध में अन्यत्र तो कोई विशेष विवेचन उपलब्ध नहीं होता; किन्तु सायणाचार्य ने इनके ऋषित्व की विवेचना करते हुए ऋग्वेद भाष्य में लिखा है- **'अदर्दरुत्सम्' इति द्वादशर्चमष्टादशं सूक्तम्। गातुर्नामात्रेय ऋषिः** (ऋ० ५.३२ सा० भा०)। इनके नाम के साथ अपत्यार्थक 'आत्रेय' पद संयुक्त होने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये सप्तर्षि-मंडल के प्रख्यात ऋषि अत्रि के वंशज रहे होंगे।



२२. गाथी कौशिक (३.१९-२२) -- ये कुशिक ऋषि के पुत्र तथा विश्वामित्र के पिता हैं,ऐसा सर्वानुक्रमणी में वर्णित है। कुशिक पुत्र होने के कारण ही इन्हें कौशिक भी कहा जाता है। बृहद्देवता में भी इनका कई बार नामोल्लेख हुआ है - **अगस्त्ये बृहदुक्थे च विश्वामित्रे च गाथिनि** (बृह० २.१३१) । बृहद्देवता में ही एक स्थान पर विश्वामित्र को भी गाथिन कहा गया है **तुष्टयेत्यृषी ददृशतुर् ऐन्द्रं गाथिनभार्गवौ** (बृह० ८.७०) । आचार्य सायण इनके ऋषित्व के विषय में उल्लेख करते हुए लिखते हैं - **'अग्नि होतारम्' इति पञ्चर्चं सप्तमं सूक्तं त्रैष्टुभमाग्नेयं गाथिन आर्षम्** (ऋ० ३.१९ सा० भा०) । ऐतरेय ब्राह्मण में भी गाथिन को विश्वामित्र का पिता बताया गया है - **गाथिन शब्दो विश्वामित्रस्य पितरमाचष्टे** (ऐत० ब्रा० ७.१८) ।

२३. गौरिवीति शाक्त्य (५.२९) -- गौरिवीति शाक्त्य का ऋषित्व ऋग्वेद ५.२९ तथा यजुर्वेद में भी दृष्टिगत होता है। गौरिवीति ऋषि शक्ति के वंशज थे,इसी कारण इनके नाम के साथ अपत्यार्थक विशेषण 'शाक्त्य' संयुक्त किया जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इनके नाम का उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णन है-**किंच 'एतत्' सूक्तं गौरिवीत्याख्येन महर्षिणा दृष्टत्वाद् गौरिवीताख्यं भवति** (ऐत० ब्रा० ८.२)। ऐतरेय ब्राह्मण में एक अन्यत्र स्थान पर भी उल्लिखित है-**शक्तिनामकस्य महर्षेः कुले जातः शाक्त्यः गौरिवीतिर्नाम महर्षिः** (ऐत० ब्रा० ३.१९)। शतपथ ब्राह्मण में भी इनके विषय में विवेचन मिलता है-**गौरीवीतिः शाक्त्यः क्षत्रमिवाह किल----राजा** (शत० ब्रा० १२.८.३.७)। आचार्य सायण ने भी इन्हें ऋ० ५.२९ का ऋषि स्वीकार करते हुए अपने ऋग्वेद भाष्य में लिखा है-**शक्तिगोत्रोत्पन्नोगौरिवीतिर्नाम ऋषिः** (ऋ०५.२९ सा० भा०)।

२४. घोर आङ्गिरस (३.३६.१०) -- घोर आङ्गिरस का ऋषित्व ऋग्वेद ३.३६.१० में दृष्टिगोचर होता है। ये ऋषि अङ्गिरस् के वंशज थे,इसीलिए इनके नाम के साथ 'आङ्गिरस' पद संयुक्त है। ब्राह्मण ग्रन्थों,उपनिषदों में इन्हें कृष्ण देवकी पुत्र का गुरु वर्णित किया गया है; परन्तु इनके विषय में यह अवधारणा काल्पनिक प्रतीत होती है; क्योंकि, "अङ्गिरसों के भयंकर वंशज' का एक प्रतिरूप **'भिषज् आथर्वण'** है; जबकि आश्वलायन श्रौत सूत्र १०.७ में **'अथर्वाणो वेदः'** का 'भेषज' से तथा **'अङ्गिरसो वेदः'** का 'घोरम्' से सम्बन्ध बताया गया है---- **स्युस्तानुपदिशत्यथर्वाणो वेदः सोऽयमिति यद्भेषजं निशान्तं स्यात्तन्निगदेत्** ---- । **स्युस्ता उपदिशत्याङ्गिरसो वेदः सोऽयमिति यद्घोरं निशान्तं स्यात्तन्निगदेत्** (आ० श्रौ० सू० १०.७.३-४)। इस प्रकार अथर्व-मन्त्रों के अभिचार आदि प्रकरण के ये प्रतिनिधि माने जाते हैं। काठक संहिता १.१ के अश्वमेध प्रकरण में भी इनका नामोल्लेख है। आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए ऋग्वेद भाष्य में लिखा है-**दशम्या आङ्गिरसो घोर ऋषिः** (ऋ० ३.३६ सा० भा०)

२५. जमदग्नि भार्गव (३.६२.१६-१८) -- जमदग्नि भार्गव की वैदिक ऋषियों में महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा है। ये ऋषि भृगु के वंशज थे, इसीलिए इनके नाम के साथ अपत्यवाचक पद 'भार्गव' संयुक्त किया जाता है।ऋग्वेद ३.६२.१६-१८ में जमदग्नि भार्गव द्वारा मित्रावरुण की स्तुति की गई है। तैत्तिरीय संहिता ३.१.७.३;५.४.११.३ में इनका वर्णन विश्वामित्र के मित्र और वसिष्ठ के विरोधी के रूप में मिलता है। इनकी तथा इनके वंशजों की सफलता और समृद्धि का आधार चतूरात्र यज्ञ (चार रात्रियों में सम्पन्न होने वाला यज्ञ) वर्णित है (पञ्च० ब्रा० २१.१०.५-७)। अथर्ववेद २.३२.३,६.१३७.१ में इनका सम्बन्ध अत्रि,कण्व,असित और वीतहव्य से बताया गया है। हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ में जमदग्नि ऋषि के पुरोहित (अध्वर्यु) होने का वर्णन भी ऐतरेय ब्राह्मण ७.१६ में देखा जा सकता है - **तस्य ह विश्वामित्रो होताऽऽसीज्जमदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माऽयास्य उद्गाता** (ऐत० ब्रा० ७.१६)। शतपथ ब्राह्मण में जमदग्नि ऋषि की दार्शनिक व्याख्या चक्षु के रूप में की गई है-**जमदग्निर्ऋषिरिति । चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदेनेन जगत्पश्यत्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः** (शत० ब्रा० ८.१.२.३)। बृहद्देवताकार ने जमदग्नि ऋषि के ऋषित्व की चर्चा करते हुए लिखा है - **तुष्टाव जमदग्निश्च तेन देवा वृतावृधौ** (बृह० ४.१२५)। आचार्य सायण भी इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए लिखते हैं-**कृत्स्नस्य विश्वामित्र ऋषिरन्त्यस्य तृचस्य जमदग्निर्वा** (ऋ० ३.६२ सा० भा०)।

२६. त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य (४.४२, ५.२६) -- त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य का ऋषित्व ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में भी दृष्टिगोचर होता है। ये राजा पुरुकुत्स के पुत्र थे, इसीलिए इनके नाम के साथ पौरुकुत्स्य विशेषण सम्बद्ध है। इन्हें ऋग्वेद ५.३३.८;७.१९.३; ८.१९.३६ तथा ४.४२.८ में पुरुओं का राजा कहा गया है। त्रसदस्यु का जन्म उनकी माता पुरुकुत्सानी से मुसीबत के समय हुआ था। आचार्य सायण के इस कथन का आशय पुरुकुत्स का उस समय बन्दी होना मानते हैं- **पुरुकुत्सस्य महिषी दौर्गहे बन्धनस्थिते** (ऋ० ४.४२.८ सा० भा०)। पुरुकुत्स दुर्गह के वंशज थे तथा त्रसदस्यु को गिरिक्षित् का वंशज भी माना जाता है। कोश ग्रन्थों में मिले विवरण के अनुसार इस वंश की परम्परा इस क्रम से रही होगी-दुर्गह,गिरिक्षित् ,पुरुकुत्स और त्रसदस्यु। त्रसदस्यु के काल निर्णय का अनुमान इस बात से लग सकता है कि इनके पिता पुरुकुत्स सुदास् के समकालीन थे ,संभवतः सुदास् उनके शत्रु थे; क्योंकि सुदास् के पूर्वज दिवोदास की पुरुओं से शत्रुता के सुनिश्चित प्रमाण मिलते हैं- **भिनत्पुरोनवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि**----(ऋ० १.१३०.७)। त्रसदस्यु, तृक्षि के पूर्वज थे और हिरणिन् उनके पुत्र थे। त्रसदस्यु एक शक्तिशाली राजा थे,उनकी प्रजा (पुरुलोग) सरस्वती नदी के तट पर बसी थी,जिसका संकेत ऋग्वेद ७.९५-९६ में मिलता है। यह मध्यदेश की नदी है। बृहद्देवता में भी त्रसदस्यु का नामोल्लेख कई बार हुआ है। अत्रि की दान स्तुति प्रसंग में त्रसदस्यु के दान का भी उल्लेख है-

अश्वमेधः शतं चोक्ष्णां त्रसदस्युर्धनं बहु (बृह० ५.३१)। बृहद्देवता में ही एक अन्य स्थल पर त्रसदस्यु के राजर्षित्व तथा दानशीलत्व का वर्णन मिलता है- **आग्नेयेस्तुती राजर्षेस्त्रसदस्योरदादिति। पञ्चाशतं वधूनां च-----सप्तती:** (बृह० ६.५१)। आचार्य सायण इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए लिखते हैं- **पुरुकुत्सस्य पुत्रस्त्रसदस्यू राजर्षि:** (ऋ० ४.४२ सा० भा०)।

२७. त्र्यरुण त्रैवृष्ण (५.२७) -- वैदिक ऋषियों में त्र्यरुण त्रैवृष्ण का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। ये (त्र्यरुण) इक्ष्वाकुवंशी राजर्षि त्रिवृष्ण के सुपुत्र थे; इसीलिए इनके नाम के साथ त्रैवृष्ण पद संयुक्त किया गया है। इनका ऋषित्व ऋग्वेद ५.२७ में दृष्टिगोचर होता है। परन्तु इस सूक्त में तीन ऋषियों का सम्मिलित ऋषित्व है। त्रिवृष्ण के पुत्र त्र्यरुण, पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु तथा भरत के पुत्र अश्वमेध उपरोक्त सूक्त के ऋषि अथवा विकल्प में अत्रि ऋषि माने जाते हैं। आचार्य सायण अपने ऋग्वेद भाष्य में स्पष्ट करते हैं - **त्रिवृष्णस्य पुत्रस्त्र्यरुणः पुरुकुत्सस्य पुत्रस्त्रसदस्युर्भरतस्य पुत्रोऽश्वमेध एते त्रयोऽपि राजानः संभूयास्य सूक्तस्य ऋषयः। यद्वा। अत्रिरेव ऋषि:** (ऋ० ५.२७ सा० भा०)। बृहद्देवता में भी त्र्यरुण का नामोल्लेख प्रायः दो बार (५.१४,५.३१ में) मिलता है। उसमें वर्णित कथा के अनुसार एक बार राजर्षि त्र्यरुण अपने पुरोहित वृशजान (जन के पुत्र) के साथ रथ पर बैठकर कहीं जा रहे थे- **ऐक्ष्वाकुस्त्र्यरुणो राजा त्रैवृष्णो रथमास्थित:। -----वृशो जान: पुरोहित:** (बृह० ५.१४)। चलते समय रथ से किसी ब्राह्मण कुमार की मृत्यु हो गई। इस हत्या का दोषी राजा ने पुरोहित वृश को ठहराया। तब वृश ने वार्श नामक साम मन्त्र से कुमार को जीवित कर दिया और क्रोधित होकर अन्य देश में चले गये। इससे राजा (त्र्यरुण) के घर में अग्नि का ताप नष्ट हो गया। राजा दुःखी हुए और पुरोहित को पुनः प्रसन्न किया। पुरोहित ने उनके घर में अग्नि ताप को ढूँढ़ा और पिशाची के रूप में पायी गई उनकी रानी को मन्त्र द्वारा भस्म करके अग्नि ताप को पुनः प्रकट किया। बृहद्देवता में ही एक अन्य स्थल पर राजर्षि त्र्यरुण द्वारा अत्रि को दिये गये दान की चर्चा भी मिलती है- **सौवर्णं शकटं गोभ्यां त्र्यरुणोऽदान्नृपोऽत्रये** (बृह० ५.३१)।

२८. देववात और देवश्रवा भारत (३.२३) -- देववात और देवश्रवा भारत इन दोनों ऋषियों का ऋषित्व यजुर्वेद तथा ऋग्वेद (३.२३) में दृष्टिगत होता है। भरत पुत्र अथवा भरत गोत्रीय होने के कारण इन दोनों (ऋषियों) के नाम के साथ 'भारत' विशेषण प्रयुक्त होता है। ऋग्वेद के उपरोक्त सूक्त में इन दोनों ऋषियों का सम्मिलित ऋषित्व प्रतिपादित है। आचार्य सायण लिखते हैं- **'निर्मथितो देवश्रवा देववातश्च भारतौ तृतीया सतोबृहती' इति। भरतस्य पुत्रौ देवश्रवा देववातश्चेत्युभावस्य ऋषी** (ऋ० ३.२३ सा० भा०)। ऋग्वेद ४.१५.४ में **'दैववाते सृंजये'** पद का प्रयोग हुआ है। दैववाते शब्द से पता चलता है कि यह देववात नामक राजा के पुत्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। जिसका नाम सृंजय था। ऋग्वेद ३.२३.२ में उन देवश्रवा-देववात का वर्णन है, जो भरतवंशी राजा हैं और जिन्होंने दृषद्वती, सरस्वती और आपया नदियों के तट पर यज्ञ सम्पन्न किया था- **देवश्रवा देववातः सुदक्षम्** (ऋ० ३.२३.२)। यजुर्वेद में भी इनके ऋषित्व की पुष्टि इन शब्दों में मिलती है- **आग्नेयी त्रिष्टुप् देवश्रवो देववाताभ्यां दृष्टा** (यजु० ११.३५-मही०)

२९. द्युम्न विश्वचर्षणि आत्रेय (५.२३) -- वैदिक ऋषियों के नामों में कुछ ऐसे शब्दों का उल्लेख भी मिलता है, जो किसी भावना, गुण, क्रिया, स्थिति विशेष अथवा अचेतन वस्तुओं के बोधक हैं। इन शब्दों का अर्थ इतना स्पष्ट है कि इन्हें किसी भी प्रकार किसी ऋषि का संज्ञावाचक नाम मानना उचित प्रतीत नहीं होता। इन नामों में एक ऋषि का नाम है- द्युम्न विश्वचर्षणि आत्रेय। इन्हें ऋग्वेद ५.२३ का ऋषि माना जाता है। ऋग्वेद में द्युम्न शब्द अनेक रूपों में प्रयुक्त हुआ है; परन्तु सायणाचार्य ने इसका अर्थ 'प्रकाश' शक्ति अथवा ऐश्वर्यादि से युक्त' किया है। ऋग्वेद ५.२३.१ के पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त द्युम्न शब्द को तेजस्वी अर्थ का वाचक माना जाता है। इसी तरह 'विश्वचर्षणि' शब्द जिसे द्युम्न ऋषि के विशेषण रूप में प्रयुक्त किया गया है, यह भी ऋग्वेद में कई स्थानों पर मिलता है। आचार्य सायण ने इस पद को इन्द्र एवं अग्नि को विशेषण मानकर 'सभी मनुष्यों द्वारा पूजनीय' अथवा "सभी मनुष्यों का दृष्टा (देखने वाला)" आदि अर्थ किये हैं; किन्तु ऋग्वेद ५.२३.४ के पूर्वार्द्ध **"स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे"** का अर्थ बताते हुए वे विश्वचर्षणि पद को ऋषि का वैयक्तिक नाम मान लेते हैं; जबकि वैदिक ऋषि एक परिशीलन पृष्ठ ९८ के अनुसार विश्वचर्षणि पद का अर्थ 'अग्नि' मानते हुए यह अर्थ किया जा सकता है 'वह प्रसिद्ध अग्नि शत्रु के हिंसक तेज को धारण करता है।' उपरोक्त दोनों मन्त्रों (ऋग्वेद ५.२३.१ तथा ५.२३.४) को देखने पर विदित होता है कि ये दोनों शब्द व्यक्ति विशेष के वाचक प्रतीत नहीं होते; वरन् ये दोनों द्युम्न एवं विश्वचर्षणि क्रमशः प्रकाशक एवं सर्वद्रष्टा अथवा सर्वपूज्य अर्थ के वाचक स्वरूप मात्र विशेषण वाचक शब्द हैं; किन्तु इन्हें ऋषि माना गया है। सम्भवतः इनके नाम के साथ आत्रेय पद इसलिए जोड़ा गया होगा; क्योंकि पाँचवें मण्डल के प्रमुख ऋषि अत्रि हैं। आचार्य सायण अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके (द्युम्न विश्वचर्षणि के) ऋषित्व के सन्दर्भ में लिखते हैं- **अत्रानुक्रमणिका - 'अग्ने द्युम्नो विश्वचर्षणि:' इति। द्युम्न ऋषि:** (ऋ० ५.२३.सा० भा०)।

३०. धरुण आङ्गिरस (५.१५) -- वैदिक मन्त्रों के सम्बन्ध में अग्नि आदि देवताओं को जिनकी अन्य मन्त्रों में स्तुति की गई है, ऋषि माना गया है, इसी क्रम में धरुण आङ्गिरस को भी ऋग्वेद ५.१५ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। वाजसनेयी संहिता ८.५१ में सबको धारण करने वाली होने से अग्नि को भी धरुण कहा गया है- **धरुण धारयितारमग्निं**। धरुण के साथ सम्भवतः आङ्गिरस विशेषण इसलिए संयुक्त किया जाता है; क्योंकि अग्नि को अंङ्गिरा द्वारा उद्‌भूत माना जाता है। आचार्य सायण इनके ऋषित्व को

प्रमाणित करते हुए लिखते हैं- **तत्र 'प्र वेधसे' इति पञ्चर्चं प्रथमं सू[illegible]म् । अत्रानुक्रमणिका- प्र वेधसे पञ्चाङ्गि[illegible] रसो[illegible]' इति** (ऋ० ५.१५ सा० भा०)।

३१. नद्य (नदी ऋषिका) (३.३३.४. ६.८.१०) -- कुछ वैदिक ऋचाओं में नदियों का ऋषित्व भी दृष्टिगोचर होता है। जैसे ऋग्वेद ३.३३.४,६८.१० में ऋषिका के रूप में नदियाँ प्रतिष्ठित हैं। यों तो ऋग्वेद ३.३३ के ऋषि विश्वामित्र हैं; किन्तु विश्वामित्र और नदियों के संवाद में जो ऋचाएँ नदियों द्वारा विश्वामित्र को सम्बोधित हैं; उनमें नदियों का ऋषित्व झलकता है। **'यस्य वाक्यं स ऋषिः'** सूत्र के अनुसार यह उचित भी है; जैसे - **आ ते कारो शृणवामा वचांसि** - - - **कन्या शश्वचै ते** (ऋ० ३.३३.१०)। बृहद्देवताकार ने नदियों के ऋषित्व को स्वीकारते हुए लिखा है- **लोपामुद्रा च नद्यश्च यमीनारी च शश्वती । - - सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः** (बृह० २.८३-८४)। आचार्य सायण भी नदियों के ऋषित्व का प्रतिपादन अपने ऋग्वेद भाष्य में करते हैं- **अत्र चतुर्थीषष्ठयष्टमी दशमीनां नदीवाक्यत्वान्नद्य एव ऋषयः** (ऋ० ३.३३ सा० भा०)।

३२. नर भारद्वाज (६.३५-३६) - नर भारद्वाज, भरद्वाज गोत्रीय ऋषि हैं। अस्तु, इनके नाम के साथ अपत्यवाचक विशेषण 'भारद्वाज' संयुक्त किया जाता है। इनके द्वारा दृष्ट ऋचाओं में इन्द्रदेव की स्तुति की गई है। इनके ऋषित्व का प्रतिपादन ऋग्वेद की अनुक्रमणी में मिलता है, जिसमें इन्हें ६.३५-३६ का द्रष्टा बताया गया है। आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए लिखा है - **'कदा भुवन्' इति पञ्चर्चं द्वादशं सूक्तं नरस्यार्षं त्रैष्टुभमैन्द्रम्** (ऋ० ६.३५ सा० भा०)

३३. पायु भारद्वाज (६.७५) - वैदिक ऋषियों में पायु भारद्वाज का नाम भी प्रख्यात है। ये सप्तर्षि मण्डल के सुप्रसिद्ध ऋषि भरद्वाज के वंशज हैं। आचार्य महीधर ने तो इन्हें भरद्वाजसुत कहा है - **भरद्वाज सुतः पायुः संग्रामाङ्गानि प्रत्यृचं स्तौति** (यजु० २९.३८ मही० भा०)। इनके द्वारा दृष्ट मन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद में मिलते हैं, जो प्रायः आयुधों से सम्बन्धित हैं। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने पायुभारद्वाज का ऋषित्व तथा इनके द्वारा दृष्ट मन्त्रों को संग्राम के अङ्गों से सम्बन्धित प्रमाणित किया है - **जीमूतस्येव पायुर्भारद्वाजः संग्रामाङ्गान्यृक्शोऽस्तौषीत् सन्नाहं, कार्मुकं,** ________ (यजु० सर्वा० ३.१२)। इनके ऋषित्व के सन्दर्भ में सायणाचार्य का मत है - **चतुर्दशं सूक्तं भारद्वाजस्य पायोरार्षम् ।** ________ **जीमूतस्यैवैकोना पायुर्भारद्वाजः** ________ (ऋ० ६.७५ सा० भा०)। बृहद्देवता में भी पायु का नामोल्लेख मिलता है - **ऋषिस्तौ तु तथेत्युक्त्वा पायुं पुत्रमभाषत** (बृह० ५.१२७)।

३४. पुरुमीळ्ह और अजमीळ्ह सौहोत्र (४.४३-४४) -- पुरुमीळ्ह और अजमीळ्ह सौहोत्र का ऋषित्व यजुर्वेद तथा ऋग्वेद ४.४३-४४ में देखा जा सकता है। ये दोनों (पुरुमीळ्ह और अजमीळ्ह) ऋषि सुहोत्र के पुत्र हैं। आचार्य सायण इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं- **"क उ श्रवत्सप्त पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ - - - "** (ऋ० ४.४३ सा० भा०)। इसी कारण इनके नाम के साथ अपत्य वाचक विशेषण सौहोत्र संयुक्त किया जाता है। पुरुमीळ्ह का नाम ऋग्वेद में अन्यत्र सुदीति, गोतम और अत्रि के साथ लिया गया है। किन्तु इनके साथ सौहोत्र विशेषण नहीं लगा है। बृहद्देवता ५.६२ में पुरुमीळ्ह और तरन्त की चर्चा है, जो ऋषि विददश्व के पुत्र थे- **तरन्त पुरुमीळ्हौ तु राजानौ वैददश्व्यवृषी** (बृह० ५.६२); किन्तु ये पुरुमीळ्ह अलग प्रतीत होते हैं; क्योंकि ये तो विददश्व ऋषि के पुत्र हैं। इस प्रकार ये सभी पुरुमीळ्ह अलग-अलग व्यक्तित्व वाले मालूम होते हैं। जिन पुरुमीळ्ह और अजमीळ्ह ने ऋग्वेद ४.४३-४४ दर्शन किया है; वे अलग (सौहोत्र) हैं। आचार्य सायण इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए लिखते हैं **'सुहोत्रपुत्रौ पुरुमीळ्हाजमीळ्हावृषी '** (ऋ० ४.४३ सा० भा०)।

३५. पूरु आत्रेय (५.१६-१७) -- पूरु आत्रेय का ऋषित्व ऋग्वेद ५.१६-१७ में दृष्टिगत होता है। ऋग्वेद में जन और उनके राजा का नाम पूरु वर्णित है। ऋग्वेद १.१०३८ में पूरु का उल्लेख यदु, अनु, द्रुह्य और तुर्वशों के साथ किया गया है। युद्ध में राजा सुदास् की विजय के सन्दर्भ में (ऋ० ७.१८.१३) उन्हें तृत्सुओं का शत्रु वर्णित किया गया है; परन्तु उपरोक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट नहीं होता कि यह वही पूरु आत्रेय हैं, जिनने ऋग्वेद ५.१६-१७ का दर्शन किया है अथवा कोई अन्य व्यक्ति हैं। ऋग्वेद ५.१७.१ के पूरु जन के रूप में अभिप्रेत प्रतीत होते हैं- **आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यां समूतये। अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे** (ऋ० ५.१७.१. सा० भा०)। निरुक्त ७.२३, निघण्टु २.३ में पूरु का अर्थ 'मनुष्य' दिया गया है- **पुरवः पूरयितव्या मनुष्याः** (नि० ७.२३)। किन्तु किसी भी स्थल पर यह अर्थ उपयुक्त नहीं बैठता। पूरु के साथ आत्रेय विशेषण का संयुक्त होना यह द्योतित करता है कि ये पूरु (ऋषि) अत्रि ऋषि के वंशज रहे होंगे। इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं **'आ यज्ञैः' इति पञ्चर्चं तृतीयं सूक्तमात्रेयस्य पूरोरार्षमाग्नेयम्** (ऋ० ५.१७ सा० भा०)।

३६. पौर आत्रेय (५.७३-७४) -- वैदिक ऋषियों में 'पौर आत्रेय' भी प्रतिष्ठित ऋषि हैं, पौर अर्थात् पूरु का वंशज। ऋग्वेद ८.३.१२ में देवराज इन्द्र के द्वारा सहायता पाने वाले एक पूरु राजा का नाम 'पौर' वर्णित है। सिकन्दर का विरोध करने वाले पौरस को इसी पौरवंश का प्रतिनिधि माना जाता है। ओल्डेनबर्ग ने ऋग्वेद ५.७४.४ में इसी तथ्य को स्वीकार किया है। इनके नाम के साथ आत्रेय पद संयुक्त होने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि या तो ये अत्रि ऋषि के वंशज होंगे अथवा ऋग्वेद पंचम मण्डल के प्रमुख ऋषि अत्रि होने के कारण इन्हें आत्रेय विशेषण से विभूषित किया गया होगा। इस सन्दर्भ में कोई स्पष्ट प्रमाण

प्राप्त नहीं होते। आचार्य सायण इनके ऋषित्व का प्रतिपादन अपने ऋग्वेद भाष्य में इन शब्दों में करते हैं- **तत्र 'यदद्य स्थः' इति दशर्चं प्रथमं सूक्त- मात्रेयस्य पौरनाम्नः आर्षमानुष्टुभमाश्विनम्** (ऋ० ५.७३ सा० भा०)।

३७. प्रजापति वाच्य अथवा प्रजापति वैश्वामित्र (३.३८;३.५४-५६) -- ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं का वैकल्पिक ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद ३.३८; ३.५४-५६ के ऋषि के सम्बन्ध में भी यही बात है। ऋग्वेद ३.३८ के ऋषित्व निर्धारण में तीन विकल्प हैं। प्रथम प्रजापति वाच्य (वाक् अथवा वाणी के पुत्र) अथवा प्रजापति वैश्वामित्र (विश्वामित्र गोत्रीय-प्रजापति) ऋषि हैं। द्वितीय - उक्त दोनों सम्मिलित रूप से ऋषि हैं; तृतीय विश्वामित्र ही उक्त सूक्त के ऋषि हैं। आचार्य सायण उक्त तथ्य को स्वीकारते हुए लिखते हैं - **विश्वामित्र गोत्रः प्रजापतिर्वाचः पुत्रः प्रजापतिर्वा ऋषिः। तावुभावपि समुच्चितावस्य सूक्तस्य ऋषी इति द्वितीयः पक्षः। अथवा नोभावपि किन्तु विश्वामित्र एवेति तृतीयः पक्षः** (ऋ० ३.३८ सा० भा०)। प्रजापति के वाच्य होने की पुष्टि बृहद्देवता में मिलती है- **असतश्च सतश्चैव..... प्रजापतिः। यदक्षरं च वाच्यं च ...... शाश्वतम्** (बृह० १.६२)। यद्यपि विश्वामित्र के पुत्रों में प्रजापति के नाम के किसी व्यक्ति का उल्लेख नहीं मिलता; किन्तु प्रजापति के साथ वैश्वामित्र विशेषण संयुक्त होने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये विश्वामित्र के वंश में ही किसी पीढ़ी में उत्पन्न हुए होंगे। ऋग्वेद ३.५४-५६ में भी प्रजापति को दो प्रकार का माना गया है, इसी कारण ऋग्वेद की सर्वानुक्रमणी में प्रजापति को 'द्व्यधिकोक्तगोत्रः' कहा गया है। आचार्य सायण भी लिखते हैं **अत्रेयमनुक्रमणिका-'इमं महे द्व्यधिकोक्तगोत्रः प्रजापतिर्हि वैश्वदेवं ह' इति** (ऋ० ३.५४ सा० भा०)। ऋग्वेद की अनुक्रमणी में तीन प्रकार के प्रजापति ऋषि वर्णित हैं - प्रजापति वाच्य, प्रजापति वैश्वामित्र तथा प्रजापति परमेष्ठी। ऋग्वेद १०.१२९ तथा यजुर्वेद ३३.७४ में प्रजापति परमेष्ठी का ऋषित्व मिलता है।

३८. प्रतिक्षत्र आत्रेय (५.४६) -- प्रतिक्षत्र आत्रेय का ऋषित्व ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में भी विवेचित है। ऋषि अत्रि के वंशज होने के कारण इनके नाम के साथ आत्रेय पद संयुक्त किया जाता है। आचार्य महीधर ने अपने यजुर्वेद भाष्य में इनका ऋषित्व उपन्यस्त किया है - **प्रतिक्षत्र द्रष्टा** - (यजु० ३३.४८ मही० भा०)। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने भी इनके ऋषित्व को स्वीकार किया है - **इन्द्र प्रतिक्षत्र** - - - (यजु० सर्वा० ३.२०)। जब वैश्वदेव की स्तुति आरम्भ की जाती है, उसके चतुर्थ दिन इनके द्वारा दृष्ट ऋचाओं का विनियोग किया जाता है। आचार्य सायण ने भी अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है-**'हयो न' इत्यष्टर्चं द्वितीयं सूक्तं प्रतिक्षत्रस्यार्षम्** (ऋ० ५.४६ सा० भा०)।

३९. प्रतिप्रभ आत्रेय (५.४९) -- वैदिक ऋषियों के क्रम में 'प्रतिप्रभ आत्रेय' का नाम भी परिगणित किया जाता है। इनके द्वारा दृष्ट ऋग्वेद के सूक्त ५.४९ में वैश्वदेव की स्तुति की गई है। इनके विषय में कहीं विशेष विवरण तो प्राप्त नहीं होता; परन्तु आचार्य सायण ने अपने भाष्य में इनका ऋषित्व स्वीकारते हुए इनका नाम उपन्यस्त किया है-**'देवं वः' इति पञ्चर्चं पञ्चमं सूक्तमात्रेयस्य प्रतिप्रभस्यार्षम्** (ऋ० ५.४९ सा० भा०)।

४०. प्रतिभानु आत्रेय (५.४८) -- वैदिक ऋषियों में प्रतिभानु आत्रेय भी प्रतिष्ठित हैं। इनके द्वारा दृष्ट ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल का अड़तालीसवाँ सूक्त है, जिसमें विश्वेदेवा देवता की स्तुति की गई है। ये अत्रि ऋषि के वंशज रहे होंगे अथवा पाँचवें मंडल के प्रमुख ऋषि अत्रि होने के कारण इनके नाम को आत्रेय विशेषण से विभूषित किया जाता है। इनके विषय में अन्यत्र तो कोई विवरण नहीं मिलता; किन्तु सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को उपन्यस्त किया है - **'कदु प्रियाय' इति पञ्चर्चं चतुर्थं सूक्तम्। प्रतिभानुर्नामात्रेय ऋषिः। अत्रानुक्रमणिका-'कदु पञ्च प्रतिभानुर्जागतम्'** इति (ऋ० ५.४८ सा० भा०)।

४१. प्रतिरथ आत्रेय (५.४७) -- प्रतिरथ आत्रेय का ऋषित्व ऋग्वेद ५.४७ में दृष्टिगोचर होता है। उक्त सूक्त में इनके द्वारा विश्वेदेवों की स्तुति की गई है। वाचस्पत्यम् पृष्ठ ४४४९ के अनुसार ये वज्राश्व के पुत्र हैं, इनके नाम के साथ आत्रेय पद संयुक्त होने के दो कारण सम्भव हैं - प्रथम तो यह कि ये ऋषि अत्रि के वंशज हो सकते हैं - दूसरा यह कि ऋग्वेद पंचम मण्डल के प्रमुख ऋषि अत्रि माने जाते हैं; अतः इनके साथ प्रतिरथ का सम्बन्ध जोड़ दिया गया हो। इनके सन्दर्भ में अन्यत्र तो विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता; किन्तु आचार्य सायण के ऋग्वेद भाष्य में इनका ऋषित्व इन शब्दों में प्रतिपादित है- **तत्र 'प्रयुञ्जती' इति सप्तर्चं तृतीयं सूक्तम् प्रतिरथस्यार्षं त्रैष्टुभम्** (ऋ० ५.४७ सा० भा०)।

४२. प्रभूवसु आङ्गिरस (५.३५-३६) -- वैदिक ऋषियों में प्रभूवसु आङ्गिरस भी प्रख्यात हैं। ऋग्वेद पाँचवें मण्डल के ३५ वें व ३६ वें सूक्त के मंत्र इन्हीं के द्वारा दृष्ट हैं। इनमें इनके द्वारा इन्द्रदेव की स्तुति की गई है। ऋषि अङ्गिरा के वंशज होने के कारण इनके नाम के साथ 'आङ्गिरस' विशेषण संयुक्त किया जाता है। इनके विषय में अन्यत्र तो कोई विशेष विवरण उपलब्ध नहीं होता; परन्तु आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को उपन्यस्त किया है- **अङ्गिरो गोत्रः प्रभूवसुर्नाम ऋषिः। .... 'यस्तेऽष्टौ प्रभूवसुराङ्गिरसः पङ्क्त्यन्तम्' इत्यनुक्रान्तम्** (ऋ० ५.३५ सा० भा०)। इससे अगले सूक्त ५.३६ में इनके ऋषित्व को प्रतिपादित करते हुए वे लिखते हैं - **आङ्गिरसः प्रभूवसुर्ऋषिः** (ऋ० ५.३६ सा० भा०)।



४३. प्रयस्वान् अत्रिगण (५.२०) -- प्रयस्वान् अत्रिगण का ऋषित्व ऋग्वेद में मात्र एक सूक्त (५.२०) में दृष्टिगोचर होता है। उक्त सूक्त में इनके द्वारा अग्निदेव की स्तुति की गई है। इनके ऋषित्व के सन्दर्भ में आचार्य सायण ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है; उनसे प्रतीत होता है कि एक ही समय में प्रयस्वान् अत्रि संज्ञक अनेक व्यक्ति रहे होंगे, जिनने मिलकर इस सूक्त का दर्शन किया होगा - **'यमग्ने' इति चतुर्ऋचं षष्ठं सूक्तमत्रीणां प्रयस्वतामार्षमाग्नेयम्** (ऋ० ५.२० सा० भा०) यदि प्रयस्वान् , अत्रि ऋषि के वंशज रहे होते, तो आचार्य सायण आत्रेयः शब्द प्रयुक्त करते। इनके ऋषित्व के सन्दर्भ में अन्यत्र कोई विशेष विवरण उपलब्ध नहीं होता।

४४. बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु और विप्रबन्धु गौपायन अथवा लौपायन (५.२४.१-४) ऋग्वेद ५.२४.१-४ में क्रमशः बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु एवं विप्रबन्धु गौपायन अथवा लौपायन का ऋषित्व निर्दिष्ट है। ऋ० ५.२४ में चार द्विपदा ऋचायें हैं अर्थात् एक-एक मंत्र में दो-दो द्विपदा ऋचाएँ हैं। एक-एक ऋचा के क्रमशः बन्धु, सुबन्धु आदि ऋषि हैं। बन्धु , सुबन्धु , श्रुतबन्धु तथा विप्रबन्धु को गौपायन कहा जाता है। अर्थात् ये 'गोप' या 'गौप' वंश के ऋषि हैं। इसी प्रकार लौपायन शब्द का अर्थ भी लगाया जा सकता है; परन्तु लोप या लौप वंश कहीं सुना नहीं जाता। बृहद्देवता में (७८३-१०३ तक) बन्धु , सुबन्धु की एक कहानी की विस्तृत चर्चा है। उससे भी इनके ऋषि होने की पुष्टि होती है - **व्युदस्य बन्धुप्रभृतीन् द्वैपदा येऽत्रिमण्डले। - - - - भूत्वा गत्वा गोपायनानभि** (बृह० ७८६-८७)। आचार्य सायण भी इनके ऋषित्व का उल्लेख अपने ऋग्वेद भाष्य में करते हैं - **अत्रानुक्रमणिका - 'अग्ने त्वं गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्चैकर्चा द्वैपदम् इति। - - - - इत्युक्तत्वाच्चतस्रो द्विपदा विराजः। बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुः विप्रबन्धुश्च क्रमेण चतसृणामृषयः। ते च गौपायना लौपायना वा** (ऋ० ५.२४ सा० भा०)। यजुर्वेद तथा सामवेद में भी इनका ऋषित्व वर्णित है।

४५. बभ्रु आत्रेय (५.३०) -- वैदिक ऋषियों में बभ्रु आत्रेय ऋषि प्रख्यात हैं। ऋग्वेद के पाँचवें मंडल का तीसवाँ सूक्त इन्हीं के द्वारा दृष्ट है। अत्रि ऋषि के पुत्र होने के कारण इन्हें आत्रेय कहा जाता है। बृहद्देवता में एक कथा आती है, जिसमें वर्णन है कि राजा ऋणंचय ने बभ्रु को सोम यज्ञ के ऋत्विज् के रूप में चुना और विपुल मात्रा में दक्षिणा प्रदान की। इस कथा में भी बभ्रु के अत्रि पुत्र होने का उल्लेख है - **अत्रेः सुतमृषिं बभ्रुम् आर्त्विज्याय ऋणंचयः। सहस्र दक्षिणे सोमे वव्रे तं सोऽप्ययाजयत्** (बृह० ५.३३)। सायण ने भी इनके ऋषित्व को स्वीकारा है - **'क्व स्य बभ्रुर्ऋणंचयोऽप्यत्र राजा स्तुतः' इति। बभ्रुर्ऋषिः** (ऋ० ५.३०)।

४६. बाहुवृक्त आत्रेय (५.७१-७२) -- अत्रि गोत्रीय बाहुवृक्त का ऋषित्व ऋग्वेद ५.७१-७२ में निर्दिष्ट है। ऋषि अत्रि के गोत्र में उत्पन्न होने के कारण इनके नाम के साथ आत्रेय पद संयुक्त कर इन्हें बाहुवृक्त आत्रेय कहा जाता है। उपरोक्त दोनों सूक्तों में मात्र तीन-तीन ऋचाएँ हैं, जिनमें मित्रावरुण की स्तुति की गई है। बाहुवृक्त आत्रेय के विषय में कहीं कोई विशेष विवरण उपलब्ध नहीं होता; परन्तु सायणाचार्य ने इनके ऋषित्व को ऋग्वेद भाष्य में उपन्यस्त किया है-**'आ नो गन्तम्' इति तृचात्मकं पञ्चदशं सूक्तं बाहुवृक्तस्यात्रेयस्यार्षं** (ऋ० ५.७१ सा० भा०)। अगले सूक्त के प्रारम्भ में वे फिर लिखते हैं - **'आ मित्रे वरुणे' इति तृचात्मकं षोडशं सूक्तं बाहुवृक्तस्यार्षमौष्णिहं मैत्रावरुणम्** (ऋ० ५.७२ सा० भा०)।

४७. बुध और गविष्ठिर आत्रेय (५.१) -- बुध और गविष्ठिर आत्रेय का ऋषित्व ऋग्वेद (५.१; १०.१५०.५), अथर्ववेद (४.२९) तथा यजुर्वेद (१५.२४) में भी दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद पंचम मंडल में इन दोनों ऋषियों को अनुक्त गोत्र वाला होने के कारण तथा पंचम मण्डल के प्रमुख ऋषि अत्रि होने के कारण आत्रेय मान लिया गया है। इस तथ्य की पुष्टि करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं **अत्रेयमनुक्रमणिका - ' अबोधि द्वादश बुधगविष्ठिरौ' इति। पञ्चमे मण्डलेऽनुक्तगोत्रमात्रेयं विद्यादिति परिभाषितत्वादात्रेयौ बुधगविष्ठिरावृषी** (ऋ० ५.१ सा० भा०)। इस सूक्त के अन्तिम मंत्र ५.१.१२ में ऋषि गविष्ठिर का नाम भी उल्लिखित है- **गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत्** (ऋ० ५.१.१२)।

४८. भरद्वाज बार्हस्पत्य (६.१-३०) - ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद तीनों वेदों में भरद्वाज बार्हस्पत्य का ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है। पंचविंश ब्राह्मण १५.३.७ के अनुसार भरद्वाज दिवोदास के पुरोहित थे। काठक संहिता २१.१० में भरद्वाज द्वारा प्रतर्दन को अपना राज्य दे दिये जाने का उल्लेख है। ऋषि भरद्वाज अङ्गिरस् के पौत्र तथा बृहस्पति के पुत्र थे। इस तथ्य को बृहद्देवताकार ने इन शब्दों में प्रमाणित किया है - **योऽङ्गिरेभ्य ऋषिर्जज्ञे तस्य पुत्रो बृहस्पतिः। बृहस्पतेर्भरद्वाजो विदथीति य उच्यते** (बृह० ५.१०२)। महीधराचार्य ने इनके ऋषित्व को विवेचित करते हुए लिखा है - **सवितृदेवत्या त्रिष्टुब्भरद्वाज दृष्टा** (यजु० ८.६ मही० भा०)। ये ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल के (१-३० ऋचाओं के) द्रष्टा हैं।

४९. मृक्तवाहा द्वित आत्रेय (५.१८) -- मृक्तवाहा द्वित आत्रेय का ऋषित्व ऋ० ५.१८ में उपन्यस्त है। पाँच ऋचाओं वाला यह सूक्त अग्निदेव को समर्पित है। इसके द्वित ऋषि हैं, जिन्हें अत्रिवंशज होने के कारण आत्रेय कहा जाता है। 'मृक्तवाहा' , द्वित आत्रेय ऋषि का विशेषण है। आचार्य सायण इस तथ्य को स्पष्ट भी करते हैं - **मृक्तवाहा इति विशेषणविशिष्ट आत्रेयो द्वित ऋषिः** (ऋ० ५.१८ सा० भा०)। इस सूक्त की दूसरी ऋचा का अर्थ स्पष्ट करते हुए सायणाचार्य जी मृक्तवाहा शब्द का अर्थ लिखते हैं-

मृक्तं शुद्धं हविर्देवेभ्यो वहति प्रापयतीति मृक्तवाहा: (ऋ० ५.१८.२) । मृक्त अर्थात् शुद्ध, वाहा अर्थात् ले जाने वाले - अर्थात् शुद्ध हवि को देवताओं तक पहुँचाने वाले । नियमित रूप से शुद्ध हवि से यजन करने के कारण द्वित आत्रेय ऋषि को मृक्तवाहा विशेषण से विभूषित किया जाता है । इनके विषय में अन्यत्र कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता ।

५०. यजत आत्रेय (५.६७-६८) -- यजत आत्रेय का ऋषित्व ऋग्वेद ५.६७-६८ में दृष्टिगोचर होता है । ५-५ ऋचाओं के ये दोनों सूत्र मित्रावरुण देवता को समर्पित हैं । सप्तर्षि मण्डल के प्रख्यात ऋषि अत्रि के गोत्र में उत्पन्न होने के कारण इन्हें 'आत्रेय' कहा जाता है । ऋग्वेद ५.४४.१२ में भी ऋषिनाम के रूप में यजत शब्द मिलता है; किन्तु ये 'यजत' आत्रेय नहीं हैं- **सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा** (ऋ० ५.४४.१२) । आचार्य सायण इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए लिखते हैं- **अत्रेयमनुक्रमणिका 'बळित्था पञ्च यजत:' इति । यजतो नामात्रेय ऋषि:** (ऋ० ५.६७ सा० भा०) ।

५१. रातहव्य आत्रेय (५.६५-६६) -- रातहव्य आत्रेय का ऋषित्व ऋग्वेद ५.६५-६६ में निर्दिष्ट है । उक्त सूक्तों में ऋषि ने मित्रावरुण की स्तुति की है । अत्रि ऋषि के वंशज होने के कारण इन्हें भी आत्रेय विशेषण से विभूषित किया जाता है । गुणवाचक संज्ञा के आधार पर इस नाम (रातहव्य) का अर्थ है-रातं हव्यं येन् अर्थात् दिया है हव्य जिसने, वह रातहव्य है । इसका भावार्थ हुआ आहुति के योग्य पदार्थों को देनेवाला । इनके जीवन परिचय के विषय में अन्यत्र कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता । आचार्य सायण ही अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हैं-**'यश्चिकेत' इति षड्चं नवमं सूक्तं रातहव्यस्यात्रेयस्यार्षं मैत्रावरुणम्** (ऋ० ५.६५ सा० भा०) ।

५२. वव्रि आत्रेय (५.१९) -- वैदिक ऋषियों में वव्रि आत्रेय भी ऋग्वेद ५.१९ के ऋषि के रूप में प्रतिष्ठित हैं । इनके नाम के साथ आत्रेय पद संयुक्त होने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये भी ऋषि अत्रि के वंशज रहे होंगे । यह भी संभव है कि पाँचवें मण्डल के प्रमुख ऋषि अत्रि होने के कारण इनका उनसे सम्बन्ध स्थापित करके इन्हें आत्रेय उपनाम दे दिया गया हो । वव्रि शब्द का एक अर्थ है- **वृणोति इति वव्रिः** । अर्थात् जो ठीक चुनाव (वरण) करता है, वह वव्रि है । निरुक्त २.९ में रूप ,शरीर को भी वव्रि कहा गया है, **वव्रिरिति रूपनाम** (नि० २.९) । पर इस अर्थ की यहाँ संगति नहीं बैठती । आचार्य सायण इनके ऋषित्व को प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं - **अत्रेयमनुक्रमणिका - 'अभ्यवस्था वव्रिर्गायत्र्या ....इति । आत्रेयो वव्रिर्ऋषि:** (ऋ० ५.१९ सा० भा०) ।

५३. वसुश्रुत आत्रेय (५.३-६) -- वैदिक ऋषियों की शृंखला में वसुश्रुत आत्रेय का ऋषित्व भी दृष्टिगोचर होता है । ऋग्वेद में इनके द्वारा दृष्ट चार सूक्त (ऋ० ५.३-६) हैं । जिनमें प्रारंभिक दो एवं अन्तिम (चौथा) सूक्त अग्निदेव के लिए तथा तीसरा आप्री सूक्त है, जो इध्म आदि देवों के लिए समर्पित है । अत्रिकुल में उत्पन्न होने के कारण इन्हें भी आत्रेय कहते हैं । वसुश्रुत शब्द का सामान्य अर्थ है - **'वसुश्रुतं यस्य'**, अर्थात् ज्ञान ही जिसका धन है ऐसा व्यक्ति । इनके ऋषित्व का प्रतिपादन अन्यत्र कहीं दृष्टिगत नहीं होता । आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है - **'त्वमग्ने वरुण' इति द्वादशर्चं तृतीयं सूक्तमात्रेयस्य वसुश्रुतस्यार्षं त्रैष्टुभमाग्नेयम्** (ऋ० ५.३. सा० भा०) । यजुर्वेद ३.२ के ऋषि भी वसुश्रुत ही हैं; परन्तु ये आत्रेय हैं अथवा अन्य कोई, यह स्पष्ट संकेत नहीं मिलते ।

५४. वसूयु आत्रेय (५.२५-२६) - वसूयु आत्रेयों का ऋषित्व ऋग्वेद ५.२५-२६ में उपन्यस्त है । उक्त सूक्तों में इनके द्वारा अग्निदेव की स्तुति की गई है । अत्रि वंशज वसूयु नामक नौ ऋषियों ने इन सूक्तों का दर्शन किया है, इसीलिए बहुवचनान्त प्रयोग में इन्हें वसूयव आत्रेय कहते हैं । आचार्य सायण इनके ऋषित्व का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं- **'अच्छा वो नव वसूयव आनुष्टुभम् इति । आत्रेया वसूयुनामान ऋषय:** (ऋ० ५.२५ सा० भा०) । यजुर्वेद १७८ में भी वसूयव का ही ऋषित्व वर्णित है; किन्तु ये वसूयव 'आत्रेय' नहीं हैं । आचार्य महीधर ने अपने यजुर्वेद भाष्य में आग्नेयी ऋचा के द्रष्टा वसूयु का उल्लेख किया है - **आग्नेयी गायत्री वसूयुदृष्टा** (यजु० १७८ मही० भा०) ।सर्वानुक्रमणी में भी इनके ऋषित्व का वर्णन मिलता है- **अग्ने पावक वसूयव:** (यजु० सर्वा० २.२४) । सामान्यतः वसूयु का अर्थ है- वसुओं को चाहने वाले । बसाने वाले साधनों को वसु कहते हैं । धन, प्राण, यज्ञ ये सब वसु ही हैं । पौराणिक ग्रन्थों में वसुओं की संख्या आठ बताई गई है; इसीलिए अष्टवसु शब्द प्रयुक्त होता है ।उक्त सूक्तों (ऋ० ५.२५-२६) में ऋषि ने, अग्निदेव से उत्तम धन, उत्तम शक्ति और निरन्तर यज्ञ की भावना प्राप्त करने की प्रार्थना की है ।

५५. वामदेव गौतम (४.१-४१, ४५-५८) -- वामदेव गौतम का ऋषित्व चारों वेदों में मिलता है । परन्तु यजुर्वेद और अथर्ववेद में इनके नाम के साथ अपत्यार्थक पद 'गौतम' संयुक्त नहीं है; जबकि ऋग्वेद और सामवेद में इनके नाम के साथ 'गौतम' उपनाम संयुक्त है । ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के अधिकांश मंत्रों के द्रष्टा वामदेव गौतम हैं, जो कि ऋषि गोतम के पुत्र हैं । ऋग्वेद ४.४.११ की व्याख्या में आचार्य सायण ने स्पष्ट उल्लेख किया है- **पितु: उत्पादयितु: गोतमात् ऋषे: सकाशात् मा मां वामदेवं अन्वियाय प्राप्तम्** । ऋग्वेद ४.५.७ के ऋषित्व की चर्चा करते हुए बृहद्देवताकार भी वामदेव का उल्लेख करते हैं- **तेनैनमाह क्षेत्रस्य वामदेव स्तुवन्पतिम्** (बृह० २.४१) । ऋग्वेद में इनके ऋषित्व को विवेचित करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं - **वामदेव्ये चतुर्थे मंडले पञ्चानुवाका: ।...... मन्त्र द्रष्टा वामदेव ऋषि:** (ऋ० ४.१ सा० भा०) । आचार्य महीधर भी अपने यजुर्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व



को प्रमाणित करते हैं - **आग्नेयी गायत्री वामदेवदृष्टा जपे विनियुक्ता** (यजु० ३.३६ मही० भा०)। यजुर्वेद सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनका ऋषित्व विवेचित है - **अयमिह वामदेवो जगतीम्** (यजु० सर्वा० १.१२)। वामदेव गौतम ऋषि, कश्यप, गौतम अंहोमुक्, दधिक्रावा, बृहदुक्थ और मूर्धन्वान् से सम्बन्धित बताये गये हैं।

५६. विश्ववारा आत्रेयी (५.२८) -- वैदिक ऋषिकाओं में अत्रिगोत्रोत्पन्ना विश्ववारा आत्रेयी का नाम प्रख्यात है। ऋग्वेद का सूक्त ५.२८ इन्हीं के द्वारा दृष्ट है, जिसमें उनके द्वारा अग्निदेव की स्तुति की गई है। बृहद्देवताकार ने महिला द्रष्ट्रियों के नामों का उल्लेख करते हुए इनका नाम भी निर्दिष्ट किया है- **घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपनिषन्निषत्**। .... **स्वसादितिः** (बृह० २.८२)। विश्ववारा आत्रेयी के ऋषित्व का विवेचन आचार्य सायण ने भी अपने ऋग्वेद भाष्य में किया है- **अत्रेयमनुक्रमणिका 'समिद्धो विश्ववारात्रेयी.....'इति। अत्रिगोत्रोत्पन्ना विश्ववारानामिका अस्य सूक्तस्य ऋषिः** (ऋ० ५.२८.सा० भा०)। इनके विषय में अन्यत्र कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता।

५७. विश्वसामा आत्रेय (५.२२) -- अत्रिगोत्रीय ऋषियों में विश्वसामा आत्रेय का नाम भी उपन्यस्त है। इन्हें ऋग्वेद के मात्र एक सूक्त (५.२२) का ऋषित्व प्राप्त हुआ है, जिसमें अग्निदेव की स्तुति की गई है। उक्त सूक्त की प्रथम ऋचा में इनका नाम भी उल्लिखित है-**प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे** (ऋ० ५.२२.१)। आचार्य सायण इनके ऋषित्व को विवेचित करते हुए लिखते हैं - **'प्र विश्वसामन्' इति चतुर्ऋचमष्टमं सूक्तम्। आत्रेयो विश्वसामा ऋषिः** (ऋ० ५.२२ सा० भा०)। वैदिक कोश पृष्ठ ४८६ पर भी इनके ऋषित्व की चर्चा की गई है। अन्यत्र इनका विवरण अनुपलब्ध है।

५८. विश्वामित्र गाथिन (३.१-१२;२४-२५) -- विश्वामित्र गाथिन का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है; परन्तु ऋग्वेद एवं सामवेद में ही इनका अपत्यार्थक नाम गाथिन का उल्लेख मिलता है; यजुर्वेद और अथर्ववेद में गाथिन उपनाम अनुल्लिखित है। विश्वामित्र, गाथि (गाधि) के पुत्र एवं कुशिक के पौत्र हैं। इसीलिए उन्हें गाथिन और कौशिक कहा जाता है। निरुक्त में उनके पितामह के राजा होने का वर्णन मिलता है- **प्रज्ञया वाऽवनाय कुशिकस्य सूनुः। कुशिको राजा बभूव** (नि० २.२५)। आचार्य सायण ने इनके (विश्वामित्र के) ऋषित्व के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए उन्हें गाथिनः (गाथि अथवा गाधि का पुत्र) कहा है-**'अग्ने सहस्व' इति .... ऋषिर्गाथिनो विश्वामित्रः** (ऋ० ३.२४ सा० भा०)। विश्वामित्र ने शुनः शेप को अपना दत्तक पुत्र बनाकर उनका नाम देवरात रखा। इसका विस्तृत वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण ७.१७-१८ में देखा जा सकता है। बृहद्देवता में विश्वामित्र का नाम लगभग छः बार आया है। इनके ऋषित्व को बृहद्देवताकार ने भी प्रतिपादित किया है- **मित्र इत्याह तेनैनं विश्वामित्र स्तुवन्स्वयम्** (बृह० २.४९)। गायत्री महामन्त्र के द्रष्टा के रूप में भी ये प्रख्यात हैं। आचार्य महीधर इस सन्दर्भ में उल्लेख करते हैं - **विश्वामित्र दृष्टा सावित्री गायत्रीजपे विनियुक्ता** (यजु० ३.३५ मही० भा०)। सर्वानुक्रमणी में भी इनका ऋषित्व विवेचित है- **तत्सवितुर्विश्वामित्रः सावित्रीं गायत्रीं** (यजु० सर्वा० १.१३)।

५९. वीतहव्य आङ्गिरस (६.१५) - वैदिक ऋषियों के क्रम में वीतहव्य आङ्गिरस का भी नामोल्लेख मिलता है। अङ्गिरा गोत्रीय होने से इन्हें आङ्गिरस कहते हैं। इनका ऋषित्व ऋग्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में दृष्टिगत होता है। ऋग्वेद ६.१५ के ऋषित्व का विवेचन करते हुए आचार्य सायण ने वीतहव्य के वैकल्पिक ऋषि के रूप में भरद्वाज को स्वीकार किया है **पञ्चदशं सूक्तमाङ्गिरसस्य वीतहव्यस्य भरद्वाजस्य वार्षमाग्नेयम्** (ऋ० ६.१५ सा० भा०)। इस सूक्त की दूसरी ऋचा में वीतहव्य का नामोल्लेख भी है - **स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्‌भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे**। ऋ० ६.१५.३ मे वीतहव्य और भारद्वाज दोनों नाम मिलते हैं। इस ऋचा में आचार्य सायण ने भरद्वाज शब्द को वीतहव्य ऋषि का विशेषण माना है - **भरद्वाजाय संभृतहविर्लक्षणान्नाय वीतहव्याय** (ऋ० ६.१५.३ सा० भा०)। दूसरे विकल्प के रूप में भरद्वाज को ऋषि मानकर वीतहव्य को उनका विशेषण माना है- **वीतं गमितं हव्यं हविर्येन तादृशाय भरद्वाजायेति वा योज्यम्** (ऋ० ६.१५.३ सा० भा०)। सामवेद में भी इसी सूक्त के तीन मन्त्र संकलित हैं। वहाँ भी इसी तरह का ऋषि विकल्प है। अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों में वीतहव्य का ऋषित्व वर्णित है; किन्तु वहाँ केवल वीतहव्य शब्द ही आया है, उसके साथ आङ्गिरस विशेषण संयुक्त नहीं है।

६०. वृश जार (जान) (५. २) -- द्र० कुमार आत्रेय

६१. शंयु बार्हस्पत्य (६.४४-४६, ४८) - शंयु बार्हस्पत्य का ऋषित्व चारों वेदों में प्रख्यात है। बृहस्पति पुत्र होने के कारण इन्हें बार्हस्पत्य की संज्ञा प्रदान की जाती है। ऋग्वेद और सामवेद में जहाँ इनके नाम के साथ बार्हस्पत्य विशेषण संयुक्त है, वहीं यजुर्वेद और अथर्ववेद में केवल शंयु शब्द ही मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इनके नाम का उल्लेख मिलता है - **शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान्** .... (कौषी० ब्रा० ३.९)। शतपथ ब्राह्मण में भी उन्हें एक आचार्य के रूप में वर्णित किया गया है - **शंयुर्ह वै बार्हस्पत्योञ्जसा यज्ञस्य संस्थां**. _____(शत० ब्रा० १.९.१;२४)। महीधराचार्य ने शंयु के ऋषित्व का विवेचन इस प्रकार किया है - **तिस्रोऽपि वास्तुदेवत्याः शंयुदृष्टाः** (यजु० ३.४१ मही० भा०)। सर्वानुक्रम में शंयु के नाम के साथ बार्हस्पत्य शब्द भी उल्लिखित है - **तिस्रोऽपि वास्तवीः शंयुर्बार्हस्पत्यः** (यजु० सर्वा० १.१४)। बृहद्देवता में भी इनके ऋषित्व की चर्चा की गई है - **पितरं स्तौति**

शंयुश्च तृचस्यान्त्ये .. ___ (बृह० ५.१०९)। आचार्य सायण ने इनका ऋषित्व इन शब्दों द्वारा प्रमाणित किया है - **चतुर्दशर्चं तृतीयं सूक्तं बृहस्पतिपुत्रस्य शंयोरार्षमैन्द्रम्** (ऋ० ६.४६ सा० भा०)।

६२. **शुनहोत्र भारद्वाज (६.३३-३४)** - शुनहोत्र भारद्वाज एक वैदिक ऋषि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। ऋग्वेद में इनके द्वारा दृष्ट मन्त्र ६.३३-३४ में उपलब्ध होते हैं, जिनमें इन्द्रदेव की स्तुति की गई है। ऋषि भरद्वाज के पुत्र होने से इन्हें भारद्वाज विशेषण से विभूषित किया जाता है। पौराणिक कोश पृष्ठ ४९८ में इनके भरद्वाजपुत्र तथा ऋषि होने का उल्लेख मिलता है। आचार्य सायण इनके ऋषित्व का विवेचन इन शब्दों में करते हैं - **'य ओजिष्ठ:' इति पञ्चर्चं दशमं सूक्तं शुनहोत्रस्यार्षं त्रैष्टुभमैन्द्रम्** (ऋ० ६.३३)।

६३. **श्यावाश्व आत्रेय (५.५२-६१, ५.८१-८२)** -- श्यावाश्व आत्रेय का ऋषित्व ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद में भी दृष्टिगोचर होता है। किन्तु, इनका अपत्यार्थक नाम आत्रेय केवल ऋग्वेद एवं सामवेद में ही उल्लिखित है। ये अत्रि के पौत्र एवं अर्चनानस् के पुत्र थे- **श्यावाश्वश्चात्रिपुत्रस्य पुत्रः खल्वर्चनानसः** (बृह० ५.५२)। इसी कारण उन्हें (अत्रिकुल उत्पन्न) आत्रेय कहा जाता है। बृहद्देवता में ५.५० से ५.८० तक एक कथा में श्यावाश्व का विस्तृत वर्णन मिलता है (जिसका उल्लेख ऋ० ५.६१ में भी है) जिसमें उल्लेख है कि एक बार राजा रथवीति दार्भ्य के यज्ञ को सम्पन्न कराने श्यावाश्व अपने पिता अर्चनानस् के साथ गये। यज्ञ समाप्ति पर अर्चनानस् ने राजा की पुत्री को अपनी पुत्रवधू बनाने का प्रस्ताव रखा; पर श्यावाश्व द्वारा ऋषित्व प्राप्त न किए जाने के कारण वे उसे (राजकन्या को) पुत्रवधू न बना सके; तब श्यावाश्व ने मरुद्गणों की सहायता से कुछ ऋचाओं का दर्शन करके ऋषित्व प्राप्त किया और राजकन्या को पत्नी रूप में प्राप्त किया। आचार्य सायण इनके ऋषित्व को विवेचित करते हुए लिखते हैं - **अत्रेयमनुक्रमणिका - 'प्र श्यावाश्व धृष्णुया' इति सप्तदशर्चं प्रथमं सूक्तं श्यावाश्वस्यार्षं मारुतं ह तत्पङ्क्तिः षष्ठ्यन्त्या च' इति। आत्रेयः श्यावाश्व ऋषिः** (ऋ० ५.५२ सा० भा०)। यजुर्वेद में इनका ऋषित्व इन शब्दों में उपन्यस्त है- **सवितृ देवत्या जगती श्यावाश्वदृष्टा** (यजु० १२.३ मही० भा०)। सर्वानुक्रमणी में भी इनका ऋषित्व वर्णित है - **विश्वा श्यावाश्वः सावित्रीं जगतीम्** (सर्वा० २.७)।

६४. **श्रुतवित् आत्रेय (५.६२)** -- श्रुतवित् आत्रेय द्वारा दृष्ट मंत्र ऋग्वेद ५.६२ में मिलते हैं, जिनमें मित्रावरुण देवता की स्तुति की गई है। अत्रि गोत्रीय होने से इन्हें भी अपत्यवाचक नाम 'आत्रेय' से जाना जाता है। ऋग्वेद ५.४४.१२ में अन्य ऋषियों के साथ इनका नामोल्लेख भी मिलता है- **सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद् बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा**। सामान्यतः श्रुतवित् शब्द का अर्थ है- **श्रुतं वेत्ति** अर्थात् शास्त्र के मर्म को जानने वाला। शास्त्रों के मर्मज्ञ होने के कारण इनका नाम श्रुतवित् पड़ा। इनके विषय में अन्यत्र कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती; किन्तु आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य में श्रुतवित् के ऋषित्व का उल्लेख किया है-**'ऋतेन ऋतम्' इति नवर्चं षष्ठं सूक्तमात्रेयस्य श्रुतविद आर्षं त्रैष्टुभम् मैत्रावरुणम्** (ऋ० ५.६२ सा० भा०)।

६५. **संवरण प्राजापत्य (५.३३-३४)** -- संवरण प्राजापत्य का ऋषित्व ५.३३-३४ तथा यजुर्वेद १०.२२-२३ में उपन्यस्त है। इनके द्वारा दृष्ट मंत्र इन्द्रदेव से सम्बन्धित हैं। इन्हें प्रजापति का पुत्र माना जाता है। इसीलिए आचार्य सायण ऋग्वेद में ऋषि विषयक विवरण में इस तथ्य की पुष्टि करते हैं- **प्रजापतिपुत्रः संवरणाख्यः ऋषिः** (ऋ० ५.३३ सा० भा०)। ऋग्वेद ५.३३.१० में इनके नाम का उल्लेख भी मिलता है- **मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन्**। आचार्य महीधर ने भी अपने यजुर्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को विवेचित किया है- **इन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप् संवरणदृष्टा** (यजु० १०.२२ मही० भा०)। सर्वानुक्रमणी में भी इनका ऋषित्व प्रमाणित है- **मा ते संवरणः प्राजापत्य ऐन्द्रीं त्रिष्टुभं** (यजु० सर्वा० १.३९)।

६६. **सत्यश्रवा आत्रेय (५.७९-८०)** -- सत्यश्रवा आत्रेय द्वारा दृष्ट मंत्र ऋग्वेद तथा सामदेव में मिलते हैं। इनके द्वारा दृष्ट मंत्रों में उषा और अश्विन् देवों की स्तुति की गई है। सत्यश्रवा को अत्रिगोत्रीय 'आत्रेय' कहा गया है। आचार्य सायण इनके ऋषित्व को विवेचित करते हुए इन्हें आत्रेय निरूपित करते हैं **'महे नो अद्य' इति दशर्चं सप्तमं सूक्तमात्रेयस्य सत्यश्रवस आर्षं पाङ्क्तमुषस्यम्** (ऋ० ५.७९ सा० भा०)। किन्तु कुछ स्थलों पर आचार्य सायण ही सत्यश्रवा को वय्यपुत्र वाय्य निरूपित करते हैं- **हे तादृशि देवि वाय्ये वय्यपुत्रे सत्यश्रवसि मय्यनुगृहाणेत्यर्थः** (ऋ० ५.७९.१ सा० भा०)। इस सूक्त की अगली ऋचा से भी यही प्रतिभासित होता है कि ये वय्य पुत्र हैं - **सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते** (ऋ० ५.७९.२ सा० भा०)। उपरोक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि सत्यश्रवा ऋषि वय्य के पुत्र ही होंगे; किन्तु ऋग्वेद पंचम मण्डल के प्रमुख ऋषि अत्रि होने के कारण इनका नाम उनसे सम्बद्ध करके 'आत्रेय' उपनाम दे दिया गया होगा।

६७. **सदापृण आत्रेय (५.४५)** -- सदापृण आत्रेय का ऋषित्व ऋग्वेद ५.४५ में निर्दिष्ट है, जिसमें विश्वेदेवों की स्तुति की गई है। अत्रि गोत्र में उत्पन्न होने के कारण इनके नाम के साथ अपत्यार्थक पद 'आत्रेय' संयुक्त किया जाता है। आचार्य सायण इनके ऋषित्व को अपने ऋग्वेद भाष्य में विवेचित करते हैं - **तत्र 'विदा दिवः' इत्येकादशर्चं प्रथमं सूक्तम्। सदापृणो नामात्रेय ऋषिः** (ऋ० ५.४५ सा० भा०)। ऋग्वेद ५.४४.१२ में भी इनका नामोल्लेख मिलता है- **सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद् बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा**। इस ऋचा की व्याख्या में आचार्य सायण ने सदापृण का अर्थ सर्वदा दानशील किया है। सदा देने वाले (दानशील) होने के कारण इन्हें सदापृण नाम से विभूषित किया गया है।



६८. सप्तवध्रि आत्रेय (५.७८) -- सप्तवध्रि आत्रेय द्वारा दृष्ट मंत्र ऋग्वेद ५.७८ तथा ८.७३ में दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमें अश्विनीकुमारों की स्तुति की गई है। पौराणिक कोश पृष्ठ ५११ में एक कथा का उल्लेख है कि सप्तवध्रि के सात भाई थे, जो इनसे जलते थे। वे नहीं चाहते थे कि इनकी वंशवृद्धि हो, इसलिए वे प्रतिदिन रात्रि में इन्हें एक पिंजड़े में बन्द कर ताला लगा देते थे। इससे दुखित सप्तवध्रि ने अश्विनीकुमारों की स्तुति की, जिनकी कृपा से ये प्रतिदिन रात्रि को पिंजड़े से बाहर निकल जाते थे और प्रातः होने से पहले ही पुनः पिंजड़े में पहुँच जाते थे। ऋग्वेद ५.७८.५ में बन्धन मुक्ति के लिए सप्तवध्रि द्वारा अश्विनों की स्तुति से यह तथ्य स्पष्ट होता है- **वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्याइव। श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम्** (ऋ० ५.७८.५)। अत्रि वंशज होने से इन्हें 'आत्रेय' कहा जाता है। ऋग्वेद ५.७८.४ की व्याख्या में आचार्य सायण, सप्तवध्रि की स्वीकारोक्ति लिखते हैं, जिसमें उनने अत्रि को अपना पिता स्वीकार किया है- **अत्रिरस्मत्पिता यद्यदा वां...योषिदिव।** इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए सायण ने लिखा है- **अश्विनौ नव सप्तवध्रिस्त्र्युष्णिगादि चतुर्थी त्रिष्टुप्पंचानुष्टुभः इति। सप्तवध्रिर्नामात्रेय ऋषिः** (ऋ० ५.७८)।

६९. सस आत्रेय (५.२१) -- ऋग्वेद ५.२१ में सस आत्रेय का ऋषित्व निर्दिष्ट है। इस सूक्त में अग्निदेव की स्तुति की गई है। इनके नाम के साथ भी आत्रेय पद संयुक्त है, जिससे इनके अत्रि गोत्रीय अथवा अत्रि से संबद्ध होने का बोध होता है। आचार्य सायण इनके ऋषित्व को विवेचित करते हैं - **मनुष्वत्त्वेति चतुर्ऋचं सप्तमं सूक्तमात्रेयस्य ससस्यार्षं** (ऋ० ५.२१ सा० भा०)। इस सूक्त के चतुर्थ मंत्र में ससस्य पद प्रयुक्त हुआ है। इस मंत्र में अग्निदेव से प्रार्थना की गई है कि वे ऋत तथा सस के मूलस्थान में आसन ग्रहण करें - **ऋतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः** (ऋ० ५.२१.४)। सस शब्द के विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग अर्थ मिलते हैं। जैसे ऋग्वेद ३.५.६ में सस को घृत से युक्त चर्म- **'ससस्य चर्म घृतवत् पदं वेः'** कहा गया है तथा ऋग्वेद ४.५.७ में चमकीले सस के सुन्दर चर्म का उल्लेख है- **ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेः**। वैदिक कोश पृष्ठ ५५२ में सस को पौधा या घास विशेष बताया गया है; साथ ही इसके सोमलता और याज्ञिक पलाल होने की सम्भावना भी व्यक्त की गई है। अतः उपरोक्त स्थलों पर सस शब्द विचारणीय है। इन प्रयोगों से यह अनुमान होता है कि यह किसी ऋषि का वैयक्तिक नाम न होगा, वरन् मंत्र के सस शब्द से इस सूक्त का ऋषि प्रख्यात हुआ होगा और पंचम मण्डल के प्रमुख ऋषि अत्रि से इस शब्द को सम्बद्ध करके आत्रेय विशेषण दे दिया गया होगा।

७०. सुतम्भर आत्रेय (५.११-१४) -- सुतम्भर आत्रेय का ऋषित्व तीनों वेदों (ऋक्, यजु , साम) में उपन्यस्त है; किन्तु ऋग्वेद एवं सामवेद में ही इनका अपत्यार्थक नाम आत्रेय प्रयुक्त मिलता है। सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इनका ऋषित्व प्रमाणित किया है-**अग्निस्तोमेनाग्नेयं तृचं गायत्र सुतंभरो**_____(यजु० सर्वा० ३.१)। आचार्य महीधर इनके ऋषित्व के सन्दर्भ में उल्लेख करते हैं- **विश्वामित्र विश्वरूपदृष्टाः** (यजु० २२.१५ मही० भा०)। ऋग्वेद ५.४४.१३ में विशेषण (सोम भरण करने वाला) के रूप में इस शब्द का प्रयोग हुआ है- **सुतंभरो यजमानस्य सत्पतिः**; किन्तु आचार्य सायण ने उसे यागनिर्वाहक एवं ऋषि के रूप में भी स्वीकार करते हुए इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है-__**सुतंभरो यागनिर्वाहक एतन्नामा ऋषिः** .... **भवतीत्यर्थः** (ऋ० ५.४४.१३ सा० भा०)। सायणाचार्य ने इनके ऋषित्व को स्वीकार करते हुए एक अन्य स्थल पर भी उल्लेख किया है-**'जनस्य गोपाः' इति षड्चमेकादशं सूक्तमात्रेयस्य सुतंभरस्यार्षं जागतमाग्नेयम्** (ऋ० ५.११ सा० भा०)।

७१. सुहोत्र भारद्वाज (६.३१-३२) - सुहोत्र ऋषि का ऋषित्व ऋक् - यजु ,साम तीनों वेदों में दृष्टिगत होता है। ऋग्वेद और सामवेद में इन्हें, भरद्वाज गोत्रीय होने से भारद्वाज कहा गया है। आचार्य सायण इनका ऋषित्व वर्णित करते हुए लिखते हैं - **'अभूरेकः' इति पञ्चर्चमष्टमं सूक्तं भरद्वाजस्य सुहोत्रस्यार्षम्** (ऋ० ६.३१ सा० भा०)। यजुर्वेद में सुहोत्र दृष्ट चार मंत्र मिलते हैं। आचार्य महीधर एवं सर्वानुक्रम सूत्रकार ने इनके ऋषि विषयक विवेचन में लिखा है - **सुहोत्र दृष्टा वैश्वदेवी गायत्री** (यजु० ३३.७७ मही० भा०)। **उप न सुहोत्रो वैश्वदेवीम्** (यजु० सर्वा० ३.२२)। सुहोत्र को पुरुमीळ्ह और अजमीळ्ह का पिता कहा गया है। आचार्य सायण इस सन्दर्भ लिखते हैं - **सुहोत्रपुत्रौ पुरुमीळ्हाजमीळ्हावृषी** (ऋ० ४.४३ सा० भा०)।

७२. स्वस्त्य आत्रेय (५.५०-५१) -- स्वस्त्य आत्रेय ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के कुछ सूक्तों के मन्त्रद्रष्टा हैं। अत्रिगोत्रीय होने के कारण इन्हें आत्रेय कहा जाता है। बृहद्देवता में इनके ऋषित्व का विवेचन इन शब्दों में मिलता है- **स्वस्त्यात्रेयः परुच्छेपः कक्षीवान् गाधिनौर्वशौ** .... (बृह० ३.५६)। सर्वानुक्रम में इन्हें ऋषि स्वीकार करते हुए सर्वानुक्रम सूत्रकार ने लिखा है- **विश्वो देवस्य स्वस्त्यात्रेयः सावित्रीमनुष्टुभमृक्सामयोः कृष्णाजिने** (यजु० सर्वा० १.१७)। यजुर्वेद के भाष्यकार आचार्य महीधर ने भी इन्हें मन्त्रद्रष्टा निर्दिष्ट किया है- **सवितृ देवत्यानुष्टुप् स्वस्त्यात्रेयदृष्टा** (यजु० ४८ मही० भा०)। ऋग्वेद के सायण भाष्य में भी इनका ऋषित्व निरूपित है- **विश्वोदेवस्येति पंचर्चं षष्ठं सूक्तं स्वस्त्यात्रेयमुनेरार्षं वैश्वदेवम्** (ऋ० ५.५० सा० भा०)।



परिशिष्ट- २

ऋग्वेद भाग- २ के देवताओं का संक्षिप्त परिचय

१. अग्नि (५.१)— द्र० -ऋ० भाग-१ ।

२. अग्नि-इन्द्र (३.२५.४) —द्र० -ऋ० भाग-१ ।

३. अग्नि-मरुत् (५.६०) — वैदिक देवों में अग्नि- मरुत् देवता को युग्मदेव के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है । ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल का साठवाँ सूक्त इसी देवयुग्म को समर्पित है । इसमें इन्हें रक्षा के निमित्त आहूत किया गया है । इन्हें उत्तम, मध्यम एवं निम्न लोक अर्थात् द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी लोक का देवता माना गया है । यथा- **यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिविष्ठ । अतो नो रुद्रा उत वा न्व१स्याग्ने वित्ताद्धविषो यद् यजाम** (ऋ० ५.६०.६) । इनके देवत्व को आचार्य सायण ने इन शब्दों में स्वीकार किया है- **मरुद्देवताकमग्निमरुद्देवताकं वा** (ऋ० ५.६० सा० भा०) । ऋग्वेद में मरुत् और अग्निदेव की सहस्तुति का वर्णन करते हुए बृहद्देवताकार अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि- **अग्ने मरुद्भिरित्यस्यां मरुद्भिः सह संस्तुतौ** (बृह० ५.४८) ।

४. अग्नि-वरुण (४.१. २-५) — ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में अग्नि और वरुण की देवता युग्म के रूप में सहस्तुति की गई है । अग्निदेव से प्रार्थना की गई है कि वे वरुणदेव के क्रोध को शान्त करके हमारी रक्षा करें । यथा- **त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्** (ऋ० ४.१.४) । वैसे अन्यत्र अग्नि और वरुण स्वतन्त्र देवता हैं, किन्तु ऋग्वेद ४.१.२-५ तक अग्नि और वरुण की वैकल्पिक देव के रूप में स्तुति की जाने के कारण इन्हें देवता-युग्म के रूप में भी स्वीकार किया गया है। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में स्वीकार किया है- **परिभाषयाग्निर्देवता द्वितीयाद्याश्तस्रो वरुणदेवत्या वा** (ऋ० ४.१ सा० भा०) । बृहद्देवता में भी इनका देवत्व वर्णित है_______ **तिसृष्वग्निर्निपातभाक् । वरुणेनाभिसंस्तौति आहुरन्येनिपातिनम्** (बृह० ४.१२८) ।

५. अत्रि (५.४०.६-९) — अत्रि यों तो एक ऋषि के रूप में विख्यात हैं; किन्तु ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल की कुछ ऋचाओं में इन्हें देवता भी स्वीकार किया गया है । वैसे तो पाँचवें मण्डल के ४० वें सूक्त के देवता इन्द्र हैं; किन्तु इसकी ६ से ९ ऋचाओं में अत्रि की प्रशस्ति की गई है, जिसमें इन्होंने स्वर्भानु के आक्रमण से सूर्य को बचाया था और उसे पुनः प्रकाश प्रदान किया था । अस्तु, इन ऋचाओं का वर्ण्य विषय अत्रि होने के कारण इन्हें इन ऋचाओं का देवता मान लिया गया है । यथा - **स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवोदिवो वर्तमाना अवाहन् । गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः** (ऋ० ५.४०.६) । आचार्य सायण ने इनके देवत्व की अभिव्यञ्जना इन शब्दों में की है- **अत्रेः स्तूयमानत्वात् षष्ठ्याद्याः अत्रिदेवताकाः अत्र्यार्षेयाश्च**_____(ऋ० ५.४० सा० भा०) । अत्रि शब्द का बहुवचन रूप भी कई जगह मिलता है । इससे सूक्त के निर्माता ऋषियों के कुल का बोध होता है- **तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः** (ऋ० ५.३९.५) । अत्रि शब्द की व्युत्पत्ति अद् धातु से हुई है । जिसे भक्षणार्थक माना गया है । इसी अर्थ में एक बार अत्रि शब्द का प्रयोग अग्नि के विशेषण रूप में भी हुआ है- **अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः** (ऋ० २.८.५) ।

६. अभ्यावर्ती चायमान (६.२७.८) — अभ्यावर्ती चायमान का देवत्व ऋ० ६.२७.८ में दृष्टिगोचर होता है । इस सूक्त (६.२७) में इनकी 'दान स्तुति' का वर्णन है । ये राजा चायमान के पुत्र हैं । इसी कारण इनके साथ अपत्यवाचक पद चायमान संयुक्त किया जाता है । बृहद्देवता मे एक कथा वर्णित है, जिसमें राजा अभ्यावर्ती चायमान का उल्लेख सृञ्जय पुत्र प्रस्तोक के साथ मिलता है । ये दोनों वारशिखों द्वारा पराजित होने पर ऋषि भरद्वाज के पास आये - **अभ्यावर्ती चायमानः प्रस्तोकश्चैव सार्ञ्जयः ।** _______ **वारशिखैर्युधि** (बृह० ५.१२४) । तदुपरान्त ऋषि भरद्वाज ने राजा चायमान की सहायता की कामना से इन्द्रदेव की स्तुति की । इससे प्रसन्न होकर इन्द्र हर्युपीया नदी के तट पर अभ्यावर्ती के पास आये और उन्हें साथ लेकर उनका (वारशिखों का) वध किया । तदनन्तर अभ्यावर्ती चायमान और सार्ञ्जय दोनों राजा वारशिखों को विजित करके अपने गुरु भरद्वाज के पास आये और उन्हें प्रचुर धन प्रदान किया - **तौ तु वारशिखाञ्जित्वा ततोऽभ्यावर्तिसार्ञ्जयौ । भरद्वाजाय गुरवे ददतुर्विविधं वसु** (बृह० ५.१३९) । अभ्यावर्ती चायमान के संदर्भ में आचार्य सायण उल्लेख करते हैं - **अनुक्रान्तं च - 'किमस्यान्त्या चायमानस्याभ्यावर्तिनो दानस्तुतिः** (ऋ० ६.२७ सा० भा०)

७. अश्विन् (३.५८) — अश्विन्देव प्रकाश के देवता हैं । ऋग्वेद में प्रायः ४०० बार इनके नाम का उल्लेख हुआ है । अश्विन् को चिर युवा और शाश्वत माना गया है- **नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्** (ऋ० ७.६७.१०) । वे प्रकाशमान, मधुवर्ण तथा शुभस्पति हैं- **आ शुभ्रा यातमश्विना** (ऋ० ७.६८.१) । तथा- **धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती** (ऋ० ८.२६.६) । मधु से अश्विन् का घनिष्ठ सम्बन्ध है । उनके रथ को खींचने वाले पक्षी मधु से युक्त हैं- **दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना** (ऋ० ४.४५.३) । अश्विन् द्यु- स्थानीय देवता हैं । इसीलिए इन्हें द्युलोक से विभिन्न लोकों में रथ द्वारा जाते हुए वर्णित किया गया है- **दिवश्चिद्**



रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा (ऋ० ८.८.७)। इनके आविर्भाव का समय प्राय: महत् उषा काल बताया गया है । उषा उन्हें जगाती हैं और वे रथ में बैठकर उषा का अनुसरण करते हैं । यथा- **प्र बोधयोषो अश्विना** (ऋ० ८.९.१७)। तथा- **नृवद् दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा । सचेथे अश्विनोषसम्** (ऋ० ८.५.२)। ऐतरेय ब्राह्मण में भी अश्विन् को प्रात: काल का देवता कहा गया है- **एते वाव देवा: प्रातर्यावाणो यदग्निरुषा अश्विनौ** (ऐत० ब्रा० २.१५)। ऋग्वेद में उन्हें सहायता करने वाले तथा शीघ्र ही कष्टों से उबारने वाले देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है- **याभिर्धियोऽवथ: कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्** (ऋ० १.११२.२)। ये दिव्य वैद्य भी हैं,जो अपने उपचारों द्वारा रोग दूर करते और अन्धों को फिर से राह दिखाते हैं । भिषग् के रूप में उनकी प्रतिष्ठा इस ऋचा से स्पष्ट होती है- **उत त्या दैव्या भिषजा शं न: करतो अश्विना** (ऋ० ८.१८.८)।

८. **आपो देवता (४.५८)** — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

९. **इळ (५.५)** — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

१०. **इळा (५.५)** — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

११. **इन्द्र (५.२९)** — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

१२. **इन्द्र-अश्व (४.३२.२३-२४)** — इन्द्र तो ऋग्वेद में प्रमुख देव हैं; किन्तु उनके रथ में जुतने वाले अश्वों की तथा इन्द्र की साथ-साथ स्तुति होने से कुछ ऋचाओं में इन्द्र- अश्व को देवता युग्म के रूप में प्रतिष्ठा मिली है । यथा - **कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके । बभ्रू यामेषु शोभेते** (ऋ० ४.३२.२३) । तथा- **अरं म उस्रयाम्णे ऽरमनुस्रयाम्णे । बभ्रू यामेष्वस्रिधा** (ऋ० ४.३२.२४)। उक्त ऋचाओं में कहा गया है कि जिस प्रकार लकड़ी के टुकड़े पर बनी पुतली सुशोभित होती है,उसी प्रकार यज्ञ में इन्द्र के अश्व शोभायमान लगते हैं । ये सुशोभित घोड़े बैलों के रथ पर जाने वाले मेरे (पैदल ही जाने वाले के) लिए कल्याणकारी हों । बृहद्देवताकार ने भी उक्त दोनों ऋचाओं में इन्द्र के दो अश्वों की स्तुति की पुष्टि इन शब्दों में की है- **कनीनका सूक्तशेषो हर्यो स्तुतिरिहोच्यते** (बृह० ४.१४४) । आचार्य सायण ने भी इन्द्र- अश्व के देवत्व को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है- **अन्त्ये 'कनीनकेव' इत्यादिके द्वे इन्द्रस्याश्वदेवताके । तथा चानुक्रान्तम्- 'आ तू न्श्चतुर्विंशतिरन्त्याभ्यमिन्द्राश्वौ स्तुतौ' इति** (ऋ० ४.३२ सा० भा०)।

१३. **इन्द्र-उषा (४.३०.९-११)** — इन्द्र-उषा देवयुग्म को ऋग्वेद में गौण स्थान मिला है । अनेक सूक्तों में जहाँ लगातार इन्द्र देवता की स्तुति की गई है,वहीं ऋग्वेद ४.३०.९-११ में उषा का भी वर्णन आने से इन्हें युग्मदेव मान लिया गया है । उक्त तीन ऋचाओं में इन्द्र के शौर्य और उषा की पराजय का विवरण है- **दिवश्चिद्घा दुहितरं महान् महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक्** (ऋ० ४.३०.९)।
अर्थात् हे इन्द्रदेव ! आप महान् हैं,आपने द्युलोक की महिमावाली पुत्री उषा के रथ को पीस दिया,यह सत्य है । बृहद्देवता में भी उक्त तीन ऋचाओं में इन्द्र-उषा के देवत्व को स्वीकार किया गया है- **दिवश्चिदिति चैतेन तृचेनेन्द्रेण संस्तुताम्** (बृह० ४.१३७)। तथा- **उषसं मध्यमां मेने आचार्य: शाकटायन:** (बृह० ४.१३८ पूर्वा०)। सायणाचार्य ने भी इस देव युगल का देवत्व इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है- **'दिवश्चिद्घा' इत्ययं तृच उषो देवताक इन्द्र देवताकश्च** (ऋ० ४.३० सा० भा०)।

१४. **इन्द्र-पर्वत (३.५३.१)** — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

१५. **इन्द्र-पूषा (६.५७)**— वैदिक देवयुग्मों में इन्द्र-पूषा का नाम भी आता है । इस नाम का देवता द्वन्द केवल दो बार बना है । एक बार तब,जब इन्द्र द्वारा प्रभूत सलिलों को प्रवाहित किया गया,उस समय पूषा उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रहे थे । ऋ० ६.५७.१ में इन्द्र-पूषा का एक साथ नामोल्लेख है - **इन्द्रानुपूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये** । दूसरी बार तब,जब इन्द्र ने वृत्रों का संहार किया,उस समय पूषा को मित्र बनाया था - **उत घा स रथीतम: सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते** (ऋ० ६.५६.२)। बृहद्देवता में भी इन्द्र-पूषा के देवत्व को इन शब्दों में प्रमाणित किया गया है - **छागस्य कीर्तनं चात्र इन्द्रापूष्णो: सहस्तुति:** (बृह० ४.३१)। आचार्य सायण ने इनका देवत्व विवेचित करते हुए लिखा है - **इन्द्रापूषणौ देवौ नु अद्य च वयं स्वस्तये** (ऋ० ६.५७.१ सा० भा०)।

१६. **इन्द्र -बृहस्पति (४.४९)** — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

१७. **इन्द्र-वरुण (४.४१)** — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

१८. **इन्द्र-वायू (४.४६.१-७)** — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

१९. **इन्द्र-सोम (४.२८)** — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

२०. **इन्द्राग्नी (५.२७.६)** — द्र० ऋ० भाग - १ ।

२१. **इन्द्रा-विष्णु (६.६९)** — द्र० ऋ० भाग - १ ।

२२. उशना (५.२९.९ पूर्वा०)— उशना देवता को 'काव्य उशना' के नाम से भी प्रसिद्धि मिली है। कवि-पुत्र होने के कारण उन्हें काव्य कहते हैं, यह उनका विशेषण है। बुद्धिमत्ता का काव्य उच्चारण करने वाले सोम की तुलना उशना से की गई है- **प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति** (ऋ० ९.९७.७)। इन्द्रदेव को कविपुत्र उशना की अभिवृद्धि करते तथा उनके साथ आनन्दित होते बताया गया है- **त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय** (ऋ० ६.२०.११)। तथा- **मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति** (ऋ० १.५१.११)। इन्द्र का उशना से घनिष्ट सम्पर्क बताया गया है। इन्द्रदेव ने जब कुत्स के साथ शुष्ण का वध किया, तब उशना देव भी उसी रथ पर उनके साथ थे- **उशना यत् सहस्यै ३ रयातं गृहमिंन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः** (ऋ० ५.२९.९)। जब वृत्रासुर के वध की आवश्यकता पड़ी, तब इन्द्र के लिए वज्र का निर्माण भी उशनादेव ने ही किया था- **यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद् वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम्** (ऋ० १.१२१.१२)। इस प्रकार उशना बुद्धिमान्, वीर तथा निर्माण कार्य में कुशल देव हैं।

२३. उषा (५.७९) — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

२४. उषासानक्ता (५.५.६) — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

२५. ऋणञ्चय (५.३०.१२-१५) — ऋग्वेद के देवताओं में ऋणंचय को अधिक प्रतिष्ठा नहीं मिली है। ऋग्वेद ५.३० में प्रमुख देवता तो इन्द्र हैं; किन्तु ऋग्वेद ५.३०.१२-१५ में ऋणंचय की भी स्तुति होने से इन्हें भी देवता माना गया है। बृहद्देवता में वर्णन मिलता है कि रुशमों के राजा ऋणञ्चय ने अपने सोमयज्ञ में अत्रिपुत्र बभ्रु (ऋ०५.३० के द्रष्टा) को ऋत्विज् के रूप में चुना और दक्षिणा में विपुल राशि, गौएँ आदि प्रदान कीं- **अत्रेः सुतमृषिं बभ्रुम् आर्त्विज्याय ऋणंचयः। सहस्रदक्षिणे सोमे वव्रे तं सोऽप्ययाजयत्** (बृह० ५.३३)। ऋग्वेद में भी बभ्रु ऋषि द्वारा ऋणञ्चय से उक्त सामग्रियाँ दक्षिणा में प्राप्त करने की स्वीकारोक्ति वर्णित है- **भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन् गवां चत्वारि ददतः सहस्रा। ऋणंचयस्य..........नृणाम्** (ऋ० ५.३०.१२)। आचार्य सायण ने भी ऋणञ्चय के देवत्व को अपने ऋग्वेद भाष्य में अभिव्यक्त किया है- **'क्व स्य बभ्रुर्ऋणंचयोऽप्यत्र राजा स्तुतः' इति।.......... इन्द्रो देवता। ऋणंचयनामा राजापि क्वचित् स्तूयते। अतः सोऽपि देवता** (ऋ० ५.३० सा० भा०)।

२६. ऋतदेव (४.२३.८-१०) — ऋतदेव को ऋग्वेद में मात्र तीन ऋचाएँ (ऋ० ४.२३.८-१०) सम्बोधित हैं। शेष सूक्त के देवता इन्द्र हैं। ऋत शब्द के अर्थ हैं- सत्य, ठीक, यज्ञ, पानी आदरणीय तथा उचित। उक्त ऋचाओं में इन सभी अर्थों को अंशतः लिया गया है; पर अधिकतर सत्य की महिमा ही वर्णित है। यथा- **ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति...... आयोः** (ऋ० ४.२३.८)। इसका भावार्थ है- उत्तम कर्तव्य (सत्) में अनन्त- शक्तियाँ भरी होती हैं। उत्तम बुद्धियाँ पापों को नष्ट करती हैं। उत्तम स्तुतियाँ दुष्ट मनुष्य के कानों को बहरा कर देती हैं, अर्थात् उत्तम स्तुतियाँ दुष्टों के कानों को अच्छी नहीं लगती। आचार्य सायण ने इन तीन ऋचाओं में ऋत का स्पष्ट देवत्व स्वीकार नहीं किया है, इन्द्र अथवा ऋत देवता ऐसा कहा है- **'ऋतस्य हि' इत्याद्यास्तिस्त्र ऋतदेवताका वा। तथा चानुक्रान्तं - 'कथोपान्त्यास्तिस्त्र ऋतदेव्यो वा' इति** (ऋ० ४.२३ सा० भा०)।

२७. ऋतु- समूह (३.२७) — द्र० - ऋ० भाग-१ ।

२८. ऋत्विज् (३.२९.५) — ऋत्विज् शब्द सामान्यतया याज्ञिक के लिए प्रयुक्त होता है। जिसमें यज्ञ सम्पन्न कराने वाले सभी प्रकार के ब्राह्मण समाविष्ट हैं। कार्य विभाजन की दृष्टि से इनकी संख्या सात होती है- **तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः। तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे** (ऋ० २.१.२)। ये- होता, पोता, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रशास्ता, अध्वर्यु और ब्रह्मा हैं। यह सात की संख्या सप्तर्षि- सप्तहोतृ की ओर संकेत करती है। इनमें ऋचाओं का गान करने वाले को होता; प्रार्थना एवं निर्ऋतिनाशक मंत्रोच्चारण तथा यज्ञ के व्यावहारिक कार्य करने वाले को अध्वर्यु; अध्वर्यु के सहायक को आग्नीध्र, यज्ञों में कभी-कभी आमंत्रित (तथा कुछ प्रार्थनाएँ एवं होता को उपदेश करने वाले) को प्रशास्ता, सोम याग करने वालों को पोता, नेष्टा और ब्रह्मा कहते हैं (ब्रह्मा को बाद में ब्राह्मणाच्छंसी भी कहने लगे)। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के ऋत्विज् जो सामगायक होते हैं, उन्हें उद्गाता, प्रस्तोता और प्रतिहर्ता कहा जाता है। ऋत्विजों के कार्य की एक झलक इस ऋचा में देखी जा सकती है- **मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम्** (ऋ० ३.२९.५)। उक्त ऋचा में मुख्यतः देवता तो अग्नि ही हैं, पर ऋत्विजों को अरणिमन्थन करने के लिए प्रेरित करने का वर्णन होने से इन्हें देवता माना गया है। बृहद्देवता में भी ऋत्विजों के देवत्व को इन शब्दों में वर्णित किया गया है____ **ऋत्विज स्तौति मन्थत** (बृह० ४.१०३)। आचार्य सायण ने अग्नि के विकल्प से ऋत्विज् को देवता स्वीकार किया है- **पञ्चमी 'मन्थता नरः' इत्येषा ऋत्विग्देवताकाग्निदेवताका वा** (ऋ० ३.२९ सा० भा०)।

२९. ऋभुगण (३.६०) — द्र०-ऋ० भाग-१ ।

३०. कुत्स (५.३१.८-९) — कुत्सदेव को भी ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में देवत्व की प्रतिष्ठा मिली है। ऋग्वेद में प्रायः ४० बार कुत्स शब्द आया है। एक बार यह गायकों के कुल का बोधक प्रतीत होता है- **कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः**



(ऋ० ७.२५.५)। प्रायः चार बार कुत्स को उनके पैतृक नाम आर्जुनेय से सम्बोधित किया गया है- **याभिः कुत्समार्जुनेयम्..........** (ऋ० १.११२.२३)। ये ऋषि भी हैं। कुत्सदेव का सम्बन्ध इन्द्र के साथ बहुत घनिष्ठतापूर्वक मिलता है। कुत्स उसी रथ पर बैठते हैं, जिस पर स्वयं इन्द्र- **यासि कुत्सेन सरथमवस्युः** (ऋ० ४.१६.११)। शुष्ण जब कुत्स से युद्ध करते हैं, तो इन्द्र कुत्स की सहायता करके शुष्ण को मार गिराते हैं- **कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः** (ऋ० १.१२१.९)। ऋग्वेद ५.३१ के प्रमुख देव तो इन्द्र ही हैं; किन्तु ८वीं और ९ वीं ऋचा के कुछ पादों में कुत्स देवता की स्तुति की गई है। इन्द्र और कुत्स से प्रार्थना की है कि वे अपने रथ पर बैठकर दर्शन दें- **इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेनावामत्या अपि कर्णे वहन्तु** (ऋ० ५.३१.९)। आचार्य सायण ने भी इनके देवत्व को इन शब्दों में वर्णित किया है- **इति पादयोः क्रमेण कुत्सोशनसौ विकल्पेन देवता** (ऋ० ५.३१ सा० भा०) अर्थात् ८ वीं ऋचा के पादक्रम के अनुसार कुत्स व उशना देवता हैं। नवीं ऋचा का देवत्व, वे इन्द्र और कुत्स को प्रदान करते हैं- **'इन्द्राकुत्सा वहमाना' इत्यस्या इन्द्रः कुत्सश्च** (ऋ० ५.३१ सा० भा०)।

३१. क्षेत्रपति (४.५७.१.३) — क्षेत्रस्य पति (क्षेत्रपति) देवता का आह्वान ऋग्वेद में पशु, अश्व प्रदान करने के लिए तथा० द्यावा-पृथिवी, वनस्पति और जलों को मधुमय बनाने के निमित्त किया गया है- **क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि। गामश्वं पोषयित्वा स नो मृळातीदृशे** (ऋ० ४.५७.१)। गृह्य सूत्रों में वर्णन मिलता है कि जब खेत जोते जाते हैं, उस समय क्षेत्रपति को यज्ञाहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। यथा- **क्षेत्रस्यानु वा तं क्षेत्रस्य पतिना वयमिति प्रत्यृचं जुहुयाज्जपेद्वा** (आ० गृ० सू० २.१०.४)। विश्वेदेवा के निमित्त एक सूक्त में उषा, पर्जन्य एवं सविता के साथ उनका आह्वान सम्पत्ति प्रदान करने के लिए भी किया गया है-**शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः** (ऋ० ७.३५.१०)। बृहद्देवता में भी क्षेत्रस्य पति का देवत्व इन शब्दों में वर्णित है- **तेनैनमाह क्षेत्रस्य वामदेव स्तुवन्पतिम्** (बृह० २.४१)। निरुक्तकार ने क्षेत्रस्य पति की परिभाषा इस प्रकार की है-**'क्षेत्रं क्षियतेर्निवासकर्मणः, तस्य पाता वा पालयिता वा** (नि० १०.१४)। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इनका देवत्व स्वीकार किया है - **आद्यास्तिस्रः क्षेत्रपतिदेवताकाः** (ऋ० ४.५७ सा० भा०)।

३२. गर्भस्राविण्युपनिषद् (५.७८.५-९) — द्र० - ऋ० भाग-१।

३३. तनूनपात् (३.४.२) — द्र० - ऋ० भाग-१।

३४. तरन्तमहिषी शशीयसी (५.६१.५-८) — वैदिक देवताओं में राजा तरन्त की (महिषी) धर्मपत्नी को भी देवी की प्रतिष्ठा मिली है। बृहद्देवता में अत्रि ऋषि के पौत्र तथा अर्चनानस् के सुपुत्र श्यावाश्व की एक कथा वर्णित है, उसमें राजा रथवीति के यज्ञ में ऋत्विज् की भूमिका सम्पन्न करने वाले अर्चनानस् तथा श्यावाश्व दान के रूप में उनकी राज-पुत्री न पाकर निराश हुए और ये दोनों लौटते हुए राजा तरन्त और पुरुमीळ्ह से मिले। राजा तरन्त ने ऋषिपुत्र श्यावाश्व का अपनी धर्मपत्नी शशीयसी को दर्शन कराया। शशीयसी ने उन्हें प्रचुर धन, भेड़ें, बकरियाँ, गौएँ और अश्व प्रदान किए। यथा- **ऋषि पुत्रं महिष्याश्च दर्शयामास तं नृपः। तरन्तानुमता चैव प्रादाद् बहुविधं वसु। अजाविकं गवाश्वं च श्यावाश्वाय शशीयसी। ________स्वमाश्रमम्** (बृह० ५.६३-६४)। इस प्रकार ऋ० ५.६१.५-८ में इस सूक्त (६१) के द्रष्टा श्यावाश्व द्वारा शशीयसी की स्तुति किए जाने के कारण इन्हें (शशीयसी को) देवत्व प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद में भी उक्त सामग्री शशीयसी द्वारा श्यावाश्व को प्रदान करने का वर्णन है- **सनत् साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम्। श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत्** (ऋ० ५.६१.५)। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है - **'सनत्सा' इत्यादीनां चतसृणां शशीयसी नाम तरन्तस्य राज्ञो भार्या देवता** (ऋ० ५.६१ सा० भा०)।

३५. त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य (४.४२.१-६) — पुरुकुत्स ऋषि के सुपुत्र त्रसदस्यु को भी ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के बयालीसवें सूक्त में क्रमशः १ से ६ ऋचाओं में देवत्व प्राप्त हुआ है। ये त्रसदस्यु ही इस सूक्त के ऋषि भी हैं। चूँकि इन्होंने उपरोक्त ऋचाओं में अपनी ही स्तुति की है, इसीलिए इन्हें इन ऋचाओं का (**यस्य वाक्यं स ऋषिः या तेनोच्यते सा देवता,** ऋ० १०.१० सा० भा० सूत्र के अनुसार) देवता माना गया है। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इस तथ्य की पुष्टि इन शब्दों में की है - **पुरुकुत्सस्य पुत्रस्त्रसदस्यू राजर्षिः। आद्यासु षट्स्वात्मनः स्तुत्यत्वात् आत्मा देवता** (ऋ० ४.४२ सा० भा०)।

३६. त्वष्टा (५.५.९) — द्र०-ऋ० भाग-१।

३७. दिव्य होता प्रचेतस् (३.४.७) — द्र० - ऋ० भाग-१

३८. देव पत्नियाँ (५.४६.७-८) — द्र०-ऋ० भाग-१।

३९. देवीर्द्वार (५.५.५) — द्र० - ऋ० भाग-१।

४०. द्यावापृथिवी (४.३८.१) — द्र०-ऋ० भाग-१।

४१. नराशंस (५.५.२) — द्र० - ऋ० भाग - १।

४२. पर्जन्य (५.८३) — द्र० - ऋ० भाग-१ ।

४३. पुरीष्य अग्नियाँ (३.२२.४) — ऋग्वेद में अग्निदेव के निमित्त अनेक सूक्त कहे गये हैं। अग्निदेव के अनेक गुण हैं। जिनमें एक गुण 'पुरीष्य' अर्थात् पालन-पोषण करने वाला है। ऋग्वेद के तीसरे मंडल के बाइसवें सूक्त में चौथी ऋचा में अग्निदेव की स्तुति करते हुए उनसे यज्ञ हवि का सेवन करने और रोगादि शून्य पुष्टिदायक अन्नों को प्रदान करने की प्रार्थना की गई है- **पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः** ।- - - - **महीः** (ऋ० ३.२२.४)। इसमें अग्नि के बहुवचन शब्द 'अग्नयः' का प्रयोग इसलिए हुआ है; क्योंकि पालन-पोषण करने वाली अग्नियों (पुरीष्य अग्नियों) से संगठित होकर आने की प्रार्थना की गई है।

४४. पूषा (३.६२.७-९) — द्र० ऋ० भाग - १ ।

४५. पृथिवी (५.८४) — द्र० - ऋ० भाग-१ ।

४६. पृश्नि (६.४८)— वैदिक देवताओं में पृश्नि को भी देवता की प्रतिष्ठा प्राप्त है। वे मरुतों की माता के रूप में प्रख्यात हैं, जो चित्रवर्णों वाले तूफान-मेघ की प्रतिरूप हैं। पृश्नि शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में भी मिलता है - **गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम्** (ऋ० ७.१०३.६)। एकवचन में इस शब्द का प्रयोग वृषभ और गौ के विशेषण के रूप में तथा बहुवचन में इन्द्रदेव के निमित्त सोम-दुग्ध प्रदान करने वाली गौ के वाचक के रूप में हुआ है -**गोमायुरदादजमायुरदात् प्रश्नरदाद्धरितो नो वसूनि** (ऋ० ७.१०३.१०) तथा **ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः । .... सायकम्** (ऋ० १. ८४.११)। बृहद्देवताकार ने ऋ० ६.४८ सूक्त को पृश्नि सूक्त कहा है तथा इनकी तीन ऋचाओं (११-१३) को मरुतों को सम्बोधित माना है - **तृचः परो मारुतः पृश्निसूक्ते .... पुनश्च** (बृह० ५.११३)। बृहद्देवता (५.७१) में एक अन्य स्थल पर मरुतों को पृश्नि के पुत्र के रूप में प्रमाणित किया गया है - **स्तुता स्तुत्या तथा प्रीता गच्छन्तः पृश्निमातरः ।**

४७. प्रस्तोक सार्ञ्जय (६.४७.२२-२५)— सृञ्जयपुत्र प्रस्तोक का देवत्व ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल के ४७ वें सूक्त की कुछ ऋचाओं (२२-२५) में दृष्टिगोचर होता है। राजा सृञ्जय के पुत्र होने से इन्हें सार्ञ्जय कहा जाता है। बृहद्देवता में प्रस्तोक सार्ञ्जय को अभ्यावर्ती चायमान के साथ उल्लिखित किया गया है। ये दोनों वारशिखों के युद्ध में पराजित होकर ऋषि भरद्वाज के पास आये। ऋषि भरद्वाज ने इन्द्र की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। तदनन्तर अभ्यावर्ती और सार्ञ्जय ने वारशिखों को विजित कर प्रचुर धन ऋषि भरद्वाज को दिया। भरद्वाज और उनके पुत्र गर्ग ने 'द्वयान्' और 'प्रस्तोक' से आरम्भ ऋचाओं द्वारा उस दान की स्तुति की-**भरद्वाजश्च गर्गश्च दृष्टाविन्द्रेण वै पथि । द्वयान् प्रस्तोक इत्याभिर्दानं तद्वै शशंसतुः** (बृह० ५.१४०)। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके देवत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है - **'प्रस्तोकः' इत्याद्याश्चतस्रः सृञ्जयपुत्रस्य राज्ञो दानस्तुतिरूपत्वात् तद्देवताकाः** (ऋ० ६.४७ सा० भा०)।

४८. बर्हि (५.५.४) — द्र० - ऋ० भाग-१ ।

४९. बृबु तक्षा (६.४५.३१-३३)— बृबु नामक तक्षा का देवत्व ऋग्वेद ६.४५.३१-३३ में दृष्टिगोचर होता है। कोश ग्रन्थों के अनुसार लकड़ी का कार्य करने वाले शिल्पी-व्यापारी को तक्षा कहते हैं। उपरोक्त ऋचाओं में बृबु तक्षा के द्वारा भरद्वाज को जो दान दिया गया, उसकी स्तुति है। मनुस्मृति (१०.१०७) में एक वर्णन मिलता है कि एक बार ऋषि भरद्वाज अपने पुत्र के साथ निर्जन वन में क्षुधा पीड़ित हुए । वहाँ महान् यशस्वी बृबु तक्षा के द्वारा उन्हें बहुत सी गौएँ प्रदान की गईं। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इस तथ्य की पुष्टि इन शब्दों में की है -**एतच्च मनुना स्मर्यते - 'भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो 'विजने वने ।' बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह बृबोस्तक्ष्णो महायशाः'** (ऋ० ६.४५.३१सा० भा०)। बृबु तक्षा के देवत्व को सायणाचार्य ने इन शब्दों में प्रमाणित किया है - **'अधि बृबुः पणीनाम्' इत्यस्मिन्नन्त्ये तृचे बृबुर्नाम तक्षा स्तूयते। अतः स तृचस्तद्देवताकः** (ऋ० ६.४५ सा० भा०)। बृहद्देवताकार ने इनके देवत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है - **य आनयदिति त्वस्य तृचोऽधीति बृबुस्तुतिः** (बृह० ५.१०८)।

५०. बृहस्पति (३.६२) — द्र० - ऋ० भाग-१ ।

५१. भारती (५.५.८) — वैदिक देवियों में तिस्रो देव्यः(तीन प्रसिद्ध देवियों) के अन्तर्गत भारती देवी का नाम भी प्रतिष्ठित है। ये तीन देवियाँ इळा, सरस्वती और भारती हैं। ये तीनों देवियाँ तीन स्थानों की वाच् हैं - **तिस्रस्तु देव्यो याः प्रोक्तास् त्रिस्थानैवेह सा तु वाक्** (बृह० ३.१२)। इळा अग्नि का अनुगमन करने वाली, सरस्वती मध्यम से सम्बद्ध तथा भारती दिव्यलोक में स्थित होने के कारण वाच् की दिव्य रूप हैं - **अग्नि मेवानुगेळा तु मध्यं प्राप्ता सरस्वती** । - - - **तु भारती भवति ह्यसौ** (बृह० ३.१३)। उपरोक्त तीनों देवियों को सुखकारक तथा अहिंसक मानकर यज्ञ में आवाहन किया जाता है - **इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः** (ऋ० ५.५.८) ।



५२. **मरुत् (३.२६.४-६)** — द्र० - ऋ० भाग - १ ।

५३. **मित्र (३.५९)** — द्र० - ऋ० भाग - १ ।

५४. **मित्रावरुण (३.६२.१६-१८)** — द्र० - ऋ० भाग - १ ।

५५. **यूप (३.८)** — द्र० - ऋ० भाग - १ ।

५६. **रक्षोहा अग्नि (४.४)** — वैदिक ग्रन्थों में रक्षोहा अग्नि को भी देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है । राक्षसों से रक्षा करने के कारण अग्निदेव का ही एक विशेषण रक्षोहा भी है । ये यज्ञ में विघ्न डालने वाले राक्षसों का वध भी करते हैं । उनसे प्रार्थना की गई है कि वे अपने तीक्ष्ण शस्त्रों से राक्षसों को बींधें - - - - - **असिविध्य रक्षसस्तपिष्ठैः** (ऋ० ४.४.१) । वे अपनी चमक से राक्षसों को भगा देते हैं - **वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः** (ऋ० ३.१५.१) । ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के चतुर्थ सूक्त में इनके देवत्व के विषय में आचार्य सायण लिखते हैं - **'कृणुष्व' इति पञ्चदशर्चं चतुर्थं सूक्तं वामदेवस्यार्षं त्रैष्टुभं रक्षोहाग्नि देवताकम्** (ऋ० ४.४ सा० भा०) ।

५७. **रथवीति दार्भ्य (५. ६१.१७-१९)** — वैदिक देवताओं में ऋषि दर्भ के पुत्र रथवीति को 'रथवीति दार्भ्य' नाम से ख्याति मिली है । इन्होंने एक बार एक महान् यज्ञ रचाया था ,जिसके ऋत्विज् पद का निर्वाह अत्रि पुत्र अर्चनानस् तथा अत्रि पौत्र श्यावाश्व ने किया था । यज्ञ की समाप्ति पर ऋषि अर्चनानस् ने अपनी पुत्रवधू बनाने की इच्छा से महाराज रथवीति से उनकी सुपुत्री को माँगा; किन्तु श्यावाश्व को ऋषित्व प्राप्त न होने के कारण उस समय उन्हें कन्या प्रदान न की जा सकी । बाद में जब उन्होंने कुछ ऋचाओं को देखा (रचना की) ,तब महाराज रथवीति ने ससम्मान श्यावाश्व के साथ कन्या का पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कराया । यह कथा विस्तार से बृहद्देवता ५.५०-८१ में वर्णित है । ऋ० ५.६१.१७-१९ में रथवीति दार्भ्य की स्तुति होने से इन्हें इन ऋचाओं के देवत्व की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है । आचार्य सायण ने भी अपने ऋग्वेद भाष्य में इनका देवत्व स्वीकारते हुए लिखा है - **'एतं मे' इत्यस्य तृचस्य दार्भ्यो रथवीतिर्नाम राजा देवता** (ऋ० ५.६१ सा० भा०) ।

५८. **रुद्र (५.४२.११)** — द्र० - ऋ० भाग-१ ।

५९. **वनस्पति (५.५.१०)** — द्र० - ऋ० भाग-१ ।

६०. **वरुण (५.८५)** — द्र० - ऋ० भाग-१ ।

६१. **वाक् (ससर्परी) (३.५३.१५-१६)** — वाक् (ससर्परी) देवी को ऋग्वेद के तृतीय मंडल के तिरेपनवें सूक्त में मात्र दो ऋचाएँ समर्पित हुई हैं । बृहद्देवता में इनके विषय में वर्णन मिलता है कि ये सूर्य की पुत्री थीं - **तस्मै ब्राह्मीं तु सौरीं वा नाम्ना वाचं ससर्परीम्** (बृह० ४.११३) । बृहद्देवता (४.११३-११६) में कथा वर्णित है कि एक बार सुदास् के महायज्ञ में वसिष्ठ - पुत्र शक्ति ने गाथि-पुत्र विश्वामित्र को बलात् चेतना रहित कर दिया था । इस अचेतन अवस्था से विश्वामित्र बहुत दुःखी हुए,तब जमदग्नि ऋषि के वंशजों ने सूर्य लोक से लाकर ब्रह्मा अथवा सूर्य की पुत्री ससर्परी नामक वाच् (मंत्र विद्या) से उनकी अचेतनता को दूर किया । वाच् (वाक्) को प्राप्त करके विश्वामित्र ने प्रसन्न हृदय से उन ऋषियों की दो ऋचाओं में स्तुति की । लगता है कि ससर्परी (वाक्) नाम की कोई मंत्र विद्या रही होगी, जिससे विश्वामित्र के अमतित्व (अचेतनत्व) को दूर किया गया था । आचार्य सायण ने ससर्परी (वाक्) के देवत्व को इन शब्दों में प्रमाणित किया है - **पञ्चदश्यादिद्वे वाचे ससर्पर्यै. ....शृण्वन्ति** (ऋ० ३.५३ सा० भा०) ।

६२. **वामदेव (४.२६.१-३)** — वैदिक देवताओं में वामदेव का नाम भी प्रख्यात है । ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल की कुछ ऋचाओं के द्रष्टा होने के कारण इन्हें उनका ऋषित्व भी प्राप्त हुआ है । बृहद्देवता ४.१२७ में विवरण मिलता है कि एक बार वामदेव ने देवों, ऋषियों और पितरों के पूजन के निमित्त कुत्ते की अँतड़ियों को पकाया था, तब श्येन (बाज़) के रूप में इन्द्रदेव उनके लिए मधु लाये थे, तब वामदेव ने कुछ ऋचाएँ रचकर अग्नि और इन्द्र की स्तुति की थी । इन्हें गोतम ऋषि का वंशज माना जाता है - - - - - **सूक्तैरेति तु गौतमः** (बृह० ४.१२७) । बृहद्देवता में ही एक स्थान पर वामदेव और इन्द्र के युद्ध और उस युद्ध में इन्द्र के पराजित होने तथा बाद में वामदेव और इन्द्र को ऋषियों की सभा में विक्रय कर देने का विवरण भी मिलता है - **दिनानि दश रात्रीश्च विजिग्ये चैन्मोजसा** (बृह० ४.१३२) तथा - **स तं क इममित्यस्यां विक्रीणन्नृषिसंसदि** (बृह० ४.१३३) । आचार्य सायण ने भी अपने ऋक्-भाष्य में वामदेव के देवत्व और ऋषित्व दोनों को ही स्वीकार किया है - **'अयं पन्थाः सप्तोना संवाद इन्द्रादिति वामदेवानाम्' इति । 'यस्य वाक्यं स ऋषिः या तेनोच्यते सा देवता' इति परिभाषितत्वात् ऋषिदेवते तत्र-तत्र ज्ञातव्ये** (ऋ० ४.१८ सा० भा०) । इन्होंने अमुक-अमुक स्थानों पर वामदेव व इन्द्र आदि के ऋषित्व और देवत्व के निर्णय के लिए विवेक के आश्रय को ही प्रमुख बताया है - **ऋषि दैवतसिद्ध्यर्थं विवेकादर्थ ईरितः'** (ऋ० ४.१८ सा० भा०) ।

६३. **वायु (४.४६.१)** — द्र० - ऋ० भाग- १ ।

६४. **विश्वामित्र (३.३३.४,८,१०)** — यों तो विश्वामित्र ऋषि के रूप में प्रतिष्ठित हैं; किन्तु '**यस्य वाक्यं स ऋषिः या तेनोच्यते सा देवता**' सूत्र के अनुसार इन्हें ऋ० ३.३३.४,८,१० में देवत्व भी प्राप्त हुआ है। उक्त ऋचाओं में नदियों द्वारा विश्वामित्र की स्तुति (विश्वामित्र से वार्तालाप) की गई है। बृहद्देवता में भी विश्वामित्र के देवत्व को इन शब्दों में स्वीकार किया गया है - **सूक्ते प्रेति तु नद्यश्च विश्वामित्रः समूदिरे** (बृह० ४.१०५)।

६५. **विश्वामित्रोपाध्याय (३.२६.९)** — विश्वामित्रोपाध्याय के देवत्व को ऋग्वेद की मात्र एक ऋचा में स्वीकार किया गया है। '**या तेनोच्यते सा देवता**' सूत्र के अनुसार ऋ० ३.२६.९ में इनकी स्तुति की गई है, अतः इन्हें देवता की प्रतिष्ठा मिली है। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में वर्णित किया है - **नवम्यास्तु विश्वामित्रोपाध्यायस्य स्तुत्यत्वात् स एव देवता** (ऋ० ३.२६ सा० भा०)।

६६. **विश्वेदेवा (६.४८ - ५२)** —द्र० ऋ० भाग - १।

६७. **विष्णु (५.३.३)** — द्र० - ऋ० भाग-१।

६८. **वैददश्वि तरन्त एवं वैददश्वि पुरुमीळ (५.६१.९-१०)** — ऋग्वेद में वैददश्वि तरन्त और वैददश्वि पुरुमीळ को एक-एक ऋचा में देवत्व प्राप्त हुआ है। बृहद्देवता में वर्णन मिलता है कि **ये दोनों राजा थे** (तरन्त और पुरुमीळ) और विददश्व ऋषि के पुत्र थे। इन्होंने रथवीति दार्भ्य के यज्ञ से लौटे ऋषि अर्चनानस् तथा उनके पुत्र श्यावाश्व का पूजन किया था- **तरन्तपुरुमीळहौ तु राजानौ वैददश्व्यृषी। ताभ्यां तौ चक्रतुः पूजाम् ऋषिभ्यां नृपती स्वयम्** (बृह० ५.६२)। आचार्य सायण ने भी इनके देवत्व को स्वीकारते हुए अपने ऋग्वेद भाष्य में लिखा है - '**उतमेऽरपत्**' **इत्यस्या वैददश्विः पुरुमीळहो देवता**। '**यो मे धेनूनाम्' इत्यस्या वैददश्विस्तरन्तो राजा देवता** (ऋ० ५.६१ सा० भा०)।

६९. **वैश्वानर (६.७-९)** — विश्व के सभी मनुष्यों से सम्बन्धित अग्नि को वैश्वानर कहा गया है। यह सर्वव्यापक है, जिससे सम्पूर्ण प्राणी प्राणवान् रहते हैं - **असौ वै वैश्वानरो योऽसौ तपति** (कौषी० ब्रा० ४.३)। **शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि इसी (वैश्वानर)** अग्नि से अन्नादि की पाचन क्रिया सम्पन्न होती है - **अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषेयेनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते:** .... (शत० ब्रा० १४८.१०.१)। अग्नि के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करते हुए बृहद्देवताकार ने कहा है कि ऋषिगण इस लोक में अग्नि के रूप में, मध्यलोक में जातवेदस् के रूप में तथा दिव्यलोक में वैश्वानर के रूप में स्तुति करते हैं - **इहाग्नि ....मध्ये स्तुतो वैश्वानरो दिवि** (बृह० १.६७)। एक अन्य स्थल पर वैश्वानर के देवत्व को प्रमाणित करते हुए बृहद्देवता में उल्लेख है - **सूक्तानि त्रीणि मूर्धानं अग्निर्वैश्वानरस्य तु** (बृह० ५.१०४)। वैश्वानर के देवत्व का विवेचन आचार्य सायण ने इन शब्दों में किया है - '**मूर्धानम्' इति सप्तर्चं सप्तमं सूक्तं भरद्वाजस्यार्षं वैश्वानराग्निदेवताकम्** (ऋ० ६.७ सा० भा०)।

७०. **वैश्वानर (अग्नि) (४.५)** — 'वैश्वानर' अग्निदेव का ही एक विशेषण है। **इस शब्द का प्रयोग** ऋग्वेद में प्रायः ६० बार हुआ है। अग्नि के विभिन्न रूपों में दिव्य अग्नि को वैश्वानर कहा गया है। **बृहद्देवता** में अग्नियों के तीन प्रकार बताये गये हैं। उसमें इस (पृथिवी) लोक की अग्नि को अग्नि, मध्यलोक में इसी को जातवेदस् तथा दिव्य लोक में वैश्वानर बताया गया है - **इहाग्निभूतस्त्वृषिभिर् लोके स्तुतिभिरीळितः। जातवेदा स्तुतो मध्ये स्तुतो मध्ये स्तुतो वैश्वानरो दिवि** (बृह० १.६७)। निघण्टु में यास्काचार्य लिखते हैं - याज्ञिक लोग अग्नि वैश्वानर का अर्थ सूर्य करते हैं - **अथासावादित्य इतिपूर्वे याज्ञिकाः** (नि० ७.२३)। जबकि आचार्य शाकपूणि पार्थिव अग्नि को ही अग्नि वैश्वानर मानते थे। यास्काचार्य ने बाद में अपना मत स्पष्ट करते हुए लिखा है-यज्ञ और स्तुति को ग्रहण करने वाला अग्नि वैश्वानर यह (पार्थिव) अग्नि है- **यस्तु सूक्तं भजते तस्मै हविर्निरुप्यतेऽयमेव सोऽग्निर्वैश्वानरः** (नि० ७.३१)। बृहद्देवताकार एक स्थान पर लिखते हैं कि अग्नि, जातवेदस् और वैश्वानर मूलतः समान ही हैं। वे जातवेदस् को अग्नि और वैश्वानर में समाहित मानते हैं - **वैश्वानरं श्रितो ह्यग्निर् अग्निं वैश्वानरः श्रितः। अनयोर्जातवेदास्तु तथैते जातवेदसी** (बृह० १.९७)। अर्थात्-अग्नि वैश्वानर में निहित हैं, वैश्वानर अग्नि में निहित हैं, तथा जातवेदस् इन दोनों में, अतः ये दोनों जातवेदस् के ही दो रूप हैं।

७१. **शुन एवं शुनासीर (४.५७.४; ५,८)** — शुन एवं शुनासीर कृषि के देवता हैं। ऋग्वेद में शुन को एक ऋचा में तथा शुनासीर को दो ऋचाओं में देवता की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। शुनासीर देव युग्म के रूप में प्रतिष्ठित हैं। शुन और सीर का विभिन्न विद्वान् अलग-अलग अर्थ करते हैं। बृहद्देवताकार ने शुन को वायु तथा सीर को सूर्य बताया है - **वायुः शुनः सूर्य एवात्र सीरः शुनासीरौ वायुसूर्यौ वदन्ति** (बृह० ५.८)। यास्क महोदय ने शुनासीर को इन्द्र माना है, जबकि आचार्य शाकपूणि का मत है कि शुन और सीर, सूर्य और इन्द्र हैं - **शुनासीरं यास्क इन्द्रं तु मेने सूर्येन्द्रौ तौ मन्यते शाकपूणिः** (बृह० ५.८)। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में स्वीकार किया है - **चतुर्थी शुनाख्यदेवताका पञ्चम्यष्टम्यौ शुनासीरदेवताके** (ऋ० ४.५७ सा० भा०)।

७२. **सरस्वती (६.६१)**— द्र० ऋ० भाग - १।



७३. सविता (३.६२.१०-१२) — द्र० - ऋ० भाग-१

७४. सीता (४. ५७.६-७) — वैदिक देवताओं में सीतादेवी भी प्रतिष्ठित हैं । इन्हें ऋग्वेद में दो ऋचाएँ समर्पित हुई हैं । सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी हैं । कोश ग्रन्थों में सामान्यतया सीता शब्द का अर्थ हल के फाल से धरती में बनने वाली रेखा है । सीता देवी से उत्तम फल, ऐश्वर्य एवं कृपा वर्षण की कामना की गई है-**अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा** (ऋ० ४.५७.६)। आचार्य सायण ने भी (ऋ० ४.५७.६-७ ऋचाओं में) सीता के देवत्व को स्वीकारते हुए लिखा है- **षष्ठी सप्तम्यौ सीतादेवताके** (ऋ० ४.५७ सा० भा०)। बृहद्देवता में भी सीता के देवत्व को प्रमाणित किया गया है - **द्वे तु सीतायै षष्ठी सप्तमी च** (बृह० ५.९)।

७५. सूर्य (५.४०.५) — द्र० - ऋ० भाग-१ ।

७६. सोम (३.६२.१३-१५) — द्र० - ऋ० भाग-१ ।

७७. सोम-रुद्र (६.७४) — वैदिक देवताओं में कई देवताओं की स्तुति, युग्मों में की गई है । इसी क्रम में सोम-रुद्र की स्तुति भी उल्लेखनीय है । ऋग्वेद में मात्र एक सूक्त (६.७४) में सोम-रुद्र की एक साथ स्तुति की गई है, जिसमें ऋषि (भरद्वाज बार्हस्पत्य) ने सोम-रुद्र से रोगों से मुक्ति की, अन्न और सुख प्रदान करने तथा वरुणपाश से मुक्त करने आदि की प्रार्थना की है । **यथा - सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश .... सन्तु** (ऋ० ६.७४.२)। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में प्रमाणित किया है - **'सोमारुद्रा' इति चतुर्ऋचं त्रयोदशं सूक्तं भरद्वाजस्यार्षं त्रैष्टुभं सोमारुद्र देवताकम्** (ऋ० ६.७४ सा० भा०)। इनके सम्बन्ध में अन्यत्र कोई विशेष विवरण उपलब्ध नहीं होता ।

७८. सोमक साहदेव्य (४.१५.७-८) — 'सोमक साहदेव्य' वस्तुतः राजा सहदेव के पुत्र एवं सोमक नाम के राजा थे । ऋग्वेद की दो ऋचाओं में इनका वर्णन होने से **'या तेनोच्यते सा देवता'** सूत्र के अनुसार इन्हें देवत्व प्राप्त हुआ है । आचार्य सायण ने उपरोक्त तथ्य को अपने ऋग्वेद भाष्य में उद्घाटित किया है - **साहदेव्यः सहदेवनाम्नो राज्ञः पुत्रः कुमारः सोमकाभिधो राजा** (ऋ० ४.१५.७ सा० भा०) । इनके देवत्व को स्वीकार करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं - **'बोधद्यत्' इति द्वृचेन सोमकराजा स्तूयते------** । **अतस्ता एव क्रमेण देवताः** (ऋ० ४.१५ सा० भा०)। बृहद्देवताकार ने भी सोमक देव के देवत्व का उल्लेख किया है - **द्वाभ्यां स्तौति सोमकमेव तु** (बृह० ४.१२९)।

अन्य देव समूह— **यस्य वाक्यं स ऋषिः । या तेनोच्यते सा देवता** (ऋ० १०.१० सा० भा०)। आचार्य सायण के इस वाक्य को आधार मानकर ऋग्वेद के ऋषियों-देवताओं का निर्धारण किया गया है । अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि प्रचलित देवताओं के अतिरिक्त कुछ अचेतन और अमूर्त (भावात्मक), पशु, पक्षी, उपकरण, हवि, मानव, स्थान को भी देवताओं की कोटि में माना गया है । इन देवताओं को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

(क) **मानव वर्ग** - रथगोप (रथ रक्षक), सारथि (रथ चलाने वाला)।

(ख) **पशु या प्राणी वर्ग** - अश्व, गौ, दधिक्रा (अश्व का एक प्रकार), श्येन (बाज) आदि ।

(ग) **पात्र अथवा उपकरण वर्ग** - रथाङ्ग, व्रश्चनी (आरी), आर्त्नी (रज्जु), इषु (बाण), इषुधि (तरकस), ज्या (धनुष की डोरी), हस्तघ्न (हाथ की रक्षा का उपकरण), वर्म (कवच), दुंदुभि (नगाड़ा), धनु (धनुष), प्रतोद (चाबुक), रथ आदि ।

(घ) **स्थान वर्ग** - भूमि, नदियाँ आदि ।

(ङ) **अमूर्त (भावात्मक) देववर्ग** - अभिशाप, आत्मा, दानस्तुति, द्यु-निशा, रश्मि-समूह आदि ।

(च) **हव्य पदार्थ** - घृत आदि । ऋग्वेद में ऋषियों द्वारा इनका भी वर्णन-गुणगान किया गया है, अतः इन्हें भी देवताओं के रूप में मान्यता प्रदान की गई है ।



परिशिष्ट - ३

ऋग्वेद भाग - २ में प्रयुक्त छन्दों का संक्षिप्त विवरण

क्र०	छन्द-नाम	पाद-विवरण	कुल वर्ण	उदाहरण
१.	**अतिजगती**	११ + १० + १० + १० + ११	५२	५.८७.१
२.	**अतिशक्वरी**	१६ + १६ + १२ + ८ + ८	६०	६.१५.६
३.	**अनुष्टुप्**	८ + ८ + ८ + ८	३२	३.५३.१२,२२
	क. महापद पंक्ति[1]	५ + ५ + ५ + ५ + ५ + ६	३१	४.१०.५
	ख. विराट्	११ + ११ + ११	३३	३.२५.१-५
४.	**अष्टि**	१६ + १६ + १६ + ८ + ८	६४	४.१.१,२.२२.१
५.	**उष्णिक्**	८ + ८ + १२	२८	३.१०.३
	क. ककुप्	८ + १२ + ८	२८	५.५३.५
	ख. पुरउष्णिक्	१२ + ८ + ८	२८	५.५३.४
६.	**गायत्री**	८ + ८ + ८	२४	३.११.४,६
	क. अतिनिचृत्	७ + ६ + ७	२०	६.४५.२९
	ख. एकपदाविराट्	८	८	५.४१.२०
	ग. द्विपदा विराट्	१० + १०	२०	५.२४.१-४
	घ. पदपंक्ति	५ + ५ + ५ + ५ + ५	२५	४.१०.३
	ङ. पाद निचृत्	७ + ७ + ७	२१	४.३१.३
	च. वर्धमाना	६ + ७ + ८	२१	६.१६.१,६
७.	**जगती**	८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८	४८	३.२.१,१५
८.	**त्रिष्टुप्**	११ + ११ + ११ + ११	४४	५.१.२
	क. एकपदा	११	११	६.६३.११
	ख. द्विपदा	११ + ११	२२	६.१७.१
	ग. पुरस्ताज्योतिः	११ + ८ + ८ + ८	३५	५.४५.९
	घ. विराट् पूर्वा[2]	१० + ८ + ८ + ८	३४	५.८६.६
	ङ. विराट् रूपा	११ + ११ + ११ + ८	४१	३.२१.४
९.	**धृति**	१२ + १२ + ८ + ८ + ८ + १६ + ८	७२	४.१.३
१०.	**पंक्ति**	८ + ८ + ८ + ८ + ८	४०	५.६.२
११.	**प्रगाथ** (बृहती + सतोबृहती)	८ + ८ + ८ + १२ + १२ + १२ + १२	७२	३.१६.३-४
१२.	**प्रस्तार पंक्ति**	१२ + १२ + ८ + ८	४०	६.९.७५
१३.	**बृहती**	८ + ८ + १२ + ८	३६	३.९.१
१४.	**महाबृहती यवमध्या**	८ + ८ + ८ + ८ + १२	४४	६.४८.२१
१५.	**विराट्**	१० + १० + १० + १०	४०	६.२०.७
१६.	**शक्वरी**	८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८	५६	५.२७.५

१. आचार्य कात्यायन के मतानुसार यह अनुष्टुप् का भेद है।
२. इसका अपर नाम 'पंक्त्युत्तरा छन्द' है।





विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

* * *

हे सवितादेव ! आप हमारे सम्पूर्ण दुःखों
(पापमूलक दुर्गुणों) को दूर करें और
जो हमारे निमित्त कल्याणकारी हों,
उसे हमारे अभिमुख प्रेरित करें॥



—ऋग्वेद ५.८२.५

* * *



परिशिष्ट - ४

ऋग्वेदसंहितायाः वर्णानुक्रम-सूची , भाग - २



































: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :



ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' के उद्घोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।